दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक 'पश्चिमी भारत की यात्रा' कर्नल जेम्स टाड की प्रसिद्ध पुस्तक 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' का अनुवाद है। मूल पुस्तक के सम्बन्ध में 'जेम्स टाड का संक्षिप्त परिचय' के साथ आवश्यक प्रकाश डाला जा चुका है। यहां पर दो शब्दों के शीर्षक में कुछ उन बातों को अङ्कित कर देना आवश्यक मालूम होता है, जो पुस्तक के अनुवाद के सम्बन्ध में हैं।

जेम्स टाड के प्रसिद्ध इतिहास 'एनाल्ज एण्ड एन्टीक्वीटीज आफ राजस्थान' का हिन्दी अनुवाद मैंने किया था, जो 'राजस्थान का इतिहास' के नाम से प्रकाशित हुआ था। उनके दूसरे ऐतिहासिक ग्रन्थ 'पश्चिमी भारत की यात्रा' का अनुवाद भी मुझे करने का अवसर मिला है, यह उदारता इन दोनों प्रसिद्ध ग्रन्थों के प्रकाशक श्री गिरिधर जी शुक्ल, अध्यक्ष आदर्श हिन्दी पुस्तकालय इलाहाबाद को है। शुक्ल जी ने इधर लगातार कई एक प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों का अनुवाद करा के प्रकाशित किया है और इस प्रकार अप्राप्य पुस्तकों के प्रकाशन की योजना उनकी ठीक से चल रही है। ये दोनों ऐतिहासिक ग्रन्थ कितने अधिक प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण है, इस विषय में मुझे कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए कि ये स्वयं प्रसिद्ध हैं।

टाड साहब के इन ग्रन्थों में सबसे पहली कठिनाई पैदा होती है, नामों के सम्बन्ध में। स्थानों और आदमियों के नाम जैसे कुछ मूल लेखक के द्वारा अंगरेजी में लिखे गये है, उनको सही-सही समझ सकना और उच्चारण कर लेना प्रायः अनेक स्थानों पर कठिन हो जाता है, इसलिए उनके सम्बन्ध में अनुवादक से भूल हो जाना बहुत स्वाभाविक है। दूसरी भूल की प्रायः सम्भावना उस समय होती है, जब मूल लेखक का लिखा हुआ कोई स्थल स्पष्ट नहीं होता। इसका कारण है। टाड साहब ने अपनी यात्रा की अधिकांश सामग्री उन लोगों से प्राप्त की है, जो स्वयं अपने विवरण दूसरे को सही रूप में बता सकने में अपने आप को असमर्थ पाते हैं, विशेषकर उस अवस्था में जब सामग्री प्राप्त करने वाला कोई विदेशी होता है। यह कठिनाई एक विदेशी के सामने ही नहीं आती बल्कि देश वालों के सामने भी प्रायः उस समय पैदा होती है, जब कभी एक प्रान्त के लोगों को दूसरे प्रान्त के देहाती आदमियों से काम पड़ता है। ऐसे अवसरों पर कभी-कभी ऐसा ही होता है। जब कहने वाला और सुनने वाला—दोनों एक दूसरे को समझ सकने में भली प्रकार समर्थ नहीं होते। ऐसी सूरत में कहीं कहीं पर ऐसे स्थल आ जाते है, जहाँ अनुवादक को बहुत कुछ अनुमान से काम लेना पड़ता है, उस दशा में कुछ स्थल भ्रामक हो जाते हैं।

इस प्रकार की त्रुटियों को मैंने सदा स्वीकार किया है और यहाँ पर भी मैं स्वीकार करता हूँ कि श्रद्धेय गिरिधर जी शुक्ल इतिहासों के सम्बन्ध में अच्छे जानकार और सूक्ष्मदर्शी हैं। उनका सबसे स्पष्ट प्रमाण यह है कि वे जिन ऐतिहासिक ग्रन्थों के प्रकाशन का निर्णय करते हैं, वे ग्रन्थ न केवल प्राचीन और महत्वपूर्ण होते हैं, बल्कि आज हिन्दी के विकास-काल में उनकी उपयोगिता बहुत अधिक हो गयी है। शुक्ल जी में एक विशेषता और भी है, वे मूल लेखक की चीज ही अपने अनुवाद में चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि अनुवादक मूल लेखक को एक तरफ करके अपनी पसन्द के वर्णन से पुस्तक के पृष्ठों को भरने की चेष्टा करे। शुक्ल जी की इस पसन्द को वे सभी भली भाँति जानते हैं, जो अब तक उनके सम्पर्क में आये हैं अथवा आते रहते हैं।

एक भाषा से दूसरी भाषा के अनुवाद में और विशेष कर उन अवसरों पर जब कोई पुस्तक प्राचीन काल के इतिहास अथवा साहित्य से सम्बन्ध रखती है, प्रायः भूलें होती हैं। अनुवादक न समझ सकने की अवस्था में क्षम्य हो सकता है, लेकिन जब वह मूल लेखक की भूल अथवा अदूरदर्शिता समझ कर पचीसों पृष्ठों की सामग्री बदल कर अपनी रुचि तथा जानकारी के अनुसार कर देता है तो उसका यह अपराध अक्षम्य होता है, जिसके लिये वह अधिकारी नहीं होता। मुझे भय है कि मैंने पहले इस तरह की भूलें की होंगी। लेकिन मूल लेखक के विचारों, भावनाओं और विश्वासों को छोड़ने अथवा बदलने का अपराध मैंने कभी नहीं किया।

एक बात और लिख कर मैं इसे समाप्त कर दूंगा। कुछ ऐसे आलोचक भी देखे जाते हैं, जो अधिकारी न होने पर भी मूल ग्रन्थ के तथ्यों और प्रमाणों पर सन्देह करते हैं, यह अच्छा नहीं मालूम होता। अधिकारियों को भी ऐसा नहीं करना चाहिये, किसी महान कार्य की त्रुटियों पर प्रकाश डालने की अपेक्षा उसकी प्रशंसा करना विद्वानों का कार्य होता है मेरी यह धारणा मूल लेखक और किसी प्रसिद्ध इतिहास-लेखक तक ही सीमित है।

मेरे जैसे अनुवादकों को बड़े उत्तरदायित्व से काम लेना चाहिये और अपनी भूलों को स्वीकार करने के लिये सदा तैयार रहना चाहिये।

—अनुवादक

जेम्स टॉड का संक्षिप्त परिचय

यह पुस्तक 'पश्चिमी भारत की यात्रा' स्वर्गीय जेम्स टॉड की दूसरी पुस्तक है, जो 'ट्रेवल्स इन वेस्टर्न इण्डिया' का हिन्दी रूपान्तर है। 'एनाल्ज एण्ड ऐन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान' नामक ग्रन्थ उनकी पहली रचना है। वह ग्रन्थ 'टॉड-राजस्थान' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। (१) इन दोनों ग्रन्थों की रचना ने टाड साहब का इतिहास के क्षेत्र मे अमर बना दिया है। अतएव यहाँ पर यह आवश्यक हो गया है कि इस प्रसिद्ध ग्रन्थ के आरम्भ में पाठकों की जानकारी के लिये संक्षेप मे उनके जीवन पर प्रकाश डाला जाय।

जेम्स टाड अंगरेजी सेना में भर्ती होकर सन् १८०० ईसवी में इङ्गलैण्ड से भारत आये थे और वो पहले पहल बङ्गाल में पहुँचे थे। वहाँ से उनको दिल्ली भेजा गया। चार-पाँच वर्ष तक वहाँ पर वो रहे। उसके बाद उनको सिंधिया के दरबार मे सहायक पोलीटिकल एजेन्ट की हैसियत से भेजा गया। वहाँ पर रह कर मध्य भारत, राजस्थान और उनके निकटवर्ती प्रदेशों में सैनिक कार्यवाही करने के लिए अनेक स्थानों और मार्गों का सर्वेक्षण सम्बन्धी महत्वपूर्ण कार्य उनको करना पड़ा। इस समय कितने ही प्राचीन स्थानों और उनके निवासियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की उनमे अभिलाषा उत्पन्न हुई। अतएव उन्होंने अपने भ्रमण के साथ साथ, अभीष्ट सामग्री जुटाने का काम आरम्भ कर दिया।

सन् १८१७ और १८ ईसवी में जब मेवाड, मारवाड, गोडवाड, हाड़ौती और ढूढाड आदि राजपूत राज्यों का अंगरेजों के साथ सन्धि का होना आरम्भ हुआ, उस समय अङ्गरेज गवर्नर जनरल ने पश्चिमी भारत के राजपूत राज्यों में कर्नल जेम्स टाड को अपना राजनीतिक प्रतिनिधि अर्थात् पोलीटिकल एजेन्ट बना कर उदयपुर भेज दिया।

जेम्स टाड अपने जीवन के आरम्भ से इतिहास के प्रेमी थे। इसलिये उदयपुर में रहने पर उनको उस क्षेत्र का ऐतिहासिक सम्पर्क प्राप्त हुआ। उन्होंने अपनी इच्छा के अनुसार सामग्री जुटाना आरम्भ किया। इस कार्य मे लगातार उनकी रुचि बढ़ती गयी। आवश्यकता के अनुसार, उन्होंने इसमे धन खर्च करना भी आरम्भ किया और अधिक से-अधिक परिश्रम भी किया।

---

(१) कर्नल जेम्स टाड के मशहूर ग्रन्थ 'एनाल्स एण्ड ऐण्टीक्विटीज आफ राजस्थान' का हिन्दी अनुवाद, आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, ४९२ मालवीय नगर, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है।

जम्स टाड ने अपने इस कार्य की सफलता के लिये इस देश की कई ६८ भाषाओं का मासा और यहाँ के लोगों के साथ वो उनकी बोली मे भली प्रकार बात भी करने लगे। उन्होंने सस्कृत, प्राकृत, अरबी और फारसी के विद्वानो को अपने साथ रख कर अन्वेषण का काम कराना आरम्भ किया। प्राचीन शिला लेखों, ताम्रपत्रो और पट्टों को वो एकत्रित करने लगे। भाट, बरहठ, चारण और राव आदि स जो उन्होंने सुना अथवा जिस प्रकार की सामग्री उनस उनको प्राप्त हुई, उसको उन्होंने अपने अधिकार म ले लिया।

इस प्रकार क लगातार कार्य स टाड साहब क पास राजपूत राज्यो के इतिहास से सम्बन्ध रखने वाली एक विशाल मात्रा मे सामग्री एकत्रित हो गयी। उस एकत्रित सामग्री स और उस समय क राजस्थान क निवासियो के सहानुभूति सम्पर्क से उनके हृदय पर इस देश के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। अन्य अगरेज अधिकारियो की अपेक्षा वो यहाँ क अधिक शुभचि तक बन गये और अपने अधिकारो का प्रयोग वो सबके कल्याण के लिये करने लगे। अगरेज सरकार के एक अधिकारी होकर भी वो यहाँ के राजाओ और जागीरदारो को जनहितकारी तथा न्यायप्रिय काय करन क लिये प्रोत्साहन देत रहे। उनके रहन सहन और कार्यों को देखकर यह साफ साफ जाहिर होता था कि वो अगरेज सरकार के एक अधिकारी है लेकिन वो अपनी सरकार के स्वार्थ पूर्ण शासन क पक्षपाती नही है। इसीलिय समय समय पर वो अगरेजी शासन की प्रणाली का विरोध करने लगते थे। इसका प्रभाव राजस्थान की जनता पर बहुत पडा। सभी उनको अपना हितैषी समझने लग और राजाओ तथा जागीरदारो के साथ उनकी मित्रता बढ़ने लगी।

कोई भी सरकार अपने कर्मचारियो और अधिकारियो को प्रजा के प्रति उदार नही बनाना चाहती। अगरेजी सरकार को भी उसके ये तरीके खटकने लग और उसका परिणाम यह हुआ कि वो अपने सरकार के कार्यों में सन्देह की नजर से देख जाने लगे। वो स्वाभिमानी, न्यायप्रिय निष्पक्ष और स्पष्ट वक्ता थ। उन्हे चापलूसी पसद नहीं थी। जब उनको मालूम हुआ कि सरकार मुझ पर सदेह करने लगी है तो उन्होंने अपने सरल स्वभाव से निश्चय करके अपने पद से इस्तीफा दे दिया। लेकिन उन्होंने जो काम आरम्भ किया था, उसस उनको अरुचि नही हुई। उस अवसर पर उन्हें विश्वास हो गया कि जो कार्य मैंने आरम्भ किया है, उसकी सहायता के लिये ही यह परिस्थिति मेरे सामने आयी है। उनक यह समझने में देर न लगी कि मेरी कुछ कठिनाइयाँ बढ़ेगी लेकिन सरकार के पद को निभाते हुए मैं अपने इस प्रिय कार्य को सफलता पूर्वक कर नहीं सकता था, इसलिये यह अच्छा ही हुआ।

उदयपुर में रहकर मि० टाड ने जोधपुर, जैसलमेर, कोटा, बूँदी सिरोही आदि राजस्थान के प्रसिद्ध राज्यों की यात्रायें की थीं और उन सभी राज्यों स अपन

आवश्यकता के अनुसार सामग्री एकत्रित की थी। अंगरेजी सरकार से सम्बन्ध तोड़कर जब वो उदयपुर से इङ्गलैण्ड जाने के लिये रवाना हुए तो उस समय तक की सम्पूर्ण एकत्रित की हुई सामग्री अपने साथ लेते गये।

प्राचीन गुजरात और सौराष्ट्र का सम्बन्ध राजस्थान के साथ था, इसलिये उनको वहाँ की यात्रा करनी थी। अतएव उदयपुर से चलकर वो आबू सिद्धपुरा, अनहिलवाड़ा-पाटण, बड़ौदा, भावनगर, पालीताना, जूनागढ़, द्वारका और सोमनाथ होते हुये कच्छ गये और फिर वहाँ से जहाज में बैठकर बम्बई पहुँचे। सन् १८२३ के फरवरी महीने में वो भारत की भूमि से विदा होकर इङ्गलैण्ड चले गये। इस तरह मि० टाड पूरे बाईस वर्ष भारत मे रहे। उन्होंने अपने जीवन का महत्वपूर्ण भाग इस इतिहास की सामग्री एकत्रित करने मे जिस प्रकार व्यय किया, उसके वर्णन और विवरण रोमाञ्चकारी हैं। उनकी अभिलाषा, लगन, कर्तव्य परायणता और निष्ठा उनके अत्यन्त महान होने का स्पष्ट प्रमाण देती है।

मि० टाड के सैकड़ों और हजारो गुणो में सबसे अधिक विशेषता यह थी कि वो न केवल एक शूरवीर सैनिक और सेना के अधिकारी थे, बल्कि वो शूरवीरो के भक्त थे। वो राजपूतो के प्रबल पक्षपाती थे और उसका केवल यही कारण था कि वो सौन्दर्य और सम्पदा के स्थान पर शौर्य के पुजारी थे। वो एक शूरमा थे और शूरो के प्रशंसक थे।

उदयपुर से जब उन्होंने अपने देश इङ्गलैण्ड जाने के लिये प्रस्थान किया तो उन्होंने बम्बई का रास्ता पकड़ा, बीच में जितने भी महत्वपूर्ण स्थान हो सकते थे उन्होंने उन सब मे पहुँचने का कार्य किया। कोई भी प्राचीन स्थान, चाहे वह किसी भी अर्थ में प्रसिद्ध हुआ, मि० टाड वहाँ पर गये और उन्होंने उसकी कोई भी ऐसी स्थिति बाकी नहीं छोड़ी, चाहे वह नयी हो अथवा पुरानी, जिसके तथ्य और प्रवाह सुनकर, देखकर और पढ़कर उन्होंने अपने अधिकार में न ले लिए हों। इस प्रकार छोटी और बड़ी सभी जगहों का—उसके तथ्यो और रहस्यो को उन्होंने विशाल रूप में संकलन किया।

भारत के बाईस-तेईस वर्षों के निवास मे पूर्व की तरफ कलकत्ता से लेकर पश्चिम मे बम्बई तक के महत्वपूर्ण क्षेत्र के वो अपने समय में एक अद्वितीय जानकार बन गये। निस्सन्देह मि० टाड एक अत्यन्त बुद्धिमान सैनिक और सरदार थे। वे जितने ही राजनीतिक थे, उतने ही आध्यात्मिक और ऐतिहासिक थे। जीवन के आरम्भ से उनके अन्तरतर मे एक प्रबल जिज्ञासा थी। उसको पूरा करने में उन्होंने अपने जीवन का सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया और उसके बदले में उन्होंने साहित्य और इतिहास की जो विपुल राशि एकत्रित की, उसे लेकर वो इङ्गलैण्ड चले गये और पाँच-

छे वर्षों के अथक प्रयासों के बाद जो परिणाम निकला, उसमें राजस्थान का विस्तृत इतिहास संसार के सामने आया। सन् १८२६ ईसवी में उसका पहला भाग और सन् १८३२ ईसवी में उसका दूसरा भाग प्रकाशित हुआ।

राजस्थान का इतिहास प्रकाशित हो जाने के पश्चात् उन्होंने अपनी यात्रा का इतिहास लिखना आरम्भ किया, जिसका संकलन उदयपुर से रवाना होने के बाद बम्बई पहुँचने के सम्पूर्ण मार्ग में, भयानक कठिनाइयों में किया था। इस यात्रा में उन्होंने समस्त स्थानों, तीर्थों, मन्दिरों, दुर्गों, राजधानियों और शासकों के नवीन और प्राचीन रहस्यों के चित्र खींचे। इन चित्रों में योरप और दूसरे देशों के मिलते जुलते चित्रों की कड़ियों का समन्वय किया। भारतीय जीवन में अपने कार्य को पूरा करने में मि० टाड ने अपने स्वस्थ्य और सुन्दर जीवन को जुए की बाजी लगायी थी। या तो सफलता मिलती है अथवा स्वास्थ्य से हाथ धोना पड़ता है। उनका यह सोचना गलत नहीं हुआ। उनका कार्य पूरा हुआ, सफलता मिली, लेकिन उनको जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा। 'पश्चिमी भारत की यात्रा' के लिखने का कार्य जैसे ही समाप्त हुआ, उनका स्वास्थ्य उत्तरोत्तर गिरता जा रहा था, पुस्तक की पाण्डुलिपि को लेकर वो लण्डन में अपने प्रकाशक के पास गये और उसके प्रकाशित कराने की कोशिश कर रहे थे, अकस्मात् उनको मृगी रोग का भयानक दौरा हुआ और उसी में सन् १८३५ ईसवी के नवम्बर महीने में उनकी मृत्यु हो गयी। उस समय उनकी अवस्था तिरेपन वर्ष की थी।

मि० टाड की मृत्यु के चार वर्षों के बाद सन् १८३६ ईसवी में उनकी यात्रा का विवरण प्रकाशित हुआ। राजस्थान के इतिहास का प्रकाशन उनके जीवन काल में हो गया था, उससे उनको बहुत सतोष मिला था, जैसा कि स्वाभाविक होता है। लेकिन उनकी 'पश्चिमी भारत की यात्रा' का प्रकाशन न हो सका और उनकी अकाल मृत्यु हो गयी। यात्रा की सामग्री एकत्रित करने के लिए उनको भीषण कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, वे घटनायें और कथानक कितने रोमाञ्चकारी हैं, इसका अनुमान इस ग्रन्थ को पढ़ने के बाद ही हो सकता है। हम यहाँ पर इतना ही कह सकते हैं कि उन्होंने इसके लिये अपना सब कुछ खोया था, सम्पत्ति और प्रभुता के साथ साथ उन्होंने अपने प्राणों का उत्सर्ग किया लेकिन जिसके लिये किया, उसे वह छपा हुआ देख न सके और अकस्मात् वो इस संसार से बिदा हो गये।

मि० टाड का लिखा हुआ 'राजस्थान का इतिहास' अङ्गरेजी में प्रकाशित होते ही योरप के सारे देशों में उसकी खपत हुई और माँग बढ़ी, उस इतिहास में टाड साहब ने जो कुछ लिखा, उसकी ओर संसार की आँखें कभी गयी नहीं थीं। लेकिन मि० टाड ने उन सब की आँखें खोलीं और अपने कथानकों से उन्होंने सबको आश्चर्य चकित कर दिया। इस प्रकार यदि मि० टाड ने उस ग्रन्थ को—अथक परिश्रम और आत्म

त्याग के साथ—लिखा न होता तो जो सम्मान भारत को मिला, वह कभी—किसी सूरत में सम्भव नहीं था। परिस्थिति यह थी कि भारत के लोग स्वयं अपने इस गौरव को नहीं जानते थे, उनकी और संसार के देशों की आँखें, उस समय खुलीं, जब मि० टाड ने 'राजस्थान का इतिहास' लिखकर घोषणा की। "भारत के राजपूतों में यदि उनकी व्यक्तिगत खराबियाँ न होतीं और उन लोगों ने आपसी फूट, ईर्षा और विरोध में अपना ही विनाश न किया होता तो यह निश्चय है कि संसार की कोई भी जाति इसकी बराबरी नहीं कर सकती थी।"

इतिहास के इस महान ग्रंथ के प्रकाशित होने के बाद से लेकर अब तक अनेक विद्वानों शोधकों और आलोचकों ने अपने-अपने मतों को प्रकट किया है। ये आलोचनायें आज भी चल रही हैं। किसी भी ग्रंथ की विशेषता और लोकप्रियता का इससे अधिक और क्या प्रमाण हो सकता है। न जाने कितने इतिहास के विद्वानों ने इसकी जी खोलकर प्रशंसा की है और इसके तैयार करने में मि० टाड ने जिस परिश्रम, कष्ट सहन और त्याग से काम लिया है, उसकी सराहना की है। लेकिन कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्होंने उनकी त्रुटियों और अभावों को अधिक खोजने की कोशिश की है। मि० टाड ने उस जमाने में इस विशाल इतिहास को तैयार करने का काम किया था, जब लोग इतिहास लिखने की सामग्री जुटाना भी नहीं जानते थे। पृथ्वीराज रासो, मेवाड़ और मारवाड़ के इतिहास और राजाओं की वंशावलियां के सिवा किसी के पास और था ही क्या। लेकिन टाड साहब ने उस इतिहास को लिखने के लिये जिस प्रकार की सामग्री जुटाई और जिस आत्म त्याग के द्वारा उसको एकत्रित करने का कार्य किया, वह न केवल प्रशंसा के योग्य है, बल्कि उसकी प्रणाली से इतिहास लिखने वालों का मार्ग प्रदर्शन होता है। लोग सीखेंगे कि इतिहास इस प्रकार लिखे जाते हैं और उनके लिए इतिहासकार किस प्रकार अपने आपको बलिदान करता है। अभावों का संकेत करना अथवा उन पर प्रकाश डालना कोई महत्व नहीं रखता।

इतिहास न तो कहानी है और न उपन्यास, वह कविताओं के मार्ग से बहुत दूर है। इतिहास को कल्पनाओं के द्वारा न तो रोचक बनाया जाता है और न उसके लिये रसीली भाषा की आवश्यकता होती है। मि० टाड इतिहास लिखना जानते थे, उसके लिये उनकी भाषा स्वाभाविक रूप से काम करती थी। उनके इस ग्रंथ की आलोचना करते हुये इतिहास के विद्वानों ने लिखा है —

कर्नल टाड अपने समय के महान इतिहासकार और शोध के कार्यों के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक अन्वेषक थे। उन्होंने राजस्थान का इतिहास लिखकर अपने को और राजस्थान को अमर बना दिया है। ग्रंथ की रचना शैली लोकप्रिय और रोमांचकारी है।

मि० टाड की दूसरी पुस्तक 'पश्चिमी भारत की यात्रा'—जिसके साथ उसका संक्षेप में यह परिचय प्रकाशित हो रहा है—राजस्थान के इतिहास की तरह मौलिक, खोजपूर्ण और पढ़ने में अत्यन्त रोचक है। यात्रा के सम्पूर्ण स्थानक मनोरंजक और आकर्षक हैं। यहाँ पर हम तो यह कहने का भी साहस करेंगे कि मि० टाड ने यात्रा के विवरण खोजने और लिखने में अपनी उस विशाल ऐतिहासिक जिज्ञासा का परिचय दिया है, जिसका अनुमान राजस्थान का इतिहास पढ़ने में नहीं होगा।

जेम्स टाड के जीवन की परिचय पंक्तियाँ अब उनके ग्रन्थ 'पश्चिमी भारत की यात्रा' से सम्बन्ध रखती हैं। उनका यह दूसरा ग्रन्थ ऐतिहासिक शोध का काम है, जो उनके प्रथम ग्रन्थ से भी अधिक कष्ट साध्य है। उन्होंने स्वयं इस ग्रन्थ में लिखा है कि उन्होंने भारत क्यों छोड़ा, स्वास्थ्य की गिरती हुई दशा में भी निकटवर्ती बन्दरगाह पर न जाकर, चक्कर खाते हुये उनके खोजपूर्ण यात्रा का कारण क्या था।

इस कार्य में लगे रहने के दिनों में जब उनका स्वास्थ्य गिर रहा था, उस समय भी उन्होंने उसको सम्हालने का प्रयत्न नहीं किया और लगातार वह अपने निर्धारित कार्य के लिये सामग्री जुटाने में लगे रहे। वह जानते थे कि जिस कार्य में मैंने हाथ लगाया है, उसकी सफलता के लिये अथक परिश्रम और अध्ययन की आवश्यकता है। उनको अपने इस कार्य में लगन था और उसी का परिणाम था कि यह समझते हुए भी कि मेरा स्वास्थ्य गिर रहा है, फिर भी वो अपने कार्य में लगे रहे और अपने स्वास्थ्य के प्रति असावधान हो गये।

१६ नवम्बर १८२६ ईसवी को मि० टाड ने लण्डन के प्रसिद्ध डाक्टर क्लटरबक की लड़की के साथ विवाह किया। उससे मि० टाड के दो पुत्र और एक लड़की हुई। विवाह के बाद सन् १८२७ ईसवी में जब वो मिलान में थे वहाँ स्थल की एक बीमारी से उनको बड़ा कष्ट हुआ, उस समय उनमें लिखने की क्षमता नहीं रही थी, फिर भी उन्होंने विश्राम नहीं किया और पीड़ा की अवस्था में भी उन्होंने एक शोध पत्र तैयार किया था और उसको उन्होंने पेरिस की एशियाटिक सोसाइटी में भेजा था। उनका वह लेख वहाँ की पत्रिका में प्रकाशित हुआ था।

जेम्स टाड का शरीर साधारण कद से कुछ लम्बा था, शारीरिक गठन अच्छी थी और उनका व्यक्तित्व प्रभावशाली था। चेहरा खुला हुआ और वो स्वभाव से हँस मुख थे। किसी भी विषय में जब वो किसी से बातें करते थे तो अपने विचारों के प्रति वो अटूट दृढ़ता का प्रदर्शन करते थे। उनका ज्ञान व्यापक था और प्रतिभा बहुमुखी थी। उनके लेख प्रायः ऐतिहासिक होते थे। उनमें अपार उत्साह था, अपूर्व साहस था, उनकी सूझ निर्णयात्मक थी। उनका स्वभाव दयालु था। उनके जैसे पारदर्शी मनुष्य बहुत कम संसार में पाये जाते हैं।

———

—गिरिधर शुक्ल

विषय-सूची

— ❀ —

पहला प्रकरण

उदयपुर से प्रस्थान

दूसरा प्रकरण

यात्रा का आरम्भ : उसके दृश्य

तीसरा प्रकरण

परम्परायें और अन्ध विश्वास

चौथा प्रकरण

आदिवासी जातियाँ, पुराने सिक्के और तरीके

तेरहवाँ प्रकरण

सौराष्ट्र : प्राचीन और नवीन

चौदहवाँ प्रकरण

जैनियों का सम्प्रदाय

पन्द्रहवाँ प्रकरण

काठी जाति और पाण्डव वन्धु

सोलहवाँ प्रकरण

मन्दिरों का निर्माण और भारत की सम्पत्ति

सत्रहवाँ प्रकरण

जूनागढ़ प्राचीन और नवीन

अठारहवाँ प्रकरण

पहाड़ों के कुछ अनोखे दृश्य

उन्नीसवाँ प्रकरण

नगर, राजवंश और विवरण

बीसवाँ प्रकरण

प्राचीन काल की ग्रन्थियाँ

इक्कीसवाँ प्रकरण

दासता की मिटती हुई प्रथा

बारहवाँ प्रकरण

इतिहास और समाज के कुछ विचित्र चित्र

तेरहवाँ प्रकरण

राजनीति के दाँव पेच



पश्चिमी भारत की यात्रा

पहला प्रकरण

उदयपुर से प्रस्थान

यात्रा और उसकी प्रस्तावना—आत्म प्रशंसा का अपराध—यात्राओं के साथ मेरा स्नेह—कार्यों का बोझ और उत्तरदायित्व—उदयपुर के निवासियों के साथ सम्पर्क—बिदाई और वियोग—राणा के उद्गार—सामंतों के साथ राज्य के झगड़े—मेरा गिरता हुआ स्वास्थ्य—जङ्गली जातियाँ और उनका अध्ययन करने की अभिलाषा।

जिसने हमारा लिखा हुआ राजस्थान का इतिहास [एनाल्स एण्ड एन्टीक्विटीज़ आफ राजस्थान] पढ़ा है उसको हमारी इस दूसरी पुस्तक "पश्चिमी भारत की यात्रा" को पढ़ने के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह पहले हमारी किसी प्रस्तावना को पढ़ें। राजस्थान का इतिहास पढ़ने के बाद वह इसको पढ़ सकता है। उसके लिये हमारे वक्तव्य की आवश्यकता नहीं है। फिर भी अपनी इस यात्रा के सम्बन्ध में मैं कुछ न लिखूँ यह बहुत अच्छा नहीं मालूम होता। इसलिये अपने पाठकों को यह बताना कि उस इतिहास को लिखने के बाद—जिससे मेरे स्वास्थ्य और सामर्थ्य को भयानक रूप से आघात पहुँचा—इस यात्रा की आवश्यकता क्या पड़ी और इस ऐतिहासिक यात्रा के लिखने का मेरा अभिप्राय क्या था, बहुत आवश्यक हो गया है।

अपनी यात्राओं के वर्णन में सभी प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। अनेक स्थलों के वर्णन करने में आत्म प्रशंसा के अपराध का एक भय उत्पन्न होने लगता है, उसको सही रूप में न लिखना और उस भय के कारण कुछ अंशों को छोड़ देना, उन घटनाओं को अपूर्ण बनाता है, ऐसी अवस्था में उस प्रकार का सकोच कुछ महत्व नहीं रखता।

एक बात और है—किसी भी विषय को जटिल बनाकर लिखना पाठकों को प्रिय नहीं मालूम होता। अतएव उस प्रकार किसी भी विवरण को लिखने की भाषा और शैली बहुत स्पष्ट सादगी लिए हुए होना चाहिए। क्लिष्टता और जटिलता से कोई भी विवरण न तो स्पष्ट बन पाता है और न उसमें आनन्द पैदा होता है। इतिहास और यात्रा के वर्णन सदा सरल, सुबोध, मधुर और प्रिय होने चाहिए। इस सादगी के

अभाव में जो घटनायें सामने आती हैं, उससे पाठक अनेक अंशों में अपरिचित बने रहते हैं। इस अवस्था में उन घटनाओं के साथ पाठकों का सामंजस्य स्थापित नहीं हो पाता। कोई भी पाठक पुस्तक की घटनाओं के साथ जितना सम्पर्क स्थापित करना चाहता है उतना ही वह उसके लेखक से परिचित होना चाहता है। वह जानना चाहता है कि इन यात्राओं के साथ लेखक की घनिष्ठता क्यों है और जिन घटनाओं के विवरण उसने सामने रखे हैं, उनमें उसका उद्देश्य क्या है। इस तरीके से घटनाओं के साथ-साथ, पाठक लेखक का परिचय प्राप्त करते हैं। लेखक अपनी यात्राओं और उनकी घटनाओं का वर्णन इस प्रकार करता है, जिससे उनके प्रति पाठकों की अभिरुचि उत्पन्न हो सके और यह उसी दशा में सम्भव होता है जब उसके वर्णन की भाषा और शैली सरल, सुरुचिपूर्ण और स्पष्ट हो। ऐसी दशा में मेरे लिए यह आवश्यक है कि अपनी यात्राओं की घटनाओं को वर्णन करने के समय आत्म प्रशंसा के अपराध के भय को अपने निकट आने न दूं और मैं यह भूल जाऊं कि मैं जो कुछ लिखे रहा हूँ वह सब अपने लिये लिख रहा हूँ, बल्कि मैं यह समझूँ कि यात्रा की घटनाओं का वर्णन मुझे ईमानदारी के साथ करना है, उसको कहीं पर घटाना बढ़ाना नहीं है।

मुझे इस प्रकार की यात्रायें आरम्भ से प्रिय रही हैं। इङ्गलैण्ड को छोड़े हुए मैं बाईस वर्ष बिता चुका था और तेईसवाँ वर्ष भी खत्म होने जा रहा था। इनमें से अठारह वर्ष मैंने पश्चिमी भारत की राजपूत जातियों के साथ व्यतीत किये थे और पाँच वर्षों में मैंने सरकार के पोलीटिकल एजेण्ट की हैसियत से मेवाड़, मारवाड़, जैसलमेर, कोटा और बूंदी की पाँच बड़ी रियासतों में एवम् सिरोही की एक छोटी रियासत में काम किया था। मेरे सामने एक बड़ी जुम्मेदारी थी जिसके लिए बाद में चार अन्य एजेण्ट मुकर्रर किये गये थे। मैंने अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार निभाने की चेष्टा की थी और किसी प्रकार कहीं पर त्रुटि नहीं आने दी थी। इसका परिणाम यह हुआ था कि मेरा स्वास्थ्य लगातार गिरता गया। उन दिनों की कठोर जुम्मेदारी को अनुभव करते हुए भी मैंने अपने उन कार्यों में कोई कमी नहीं आने दी जिनके साथ मेरी अवगमन [illegible] थी। उन दिनों में जुम्मेदारी का कितना बड़ा बोझ मेरे सिर पर था, उसको बताने के लिए मैं इतना ही कह सकता हूँ कि बारह घंटे से लेकर चौदह घंटे तक मैं रोजाना रियासतों के झगड़ों में व्यस्त रहता था। विश्राम करने के लिए समय नहीं मिलता था। खाने-पीने की व्यवस्था ठीक नहीं चल पाती थी। चिन्ताओं का बोझ हमेशा बना रहता था। इस प्रकार की परिस्थितियों के परिणाम स्वरूप, सिर में निरन्तर पीड़ा रहा करती थी। उस हालत में भी मैं काम करता था। शरीर की अस्वस्थ अवस्था में भी विश्राम के लिए मौका निकालने की आज्ञा न थी।

मेरी यह परेशानी की हालत मेरे मित्रों से छिपी न थी मैं किसी से कुछ कहता नहीं था लेकिन जानते सभी थे। मेरी दशा को देखकर प्रायः मेरे मित्र आश्चर्य करते

थे, लेकिन फिर भी अपने उत्तरदायित्व को निभाने में मैंने कभी अपने सामने कमजोरी नहीं आने दी। इसका कारण था, मेरा विश्वास—जिससे कि मेरे इस प्रकार कष्ट सहन से हजारों पीड़ित मित्रों और स्त्री-पुरुषों का उपकार हो सकता है। अपने इस विश्वास से मुझे बल मिलता था।

इसी प्रकार के दिनों में उस प्रिय स्थान से विदा होने का समय भी सामने आया, जिसे मैंने अपनी जन्मभूमि के रूप में स्वीकार किया था। मैंने कभी नहीं सोचा था कि ऐसे प्यारे स्थान को छोड़कर मुझे अन्यत्र कहीं अपनी जीवन लीला समाप्त करनी होगी।

दुख में दुख मिलता है और पीड़ा में वेदना होती है। लेकिन अगर किसी दुख और पीड़ा में भी सुख और सम्मान का अनुभव होता है तो उसी समय, जब मनुष्य किसी के उपकार में दुख और पीड़ा का सामना करता है। मैं जीवन की इन्हीं परिस्थितियों में पहुँच गया था, जिनमें मेरे कष्टों और कठिनाइयों की सीमा नहीं थी। लेकिन उन कष्टों और कठिनाइयों को सहन करके मैं अगणित साधारण स्त्री पुरुषों का ही नहीं, बल्कि कितने ही राज्यों, राजाओं और राज-परिवारों का उपकार कर रहा था। आपसी झगड़ों के कारण आई हुई गरीबी, कङ्गाली, बेहाली और बेचैनी में पड़े हुए राजाओं, नरेशों और राज-परिवारों ने शान्ति और खुशहाली का जीवन बिताने के अवसर प्राप्त किये। उनकी प्रजा के जीवन में भी परिवर्तन हुआ। उनके निराश जीवन में शान्ति और सुख का आभास हुआ। मेरे रवाना होने के समय राणा से लेकर प्रजा तक सबकी तरफ से जो मेरे लिये कहा गया, उसका वर्णन करना मेरे लिये अच्छा नहीं साबित होगा। राजाओं और रईसों ने कृतज्ञता के भाव प्रकट किये और उपस्थित स्त्री पुरुषों का विशाल जन समूह उस बिदाई के समय अपने शुभचिन्तक के वियोग की व्यथा को अनुभव कर रहा था। सर्वसाधारण में लोग मुझे बाबा कहकर पुकारा करते थे। उनका इस प्रकार सम्बोधन करना इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि मेरे व्यवहारों और उपकारों के कारण उन सभी ने मुझको अपना सगा, सम्बन्धी और शुभचिन्तक मान लिया था।

प्रस्थान करने की तैयारी में पन्द्रह दिन बीत गये। मेरे जाने की खबर सभी लोगों में फैल गयी थी। इसलिए मुझसे मिलने के लिए आने वालों की संख्या रोजाना बढ़ती जाती थी। इससे मेरी तैयारी में विलम्ब हो रहा था। इससे बचने के लिए मैं राजधानी से उत्तर की तरफ एक मील की दूरी पर सहेलियों का प्रासाद (महल) में चला गया था। (१) वह प्रासाद विभिन्न प्रकार के खूबसूरत और सुगंधित फूलों से भरा हुआ था।

---

(१) यह प्रासाद (महल) राणा संग्रामसिंह दूसर ने (१७११-१७३४ ईसवी) में बनवाया था। (टौड जिल्द पृ० १५४ और ६८१ में)। कहा जाता है कि बादशाह

मुझे अन्तिम विदाई देने के लिये अपने दरबार के लोगों के साथ जब राणा (१) का आगमन हुआ, उस समय मैं अपनी मूर्तियों, शिला लेखों, धातुपात्रों और हस्तलिखित पुस्तकों को ले जाने के लिये सन्दूकें बनवाने में लगा हुआ था और बहुत से कारीगरों तथा कर्मचारियों से मैं घिरा हुआ था। मुझे इस हालत में देखकर राणा को हँसी आ गयी।

राणा और साथ में आये हुये सभी लोगों के दिलों में एक पीड़ा थी। मैं उनको छोड़कर जा रहा हूँ। इसलिये उनको विभिन्न प्रकार की चिन्ताओं ने घेर लिया था। मेरे आने के पहले और आने के दिनों में भी उनकी जिन्दगी के दिन शान्ति और सुख के नहीं थे। एक शत्रु का आक्रमण समाप्त नहीं होता था, कि दूसरे के आने के समाचार मिलने लगते थे। ये आक्रमणकारी शत्रु केवल डाकुओं और लुटेरों के रूप में आते थे और लूटमार कर चले जाते थे। राज शक्तियाँ इतनी निर्बल हो चुकी थीं कि उन आक्रमणकारियों को वे रोक नहीं पाती थीं। शत्रु एक न एक बहाना करके राज्य में आक्रमण करते थे। पुराने शत्रुओं का अन्त नहीं होने पाता था। नये शत्रु पैदा हो जाते थे। उनकी शत्रुता के कोई कारण नहीं होते थे। किसी पुराने शत्रु के आक्रमण से उत्पन्न जख्म सूखने नहीं पाते थे, कि पहाड़ी घड़ैत हमला कर देते थे और लूटपाट के बाद जब वे लोग लौटकर जाते तो पहाड़ के संगठित भील लोग आकर प्रजा में लूट मार आरम्भ कर देते। राज्यों की यह साधारण अवस्था चल रही थी।

फ़ुटलॉयियर ने राणा संग्रामसिं को भेंट में सहेलियन कुमारी दासियाँ दी थीं। उनके रहने के लिये राणा संग्रामसिंह ने यह महल बनवाया था। जो सहेलियों की बाड़ी के नाम से प्रसिद्ध था। वे कुमारियाँ जीवन भर उसी में रहीं। बताया जाता है कि दूध तलाई पर जो कब्रें बनी हुई हैं वे उन्हीं कुमारियों की हैं। यह भी कहा जाता है कि इन कुमारियों को पोलो खेलने का बड़ा शौक था। उनके पोलो खेलने के चित्र उदयपुर की चित्रशाला में लगे हुए बनाये जाते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि इस महल के आस पास सैंठ नामक एक घास इफरात पैदा होती है। उस घास के नाम पर उस स्थान को सैल वाटिका कहा जाता है। यह घास अब बरू के नाम से मशहूर है। इसके डंठल से कलमें बनायी जाती थीं और वे कलमें लिखने के काम आती थीं।

कुछ लोगों का यह भी अनुमान है कि इस प्रकार जो बातें कही जाती हैं। उनका कोई आधार नहीं है। ऐसा मालूम होता है कि राणा ने महलों में रहने वाली रानियों उनकी सखियों और मिलने जुलने वाली स्त्रियों के मनोरञ्जन के लिये इस रमणीक स्थान का निर्माण कराया गया था। लेकिन यह भी एक अनुमान मात्र है।

(१) राणा भीमसिंह, १७७८ १८२८ ईसवी।

इस प्रकार के दुर्दिनों का अब अन्त हो गया था। आक्रमणकारी मराठो और निष्ठुर पठानो के अत्याचारों का भय नही रहा था। जङ्गलो और पहाडो पर रहने वाले भील लोग लूटमार करने के लिये अब राज्यो मे आने का साहस नही करते थे। इसलिये राजाओं को शान्ति मिल गयी थी। सरदार और सामन्त लोग अफीम खा-खाकर कुम्भकर्ण की नींद सोते थे। उनको अब किसी शत्रु का भय नहीं रह गया था। वे अब बिना किसी चिन्ता के अपना जीवन व्यतीत करते थे।

परन्तु इस प्रकार की शान्ति उनमें से सभी लोगो को पसन्द न थी। वे इसे चाहते भी नही थे। वे लोग इसको अपने जीवन की एक भयानक अकर्मण्यता समझते थे। ऐसे लोगो मे भेदसर का सरदार हमीर और बहारसिंह—जो पहाडो शेर कहलाते थे—दोनों ही असन्तोष पूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनकी और उनके बहुत से साथियों की जमीनें मराठो ने आक्रमण करके अपने अधिकार मे कर ली थी। उन सबके सामने यह एक असन्तोष था जो रह-रह कर उनके दिलो मे पीड़ा उत्पन्न करता था। वे सभी मराठो के अधिकार से अपने इलाके वापस लेना चाहते थे।

जहाँ कही गम्भीर सम्बन्ध कायम हो जाते हैं, वहाँ वियोग के समय दोनों पक्ष के लोगो को मानसिक वेदना का होना स्वाभाविक होता है। हम लोगो मे एक बहुत बडी भ्रान्ति फैली हुई है और उसके आधार पर यह मान लिया गया है कि जिनके रङ्ग गोरे नहीं होते, उनमे योग्यता और प्रतिभा नही होती। इस प्रकार का विश्वास कोई आधार नही रखता। मैं उन लोगो के बीच मे—जिनके रङ्ग गोरे नही हैं—अपनी जिन्दगी के बहुत दिनो तक रहा हूँ और उन दिनों मे जो मैंने अनुभव किया है, उनके आधार पर मैं इस प्रकार के विश्वास को सही नही मानता।

इस समय हम सबके साथ राणा चुपचाप बैठे थे। यों तो वे अपनी हास्यप्रियता के लिये सभी लोगों में बहुत प्रसिद्ध हैं और वे खूब बातें भी करते हैं। लेकिन इस समय कुछ देर से वे बहुत गम्भीर हो रहे थे और उस गम्भीरता को भङ्ग करते हुए वे कभी-कभी कह उठते थे।

'मैं आपको तीन वर्षों की छुट्टी दे रहा हूँ। इस बात को भूल न जाना। अगर तीन वर्षों से अधिक ठहरने का आपने वहाँ पर इरादा किया तो मैं स्वयं आपको लाने के लिये आऊंगा और जहाँ कही मिलेंगे, पकड़कर ले आऊंगा।"

उस समय कितने ही सरदार और सामन्त वहाँ पर मौजूद थे। उनकी तरफ देखकर राणा ने गम्भीरता के साथ कहा—"पाँच वर्ष तक इन्होंने हमारे यहाँ काम किया। हमारी रियासत की हर तरीके से हिफाजत की।' पतन के रास्ते से हटाकर उसको उत्थान के रास्ते पर लाये। लेकिन यहाँ से जाते समय ये मेवाड की एक चुटकी मिट्टी भी अपने साथ नहीं ले जा रहे हैं।"

यह कहते-कहते राणा अत्यन्त गम्भीर हो उठे। उनके इन शब्दो को सुनकर

ई अवसर को उग । राणा ने मराठों के अत्याचार और अनाचार देखे थे । मराठे विदेशी नहीं थे । फिर भी उन्होंने राजपूतों के लोगों में लूटमार करके क्या उस स्थान में क्या नहीं किया था ? ऐसी दशा में एक विदेशी के शासन में राणा का ऐसा भावना और कहना अस्वाभाविक न था । गोरत के चरित्र का यह प्रभाव है कि जिसके कारण यूरप के एक व्यक्ति ने भारत के राजपूत दरबार में इस प्रकार आदर प्राप्त किया । नैतिकता और कृतज्ञता राजपूतों के जीवन का प्रधान गुण है । उसको समझने और अनुभव करने का जिस अवसर प्राप्त हुआ है वह कम सौभाग्यशाली नहीं है ।

दो घंटे तक राणा और उनके साथियों के साथ बात होती रही । उसके पश्चात् मुझसे मिलकर सब लोग जाने के लिये तैयार हुये । उसी समय समाचार मिला कि राणा का लेने के लिये उनका घोड़ा आ गया है । मेरे लिये आई हुई विदाई की भेंट उपस्थित की गयी । उन भेंटों को मैंने देखा । उसी समय अपने भविष्य के सम्बन्ध पर सदा ही समान श्रद्धा भाव बनाये रखने के लिये मैंने राणा से प्रार्थना की । मेरे भावों को उन्होंने सुना और विदा होते समय हम दोनों ने एक-दूसरे को प्रणाम किया । मेरी और राणा—दोनों की एक सी अवस्था बीत रही थी । दोनों के भाव दबे से मालूम होते थे । हम दोनों ने एक-दूसरे को देखा और दोनों ने एक दूसरे को विदा किया ।

कुछ सरदार उस समय रुक गये । ऐसा मालूम होता था, मानो वे कुछ कहना चाहते हैं । जो लोग रुके, उनमें भीण्डर का मोटा ठाकुर भी था । वह रुक कर और कुछ देर उपस्थित रहकर एक राजपूत की कृतज्ञता का व्यवहार प्रकट करना चाहता था । राणा और जागीरदारों के बीच में बहुत पुराने झगड़े चल रहे थे । उनको खतम कराने के लिये दोनों तरफ से मुझे मध्यस्थता स्वीकार करनी पड़ी थी । जिन सामन्तों और जागीरदारों के साथ राणा के झगड़े थे, उनमें यह मोटा ठाकुर भी था । उन सभी लोगों ने राणा के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था और उस विद्रोह में जागीरदारों ने अपने पट्टों के अतिरिक्त जायदादों पर अधिकार कर लिया था । भीण्डर के उस मोटे ठाकुर ने भी अपने पट्टे के अतिरिक्त बहुत से गाँवों में अधिकार कर लिया था । मध्यस्थ होने के बाद मैंने उन झगड़ों को खतम कराने की चेष्टा की । उस समय इस ठाकुर के अधिकार से भी लगभग तीस छोटे बड़े ग्राम वापस लिये गये, जिन पर उसने अपना अधिकार कर लिया था और राणा की कोई परवा नहीं की थी । उस ठाकुर ने उस समय अपने अधिकार के इन कस्बों और गाँवों को ही वापस नहीं किया था, बल्कि वह मेरी सहायता कर रहा था और जिन जागीरदारों ने इस प्रकार बिना किसी अधिकार के बड़ी बड़ी जायदादों पर कब्जा कर लिया था, उनसे वापस लेने में वह हमारी सहायता कर रहा था । ये झगड़े राणा और जागीरदारों के बीच लगभग पचास वर्षों से चल रहे थे और उनके सुलझने का कोई रास्ता दिखाई नहीं देता था । राज्य और

सामन्तो के बीच के इन झगड़ो ने राणा को और भी कमजोर बना डाला था। गलत तरीके से अधिकार में ली गई इस प्रकार की जायदादें ही मैंने राणा को सामन्तो से वापस नही दिलायी, बल्कि दोनो तरफ के दिलो को भी साफ कराया और व जागीर दार फिर से राज्य के भक्त हो गये। उस मौके पर इस भीडर के ठाकुर ने मेरी मौजूदगी में सबके सामने कहा था—

"मैं तो इतना ही जानता हूँ कि अगर आप न होते और स्वय भगवान भी आकर इस झगड़े को खतम कराने की कोशिश करते तो भी न तो झगड़े शान्त होते और न यह जायदादे राज्य को वापस दी जाती।"

इस प्रकार के संस्मरण मेरे पास बहुत अधिक हैं और मैं उनको महत्वपूर्ण समझता हूँ। पचास वर्षों से बढ़ती हुई अराजकता किस प्रकार मिटी और जिन लोगो ने उस अराजकता को उत्पन्न किया था, वे स्वय किस प्रकार उसके मिटाने मे सहायक हो गये, ये रहस्य साधारण नही हैं। जागीरदार ठाकुर लोग शासन के भूखे नहीं थे, वे भूखे थे सहृदयता के। उनको अपनाने में मुझे शासन के द्वारा सफलता नही मिली। सफलता मिली, उनको अपनाने म, न कि कठिनाइयो के प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट करने म। मैं इन घटनाओ को—इन संस्मरणो को महत्व देता हूँ। लेकिन यहाँ पर विस्तार क भय स उनको लिखना नही चाहता। जो कुछ लिखा है, वही कौन कम है। मैंने सक्षेप में लिखने की कोशिश की है, परन्तु फिर भी वह खोज लम्बी हो गई है। इसलिये अब और उसे बढाना नही चाहता। परन्तु अपने पाठकों को यह जरूर बताना चाहता हूँ कि स्वास्थ्य की इस गिरी हुई हालत में योरप जाने के लिये किसी निकटवर्ती बन्दरगाह की तरफ न जाकर मैंने यह लम्बा और टेढ़ा मेढ़ा रास्ता क्यो पकड़ा और इस भूल भुलैया के रास्ते में चलकर मैं अपनी यात्रा क्यों आरम्भ की ?

मैंने पहले ही लिखा है कि मुझको यात्रा प्रिय है, वह यात्रा प्रिय है, जिसमें मैं खोज का काम कर सकू। इस प्रकार की खोज को मैं अपने लिये उपयोगी और उपकारी समझता हूँ और दूसरो के लिये भी वह उपयोगी है। इस प्रकार खोज का कार्य सब कोई नही कर सकता। जिसको यह कार्य प्रिय नही है, वो सहज ही ऊबने लगता है और जो कर्तव्य-परायणता के नाम पर कभी कष्ट उठाना नही जानता, वह इस कार्य को नही कर सकता। इसे करने के लिये हृदय मे उत्सुकता होनी चाहिये। धुन, लगन और उत्सुकता के बिना कोई भी महान् कार्य नहीं किया जा सकता। खोज सम्बन्धी कार्य, महान् कार्य है और बहुत अशों में रूखा कार्य है। लेकिन जो उसके महत्व को समझता है, उसके लिये वह कार्य रूखा नही होता।

मुझे सरकार के कार्य से अवकाश मिल चुका था। उस दशा में मैंने अपने इस प्रिय कार्य को हाथ म लिया। मेरा स्वास्थ्य इसके लिये बिल्कुल अनुकूल नही था। लेकिन इस कार्य के प्रति मेरे हृदय में जो प्रियता और उत्सुकता थी, उसने मुझे प्रेरणा

की ओर उस प्रेरणा में मैंने गिरते हुये स्वास्थ्य की परवाह न की। इस प्रकार अवकाश ग्रहण करने के समय यह कार्य मेरे लिये एक प्रिय कार्य बन गया।

पहले भी अनेक बार मेरे सामने ऐसे अवसर आये हैं जब मैंने कुछ इसी प्रकार के कार्य किये हैं। जब कभी मैं कार्य की अधिकता से अथवा रियासतों की चिन्ताओं से ऊब उठता और देखता कि मेरा स्वास्थ्य भी साथ नहीं दे रहा है तो स्वास्थ्य-लाभ करने के नाम पर मैं राजधानी के बाहर चला जाता और ऐसे अवसरों पर मैं अपना समय बिताता या तो किसी घाटी के बीच के रमणीक स्थान में अथवा अपना उन्य सागर के करीब किसी स्वास्थ्यप्रद स्थान पर ठहरता। किसी हालत में एकान्तवास करता और राजस्थान से सम्बन्ध रखने ऐतिहासिक सामग्री को देखने सुनने और मनन करने में लगा रहता। मैंने बड़ी श्रद्धा के साथ इस प्रकार की सामग्री चुनने का काम किया था और जो कुछ एकत्रित किया था, उसमें से ऐतिहासिक घटनाओं का निराकरण मैं एक कठिन कार्य समझता था। इस प्रकार के चुनाव में मुझसे कहीं कोई भूल न हो जाय इसके लिये मैं बहुत सावधान रहता था और अपनी पाण्डुलिपि को बराबर देखता रहता था। पृथ्वीराज और प्राचीन काल के वीर पुरुषों के सम्बन्ध में जो ग्रन्थ मुझे पढ़ने को मिले थे, मैंने उन्हें सम्हाल कर अपने साथ रखा था। उनको पढ़ने में मुझे बहुत सुख मिलता था इसीलिये अपने अवकाश का सारा समय उन्हीं को देखने और विचार करने में व्यतीत करता था। मैंने बहुत पहले से यहाँ के सम्बन्ध में जो कुछ सुना था, उससे मेरे अन्तरतर में एक आन्दोलन सा उठा करता था और मैं उनको सही-सही जानने की अभिलाषा रखता था। सरकारी कार्यों को करने के बाद जितना समय मुझे मिलता था, मैं इसी प्रकार के अध्ययन और अनुसंधान में व्यतीत करता था। अपने इस कार्य के प्रति मेरी उत्सुकता लगातार बढ़ती गई। मैंने गङ्गा और ब्रह्मपुत्र दोनों की बाढ़ों को माप का कार्य भी किया था।

इस कार्य के सिलसिले में मैंने उन स्थानों के निरीक्षण का भी कार्य किया है, जहाँ चट्टानों से टक्कर लेती हुई गङ्गा और जमुना प्रवाहित होती हैं। सिन्धु नदी की यात्रा करने का विचार बहुत दिनों तक मेरे सामने रहा। मेरी अभिलाषा यह थी कि इस देश की प्रमुख नदियों की यात्रा करके उनकी अनेक बातों की जानकारी प्राप्त करूं। अपनी यात्रा के सम्बन्ध में सबसे पहले आबू पहाड़ पर जाने का विचार किया। मैंने उसके विषय में जो बातें सुनी थीं, उनके कारण उस पहाड़ को देखने और उसकी यात्रा करने का विचार बहुत मजबूत हो गया था। रास्ते में अरावली पर्वत की श्रेणियाँ मिलती हैं उनको देखने की भी तबियत थी। सुना था, औगुना पनरावा में भीलों की स्वतन्त्र जातियाँ रहती हैं। उनकी जानकारी प्राप्त करने की अभिलाषा भी मेरे मन में थी। उन पहाड़ों से कुछ प्रसिद्ध नदियाँ निकलकर प्रवाहित होती हैं, उनके आरम्भ

से लेकर अन्त तक के दृश्य देखने के योग्य होते हैं।

इस प्रकार की यात्रा करते हुये अरावली के किनारे किनारे सिरोही को पार करते हुये आबू आने का निश्चय किया। जो आदिवासी भील जातियाँ किन्ही कारणों से समाज के साथ सम्बन्ध और सम्पर्क नहीं रखतीं, उनके जीवन की जानकारी प्राप्त करने का भी इरादा था। लेकिन कुछ ऐसे कारण उपस्थित हुये, जिनसे मजबूर होकर मुझे दूसरा ही रास्ता अपनाना पड़ा। मेरे साथ के एक गिरोह ने सन् १८०८ ईसवी मे इस क्षेत्र की यात्रा की थी और उन लोगो ने वहाँ के निवासियो की जीवन कथाओ का मुझसे वर्णन किया था। उसको सुनने के बाद वहाँ जाने और उनके जीवन का अध्ययन करने की तीव्र अभिलाषा मेरे मन मे उत्पन्न हुई।

मैं जानता था कि जिस यात्रा की मैं कामना करता हूँ, वह आसान नहीं है। उसके रास्ते टेढे मेढ़ होने के साथ-साथ संकटों से खाली नही हैं। वहाँ की घाटियाँ आसानी के साथ पार नही की जा सकती। फिर भी मैंने वहाँ की यात्रा का इरादा किया था और वहाँ के भीषण मार्गों को पार करते हुये सादडी दर्रे के मैदानों से निकल कर रईपुर अथवा राणापुर के मशहूर जैन मन्दिर को देखने का विचार था।

इस यात्रा के सम्बन्ध में एक आसानी पैदा करने के लिये मैंने कुछ आदमियो के एक दल को तैयार किया था और उसे समझा-बुझा कर रवाना कर दिया था कि वे इस यात्रा के सम्बन्ध मे किसी और मार्ग की खोज करें और आबू पर आकर मुझसे मिलें। जिन लोगो को इसके लिये रवाना किया था, वे समझदार थे और एक नया मार्ग खोजने में सफलता प्राप्त कर सकते थे। यह समझकर उनको भेज दिया था।

सन् १८०६ ईसवी मे आबू का स्थान मैंने अपने नक्शे मे पूरा किया था। उन दिनो मे मैं बनास नदी के निकास की खोज रहा था। उसी वर्ष हम लोगो ने सिंधिया की छावनी की तरफ जाते हुये कई बार उस नदी को पार किया था। मैंने लोगो से उस नदी के निकास के सम्बन्ध मे पूछा तो लोगो ने मुझे बताया कि उसका निकास-स्थान यहाँ से बहुत दूर आबू की पहाड़ियो मे है।

मैंने उन लोगों से पूछा—और आबू कहाँ है ?

मेरे इस प्रश्न को सुनकर उन लोगो ने उत्तर दिया—उदयपुर से पश्चिम की तरफ सिंधिया से साठ मील के फासिले पर।

अब मैंने बनास को आबू के साथ अपने नक्शे मे स्थान दिया और उसके पश्चात् मैंने बनास नदी के निकास का पता लगा लिया। वह नदी आबू की चोटी से निकलकर प्रवाहित होती है। इसके बाद मैंने सिन्धु नदी का भी पता लगाया।

इस यात्रा के सम्बन्ध मे मैंने कुछ और विचारो को भी स्थान दिया था। उनके साथ मेरा बड़ा स्नेह था। अरावली और आबू की खोज के पश्चात् मेरा विचार पश्चिमी भारत के प्राचीन नहरवाला की खोज करने का था। यह कार्य कुछ बाकी

रह गया था। कुछ और भी काम थे। राणा वंश की अनेक बातों का अनुसन्धान करना था और उनके लिये वलभी की तरफ जाकर कुछ खोज करना था। इस कार्य के लिये खम्भात की खाड़ी के रास्ते से मुझे सौराष्ट्र के करीब पहुँचना था। इसलिये मैंने विचार किया कि मैं जैन धर्म के केन्द्र पालीताना और गिरनार के पहाड़ों की यात्रा भी इसके साथ कर लूं और फिर हिन्दुओं के जगतकूट जाकर द्वारका में कृष्ण के मंदिरों के दर्शन करते हुये अपनी यात्रा समाप्त करूं और वहाँ से कच्छ की खाड़ी होकर जाड़ेजा की राजधानी भुज की यात्रा करूं और फिर माण्डवी की प्रसिद्ध मण्डी चला जाऊं। इसके पश्चात् सिंधु नदी के पूर्वी किनारे के रास्ते से नाव में चलकर हिन्दुओं के मन्दिरों के दर्शन करूं।

अपनी यात्रा का यह भाग मैंने इस प्रकार पूरा कर लिया। यदि वायु अनुकूल चलती तो सत्रह घण्टे की नाव के द्वारा चलकर अंतिम कार्यक्रम को भी पूरा कर सकता था। परन्तु कुछ कारणों से—जिनका वर्णन आगामी पृष्ठों में किया गया है—समुद्री यात्रा करते हुये मुझको बम्बई की ओर रवाना होना पड़ा।

हमारी इस यात्रा का यह प्रारम्भिक रूप है, जो यहाँ पर समाप्त होता है। इसके साथ साथ उदयपुर का सम्पर्क भी छूटता है और आगामी प्रकरण से हमारी यात्रा का वर्णन आरम्भ होता है।

अपनी इस यात्रा के सम्बन्ध में इस प्रकरण के अन्तर्गत जो विवरण किये गये हैं, उनका लिखना मेरे लिये आवश्यक था। मेरी इस यात्रा के सम्बन्ध में पाठकों को जिन बातों के जानने की आवश्यकता हो सकती थी, वे सभी बातें संक्षेप में यहाँ पर दे दी गई हैं।

दूसरा प्रकरण

यात्रा का प्रारम्भ : उसके दृश्य

मछलियों के साथ ममता—ऊँचे-नीचे रास्ते के कष्ट—नाथद्वारा के श्रीनाथ—विपदा में प्रतिष्ठा नहीं होती—विदाई की यात्रा में सरदार और मुसाहिब—बस्सी की घाटी—गोगुदा का पहाड़ी प्रदेश—मेवाड़ की बड़ी जागीरें—राणा का श्रेष्ठ पद—राजपूतों में बेमेल और बहुविवाह की पुरानी प्रथा—मराठों में लूट-मार करने की पुरानी प्रवृत्ति—राव मानिकचन्द—चरित्रवान व्यक्ति और चुगलखोर—पहाड़ी जङ्गलों में मेवों के वृक्ष—यात्रा में लोगों के साथ मुलाकातें।

१ जून सन् १८२२ ईसवी को मैंने सीसोदिया की राजधानी से प्रस्थान किया। प्रभात का मनोहर समय था। सवेरे के पाँच बज रहे थे। उस समय की गर्मी का माप ८६° था।

प्रस्थान करने के बाद हम लोग घस्यार की तरफ जाने वाली घाटी की ओर चलते हुये परिचित स्थानों की तरफ देख रहे थे। दाहिने हाथ की तरफ घने पेड़ों और पत्तों के बीच में गाँव के मन्दिर का ऊपरी भाग दिखाई दे रहा था। बंगले के निकट झरने के ऊपर महराबदार पुल बना हुआ था। प्रातःकाल में इस झरने के करीब घूमा करता था और जल में दौड़ती हुई मछलियों को देखा करता था। मैं उनके खाने के लिये चीजें डाला करता था। (१) वे मछलियाँ इस बात से परिचित हो चुकी थीं। उसके कुछ आगे की तरफ बेदला के सरदार के किले की बुर्जें दिखाई दे रही थीं। वे खजूर के पेड़ों से घिरी हुई थी। उसके आगे चट्टानों की एक मशहूर घाटी थी, जो देलवाड़ा को पार करके मैदानों की तरफ चली गई थी। अठारह वर्ष पहले एक सरकारी कर्मचारी की हैसियत से मैं इस घाटी में आया था और उसके बारह वर्षों के बाद एक राजनैतिक अधिकारी होकर मैंने उसमें प्रवेश किया था।

---

(१) मेरी इस बात से कदाचित् कुछ लोगों को विस्मय मालूम हो। परन्तु जिन विदेशियों को हिन्दुस्तान में रहने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि इस देश में बहुत से ऐसे तालाब हैं, जिनकी मछलियाँ खाना पाती हैं। मैंने एक दूसरे स्थान पर लिखा है कि महानदी में—जिसकी चौड़ाई लगभग तीन मील है—उबले हुये चावलों के लालच में मछलियाँ मीलों साथ-साथ पानी में भागती हुई चली जाती हैं। जल में भागती हुई मछलियों को लोग उनको बेंत अथवा छड़ी से मार देते हैं और फिर हाथ से पकड़ लेते हैं। इस प्रकार के तरीके अमेरिका और अबीसीनिया के लोगों में भी पाये जाते हैं।

इस घाटी के पीछे की तरफ राता माता की ऊंची चोटी दिखाई पड़ती है। उस पर कुछ बुर्जें बनी हुई हैं, जिनको इस घाटी के दूरवर्ती स्थानों से देखा जाता है।

अपने बगल से लगभग डेढ़ मील का रास्ता चलकर हम घाटी के उस रास्ते पर पहुँचे जो बहुत तङ्ग था और गोगुदा की तरफ जाता है। इस मार्ग के बाईं तरफ घूम जाने से हम उस भूमि पर पहुँच जाते हैं जहाँ अभी तक योरप का कोई भी आदमी नहीं गया था। उस रास्ते पर कुछ समय तक हम चलते रहे। वह रास्ता कहीं ऊंचा था और कहीं नीचा। परन्तु चढ़ाई का मार्ग बहुत थोड़ा था। दोनों तरफ की पहाड़ियाँ अपनी चोटी तक कटीले वृक्षों से ढकी हुई थीं जो बड़े बड़े वृक्षों के नीचे झाड़ियों के रूप में प्रकट होती थीं।

यहाँ की यात्रा करने से आदमियों और पशुओं—दोनों को एक बड़ी थकावट मालूम होती है। इसलिये कि ये रास्ते बहुत लम्बे लम्बे हैं। ऐसी दशा में यह मुनासिब नहीं मालूम होता कि इन लम्बे रास्तों को पार करने के बाद विश्राम किया जाय। राजधानी से रवाना होकर छै मील दूर घस्यार पहुँचकर हम लोगों ने विश्राम किया। घाटी के शुरू से ही चढ़ाई लगातार ऊंची होती गई थी और इस समय जहाँ पर हम पहुँचे थे, वह स्थान उदयपुर से कई सौ फीट की ऊंचाई पर था। घस्यार में प्रवेश करने का जो स्थान है, वह देखने से अरावली की पूर्वी पहाड़ियों की तरह मालूम होता है।

घस्यार एक साधारण सा गाँव है। मुसीबत के दिनों में जब भारत के भगवान को मराठों और पठानों से सम्मान नहीं प्राप्त हुआ तो वे जमुना के किनारे बने हुये आदि मन्दिरों से औरङ्गजेब के द्वारा भगाये गये नाथद्वारा में श्रीनाथ ने राजपूतों के राजाओं के यहाँ शरण ली। उस समय श्रीनाथ की फिर से प्रतिष्ठा की गई और इस स्थान को ख्याति प्राप्त हुई। कोटा के जालिमसिंह के प्रार्थना करने पर वर्तमान गोस्वामी जी के पिता महाराणा की आज्ञा से श्रीनाथ को नाथद्वारा से यहाँ लाये थे। इस स्थान के चारों तरफ से एक मजबूत परकोटा बनाकर उसकी किलेबन्दी की गई है और परकोटे के ऊपर बुर्जें बनी हुई हैं। यहाँ की रक्षा के लिये पैदल सेना की दो टुकड़ियों की नियुक्ति की गई है। (१) किले की इन दीवारों से यहाँ के जङ्गल बड़े सुन्दर मालूम होते हैं। अनेक सुन्दर वनस्पतियों के होने से यहाँ का स्थान एक आकर्षक झाड़ी के रूप में दिखाई देता है। उनमें छोटे छोटे लाल रङ्ग के फल लगे हुये हैं जो झड़बेरी के बेरों से अधिक बड़े नहीं हैं। यह फल आकोलिया कहलाते हैं।

---

(१) मथुरा के करीब गिरिराज पर्वत पर पहले श्रीनाथ जी का मन्दिर था। औरङ्गजेब ने गोस्वामी जी से अपना चमत्कार दिखाने के लिये कहा। गोस्वामी जी को औरङ्गजेब के प्रति कुछ आशंका उत्पन्न हुई। गोस्वामी जी विट्ठलनाथ जी के पौत्र गिरधारी लाल के बेटे दामोदर जी श्रीनाथ जी की मूर्ति को रथ में बिठाकर अपने काका

इस प्रकार के दृश्यों को देखने के लिये मेरे पास मौका बहुत कम था। इसलिये कि इस यात्रा में मुझे विदा करने के लिये जो सरदार और मुसाहिब लोग आये थे, वे सब साथ चल रहे थे। मेरे साथ कुछ सवार भी थे, जो अपने अपने घोड़ों पर थे। उनके सिवा हमारा बहुत सा सामान ऊंटों पर लदा हुआ था। टूटी हुई मूर्तियाँ, शिला लेख और बहुत सी किताबें हमारे सामान में थी। रास्ता बहुत टूटा फूटा था। इसलिये ऊंटों को चलने में तकलीफ हो रही थी। धूप बहुत तेज थी। उसी हालत में एक विशाल इमली के पेड़ के नीचे छाया में नाश्ते की मेज तैयार कराई गई। उस समय मुझको एक अजीब परिस्थिति का सामना करना पड़ा। मैं अस्वस्थ तो रहता ही था। इसलिये राजस्थान के वैद्यों की तजवीज के अनुसार, मैं क्वाथ का सेवन करता था। नौकर के उसे तैयार करने देन में देर न लगी। मैंने उसका एक घूट सदा की भाँति पी

गोविन्द जी, बालकृष्ण जी, वल्लभ जी और गङ्गाबाई के साथ कुवार शुक्ल ५ सम्वत् १७२६ तारीख १० अक्टूबर १६६६ ईसवी को जब एक घड़ी दिन बाकी रह गया, उस समय निकले और आगरा पहुँच गये।

सोलह दिन आगरा में रहकर कार्तिक शुक्ल २, तारीख २६ अक्टूबर १६६६ ईसवी को बूंदी के महाराजा राव अनिरुद्धसिंह के पास पहुँचे। बरसात के मौसम को कोटा के कृष्ण विलास में व्यतीत कर पुष्कर होते हुये कृष्णगढ़ पहुँचे गये। वहाँ के राजा मानसिंह ने जाहिरा तौर पर उनको अपने यहाँ रखने में असमर्थता प्रकट की। उस दशा में बसन्त और गर्मी के दिनों को वहाँ पर व्यतीत करके मारवाड़ में चौपासनी में आ गये और वहाँ पर बरसात बिताई। इस तरह पहली बरसात सजोतीधार के पास कृष्णपुर में, दूसरी कोटा में कृष्ण निवास में और तीसरी चोपासनी में व्यतीत हुई।

जब राजस्थान के किसी भी राजा के यहाँ श्रीनाथ जी की प्रतिष्ठा न हो सकी तो गोस्वामी दामोदर दास जी के काका गोविन्द जी महाराणा राजसिंह प्रथम के पास गये। महाराणा ने श्री नाथ जी को स्वीकार करते हुये कहा—'जब मेरे एक लाख राजपूत मारे जायेंगे तो उसके बाद आलमगीर श्रीनाथ जी की मूर्ति को स्पर्श कर सकता है। यह सुनकर गोविन्द जी बहुत प्रसन्न हुये और कार्तिक शुक्ल १५ सम्वत् १७२८ तारीख १७ नवम्बर सन् १६७१ ईसवी को रवाना होकर उदयपुर से चौबीस मील उत्तर की तरफ बनारस नदी के किनारे सिहाड़ ग्राम के निकट मन्दिर बनवाकर फागुन कृष्ण ७ सम्वत् १७२८ तारीख २० फरवरी १६७२ ईसवी शनिवार को श्रीनाथ जी की स्थापना की गई। [वीर विनोद ६-४५२ ५३]

नाथद्वारा में आने के पहले श्रीनाथ जी की मूर्ति का पूजन केशवदेव के नाम से किया जाता था। नाथद्वारा का पहला नाम सिहाड़ था।

गया, उसी समय मुझको एक तेज व्यथा का अनुभव हुआ। हुआ यह कि रवाना होने के पहले जब मेरा सामान और असबाब बाँधा जा रहा था, उस समय नौकर ने तारपीन के तेल की एक बोतल चाय के बण्डलों के साथ लगा दी। उसकी डाट निकल गई और तारपीन का सारा तेल कबाब की चीजों में पहुँच गया। उस तेल की एक बोतल के लिये कीमत में मुझे दो मोहरें देनी पड़ी थीं। मेरा उतना ही नुकसान नहीं हुआ। उस तेल के कबाब में मिल जाने से सारा कबाब ही बेकार हो गया। मैं अपने स्वास्थ्य के लिये औषधि के स्थान पर उस कबाब का सेवन करता था। नौकर की थोड़ी सी असावधानी के कारण मेरे तीन नुकसान हुए। एक तो वह कीमती तेल नष्ट हो गया, दूसरे मेरी औषधि खराब हो गई और तीसरे अब मैं बिना औषधि के रह गया।

मेरा वह दिन बड़ा परेशानी का था। उस दिन दो विरोधी अनुभूतियाँ एक साथ मेरे सामने आयीं। मुझे भेजने के लिये मेरे पुराने और अत्यन्त विश्वासी नौकर मेरे साथ आये थे। अब मुझे उनको वापस करना था। उनको इनाम और इकराम के साथ लौटाना था जो मेरे लिए एक बड़ी प्रसन्नता की बात थी। इन नौकरों में बहुतों ने आराम से मेरा काम किया था और श्रद्धापूर्वक सेवा करते हुए वे लोग बूढ़े हो रहे थे। कबाब का पहला ही घूंट पीने पर मेरी दशा हुसेन की तरह हो गयी। (१)

मेरे जिन नौकरों ने इतने लम्बे समय तक मेरी सेवायें की थीं, उनको किसी प्रकार भुलाया नहीं जा सकता। उनकी स्वामि भक्ति उनकी श्रद्धा पूर्ण सेवायें और कृतज्ञतायें उनकी सहायता करने के लिये मुझे बाध्य करती हैं। जिन लोगों ने अपनी धारणा बना ली है कि काले आदमियों में कृतज्ञता और श्रद्धा की भावना नहीं होती मैं उनसे जरा भी सहमत नहीं हूँ। मेरा तो विश्वास है कि दूसरे देशों के जिन लोगों को हिन्दुस्तान में आने का अवसर मिला है और अधिक दिनों तक जो यहाँ पर रहकर लोगों के साथ मिले जुले हैं उनमें एक भी ऐसा आदमी न मिलेगा, जो हमारी बातों का समर्थन न करे। दुनिया के लोगों में ईमानदारी, सेवा की भावना और उदारता की कमी नहीं है, इसे मैं पुनरपि से स्वीकार करता हूँ।

२ जून सन् १८२२ ई०—हमारा रास्ता गोगुंदा के करीब की भूमि से होकर था। वहाँ पर विभिन्न प्रकार के मनोहर दृश्य सामने आये। सूरज डूबने के समय हम

(१) मोहम्मद पैगम्बर की लड़की फातिमा और अबूतालिब के लड़के इमाम अली का बेटा इमाम हुसेन जब युद्ध में निराश और ना उम्मीद हो रहा था उसके सभी साथी मारे गये थे। वह स्वयं जख्मी और निराश थका हुआ था। वह अपने शिविर के अन्दर जब बैठकर पानी पीने लगा तो उसके पहले घूंट के लेते ही शत्रु का एक बाण आकर उसके सीने पर लगा।

—गिबन का लिखा हुआ रोम साम्राज्य का पतन भा० ४ पृ० २८७

ऊपर की तरफ चढ़ रहे थे और घाटी के गारह मील के ऐसे घेरे में हम पहुँच गये थे, जहाँ से स्वस्थ जलवायु का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा था। कल पश्चिम की तरफ से आकर पानी बर्षा था और आज का रुख पलट कर दक्षिण-पश्चिम की तरफ हो गया था। ऐसा मालूम हुआ कि इस मौसिम में हवा का रुख कुछ इसी प्रकार का रहा करता है।

लगभग आधा रास्ता चलने के बाद जब हम बरूनी की घाटी में पहुँचे तो वहाँ का एक स्नेग सा मंदिर दिखायी पड़ा। उसे देखकर यह साफ जाहिर होता था कि पहले यहाँ किसी समय मनुष्यों की आबादी थी। इसका प्रमाण वहाँ के खजूर और ताड़ के वृक्षों से भी मिल रहा था। वहाँ पर विभिन्न प्रकार के वनस्पति के पेड़ भी दिखायी दे रहे थे, उन हरे भरे वृक्षों को देखकर इस बात का अनुमान होता था कि इस पहाड़ी प्रदेश में जल का अभाव नहीं है।

उस पहाड़ में इमारतों के बनाने के लिए अनेक प्रकार के रङ्ग-बिरंगे पत्थर भी पाये जाते हैं, इसकी जानकारी भी हुई। वहाँ पर पतले और मोटे सभी प्रकार के और अनेक रङ्गों में पत्थर पाये जाते हैं। भूरे और स्लेटी रङ्ग का प्रस्तर पटियाँ जो वहाँ पर मिलती हैं, वे बड़ी खूबसूरत होती हैं। गोगुन्दा के पहाड़ी प्रदेश में स्लैटी रङ्ग के पत्थर अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। वहाँ पर जो मकान बने हुए हैं उन सभी की छतें इन्हीं पहाड़ी पत्थरों के द्वारा पाटी गयी हैं। सभी मकानों की छत एक सी देखने में मालूम होती हैं। वहाँ पर छोटे और बड़े जितने भी मंदिर बने हुये हैं। उन सभी में इन पत्थरों का प्रयोग किया गया है, उनके द्वारा उन मंदिरों की न केवल शोभा बढ़ गयी है, बल्कि उनके कारण वे मंदिर बहुत मजबूत हो गये हैं।

यह पहाड़ हमारे रास्ते में सैकड़ों फीट ऊँचा है। उसकी ऊँची चोटियाँ गुलाबी रङ्ग के पत्थरों की हैं। जिनके द्वारा इमारती पत्थर बहुत प्राप्त होता है। उन पत्थरों का रङ्ग सूर्य के प्रकाश में चमकता हुआ बहुत सुन्दर मालूम होता है।

मेवाड़ में सोलह (१) बड़ी जागीरें हैं, उनके अन्तर्गत होने के कारण गोगुन्दा इस प्रदेश का एक प्रमुख स्थान है। गोगुन्दा की जागीर ५०,००० (पचास हजार) रुपये के वार्षिक आय की कही जाती है। परन्तु यह कहने भर के लिए है। यहाँ के जागीरदारों ने न तो कभी बुद्धि का प्रयोग किया और न कभी किसी व्यवसाय का। दोनों ही बातों में वे कमजोर रहे हैं और आज भी है। इसका सबसे अधिक प्रमाण यह है कि

(१) राणा अमरसिंह द्वितीय (१६९६ १७१० ईसवी) ने मेवाड़ के श्रेष्ठ सरदारों की संख्या सोलह निश्चित की थी। वे लोग सोलह उमराव कहे जाते थे। उन जागीरों के नाम इस प्रकार है—सादड़ी, गोगुन्दा, दलवाड़ा, कोठारिया, बेदला, पारसोली, सलुम्बर, देवगढ़, बनू, आमेट, भीडर, बानसी, घाणेराव, बदनोर, कानोड और बाजोल्या। [उदयपुर राज्य का इतिहास पृ० ८७०-९९१]।

जो जागीर इतनी बड़ी आय की मानी जाती है, उसके जागीरदार उसका दसवाँ भाग भी कभी वसूल नहीं कर सके। इस पहाड़ी क्षेत्र की खेती का तरीका यह है कि पानी के लिये तालाब अथवा तालाब की तरह के कुछ स्थान बना लिये जाते हैं और उनसे जो कुछ सहायता खेती को पानी पहुँचाने की हो सकती है, उतनी होती है। परन्तु अनेक शताब्दियाँ बीत गयीं, उस जागीर में खेती को पानी देने के लिये उसकी व्यवस्था भी नहीं हो पायी। इसका कारण यह है कि वहाँ पर मराठों के आक्रमण हुये थे और उस समय से लेकर कई शताब्दी तक वहाँ का अधिकार मराठों के हाथों में रहा।

उन मराठों को गोगुन्दा रियासत के बनने बिगड़ने की परवा कभी नहीं रही। वे अपनी जरूरत पर लूटमार करके रकम वसूल कर लेते थे। लेकिन वहाँ के स्त्री पुरुष कैसे जीवित रहेंगे, इसकी भी परवाह उन्होंने कभी नहीं की। गोगुन्दा का सरदार भाला राजपूत है। इस जाति के लोग और प्रायद्वीप में अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ का वर्तमान जागीरदार मानसिंह है। उसको मेवाड़ के बड़े सरदारों में नहीं माना जा सकता। रियासत के अतिरिक्त इसके कुछ और भी कारण हैं। उसका कद ठिगना है रङ्ग काला है और आकृति भद्दी है। वह शरीर से जितना कमजोर है, उतना ही बुद्धि में भी निर्बल है। उसे तो एक ऐसा जीव कहा जा सकता है। जो मनुष्य की तरह बोलना जानता है। आकृति रङ्ग, रूप के सिवा उसकी लम्बी भुजायें उसके मनुष्य होने का प्रमाण नहीं देती। शराब के अधिक पीने के कारण उसके दाँत नष्ट हो गये हैं। जो रह गये हैं, उनके रङ्ग काले तथा बदसूरत हैं। हिलने के कारण वे सोने के तारों से बधे हुये हैं। उसके इन दाँतों से उसका भद्दापन और भी अधिक हो गया है।

इस जागीरदार के सम्बन्ध में वहाँ के लोगों की धारणा किसी अर्थ में अच्छी नहीं है। 'कौए का बच्चा कौआ ही होता है' इस कहावत का हम यहाँ पर समर्थन नहीं कर सकते। हमारे समर्थन न करने का स्पष्ट कारण है। गोगुन्दा जागीरदार का लड़का अपने बाप से बिल्कुल विपरीत है। उसके पिता को भी कौआ नहीं कहा जा सकता। शरीर के रङ्ग, रूप और भद्देपन के लिये वह स्वयं अपराधी नहीं है। इसकी जुम्मेदारी तो बहुत कुछ प्रकृति के ऊपर है। राजस्थान के इतिहास में मैंने वर्णन किया है कि राम के वंशज मेवाड़ के राजाओं को भी परिस्थितियों के वश में मुसलमान बादशाहों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध जोड़ने पड़े थे और इसके परिणामस्वरूप दूसरे राजाओं ने उनके साथ सामाजिक सम्बन्ध विच्छेद कर लिये थे। इस प्रकार बहिष्कृत राजपूत राजा और नरेश अपनी बेटी बेटा के विवाह-सम्बन्ध राजपूत सरदारों के यहाँ करने से भी वञ्चित हो गये थे। इस अवस्था में उनके सामने एक बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो गई थी और अन्य गोत्रीय राजपूतों में अपने वैवाहिक सम्बन्ध करने के लिये उनको विवश होना पड़ा था। उनको किसी प्रकार अपने पूर्वज बप्पा रावल की प्रतिष्ठा को कायम रखना था। राणा वंश के राजपूतों ने जिन राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध किये,

उनकी प्रतिष्ठा भी बढ़ी। इसलिये कि राजस्थान के राजपूतों में राणा वंश एक ऊंचा वंश माना जाता है। इसलिये उनको मान मर्यादा और प्रतिष्ठा मिली।

वर्तमान महाराणा की माता गोगुन्दा सरदार की लड़की थी। वे अपनी योग्यता और महत्वपूर्ण प्रतिभा के लिये प्रसिद्ध थीं। अगर राजमाता के पुत्र को देखकर अनुमान लगाया जाय तो स्वीकार करना पड़ेगा कि उसका भविष्य ऊँचा होगा। इसलिये कि राजस्थान में राणा का वंश बहुत प्रतिष्ठित माना जाता है।

वर्तमान राजकुमार राव जवानसिंह की शारीरिक छवि की प्रशंसा कौन न करेगा? उसकी रानी की भतीजी मेवाड़ के श्रेष्ठ सरदार सलुम्बर के ठाकुर की माता है। राजघराने के साथ उसके दो सम्बन्ध हैं। उनसे पैदा होने वाली लड़कियों के विवाह सम्बन्ध, बेदला के चौहान ठाकुरों अथवा घाणेराव के राठौरों के यहाँ हो सकते हैं। ये दोनों ही जागीरें मेवाड़ की श्रेष्ठ जागीरों में मानी जाती हैं और उन दोनों जागीरदारों की लड़कियाँ महाराणा के यहाँ ब्याही जा सकती हैं।

इस तरह इन राजपूत वंशों का रक्त आपस में एक दूसरे के साथ मिश्रित हो गया है और उस मिश्रण के द्वारा दिल्ली, कन्नौज और अनहिलवाड़ा के चौहान, राठौर और चावड़ा राजपूत एक-दूसरे के सम्बन्धी बन गये हैं।

राजपूतों में बेमेल सम्बन्धों के अतिरिक्त बहुविवाह की प्रथाएं भी हैं। उनके दुष्परिणाम इन राजपूतों के सामने सदा आये हैं और भविष्य में भी उस समय तक आते रहेंगे, जब तक इस प्रकार की प्रथाओं में परिवर्तन नहीं होता। अनमेल विवाह के सम्बन्ध में मारवाड़ के सरदार का राणा की लड़की के साथ सगाई के विवरण राजस्थान के इतिहास में लिखे जा चुके हैं। उस ऐतिहासिक ग्रन्थ में ऐसे विवरण भी दिये गये हैं, जिनमें बहु विवाह के दूषित परिणाम स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। भाइयों के आपसी झगड़ों का कारण बहुत कुछ राजपूतों की प्रचलित बहुविवाह की प्रथा है। इस प्रकार के झगड़ों से राजपूतों का सारा इतिहास भरा हुआ है। उनमें दूसरे प्रकार के जो झगड़े होते हैं और जिनके कारण राजपूतों का अब तक विनाश और विध्वंस हुआ है, उनके कारण भी बहुत-कुछ राजपूतों की वैवाहिक प्रथायें हैं। इस विषय में यहाँ पर एक कहानी का उल्लेख करना हम उचित और आवश्यक मालूम होता है। उसके द्वारा भी इस पवित्र विवाह की बहुत कुछ अनावश्यक बातें सबके सामने आती हैं।

दिल्ली के अन्तिम सम्राट के वंशज कोठारिया के चौहान राव ने जो मेवाड़ के सोलह श्रेष्ठ सरदारों में से था—दो विवाह किये थे। एक विवाह उसने भींडर के शक्तावत वंश की लड़की के साथ किया था और दूसरा विवाह राज परिवार के एक राणावत सरदार की लड़की के साथ किया था। प्रेम न तो जन्म देखता है और न घराना और परिवार देखता है। मनुष्य के जीवन में चरित्र को श्रेष्ठता दी गई है।

भींडर के ठाकुर की लड़की में एक सफल गृहणी होने के गुण मौजूद थे। वह अच्छा व्यवहार करना जानती थी। उसकी बातचीत में दूसरों के लिये स्नेह और बड़प्पन रहता था। अपने इन गुणों के कारण वह अपने पति के निकट सम्मानित हो गई। उसके पति को जो दूसरी लड़की ब्याही गई थी, उसमें वंश के बड़प्पन के सिवा और गुणों का अभाव था।

उन दोनों के सन्तानें उत्पन्न हुईं। जो लड़का पहले पैदा हुआ, वह स्वाभाविक रूप से कोठारिया के सिंहासन का अधिकारी हुआ। वह शक्तावत वंश की लड़की से पैदा हुआ था। उसको सभी सरदार आदर और प्रेम की नजर से देखते थे। संयोगवश वह लड़का बीमार होकर मर गया। उस मृत बालक की माता ने स्पष्ट रूप से यह कहना आरम्भ किया कि मेरा यह बालक मेरी सौत के कारण मरा है। उसने यह भी कहा—कि उसी ने पिशाचिनी को बुलाकर और कुछ ले देकर मेरे लड़के का खून कराया है।

इस प्रकार की बातों को उठाने से लोगों में उस बालक की मृत्यु का कारण बनने लगा। अब सोचने की बात यह है कि जिन परिवारों में स्त्रियां इस प्रकार के अन्धविश्वासों में रहा करती हैं, उस परिवार और वंश का कैसे कल्याण हो सकता है।

इस अविश्वास का परिणाम लोगों में घर करने लगा। पत्नी के उस अन्धविश्वास का उसके पति पर भी प्रभाव पड़ा। वह अपनी दूसरी पत्नी का विरोधी हो गया। इस परिस्थिति से व्याकुल होकर उसकी दूसरी पत्नी ने एक षड़यन्त्र की रचना की। उसने अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये पिता से शिकायत की और अनेक प्रकार के झूठे दोषारोपण उसने अपने पति के विरुद्ध पेश किये। यह मामला महाराणा तक पहुँचा। उस दरबार के लोग कोठारिया के राव से पहले से ही विरोधी थे। उन विरोधियों में कई एक उस राव के बिरादरी के लोग भी थे। प्रायः राजपूतों में कहा जाता है कि चौहान वंश के लोग अच्छे नहीं होते। उस वंश का कोई भी आदमी अपने सगे भाई को भी देख नहीं सकता। कोई भी चौहान वंश ऐसा नहीं मिलता, जिसके परिवार में सगे भाई एक दूसरे के शत्रु न हों।

महाराणा को समझा-बुझाकर इस बात का विश्वास कराया गया कि कोठारिया का राव अपनी उस स्त्री के बहकावे में आ गया है जिसके लड़के की मृत्यु हो गई है और उसके कहने-सुनने का राव पर इतना प्रभाव पड़ा है कि वह दूसरी स्त्री से उत्पन्न बच्चे को मरवा डालने की कोशिश में है।

राजपूतों में प्रचलित बहुविवाह की प्रथा का एक दुष्परिणाम यह भी होता है कि पारिवारिक संघर्ष उत्पन्न होते हैं और उन संघर्षों में छोटे छोटे बालक मार दिये जाते हैं। जिसको इन राजपूत वंशों के सम्पर्क में आना पड़ा है उनसे इस प्रकार के रहस्य अधिक समय तक छिपे नहीं रहते।

महाराणा को जो बातें बताई गयी, उन पर उसने विश्वास किया और कोठारिया के राव को दण्ड देने के लिये उसने तरीके ढूढ़ने की कोशिश की। अन्त में महाराणा को इसके लिए एक रास्ता मिल गया। इस राज्य मे गर मेवाडी सामन्तो को जो जमीन दी जाती है, उसका पट्टा, काला पट्टा कहा जाता है और इस प्रकार का कोई भी काला पट्टा उस सामन्त से वापस लिया जा सकता है, जबकि पुराने पट्टे वापस नही लिये जा सकते। इस प्रकार पट्टे वाले कोठारिया के राव पर दबाव डालने के कारण विरोधी भी हो सकते थे। लेकिन उसकी जागीर राज्य के मध्यवर्ती भाग मे थी और मराठो के साथ लगातार लडते-लडते उसकी शक्तियाँ बहुत कुछ नष्ट हो चुकी थी।

मेवाड का राज्य उन दिनो के दृश्य देख चुका था, जब उसके सरदारो और सामन्तों में उसके प्रति स्वामि-भक्ति नही रह गई थी। यहाँ पर इस विषय मे एक छोटी सी घटना का उल्लेख अनावश्यक नही होगा—

किसी समय कोठारिया का यही राव महाराणा के दरबार से अपनी नौकरी पूरी करके वापस जा रहा था। उसके साथ पच्चीस राजपूत सैनिक सवारो की एक टुकडी भी थी। रास्ते मे मराठा ने उन सब को घेर लिया और उनका आत्म समपर्ण करने के लिये मजबूर किया। यह देखकर राव अपने घाडे से उतर पडा और उसने अपने घोडे के घुटने क पास की एक नस को काट दिया। उसने ऐसा ही करने के लिये अपने साथियो को भी सकेत किया। उन सभी ने उसके सकेत का पालन किया। सभी के घोडे खून से डूब उठे। उनके बदन का रक्त लगातार गिरने लगा। इसके बाद अपने साथियो के साथ तलवार लेकर मराठो से युद्ध करने के लिये खडा हो गया।

आरम्भ स ही मराठे लोग युद्ध करने और विजय प्राप्त करने की अपक्षा लूट को ही अधिक महत्व देते थे और जहाँ पर उनको कुछ मिलने की आशा नही होती थी, वहाँ वे युद्ध को बचा देते थे। यहाँ पर भी यही हुआ। उन मराठो ने राव और उसके साथ के राजपूतो से युद्ध करना पसन्द नही किया। इसलिये वे उनको छोडकर वहाँ से चले गये। (१)

कोठारिया के राव के पूर्वजो क अधिकार म किसी समय आगरा के करीब चन्डावर की जागीर थी। उस जागीर को सिकन्दर ला[illegible] ने उससे छीन लिया था। क्योंकि उसने चौहान सरदार से उसकी लडकी माँगी थी और उसने अपनी लडकी देने

---

(१) महाराणा भीमसिंह के समय की घटना है। फतहसिंह का बेटा विजयसिंह ऊनवास नामक गाँव स कोठारिया जाते समय होल्कर की सेना म कुछ लोगो से घिर गया। मराठो के माँगने पर उसने और उसके साथियो ने अस्त्र शस्त्र और घोडे नही दिये। उन सब ने अपने घोडो को मार डाला और उन मराठो स लडता हुआ अपने राजपूतो क साथ वह मारा गया। [उदयपुर राज्य का इतिहास जि० २ पृ० ८७६]

इन्कार कर दिया। उसके बाद ही राव मानिक चन्द अपने परिवार को लेकर गुजरात चला गया। वहाँ पर मुजफ्फरशाह ने उसका स्वागत किया और उसको काठी की सीमा पर सेना का अध्यक्ष बना दिया।

काठियों के साथ युद्ध करते हुये वह बुरी तरह जख्मी हो गया। उस समय सुल्तान स्वयं उसको युद्ध के क्षेत्र से ले गया। डूंगरपुरी रावल की सहायता करते हुये उसका लड़का दलपत हार गया और वह मारा गया। इस पर उसका लड़का सग्राम-सिंह अपने पिता के स्थान पर अधिकारी हुआ और गुजरात के बहादुरशाह के चित्तौर पर चढ़ाई के समय साथ था। उस समय हुमायूं राणा की सहायता करने के लिये आया था। उस समय मेवाड़ का राणा उदयसिंह ने उस चौहान को अपने यहाँ रखने के लिये कोशिश की थी और उसे दो हजार सवारों, पन्द्रह सौ पैदल एवं पैंतीस हाथियों का देकर सेना का एक अधिकारी बनाना स्वीकार कर लिया था। उस समय उसके और राणा के बीच यह शर्त मान ली गई थी कि वह चौहान सरदार उसी समय युद्ध में जायगा, जब राणा जायेंगे। अपने से छोटे दर्जे के सरदार के नेतृत्व में वह युद्ध करने नहीं जायगा और न उनकी अधीनता में काम करेगा। सप्ताह में एक बार केवल दरबार में हाजिरी देने आवेगा। यह भी निश्चय हो गया कि उसका पद सीसोदिया वंश के श्रेष्ठ सरदारों के समान माना जायगा।

मैं जब राणा के दरबार में गया था उसके कुछ पहले ही राणा ने राव के गुजारे के लिये बचे ये कोठारिया के दो गाँवों पर अधिकार करने के लिये भेजा था। कोठारिया की जागीर का बाकी हिस्सा धनुआ के हमलों से पहले ही नष्ट हो चुका था।

राणा ने उन दोनों गाँवों को राव के पुत्र के नाम लिखवा दिये थे। मेरे पहुँचने पर राणा ने अपने सरदारों के साथ परामर्श किया और धनुआ तथा सामन्तों के सभी झगड़ों में मुझको अधिकारी बना दिया। ऐसी दशा में कोठारिया का झगड़ा भी निर्णय होने के लिये मेरे अधिकार में आया। जिसने उत्तर के सुल्तान के खिलाफ सेना का नेतृत्व किया था और मुस्लिम इतिहासकारों ने जिसकी प्रशंसा की है, उस दिल्ली के अन्तिम चौहान सम्राट के काका और सेनाध्यक्ष कान्हराव के वंशज (१) कोठारिया

---

(१) कर्नल टाड ने पृथ्वीराज रासो के आधार पर कोठारिया के चौहानों को पृथ्वीराज के काका कान्हराव का वंशज माना है यह सही नहीं है। कान्हराव नाम का पृथ्वीराज का कोई काका नहीं था। यह रणथम्भोर के राव हम्मीर के वंशज हैं। बाबर और राणा साँगा की लड़ाई के मौके पर उत्तर प्रदेश के मैनपुरी जिले के राजौर नामक स्थान से माणिकचन्द चौहान ४००० सैनिक लेकर राणा की सहायता करने के लिये आया था। उसने उस युद्ध में अपने पराक्रम का प्रदर्शन किया था। फिर काम न बना तो। तब से उसके बचे हुए सैनिक राणाओं के यहाँ रहने लगे थे। (उदयपुर राज्य का इतिहास जि० ३ पृ० ६३३)।

के राव के साथ मेरी सहानुभूति थी। कान्हराय ने जिसको फरिश्ता ने करएडीराय लिखा है—अपने सैनिकों के साथ शहाबुद्दीन के मुकाबिले मे युद्ध करना स्वीकार किया था। युद्ध के मैदान मे वह गया था और शाह का उसने मुकाबिला किया था। उस अवसर पर सरदार शहाबुद्दीन का कवच मजबूत न होता तो सरदार के वार मे वह बच न सकता। जिस वंश के लोग इस प्रकार शूर वीर रहे हो, उनका आदर और सम्मान न होना एक भयानक अन्याय है, जो किसी भी राज्य को शोभा नही देता।

किसी भी चरित्रवान की कुशलता चुगलखोरों की कृपा पर निर्भर होकर रहे, यह तो बड़ी लज्जा की बात मालूम होती है। यदि ऐसा होगा तो दुनिया मे चुगलखोर ही रह जायँगे और यह पृथ्वी चरित्रवानो तथा शूरमाओ से खाली हो जायगी। अपने मामले मे वक्तव्य देते हुये राव ने जोरदार शब्दो मे अपील की थी—"मेरी गरीबी ही मेरी शत्रु है। अन्याय के प्रहारों से बचने और न्याय को प्राप्त करने के लिये मेरे पास सम्पत्ति नही है कि मैं हुजूर के आस-पास रहने वालो को रिश्वत दे सकू और अपनी रक्षा कर सकू।"

राव के वाक्यो से मैं बहुत प्रभावित हुआ। राव का व्यक्तिगत चरित्र, उसका विनम्र निवेदन और मामले मे न्याय प्राप्त करने का अधिकार—सभी कुछ तो मुझे प्रभावित कर रहा था। मैंने राव को उसके मामले में आश्वासन दिया और उसके मामले मे महाराणा के सामने वकालत करने का भी मैंने विश्वास दिलाया।

इस मामले मे जब मैं राणा के सामने पहुँचा और बातें भी तो मुझे उसका पक्षपात साफ-साफ जाहिर हुआ। उस समय मैंने राणा को चौहान की उन सेवाओ की याद दिलाई, जब लोग झूठा विश्वास दिलाने के बाद मौके पर मुख दिखाने नही आते थे। मैंने कहा—उन दिनों मे चौहान सरदार ने जो सेवाए की थी और जिस साहस से काम लिया था, उनको भूल जाना अथवा उनको सम्मान न देना, चरित्र और त्याग का अपमान करना है।

मेरे शब्दों को राणा ने ध्यानपूर्वक सुना और वे गम्भीर होकर सोचने लगे। मैंने उसी समय फिर उनसे कहा—राव आपकी सहानुभूति और सहायता प्राप्त करने का उसी प्रकार अधिकारी है, जिस प्रकार आप ईश्वर की दया और सहायता पाने के अधिकारी हैं।

राणा के उस समय की मुखाकृति उनकी प्रसन्नता और उसके सन्ताप का परिचय दे रही थी। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि राणा ने राव के सम्बन्ध में मेरा अनुरोध स्वीकार कर लिया। राणा में हठ करने की आदत नही थी। राव के सम्बन्ध मे उनके पक्षपात की भावना उनके चापलूसों और चुगलखोरो की पैदा की हुई थी। इस देश के राजाओं और नरेशों के पतन के बहुत कुछ कारण यहाँ के चापलूस और चुगलखोर हैं, जिनका विश्वास किया जाता है।

हमारा उस दिन का कार्य राणा के इस प्रकार आश्वासन देने पर समाप्त हुआ कि राव अपने भतीजे भाणा जी के साथ असङ्गत व्यवहार करना छोड़ दे और उसको दरबार में उपस्थित करें तो इसके बदले राव के सभी हितों की रक्षा करते [illegible] मैं विश्वास दिलाता हूँ।

राणा की आज्ञा पालन करने के लिये मैंने उसी समय राव से कहा। राव के प्रतिकूल दरबार में जो झगड़ा था, वह साधारण नहीं था। राव अपनी पत्नी के सन्देहों पर विश्वास करता था, फिर भी उसने मेरे समझाने पर राणा की आज्ञा का पालना करना स्वीकार कर लिया। लेकिन कहने और करने में बहुत अन्तर होता है। राणा जो चाहते थे, राव की तरफ से उसके पालन में विलम्ब होने लगी। कुछ दिनों तक वह टल गया। लेकिन अधिक बहाने छिपाये नहीं जा सकते। कभी तो बच्चे को चेचक निकल आयी थी तो कभी किसी काम में उलझ जाने के कारण मौका नहीं मिला। कभी यह कहा कि स्त्री और बच्चे को राजधानी में लाने का इसलिये मौका नहीं मिला कि उसके पास आर्थिक अभाव था और वहाँ लाकर उसको भेंटें देनी पड़ती हैं।

राव की इस प्रकार की बातों में कुछ सत्य भी था। लेकिन राणा को कैसे विश्वास कराया जाय। मेरी अपेक्षा राव को राणा अधिक समझता था। मैंने जो कुछ उसे समझाया था, उसे राव ने आसानी से स्वीकार कर लिया था। लेकिन उसके पारिवारिक मामलों में राणा का हस्तक्षेप उसको मंजूर नहीं था।

मैं समझता था कि राव का कल्याण इसी में है कि वह राणा के आदेशों का पालन करे। मैंने उसको समझाने की चेष्टा भी की। लेकिन मेरी बातों को सुनकर उसने कहा—

यदि मैं इस प्रकार की बातों को स्वीकार करता हूँ तो इसका अर्थ यह है कि मुझे अब अपने घर में ही गुलाम बनकर रहना पड़ेगा। मेरे अपने शत्रु तो मुझसे जान बचाने के रास्ते तलाश कर रहे हैं। उनका कहना है कि मैं अपने लड़के के मार्ग से अलग हो जाऊँ और नाथद्वारे में चला जाऊँ।

मैंने राव की इन सभी बातों को सुना और उसे विश्वास दिलाया कि तुम अगर राणा के हिसाब से चलोगे और उनके कहने के अनुसार आचरण करोगे तो तुम अधिक सुखी रहोगे।

मैंने राव के साथ अनेक बार बातें की और उसकी सभी बातों को सुनने के बाद मैंने उसे समझाया। वह प्रभावित हुआ और सभी बातों पर उसने अपनी सहमति प्रकट की। सब कुछ निश्चय हो गया। राव ने बुद्धिमानी के साथ सारी बात स्वीकार कर ली, इससे मुझे बहुत सन्तोष मिला और सबसे बड़ी खुशी मुझको उस समय हुई, जब मैंने सुना कि राणा की तरफ से राव को कोठारिया का नया पट्टा मिल गया।

उस पट्टे में वे दोनों ग्राम भी शामिल कर दिये गये थे, जिनको राज्य की तरफ से जप्त कर लिया गया था।

नया पट्टा पा जाने के बाद राव भी मिला। उस समय तक उसकी हालत अच्छी थी और अफीम तथा अफीमचियों के चक्कर में वह अभी तक नहीं पड़ा था। वह मेवाड़ी राजपूतों में एक होनहार जवान लड़का था। अगर वह बुरी आदतों से बच गया तो कारहराय का यह वंशज किसी दिन अपने वंश का मस्तक ऊंचा करेगा।

इन प्रसङ्गों को मैं अब यहीं पर छोड़ देता हूँ। गोगुन्दा के झाला और कोठारिया के चौहानों की घटनाओं को लेकर हम बहुत कुछ लिख चुके। मैं चाहता हूँ कि इन दोनों राजपूत वंशों की सन्तानें भविष्य में तरक्की करें और उनके कामों की दुनिया में प्रशंसा की जाय।

३ जून—सैमूर इस समय जहाँ पर हम थे, वहाँ चारों तरफ ऊंची-ऊंची पहाड़ी चोटियाँ थीं। परन्तु अरावली का जो भाग खोजा जोता है, उसका यह सबसे ऊंचा स्थान है। दोपहर के दो बजे बैरोमीटर २७°३८ पर और थर्मामीटर ८२° पर था। सूर्य डूबने के समय बैरोमीटर २७°३२ पर और थर्मामीटर ७६° पर था। इन दिनों में यहाँ का मौसिम बड़ा सुहावना मालूम हो रहा था। राजधानी की घाटी के मुकाबिले में यहाँ का मौसम अधिक अच्छा लग रहा था। मेरे प्रस्थान करने के दिनों में वहाँ सूर्योदय और सूर्यास्त-दोनों समय थर्मामीटर ६५° तक ही था, गर्मी की यह हालत देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ और अधिक सोच विचार में न पड़कर मैंने अपने बँगले की खस की टट्टियाँ नष्ट करवा दीं। यह सब मैंने जल्दबाजी में किया, जिसके लिये मुझे बाद में पछताना पड़ा।

उस दिन हवा का रुख दक्षिण पश्चिम की तरफ से था। शाम के समय कुछ पानी की बूँदें भी पड़ीं। मैंने पहले भी लिखा है कि नये-नये स्थानों और देशों की यात्रा करना मुझे बहुत प्रिय है। अपनी उसी आदत के अनुसार, इस पहाड़ी प्रदेश की यात्रा मुझे अत्यन्त प्रिय लग रही थी और यहाँ के अगले स्थानों की यात्रा करने के सम्बन्ध में मेरी उत्सुकता लगातार बढ़ती जाती थी। इस प्रकार की यात्रा, प्रकृति के अध्ययन से सम्बन्ध रखती है। प्रकृति के प्रत्येक जीवन में नवीनता रहती है, उसमें प्राणों का सञ्चार करने की शक्ति रहती है और सबसे बड़ी बात यह है कि मुझको अपने जीवन की सही जानकारी उससे प्राप्त होती है। इसलिये मुझे यात्रा सदा से बहुत प्रिय रही है।

मैंने बहुत पहले सुना था कि इन पहाड़ी जङ्गलों में बादाम और आडू के पेड़ बहुत हैं। यह भी सुना था कि यहाँ पर इन वृक्षों की संख्या इतनी अधिक है कि इस फल का गूदा—जिसे यहाँ के लोग आडू बादाम कहते हैं—अधिक तादाद में निर्यात किया जाता है।

मैंने इन वृक्षों को कुम्भलमेर की घाटी और देलवाड़ा के दर्रे म देखा था, मैं समझता था कि आडू बोया जाता है। यह क्षेत्र बहुत दिना तक मराठा सरदारों के अधिकार में रहा है। यहाँ पर उन्होंने इसे अपना निवास स्थान बना लिया था। इस लिये हमारी जो धारणा थी, वह बहुत दिनो तक कायम रही। लकिन जब हमने एक कुए के अगले हिस्से मे, पत्थर की दरारो मे अपने आप इसे उगा हुआ देखा तो उस समय से हमारा ख्याल बदल गया और मैंने उस दिन से समझ लिया कि यह पेड़ बोया नहीं जाता। अपने आप उगता है।

आज की यात्रा म भी मैंने इसी प्रकार की दरारें देखी। जब मैंने प्रकृति के इस रहस्य को देखकर आश्चर्य किया तो मुझे लोगो ने बताया कि कुम्भलमेर की घाटी में इस प्रकार की बहुत सी दरारें हैं, जिनमें बड़े उपयोगी पौधे उगे हुए हैं। लट्टू सेबो के अतिरिक्त सालू अथवा सालू मिश्री होती है, वह या तो अरारोट है अथवा इसी प्रकार का कोई दूसरा पौधा है।

इसी मौके पर मुझे लोगों ने यह भी बताया कि यह कोई जड़दार पेड़ नहीं है बल्कि एक प्रकार की बेल है, जिसमें हाथो की उगलियो की तरह गुच्छे निकलते है। उस समय उन लोगो ने उसका उपयोग नहीं कराया। ऐसा क्यो किया, इसे मैंने नहीं समझा। हो सकता है कि उनको इसका स्मरण न रहा हो अथवा उन लोगों ने आवश्यक नहीं समझा हो, जो कुछ हो, मैं नहीं जानता। उन लोगो ने उसे सेम की फलियो की तरह बताया था, मुझे ठीक ठीक स्मरण नहीं है। यह कदाचित वही चीज है जिसे डायोडोरस सीक्यूलस (१) ने बैलमस बताया है जो लङ्का म पाया जाता है। मैंने अपने भतीजे कैप्टेन वाघ को—जिसे राजधानी में मैंने कार्य भार सौंपा है—लिखा है और उसको ग्राम का नाम भी लिख दिया है कि कुम्भलमेर क पहाड़ी क्षेत्र मे कड़ियाँ नामक गाँव से—जहाँ पर जङ्गली दाख सेब और सालू मिश्री पैदा होती है—इन सब

(१) ग्रीक—इतिहासकार—जिसने ६० ५७ ईसा से पूर्व मिश्र देश का भ्रमण किया था और अपनी यात्रा के द्वारा उसने डायोडोरस आफ सिसली नाम का इतिहास लिखा था। उसने लिखा है—यहाँ पर बैलामु बहुत अधिक मात्रा म पैदा किया जाता है। उसके फल देखने मे श्वेत रङ्ग के फोला की तरह क होते हैं। उनको एकत्रित करके गरम जल में रख देते हैं और जब वे फूलकर कबूतर के अण्डा के बराबर हो जाते हैं तो हाथो से गूँधकर उसकी रोटियाँ बनाते हैं, वे खाने मे बड़ी स्वादिष्ट होती है। इस प्रकार उसका उयोग आम तौर पर किया जाता है। उसको गरम जल म उसी समय रखा जाता है, जब उसकी रोटियाँ बनाने की आवश्यकता पड़ती है।

चाजों का एकत्रित करके मेरे लिये भेजे।

यहाँ के पहाड़ी क्षेत्रों का भूमि अनेक प्रकार से उपयोगी और काम की है। यहाँ की ऊंची ऊंची चट्टानों और अगणित झरनों के बीच की भूमि चरागाह के लिये ही श्रेष्ठ नही है, बल्कि खेती के लिये भी वह अत्यन्त उपयोगी है। यहाँ पर मैंने लोगों को जोतते और भूमि को तैयार करते हुए देखा। वे लोग अपनी भूमि को आवश्यकता के अनुसार मक्का, गेहूँ, जौ और गल्ले तैयार कर रहे थे। खेती के व्यवसाय के लिये जो प्रयोग होते हैं, उनका आनन्द तो इन्हीं पहाड़ी दरों में देखने को मिलता है। यहाँ पर बिल्कुल जङ्गलों को समतल बनाकर हल चलाने के योग्य तैयार कर लिया गया है।

इस क्षेत्र की अनेक बातें विचारणीय हैं। एक समझदार आदमी के लिये यह सोचना आवश्यक हो गया है कि वे यहाँ के प्राचीन भूमि के मालिकों के वंशजों और पहाड़ी राजपूतों को देखें और फिर उनकी प्राचीन अथवा अर्वाचीन परिस्थितियों पर विचार करे।

यहाँ के इन लोगों का कद लम्बा, शरीर मजबूत और उनके विचार स्वतन्त्र हैं। ये लोग जीवन निर्वाह के लिये कड़ी से-कड़ी मेहनत करते हैं। लेकिन अपने पूर्वजों की मर्यादा को कभी भूलते नहीं है। मैदानों और जङ्गली स्थानों में रहने वालों की तरह यहाँ के लोग भी सदा ढाल तलवार के साथ दिखायी देते हैं। लेकिन इनका जीवन उन लोगों से बिल्कुल भिन्न है, जो उनके आस-पास रहते हैं और मेर, मीणा और भीलों की जाति के कहलाते हैं। इन लोगों की तरह इन पहाड़ी स्थानों के लोग कोई भी अपराध का काम नहीं करते। यह बात जरूर है कि ये लोग अपनी रक्षा के लिये युद्ध करने में कभी पीछे नहीं हटते।

जब मेरे आने का समाचार यहाँ के निवासियों में फैला तो सभी ठाकुर और गाँवों के मुखिया लोग मेरे पास आकर एकत्रित हुए। जो लोग मेरे पास आये, उनमें से कितने ही मेरे कैम्प में बने रहे और अपने पुराने जमाने की बातें मुझे सुनाते रहे।

यहाँ के लोगों से मैं बड़े प्रेम से मिला। ऐसा मालूम होता था, मानो वे मेरे पुराने मुलाकाती हैं। वे लोग भी बड़े अपनेपन के साथ मुझसे मिले। मेरे डेरे में बैठे और आजादी के साथ वे मुझसे बातें करने लगे। मुझे खुशी है कि वे लोग मुझसे इस प्रकार बातें करने लगे जिनमें मैं एक विदेशी नहीं रहा।

मेरे डेरे में बैठकर आये हुए ठाकुरों और दूसरे लोगों ने हँस हँस कर बातें करना आरम्भ किया। मुझे उनको सुनने में मनोरञ्जन मालूम हो रहा था। अपनी बातों में उन लोगों ने बताना शुरू किया कि उनके पूर्वजों ने अपने देश की भूमि और उसके दर्रों की रक्षा करने के लिये किस प्रकार अपने प्राणों की आहुतियाँ दी थी। उन लोगों ने बताया कि उनके यहाँ किस प्रकार बाहरी लोगों के आक्रमण होते थे, किस प्रकार वे लोग अचानक आकर लूट मार करते और बिना किसी सूचना के वे लोग हमारा विनाश करते थे।

अपनी बातों में उन लोगों ने बताया कि उन दिनों में युद्ध के बादल बने ही रहते थे और किसी भी समय लूटमार का खतरा पैदा हो जाता था। उन्होंने यह भी बताया कि हमारे महाराणा पर आक्रमण करने के लिये किस प्रकार तुर्क लोग आये थे और उन मौकों पर हमारे पूर्वजों ने किस प्रकार राणा का साथ दिया था। अपनी इन कथाओं को वे बड़ी श्रद्धा के साथ बयान करते थे और मैं बड़ी उत्सुकता के साथ उनको सुनता था।

मेरे डेरे में बैठे हुये लोगों ने एक घने जङ्गल की तरफ सकेत किया और बताया कि अपने शत्रुओं से दुखी होने पर प्राणों की रक्षा के लिए राणा प्रताप इसी जङ्गल में आकर शरण लिया करते थे। जहाँपर वे शरण लेते थे, उस स्थान को लोगों ने राणा-पाज अर्थात् राणा के पद चिह्न का नाम दे रखा है। उस समय की घटनाओं का वर्णन लोगों ने बड़े प्रेम से किया और मैंने भी बड़ी उत्सुकता के साथ सुना। इन लोगों ने अपने धनुष और वाणों के बनाने के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सुनायी। उनकी इन रोचक कथाओं को सुनने में बहुत-सा समय बीत गया और उस समय मालूम नहीं पड़ा। यहाँ के पहाड़ी सरदारों की पोशाक मैदानों और जङ्गलों में रहने वालों से बहुत कुछ भिन्न है।

मेरे डेरे में जब दशागोह का सरदार आया तो उसे देखकर मैं प्राचीन ग्रीक के सरदारों की कल्पना करने लगा। उसकी छाती और बाहु खुली थी और एक चद्दर उसके बाम कन्धे पर गाँठ से बंधा हुई थी। उसकी कमर में जो कपड़ा लिपटा हुआ था उसको देखकर घाघरे की याद आती थी। उसके हाथ में धनुष था और तरकश उसके कन्धे पर लटक रहे थे। पहाड़ी लोगों की पोशाक कुछ इसी प्रकार की होती है। सिरोही तक मैंने इसी पोशाक में सरदारों को देखा है। पोशाक के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने परिवर्तन भी किये हैं। वे लोग अपने ढीले पाजामे पर इस प्रकार के कपड़े पहनते हैं। उनके इस प्रकार के परिवर्तन उनकी पुरानी पोशाकों से अधिक भिन्न नहीं है।

यहाँ के लोगों के गाँवों की बहुत-सी बातें कुछ विशेषता रखती हैं। उनकी पोशाकों की तरह उनके गाँव भी कुछ दूसरी तरह के पाये जाते हैं। उनके मकान कुछ

गोलाकार होते हैं। उन पर (छप्पर) बाँस की लकड़ी की छतें होती हैं। गाँव के भीतर मकानों के साथ-साथ प्राय नीम के पेड़ देखने को मिलते हैं। उनकी घनी छाया बड़ी सुहावनी मालूम होती है। पजारो जैसे अनेक स्थानों में कुछ दृश्य अपनी महानता का परिचय देते हैं। लेकिन ऐसे स्थान अधिक नहीं हैं।

जब मैं उस तरफ से निकला तो वहाँ के एक ऊँचे सरदार को मिलाने के लिये लोग मेरे पास लाये। उसको देखकर मैंने इस बात का अनुभव किया कि खूंखार धर्मान्ध मुसलमानों के मुकाबले में राजपूत कितने सहनशील होते हैं। मुसलमानों ने आक्रमण करके और इस क्षेत्र को जीत कर विजय के स्मारक स्वरूप एक विशाल ईद-गाह बनवाई है जो अब तक सुरक्षित बनी हुई है और पजारो का मशहूर मन्दिर उस आक्रमण के दिनों में जो तोड़ा गया था, वह आज भी उस आक्रमण की स्मृतियों का स्मरण दिलाता है।

आज के दिन का मेरा दूसरा कार्य बनास नदी के निकास का खोजने के सम्बन्ध में था। यह नदी अपनी विशालता और उपयोगिता के लिये यहाँ पर बहुत प्रसिद्ध है। मैं उसके निकास स्थान को देखना चाहता था। उससे कितनी ही बातों की मुझको जानकारी होती। मैंने उसकी खोज के सम्बन्ध में बहुत-सा भ्रमण किया। चम्बल नदी में उसके सङ्गम के स्थान की तलाश की। वह स्थान मेरे मुकाम से दक्षिण पश्चिम की तरफ लगभग पाँच मील के फासिले पर पठार के सबसे ऊँचे भाग पर था। कितने ही झरनों का जल वहाँ आकर मिल जाता है। यहाँ के राजपूतों की पोशाक और उनका रहन सहन बहुत कुछ गाल (१) लोगों से मिलता जुलता है।

४ जून—सवेरे के दस बजे थर्मामीटर ८६° पर और बैरोमीटर २८° १२ पर था। दिन के एक बजे थर्मामीटर ९३° पर और बैरोमीटर २८°६ पर एवम् शाम को ६ बजे थर्मामीटर ६२° पर और बैरोमीटर २८° पर था।

आज प्रातःकाल हमने अपनी यात्रा अरावली की पश्चिमी भूमि पर आरम्भ की। यह क्षेत्र मरुभूमि के मैदानों की तरफ चला गया है। जहाँ से ढालू स्थान आरम्भ होता है, वहाँ से नाल (२)—जिसमें मोड़ नहीं के बराबर है—पूरी २२ मील की

(१) गास की एक प्राचीन जाति का नाम।

(२) नाला शब्द आमतौर से पहाड़ी झरने के अर्थ में प्रयोग किया जाता है। यह नाल अथवा नाला घाटी से निकला है। इसलिये कि झरना पहाड़ी प्रदेश में होकर आगे बढ़ने के लिये कोई न कोई रास्ता खोज लेता है। नाल शब्द का अर्थ नली भी है। उसी से नाल गोला बना है जो पुराने जमाने की -हाथ-बन्दूक तोडा के काम में आता है। मानी किसी प्रकार से नली में से फेंकी गई गोली। इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग भारत के सैनिक कवि अधिक करते रहे हैं। कदाचित् उन दिनों में इस प्रकार के अस्त्र इस देश में बनने लगे थे और उन अस्त्रों का प्रयोग लड़ाइयों में किया जाता था।

समूचा दिन पूछने और बताने में बीत गया। उन बातों के सम्बन्ध में उत्सुकता इतनी अधिक थी कि दिन व्यतीत होने में देर न लगी। मित्रों के साथ होने के कारण जो दृश्य देखने को मिले, उनकी रोचकता और सुन्दरता अधिक हो गई थी। रात का समय आने के पहले ही मैंने उन लोगों को घर जाने के लिये विदाई दी। उन सबके जाने के समय मैंने उनको आश्वासन दिया कि उनके सम्बन्ध में मैं राणा को लिखूंगा। उन लोगों ने यह शिकायत की थी कि हम लोगों की सेवाएँ और स्वामि भक्ति को जानने और समझने के बाद भी, लगान वसूल करने के लिये सम्बन्धित मन्त्री, वसूल करने वाले प्यादों को भेज देता है।

तीसरा प्रकरण

परम्परायें और अन्ध-विश्वास

राजपूतो की कर्त्तव्य परायणता—पुराने जमाने के संघर्षों की कथाएं—भीलों की स्वतन्त्र जाति—अशिक्षितों में शिष्टाचार की अधिकता—सङ्कट के समय भीलों के द्वारा राणा की सहायता—भीलों का सङ्गठन और उनकी जुम्मेदारी—मनुष्यों और देवताओं के भोजन—भारत की आदिवासी जातियाँ—मनुष्य जाति की उत्पत्ति—पतन का कारण गरीबी और अत्याचार—अपराधों को क्षमा कानून की उपेक्षा है।

५ जून—बीजीपुर अथवा बीजापुर—रात में किसी प्रकार का खतरा नहीं हुआ, न तो जङ्गली जानवरों से और न आदमियों से। लेकिन रवाना होने के लिये जब मैं आदेश देने के अभिप्राय से बाहर निकला तो मैंने अपने विश्वस्त और सशस्त्र राजपूतों को रात को जलाई गई आग के पास खड़े देखा। मैं बड़े विस्मय में पड़ गया। वे राजपूत सारी रात जागकर और आग के सहारे रहकर भीलो, रीछों तथा दूसरे जानवरों से हमारी रक्षा करते रहे और मैं आराम से सोता रहा। वे राजपूत कल शाम को विदा होकर अपने अपने गाँव नहीं गये थे। यह देखकर मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मैं नहीं समझ सका था कि उनके वहाँ से न जाने का कारण क्या है, मैंने जब इस विषय में उन लोगों से पूछा तो वे सभी एक साथ बोल उठे—"ओ महाराजा, आपने हम लोगों के साथ जो उपकार किया है, उसके बदले में क्या हम लोगों का यह कर्त्तव्य नहीं है कि सङ्कट और खतरे के समय हम आपके जानामाल की हिफाजत करें और आपको किसी प्रकार की क्षति न पहुँचने दें। हमारी यह अंतिम सेवा है। इसे हम लोग अपनी तरफ से कहते हैं, आपकी तरफ से अथवा किसी दूसरे की तरफ से नहीं। यह हमारा कर्त्तव्य है, जिसे पूरा करके हम लोग सन्तोष प्राप्त करेंगे।'

उन राजपूतों की बातों को सुनकर मैं अवाक रह गया। कुछ देर तक उन राजपूतों की तरफ देखकर मैं सोचने लगा—यह है भारत के राजपूतों की कृतज्ञता। क्या अब भी कोई इसे महत्व न देगा। इन राजपूतों का यह एक चरित्र बल है, जिसकी कीमत नहीं आँकी जा सकती। यहाँ के लोगों की इस कृतज्ञता को मैं बहुत पहले से जानता हूँ। इसमें मैं सन्देह करने की कोई गुञ्जाइश नहीं है। जिस जाति में और जिस जाति के लोगों में कृतज्ञता की यह भावना है, निश्चय ही वह एक श्रेष्ठ जाति है और उसकी यह भावना इस बात का प्रबल प्रमाण है कि वह किसी समय अपने नैतिक

चरित्र के लिए बहुत प्रसिद्ध रही है । जो मेहमान एक विदेशी है और जो कुछ घण्टों के बाद विदा होकर लौटकर नहीं आवेगा, उसके प्रति इतनी श्रद्धा और कृतज्ञता ! चरित्र का इतना अच्छा उदाहरण जल्दी न मिलेगा ।

इस विषय में मैं अब अधिक न लिखूँगा । रवाना होने के लिये मैं तैयार हुआ । उपस्थित धनवानों और किसानों ने गम्भीर होकर मेरे प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की । मैंने उन सब के व्यवहारों की प्रशंसा की । इसके बाद प्रणाम और अभिवादन करता हुआ मैं उन सभी से विदा हुआ ।

अब मैं उस घाटी का बचा हुआ रास्ता पार करने के लिये आगे बढ़ा और चलता हुआ मरुभूमि के अन्त हुए मैनाना में पहुँच गया ।

कल की घाटी के द्वार पर नायन माता नामक देवी की एक भद्दी सी मूर्ति देखी । कुछ दूर के बाद जब हम और आगे बढ़े तो एक ऐसे नाले पर पहुँच गये, जो नाल की गरदन के समान मालूम होता है और वहीं से दूसरी नाल आरम्भ हो जाती है अथवा यह कहा जाय कि इन जङ्गली स्थानों को जो बहुत से नाम दिये गये हैं, उनमें से एक दूसरा नाम सामने आता है । यहाँ का शेष भाग शीतला माता के नाम से प्रसिद्ध है । यह शीतला माता बच्चों की शीतला अथवा चेचक की बीमारी से रक्षा करती है । इस प्रकार की बातें यहाँ पर लोगों ने मुझे बतायी ।

हम इस स्थान पर सवेरे नौ बजे पहुँचे, जब थर्मामीटर ८२° पर और बेरोमीटर २८°२५ पर था । हम थोड़ा सा और आगे की तरफ बढ़े । यहाँ पर घाटी की चौड़ाई बहुत तङ्ग हो गई है और कुछ दूर तो यह क्षितिज से ४५ का ही कोण बनाती है । यहाँ की जमीन ऊँची-नीची और बहुत खराब हालत में है । यहाँ पर हाथी और ऊँट वालों को बहुत सम्हाल कर चलना पड़ता है । अगर वे ऐसा न करें तो उनको पेड़ों की डालियों से टकरा जाने का पूरा अन्देशा है और ऐसा होने पर उन पर जो सामान लदा हुआ हो, उसको भी नुकसान पहुँच सकता है ।

यहाँ पर हमने पत्थरों से बने हुये एक चबूतरे को देखा । यह चबूतरा पुजारी के भतीजे का स्मारक था जो उटवण के मीणों के द्वारा जङ्गली जानवरों को छुड़ाते हुए मारा गया था । वे लोग आक्रमण करने वालों से बचने के लिए नाल का रास्ता छोड़कर बायीं तरफ के जङ्गलों में घूमकर घाटी की मुड़ी हुई दूसरी शाखा के मुँह पर पहुँच गये थे । उनका ख्याल था कि ऐसा करने से वे हमलावरों से बच जायेंगे । उन्होंने इस समय जिस साहस और बुद्धि से काम लिया उसमें उनको किसी हद तक सफलता भी मिली ।

उस घाटी में इस शाखा के मोड़ पर एक गहरी ढाल है जिसकी ऊँचाई चार फीट की है और यह ढाल बिल्कुल खड़ा है । उस ढाल में एक बरसाती नाले ने अपना एक रास्ता बना लिया है । इसी रास्ते में पहुँच कर उन लोगों ने अपनी रक्षा का

विश्वास किया था। यह वाला कहावत यहाँ के पहाडी/जानवरों पर पूरे तौर पर घटित होती है। यहाँ के जानवर घोडा के बच्चों की तरह उछलते और कूदते फादते हुए चलते हैं। भेडों की तरह उनमे भी यह आदत पाई जाती है कि उनमे एक जिधर चल देता है उसी तरफ सभी चले जाते हैं।

वहाँ के पशुओं की इस आदत को मीणा लोग जानते थे। इसलिए वे लोग चट्टान पर पहुँच गये और उन पशुओं मे जो आगे आया, उसको डण्डा मार कर गिरा दिया। उसके बाद एक एक करके शेष पशुओं का उस स्थान पर आना आरम्भ हुआ। मीणा लोगो ने यही बुद्धिमानी से काम लिया। लेकिन उनकी पराजय हुई। उस सङ्घर्ष मे दोनो तरफ के कुछ आदमी मारे गये। उनमे पुजारी (१) का भतीजा भी मारा गया। उसके कुछ सम्बन्धी मुझे घाटी तक पहुँचाने आये थे।

पुराने जमाने मे यहाँ के सङ्घर्षों और झगडो से भरे हुए उपाख्यान उन लोगो के बड़े काम के हैं, जो उनके सुनने और जानने के शौकीन हैं। उनके सम्बन्ध मे यहाँ के लोग अगणित कहानियाँ और घटनाएं सुनाते हैं, इन घटनाओं को और भी अधिक संख्या में और विस्तार के साथ मैं यहाँ पर बयान करता, लेकिन ऐसा करके मैं पाठकों के धैर्य की परीक्षा नहीं लेना चाहता। मैं यह भी जानता था कि उनके पास इन घटनाओं को विस्तार मे पढने के लिये कदाचित समय न होगा। इसलिए मैं अधिक विस्तार में नहीं जा सका और मैं ऊटवण के मीणा लोगों के द्वारा होने वाले अत्या

(१) पुजारी शब्द पुजारा अथवा पुजारा का अङ्ग्रेजी रूपान्तर मालूम होता है। यह शब्द मीणों और इस प्रकार अन्य पहाडी जातियों के गुरु ब्राह्मणों का परिचय देता है। उन जातियों मे नियोग की प्रथा प्रचलित होने के कारण उनको ऊँचे ब्राह्मणो मे नहीं माना जाता। मेवाड के कुम्भलगढ, सेवन्त्री, सायरा और जरगा के पहाडी इलाकों मे इन लोगों की आबादी अधिक पायी जाती है। इसी आधार पर दस्माणा भी किसी स्थान का नाम है, बल्कि दसाणा अथवा दस्माणा नामक निम्न श्रेणी के क्षत्रियों की एक शाखा है। उस शाखा के लोग उपरोक्त इलाकों मे पाये जाते है। उन लोगों को मेवाड मे दसाणा अथवा दुसाना कहते हैं। इन लोगों मे भी नियोग की प्रथा का प्रचलन है। इन जातियों के लोग अब खेती करते हैं।

इस प्रकार की सूचनायें भेजने के सम्बन्ध में मैं अपने मित्र श्री ब्रजमोहन जाव लिया एम० ए० का बहुत कृतज्ञ हूँ।

ठाकुर बहादुरसिंह पट्टेदार बीदासर ने क्षत्रिय जाति की नामावली (श्री ज्ञान सागर प्रेस बम्बई १६७४ विक्रम) के १२ पृष्ठ पर दुस्साना जाति के जनगढ से खुमाण के साथ चित्तौर मे आने का वर्णन किया है।

हली की गोगालाओं पर आक्रमणों के सम्बन्ध में अधिक रोचक विवरण लिखता और
ओगणा, पानरवा, तथा मेरपुर के सम्य लोगों से मिलकर इन (१) के भीलों के
आक्रमणों का वर्णन करता, लेकिन मैं जानता हूँ कि भीलों का संक्षिप्त इतिहास (२)
स्वयं काफी स्थान ले लेगा और भीलों (३) के सम्बन्ध में पहले ही पर्याप्त प्रकाश
डाला जा चुका है। फिर भी यहाँ के स्थानों का वर्णन करते हुये मैंने भील जाति के
सम्बन्ध में आवश्यकतानुसार कुछ प्रकाश डाला है और जो कुछ लिखा है उनके रहन
सहन, रस्मो रिवाज और अन्य व्यवहारों के सम्बन्ध में वह बहुत मनोरंजक है। मैं
पहले लिख चुका हूँ कि मेरा निश्चय इन गाँवों में होते हुए आबू जाने का था। परन्तु
मेरे उस इरादे में कुछ परिवर्तन हो गया है और मैं समझता हूँ कि अब जो रास्ता
मैंने चुना है उसके वर्णन अधिक दिलचस्प साबित होंगे।

मैं भीलों को स्वतन्त्र मानता हूँ और उनके साथ मेरे इस शब्द के प्रयोग का
अर्थ भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से है। ऊँचे पहाड़ों से आवृत घाटियों और
घने जङ्गलों में वे अपनी सैनिक टोलियाँ बनाकर स्वतन्त्रता का जीवन व्यतीत करते हैं।
उनके रहने के स्थान कुछ एक दुर्ग के रूप में हैं जहाँ पर शत्रुओं के आक्रमण आसानी
से नहीं हो सकते।

इन भीलों का अपना एक सरदार होता है और भील लोग उसी के शासन में
काम करते हैं। ये सरदार लोग अपनी घाटियों की रक्षा के लिये जब भीलों को एक-
त्रित करते हैं तो एक एक भील के नेतृत्व में धनुष बाण लिए हुए पन्द्रह पन्द्रह हजार
भील इकट्ठा हो जाते हैं। इनके सङ्गठन वंश अथवा बिरादरी के नाम पर रहते हैं।
और उनके गाँवों के नाम भी कुछ इसी आधार पर जैसे पानरवा, ओगणा, जूड़ा
मेरपुर, जवास, सुमाइन्ना, मान्डो ओबा, आन्दिवास बरोठी मवागाँव आदि हैं।
इन भीलों के प्रमुख लोग अपनी उत्पत्ति अपना वंश और रक्त राजपूतों से बतलाते हैं।

पानरवा का सरदार इन सब लोगों का अधिकारी माना जाता है और दशहरे के
सैनिक त्यौहार पर सभी लोग उसके यहाँ उपस्थित होते हैं। वह सरदार राणा का
ऊंचा पद धारण करता है। उसके अधिकार में छोटे और बड़े मिलाकर बारह सौ गाँव
होते हैं। इनमें कुछ तो इतने छोटे हैं कि उनका दायरा एक बड़ी घाटी में कुछ मीलों के

(१) दक्षिणी मेवाड़ का भीलों का प्रदेश।

(२) मैं इसको 'ट्रांजक्सन्स आफ दी रायल सोसायटी" के लिये एक निबन्ध के
रूप में तैयार करना चाहता हूँ।

(३) इस जाति के अधिक विवरण के लिये 'ट्रांजक्सन्स आफ दि रायल
ऐशियाटिक सोसाइटी भाग (१) पेज ६८ में स्वर्गीय सर जान मेलकम का लेख पढ़ना
चाहिये।

भीतर रह जाता है। उनके यहाँ की भूमि में गेहूँ, चना, मूग-मोठ, रतालू, हल्दी, खाने के योग्य कन्द, अरवी, जो वेल्मनम के चुकन्दर की तरह का होता है, अधिक मात्रा में बोया जाता है।

यहाँ के निवासी लोग अपनी पैदावार का जो हिस्सा अधिक समझते हैं, पड़ोसी रियासतों को भेज देते हैं। आडू और अनार जो इन पहाड़ियों की खास चीजें हैं, ओगणा और पानरवा में अधिक पैदा होती हैं। ओगणा का सरदार—जिसका नाम लालसिंह है—पद में दूसरी श्रेणी का माना जाता है। उसकी पदवी रावल है और वह अपने आपको पानरवा की अधीनता में मानता है। उसके इलाके में छोटे बड़े साठ गाँव हैं। ओगणा—जो पानरवा के बीस मील के फासले पर है—छोटा नाथद्वारा कहलाता है और वह मेरपुर की तरह सम्पन्न माना जाता है। गोगुन्दा सरदार के द्वारा निकला हुआ मुखिया ओगणा के मोमियाँ भील के यहाँ उसी पद पर मौजूद है। यहाँ के लोग मोमियाँ शब्द के प्रयोग को अधिक महत्व देते हैं। इसलिये कि उसके साथ भूमि का सम्पर्क है और उस शब्द से भूमि का एक स्वामीत्व प्रकट होता है।

पानरवा के राणा का एक छोटा-सा दरबार है। उस दरबार में राणा के दरबार की अनेक बातों में नकल की गयी है। मुझे लोगों ने बताया है कि इस दरबार में शिष्टाचार को अधिक महत्व दिया जाता है और यहाँ का राणा भी अपने अधीनस्थ दरबारी लोगों के साथ उसी प्रकार का सम्मान प्रकट करता है, जिस प्रकार अपने यहाँ महाराणा प्रदर्शन करते हैं।

पानरवा, ओगणा और दूसरे अधीन सरदार अपना वंश और रक्त परमार राजपूतों से बताते हैं। वे लोग जूड़ा मेरपुर, जवास, और मादड़ी के भूमिया लोगों के यहाँ अपने सम्बन्ध करते हैं और वे लोग अपने आपको चौहान राजपूतों की शाखा मानते हैं। जूड़ा और मेरपुर दो अलग अलग स्थान हैं और दोनों के बीच में पाँच मील का फासला है। लेकिन दोनों के नाम साथ साथ लिये जाते हैं। ये दोनों स्थान नादर नाम के क्षेत्र में हैं। वह क्षेत्र ईडर की सीमा से मिला हुआ है। उसमें नौ सौ से अधिक झोपड़ियाँ हैं। जब मैंने सेमूर में मुकाम किया था, तो वहाँ मालूम हुआ था कि जूड़ा उस मुकाम से केवल बारह मील के फासले पर है और ओगुणा उसके आगे आठ मील पर है। वहाँ जाने का रास्ता एक भीषण जङ्गल से था जो सङ्कटों से भरा हुआ था। गोगुन्दा से भी ओगणा लगभग उतनी ही दूर था।

वहीं कुछ फासले पर राणा जी की सीमा के करीब सूरजगढ़ की एक चौकी थी। वह चौकी या तो इन स्वतन्त्र निवासियों को नियन्त्रण में रखने के लिये कायम की गई थी, अथवा आवश्यकता पड़ने पर सहायता लेने के लिये। उस चौकी में एक दस्ता फौजी सिपाही बराबर रहा करते थे। प्राचीन काल में पहाड़ों के निवासी भील लोग महाराणा के अनुशासन में रहते थे। मुगल सेनाओं के आक्रमण करने पर इन

भीलों ने राणा की बहुत बड़ी सहायता की थी। उनकी उन सेवाओं का ही यह फल था कि इन भीलों की आजादी को कभी आघात नहीं पहुँचाया गया। एक बात और भी है, उन पर आक्रमण करना किसी प्रकार खतरे से खाली नहीं था। एक बार की घटना है उदयपुर और ओगणा के बीच की सीमा चोटी पर जोरास के ठाकुर और ओगणा के भीलों में झगड़ा हो गया। उस संघर्ष के बढ़ने में देर न लगी। जोवराम की तरफ से बहुत से सैनिक सवार उस चोटी पर पहुँच गए और उनका मुकाबिला करने के लिये धनुष बाण लिये हुए हजारों भील वहाँ पर एकत्रित हुए। उस मौके पर केवल पच्चीस राजपूत सैनिकों ने हजारों भीलों पर आक्रमण किया और कुछ देर की मार काट के बाद राजपूतों ने भीलों को पराजित किया। बहुत से भील मारे गये और जो बचे, वे भाग गये।

राजपूतों ने भीलों के गाँवों में जाकर लूट मार की और उनका बारह हजार का माल अपने साथ ले आये। हजारों भीलों को पराजित करने के लिए केवल पच्चीस राजपूत सैनिक काफी साबित हुए और भीलों की वह भीड़ उनका सामना न कर सकी।

खरड अथवा खरक नामक एक दूसरा क्षेत्र है। उसकी राजधानी जवास है। उस क्षेत्र की सीमायें डूंगरपुर और सलुम्बर की सीमाओं से मिली हुई हैं। यहाँ के ठाकुरों और इस क्षेत्र के निवासियों में हमेशा झगड़ा रहता है। उनके बीच की शत्रुता बहुत दिनों से चली आ रही है। उस क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थिति आक्रमणकारियों के लिए अनुकूल नहीं थी। ऊँची पहाड़ियों पर बसे हुए उन लोगों के गाँवों और निवास स्थान इस प्रकार जङ्गलों से घिरे हुए हैं जिनमें शत्रु का प्रवेश नहीं हो सकता। यही कारण है कि जिन लोगों ने सेनायें लेकर उनके विरुद्ध आक्रमण किया था, वे सफल नहीं हो सके। अगर उन लोगों पर एकाएक आक्रमण किया जाय और वह आक्रमण उनके स्थानों से कहीं बाहर हो तो आक्रमणकारी काफी मार जायेंगे।

घाटी के रास्ते में यदि कोई पेड़ काटने का साहस करता है तो समझ लेना चाहिए कि उसकी मृत्यु उसके सिर पर मंडरा रही है। आग के अस्त्र केवल गाँवों के ठाकुरों और सरदारों के द्वारा ही प्रयोग में लाये जा सकते हैं। उनका जातीय शस्त्र बाँस का बना हुआ धनुष होता है उसको वे लोग कुम्पटा कहते हैं। ये लोग बिना धनुष बाण के कभी बाहर नहीं निकलते और अपनी उत्पत्ति राजपूतों से मानते हैं। उनकी बहुत सी बातें चौहानों, गहलोत ठाकुरों और परमार राजपूतों से मिलती-जुलती हैं। इसीलिए वे लोग अपने को चौहान भील, गहलोत भील और परमार भील कहते हैं।

इन लोगों की उत्पत्ति की ठीक ठीक जानकारी तो उन देवताओं से होती है जिनकी वे पूजा करते हैं और उनके उन भोजन के पदार्थों से भी होती है, जिनका उनमें प्रचलन है। ये लोग श्वेत रङ्ग की कोई भी चीज नहीं खाते। सफेद भेड़ और सफेद

बकरी अथवा सफेद भेड़ें इन लोगों की प्रसिद्ध शपथ होती है। इन बातों को इनमें से वही लोग मानते हैं, जो अपने आपको शुद्ध भील कहते हैं। लेकिन उनकी शुद्धता को समझने की यदि चेष्टा की जाय तो हमारा ख्याल है कि उनमें से बहुत थोड़ी संख्या में लोग निकलेंगे, जो शुद्ध भील कहे जा सकें।

सही बात यह है कि ये भील लोग अब भी सभ्य कहलाने के अधिकारी नहीं है। उनके जीवन का अध्ययन करने के बाद उन्हें अर्ध सभ्य ही कहा जा सकता है। उनकी पुरानी परम्परायें और उनके अन्धविश्वास उनकी जिन्दगी के सही रूप को जानने नहीं देते। वे यहाँ के आदिवासी हैं और माने भी जाते हैं। उनकी भाषा, रहन-सहन और आदतें उनके पुराने होने का सच्चा प्रमाण देती हैं। इन भीलों की भाषा के बहुत से शब्द संस्कृत के शब्दों से मिलते जुलते हैं। वे संस्कृत नहीं बोलते, जानते भी नहीं। लेकिन उनकी भाषा के बहुत-से शब्द संस्कृत से निकले हैं और उनकी भाषा में अब उनका रूप बिगड़ गया है। लेकिन वे अपने हिसाब से उन शब्दों का उच्चारण स्पष्ट करते हैं। इन सब बातों के सम्बन्ध में मेरा इस प्रकार उल्लेख, मेरी खोज की अपेक्षा, उनके पड़ोसियों के बयान पर अधिक आधारित और आश्रित है।

भील लोगों की बोली अन्य जाति वालों से कुछ भिन्न है। मैं उसका केवल अध्ययन ही नहीं करना चाहता था, बल्कि उन्हीं की तरह उसको बोलना और समझना चाहता था। परन्तु मैं ऐसा कर नहीं सका। इसका मुझे दुख है, यदि मैं ऊपर लिखी हुई आबादी में जा सकता और अपनी खोज का काम वहीं पूरा करता तो निश्चित रूप से अनेक बातों में अपनी इच्छा के अनुसार सफलता प्राप्त करता। वहाँ जाकर मैं उनके घरों पर जाता और उनकी सजावट देखता, चित्रकारी को समझने की कोशिश करता। उनके घरों की दीवारों पर भेड़ और घोड़ों के चित्रित चित्र लारेस और पिनेटस (१) के स्मरण दिलाते हैं। मैं भली प्रकार उनके विषय में अध्ययन कर सकता।

इस प्रकार की खोजों से उनकी जिज्ञासा की पूर्ति अधिक हो सकेगी, जो प्राकृतिक जीवन का प्रत्यक्ष अध्ययन करना चाहते हैं। जो इस प्रकार के रहस्यों को जानने के इच्छुक हैं उनको यह जानकर और सुनकर आश्चर्य होगा कि एक पुरानी कहावत के अनुसार दो अन्तों का मिलन होता है। इन असभ्य परिवारों में दो चीजें देखने को मिलेंगी, प्रकृति का सही जीवन और असभ्यता तथा अशिक्षा जो आज के संसार की शिक्षा और सभ्यता भीलों के इन परिवारों में नहीं है। लेकिन जीवन का सत्य और अतिथि सत्कार अपनी पराकाष्ठा में उनके यहाँ देखने को मिलता है। जीवन के इन

(१) रोमन लोगों के देवता, जिनके चित्र वे अपने घरों की दीवारों पर बनाया करते थे।

सच्चे गुणों का पौरुष के जीवन में अभाव हो गया है और धीरे धीरे, जो कुछ रह गया है, उसका भी लोप होता जाता है।

इन भीलों के जीवन का अध्ययन करने के बाद आज की सभ्यता का एक प्रेमी उनकी अवहेलना कर सकता है। इसलिये कि वह जिन अच्छाइयों के साथ घुल मिल गया है, वे उसको इन प्राकृतिक परिवारों में देखने को न मिलेंगी। परन्तु उनमें जो सच्चा जीवन मिलता है। वह आज की सभ्यता के बच्चे रङ्ग में न मिलेगा। शरणार्थी को शरण देना पहाड़ी और जङ्गली जातियों के ही जीवन में मिलता है। जो उनके यहाँ आ जाता है, उसका वे सभी प्रकार आदर और सत्कार ही नहीं करते। उसकी रक्षा और हिफाजत भी करते हैं। उस शरणार्थी की वे यहाँ तक सहायता करते हैं कि वे अपनी जान देकर उसके निकट किसी प्रकार का सङ्कट आने न देंगे। मैं नहीं समझता कि इन गुणों से भी अच्छा कोई दूसरा गुण मनुष्य के जीवन में हो सकता है।

जब कोई शरणार्थी यात्री उनकी घाटी का पार करना चाहता है, तो उसके जान माल की रक्षा का भार वे लोग अपने ऊपर ले लेते हैं और यदि उनके ऊपर कोई सङ्कट आता है तो ये भील उसका मुकाबला करते हैं। इन भीलों में किसी भी चोर के लिये उनके सामाजिक दण्ड होते हैं। उन सङ्केतों की जानकारी सभी भीलों को रहती है और आवश्यकता पड़ने पर वे सभी उन्हीं सङ्केतों का प्रयोग करते हैं। अपने यात्री की रक्षा वे यहाँ तक करते हैं कि उसकी रक्षा के लिए अपनी घाटी को पार करने के लिये वे अपने आदमी देते हैं। किसी अवस्था में जब वे आदमी नहीं दे सकते तो वे अपने तरकश में का एक बाण उसको दे देते हैं और उसके कारण फिर उस पर कोई आक्रमण नहीं करता। ये पहाड़ी भील अपने शरणार्थी अथवा मेहमान की मेहमानदारी उन अफगानों की तरह नहीं करते जो उनके मकानों और दरवाजों पर तो वह सुरक्षित रहता है लेकिन जब वह उनके स्थानों से कुछ दूर निकल जाता है तो वे उसको शिकार समझकर आक्रमण करते हैं और उसको लूट लेते हैं।

अमरिका के एक इतिहासकार का कहना है—'जो जातियाँ शिकार करने वाली होती है, वे प्राय धन संग्रह करने की सत्ता से अपरिचित होती हैं। इस प्रकार के किसी प्रदेश के रहने वालों में कोई भी जङ्गल अथवा शिकार करने का स्थान सार्वजनिक माना जाता है।

सभ्यता के मार्ग पर भील लोग कुछ आगे मिलते हैं। उनमें शिकार के स्थानों का आपसी विभाजन होता है। इसके सम्बन्ध में यहाँ पर मैं एक विवरण का उल्लेख करना चाहता हूँ। इस विवरण को कई वर्ष पहले मैंने तैयार कर लिया था। मेवाड़ और नव दा के निर्जन और भयानक जङ्गलों में रहने वाले भील लोग आज भी प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं। शराब और पके हुए मांस को छोड़कर उनके जीवन में और कोई विलासिता की चीज नहीं पायी जाती। ऊँचे पहाड़ों पर रहने वाले एस्कीमो

जाति के उन लोगों से ये भील लोग अधिक सभ्य नहीं होते, जो सड़ी हुई व्हेल मछली की चर्बी उसी प्रकार स्वाद से खाते हैं, जैसे भील लोग गीदड़ और छिपकली को पका कर खाते हैं।

अपने आप उगने वाले जङ्गली मेवों से पहाड़ी भीलों के दस्तरखान सजे होते हैं। उनके ये फल उसी तरीके से खाने में स्वादिष्ट होते हैं जैसे मराथान (१) और थर्मापली (२) के शूरवीर पूर्वज अपने मेवों को स्वादिष्ट समझते थे। लेकिन उन लोगों के रात के भोजन में शाहबलूत अथवा जैतून के फल जो काम आते थे, उनकी अपेक्षा भीलों के आहार में अधिक और अनेक प्रकार के पदार्थों का सम्मिश्रण मिलता है, जैसे—तेंदुआ, इमली, आम, जङ्गली अंगूर एवम् रसदार जमीकन्द आदि।

भीलों के खाने के इन पदार्थों में केवल उन्हीं का हिस्सा नहीं रहता, बल्कि उनके हिस्सेदार जङ्गल में रहने वाले अनेक प्रकार के जानवरों, रीछों और बन्दरों के अतिरिक्त वे जानवर भी होते हैं जो इन फलों और पदार्थों में अपना हिस्सा प्राप्त करते रहते हैं। अब मैं उस विवरण का लिखना आरम्भ करता हूँ, जिसका मैंने ऊपर उल्लेख किया है—एक भील ने अपने जमाता से कहा—सामने के ये पहाड़ मैं अपनी लड़की के दहेज में देता हूँ। अब मैं इन पहाड़ों में खरगोश अथवा लोमड़ी नहीं पकड़ूँगा, वहाँ के फलों को नहीं तोड़ूँगा, कन्द नहीं लाऊँगा और ईंधन के लिये लकड़ी का प्रयोग नहीं करूँगा। अब ये सब चीजें तुम्हारी हैं।

उस भील ने अपने जामाता से यह बात कह तो दी। लेकिन पहाड़ों के रीछ अपना हिस्सा छोड़ने वाले न थे। एक दिन की बात है, एक भील जवान उस महुए के वृक्ष के नीचे सो गया, जो उस पहाड़ पर था। उसके पास ही एक टोकरा उसी वृक्ष के फलों से भरा हुआ रखा था जो उसने अपने परिवार के लोगों के खाने के लिये तोड़े थे अथवा उनका अर्क निकालने के लिये उन्हें एकत्रित किया था। जब वह युवक सो रहा था एक रीछ घूमता हुआ उस तरफ आ गया। उसने उस युवक भील को गहरी नींद में जगाया और उस पर उसने आक्रमण किया। रीछ ने उसको खा डालने की कोशिश

(१) मराथान—यूनान की राजधानी एथेन्स के उत्तर-पूर्व में चौबीस मील के फासिले पर एक मैदान, जहाँ ४७० वर्ष ईसा से पूर्व फारस और यूनान की फौजों में भयानक युद्ध हुआ था।

(२) थर्मापली—यूनान का मशहूर दर्रा जो पूर्वी समुद्र और पहाड़ों के बीच उत्तर से दक्षिण की तरफ चला गया है। वहाँ पर यूनान वालों की अनेक लड़ाइयाँ हुई हैं। उनमें बहुत से यूनानी वीरों ने अपने जीवन का बलिदान किया है। ४८० वर्ष ईसा से पूर्व स्पार्टा के बादशाह ल्योनीडस के नेतृत्व में ३०० ग्रीक शूर-वीरों ने फारस की सेना का डट कर मुकाबिला किया और वे सभी वहाँ पर मारे गये।

की। लेकिन वह भील सुनकर खून से लथपथ हुआ किसी तरह से अपने को छुड़ा कर वहाँ से भागा। उसने अपने गिरोह में जाकर रीछ के आक्रमण का हाल बताया। दूसरे का पिता अपना धनुष बाण लेकर रीछ की तलाश में रवाना हुआ। अकस्मात् रीछ उसी स्थान पर मौजूद था। उस भील ने बाण चलाकर उसे घायल कर दिया और उसका चमड़ा निकलवाकर उसे अपने सरदार को भेंट कर दिया। यह भील अपने इसी सरदार की मातहती में था। रीछ के चमड़े को भेंट में देते हुए भील ने सरदार से कहा—यह खाल उस जालिम की है जो वन में अपने सिवा किसी दूसरे को जिन्दा नहीं रहना चाहता।

मनुष्यों के साधारण भोजन में और उनके देवताओं के भोजन में कभी किसी प्रकार का अन्तर नहीं रहा। मनुष्य प्राचीन काल से अपने देवताओं को फल-फूल अथवा उनका अन्न चढ़ाता आ रहा है जिनको वह अपने खाने के पदार्थों में उपयोगी मानता था। पुराने जमाने में मनुष्य अपने देवताओं पर विभिन्न प्रकार के अन्न और फूल चढ़ाते थे। उन दिनों में मनुष्य का आहार इन्हीं अन्नों और फलों तक ही था। लेकिन जब मनुष्य शिकार करके जानवरों को खाने लगा तो उसने उन्हीं पशुओं को देवताओं पर चढ़ाना आरम्भ किया।

मनुष्य की ये पुरानी बातें इस बात का प्रमाण देती हैं कि मनुष्य और देवताओं के भोजन बिना किसी भिन्नता के चलते थे और मनुष्य जो स्वयं खाता था उन्हीं को वह अपने देवताओं पर चढ़ाता था। इस बात के बहुत प्रमाण हैं कि हिन्दू और इंग्लैण्ड अपने कुछ देवताओं को—जिनसे अनिष्ट होने का डर रहा करता था—मनुष्य का बलिदान देते थे। परन्तु इस बात के प्रमाण नहीं मिलते कि मनुष्य की बलि देकर वे लोग इस भोजन में भी शामिल होते थे फिर चाहे वे केल्टिक बेलिनू (१) हों अथवा हिन्दू भक्त लोग हों।

अघोरी लोगों में मनुष्य का आहार करने के प्रमाण मिलते हैं और खोजने पर उसके प्रमाण दिये जा सकते हैं। लेकिन इसको प्रथा के रूप में नहीं माना जा सकता। मनुष्य, किसी समय मनुष्य का आहार करता था इसका स्पष्ट कोई प्रमाण नहीं है। फिर भी जब हम अपनी खोज में यह बात पाते हैं कि जङ्गलों में रहने वाले दूसरी श्रेणी के लोग मल खाने वाले गीदड़, जहरीली छिपकली और सड़े हुए गो मांस के खाने से परहेज नहीं करते थे तो उस युग में इस प्रकार के लोग अगर मनुष्य का आहार करने

(१) केल्टिक बेलिनू—आल्प्स पर्वत के उत्तर में बसनेवाली जाति। पुराने लेखकों ने केल्ट जाति के लोगों को लम्बे, नीली आँखों और सुन्दर बालों वाले होना अपने उल्लेखों में स्वीकार किया है। ताम्र-युग में ये लोग गाल, स्पेन, इटली, ग्रीस और एशिया माइनर की तरफ आये थे।

की आदत रखते हों तो उसमे अधिक आश्चर्य की बात नही हो सकती।

हिंदुओ के जीवन मे ऐसे किसी समय का अनुसंधान नही किया जा सकता। जब उसको आग के उपयोग का ज्ञान न रहा हो। वे किसी न किसी समय इसकी उपयोगिता से परिचित हुए ही होंगे, जैसा कि ससार को अन्य जातियो को होना पडा है। अग्नि का अविष्कार किया गया अथवा उसकी खोज की गयी, यह नही कहा जा सकता, इस प्रकार की धारणा समझ के बाहर है। इसलिये कि प्रकृति ने सम्पूर्ण पृथ्वी को आग से भर रखा है। जिसने प्रकृति के रहस्यो का अध्ययन किया है, उससे यह छिपा नही है कि आग ही जीवन है। आग ही शक्ति है। आग का अभाव मृत्यु है। जब तक हमारे शरीर मे गर्मी रहती है उस समय तक हम जीवित रहते हैं और जब वह शरीर ठण्डा हो जाता है, उसी को मृत्यु कहते हैं। इस आग का आभास हमें चारों तरफ मिलता है। चाहे आकाश मे चमकने वाली बिजली को देखा जाय, चाहे ज्वाला मुखी से उसको अनुभव किया है, जो पृथ्वी को फाड़कर और धरातल को तोड़कर अग्नि की वर्षा करता है। अगणित जलते हुए पानी के कुए पृथ्वी पर फैले हुए हैं। जो आग इतनी अधिक मात्रा मे पृथ्वी पर आरम्भ से मौजूद है, उसका किसी ने आविष्कार किया अथवा किसी ने उसकी खोज की, किसी का यह कहना समझ मे नही आता। वनस्पति और वृक्षों से लेकर पशुओं, पक्षियों, विभिन्न प्रकार के जीवों से लेकर मनुष्य की जिन्दगी तक प्राणों के रूप मे यह आग ही काम करती है। सूर्य की गर्मी उस आग का ही एक अंश है, जिसकी बदौलत सभी की जिन्दगी कायम है।

इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने के लिये हमको प्लिनी (१) और प्लूटार्क (२) के पृष्ठों को उलटने की आवश्यकता नहीं है। विश्व के जीवन मे यह आग आरम्भ से है और आज भी वह मौजूद है। यह दूसरी बात है कि भिन्न भिन्न जातियो ने उसको भिन्न भिन्न रूप मे समझा और माना है। हमारा आज का इतिहास भी इस बात को मानता है कि अटलांटिक महासागर के कुछ द्वीपों मे रहने वाली और अमेरिका तथा अफ्रीका की कुछ जातियाँ अग्नि को एक खतरनाक जानवर मानती थीं।

---

(१) प्लिनी इटली में पैदा हुआ था। वह महान विद्वान था। उसके अनेक ग्रन्थों में अब केवल हिस्टोरिया नेचुरेलिस प्राप्त है। वह ३७ भागो मे है। प्राकृतिक विज्ञान की वह महान पुस्तक है। उसने आग और उसके उपयोग पर विस्तार के साथ लिखा है।

(२) प्लूटार्क एक ग्रीक विद्वान हुआ है। उसने अनेक देशों की यात्रा की थी। उसके आठ प्रसिद्ध लख मोरेलिया में संगृहीत हैं। अरली हिस्ट्री आफ मैन काइंड मे—जो १८१० ईसवी में लन्दन से प्रकाशित हुई थी—प्लूटार्क लिखित सूय कुमारियों का वर्णन किया है जो अग्नि की रक्षा करने वाली मानी गयी है।

सन् १५२१ ईसवी में लिखी गई इतिहास की विशाल पुस्तकों में भी इस प्रकार के भय को स्वीकार किया गया है। लगभग चार सौ शताब्दी पहले मगेल्लन ने जो अनुभव किये हैं। उनमें उसने मेरियन द्वीप के लोगों के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की बात बताई है कि वे लोग आग को संहारकारी मानते थे और समझते थे कि यह आग इतनी संहारक है कि उससे कुछ बच नहीं सकता। वह सर्वनाश करती है।

आग के सम्बन्ध में पुराने लोगों की धारणायें क्या थीं उस पर फ्रेजर ने बहुत कुछ लिखा है। उसको भूस ने भी माना है कि माल नदी के किनारे के करीब रहने वाले लोग आग के प्रयोगों से जानकार न थे। इसी बात को दूसरे शब्दों में फ्रेजर ने लिखा है कि उन लोगों में सभ्यता का इतना विकास नहीं हुआ था कि वे मांस को पकाये जाने के सम्बन्ध में जानकार होते और उसकी आवश्यकता तथा उपयोगिता को अनुभव करते।

हिन्दुस्तान के आदिवासी भीलों, कोलियों और गोंडों ने भोजन को पकाने की उपयोगिता को बहुत पहले समझ लिया था। वे लोग यह भी जानते थे कि यह आग कैसे पैदा की जाती है। आग जलाने के सामान और चकमक पत्थर बाँसों की झाड़ियों में मौजूद रहते थे। वे आग पैदा होने के समय इस बात से बहुत सावधान रहते थे कि हवा की तेजी के कारण इन स्थानों के बाँसों के आपसी रगड़ से ऐसी आग न भड़क उठे जिससे बाँसों के जङ्गल ही जलकर साफ हो जाय। इस प्रकार का डर उनको इसलिये और भी रहने लगा था कि बाँसों से उत्पन्न होकर आग तेज होकर रहने वाले लोगों की बस्तियों को जलाकर साफ कर देगी। आपस की रगड़ से बाँसों में अपने आप आग उत्पन्न हो जाती है और मैंने खुद भी इस प्रकार पैदा हुई आग से जलते हुये चटखते हुये और आग को भड़काते हुए बाँसों की कोठियों का भयानक दृश्य देखा है।

बाँस हो नहीं कोई भी दो चीजें—जो कठोर हों और एक दूसरे के साथ रगड़ें तो गर्मी उत्पन्न होती है। यह गर्मी आग का प्रारम्भिक रूप है। दो काष्ठ एक दूसरे के साथ रगड़कर आग पैदा करते हैं। पत्थरों के आपस में टकराने से आग पैदा होती है। बाँस के ऊपर की प्रस्तर समान सफेद परत से (१) कुछ वायुओं के साथ आग पैदा हो जाता है। उन दिनों में आग जलाने के लिये उसको लोग प्रमुख साधन मानने लगे थे। प्राचीन काल से हिन्दुओं में आग की पूजा करने का जो प्रचार हुआ था, उसका आधार यही था। उनको इस बात का ज्ञान था कि यह आग जो उष्णता पैदा करती

(१) बाँस के रस को तबाशिर (तबाशीर) अथवा बंसलोचन कहा जाता है। जिसका प्रयोग हिन्दू चिकित्सक अनेक मौकों पर औषधि के रूप में करते हैं। यह शुद्ध चकमक है। यह इस बाँस से निकलकर ऊपर जम जाता है और फिर पत्थर के समान कठोर हो जाता है।

है, हमारा जीवन है। उसके इस महत्व को जानने और समझने के बाद उन लोगों में आग की पूजा करने की एक प्रथा जारी हुई थी, जो अब तक जारी है और हिंदुओं में सभी जातियों की तरफ से इस प्रथा को मान्यता दी जाती है।

अनेक देशों की पुरानी और बर्बर जातियों का अध्ययन करके ब्रूस (१) ने जो लिखा है बर्क (२) के शब्दों में पूरे तौर पर उसका समर्थन होता है। प्राचीनकाल में मनुष्य जाति आज की तरह विकास के प्रकाश में नहीं आयी थी। उस युग में हिंदुओं की तरह कुछ ही जातियाँ ऐसी थीं जो भिन्न भिन्न तरीकों से आग का उपयोग करने लगी थीं।

भारत की प्राचीन जातियाँ भीलों, कालियों, गोंडों और मेर आदि लोगों के सम्बन्ध में गम्भीरता पूर्वक खोज करने से उस जमाने के इतिहास की बहुत-सी छिपी हुई कड़ियाँ सामने आ जाती हैं। उन आदिवासी जातियों के लोगों की आकृति और प्रकृति दूसरे लोगों के साथ एक बड़ी भिन्नता रखती है। उनके स्वभाव, विश्वास और रीति-रिवाज आज भी कुछ दूसरी ही प्रकार के पाये जाते हैं। यह बात जरूर है कि इन सारी बातों की मौलिकता सभी प्रकार की जातियों में समान रूप से है। फिर भी अनेक बातों की प्रतिकूलता भी पायी जाती है।

प्रसिद्ध इतिहासकारों का मत है कि समस्त मनुष्य जाति की उत्पत्ति किसी एक ही महत्वपूर्ण से है। यह बात बड़ी छान बीन के बाद स्वीकार कर लेनी पड़ती है। लेकिन अनेक पुरानी जातियों के जीवन की न केवल स्वभाव की प्रतिकूलता बल्कि उनके शरीर की रचना हमारे सामने एक सन्देह पैदा करने लगती है और जल्दी इस बात पर विश्वास नहीं करने देती कि सम्पूर्ण मनुष्य जाति किसी एक ही वंश से उत्पन्न हुई है।

(१) जेम्स ब्रूस स्काटलैण्ड का रहने वाला था। वह कई वर्षों तक अपनी खोज के सिलसिले में देशाटन करने के बाद पाच्य भाषाओं के अध्ययन करने में लग गया। बर्बर जातियों के पुराने अवशेषों के अनुसन्धान और अध्ययन करने के लिये वह ब्रिटिश कमीशन का सलाहकार हो गया और अलजीयर्स गया। इसी सिलसिले में वह अलमोरिया, ट्यूनिस, ट्रिपोली, क्रीट और सीरिया घूमने गया था। सन् १७६६ ईसवी में वह अलेक्जैण्ड्रिया से नील नदी का निकास खोजने के लिये रवाना हुआ और ब्लू नील को ही प्रमुख नदी मानकर उसके निकास-स्थान तक पहुँचा। इङ्गलैण्ड लौटने पर उसकी अपनी खोज सही नहीं मालूम हुई। इसलिये वह अपनी जागीर चला गया और १७९० ईसवी तक उसने अपनी पुस्तक "ट्रैवेल्स टू डिसकवर दी सोरसेस आफ दी नील" नहीं छपाई। बाद में यह पुस्तक पांच भागों में लन्दन से प्रकाशित हुई।

(२) इङ्गलैण्ड का प्रसिद्ध विधान सभासद एडमण्ड बर्क जिसने भारत के गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के अपराधों की विस्तृत आलोचना पार्लियामेण्ट में की थी।

नाटे चपटी नाक वाले और तातारी मुखाकृति के लोग एस्किमो एवम् प्राचार तथा महान मोहिकन (१) लोगों में और मेवाड़ के भील तथा सिरगुजर के गोंडी लोगों में कोई विशेष अन्तर नहीं है और ध्रुव के करीब समुद्र के किनारे रहने वाले लामों तथा मसूरी की घुमक्कड़ जातियों में उतनी ही प्रतिकूलता है जितनी यहाँ की आदिवासी जातियों और घुमक्कड़ राजपूतों में है। मनुष्य के जन्म को बताए प्राचीनकाल से लेकर अब तक एक सी है। उनका भ्रम उसी आप जमीन के किसी कुकुरमुत्ते या घास और पौधों की तरह नहीं हुआ। इसलिये यह नहीं माना जा सकता कि मनुष्य का जन्म भिन्न-भिन्न तरीके से विभिन्न जङ्गलों और चट्टानों में पौधों और कृमियों की भांति किसी समय हुआ होगा। विचारों की गहराई में जाने से मनुष्यों की आकृति और प्रकृति में विभिन्नता और प्रतिकूलता का इतना ही कारण है कि उनके स्थान अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर लगातार बदलते रहे और वे क्रमशः एक दूसरे से दूर होते गये। देशों और उनकी आबहवा का प्रभाव उन पर पड़ा। जीवन की आवश्यकताओं और स्थानों की परिस्थितियों ने उनमें अनेक प्रकार के शारीरिक और स्वाभाविक परिवर्तन किये।

मनुष्य के जीवन का इस प्रकार अध्ययन करते हुए हम प्रायः उस मानबाडी सिद्धान्त (२) की तरफ आकर्षित होते हैं जिसमें बताया गया है कि ये लोग दुमदार आदमियों की सन्तान के बदले हुये रूप हैं। भील लोगों के रहने के अपने स्थान होते हैं और वे स्थान पहाड़ों तथा घने जङ्गलों में पाये जाते हैं। लूट मार करना उनका एक व्यवसाय होता है। वे जहाँ पर लूटमार करने जाते हैं, वहाँ से लौट कर वे अपने स्थानों को उसी प्रकार चल जाते हैं जैसे कुतुबनुमा यन्त्र की सुई उत्तर दिशा पर आ जाती है। भील लोग किसी दूसरे प्रदेश में जाकर बसने का कभी इरादा नहीं करते। इस बात की पुष्टि बहुत कुछ उनके नामों से भी होती है जैसे वनपुत्र वन अथवा जङ्गल का लड़का, मरात पर्वत से पैदा हुआ मानी मेरुपुत्र गोविन्द जो गोप और इन्द्र के मेल से बना है, जिसका अर्थ गुफा का स्वामी, पाल इन्द्र, घाटी का मालिक। इसी तरह को (पर्वत) शब्द से बने हुये कोल का अभिप्राय है—पर्वत पर रहने वाला। यद्यपि यह को शब्द गिरी शब्द की अपेक्षा बहुत कम प्रयोग में आता है। फिर भी यह निश्चित

(१) उत्तर अमरीकी इण्डियन।

(२) लार्ड जेम्स बर्नेट मोनबाडो स्काटलैण्ड का निवासी था उसका सिद्धान्त है कि मनुष्य का जन्म अत्यन्त प्राचीनकाल में एक जानवर के रूप हुआ था। आज का मनुष्य उसका विकसित रूप है। उसके मस्तिष्क की गति से अत्यन्त परिवर्तन है। इस विषय में उसने एनसिएण्ट मेटाफिजिक्स और ओरिजिन एण्ड प्रोग्रेस आफ लांगवेज उसके लिखे हुए दो प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। उसने अपनी खोज के अनुसार मनुष्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है। उसकी मृत्यु १७९३ ईसवी में हुई।

है कि यह शब्द इरहासीयिक जाति के मूल शब्द से बना है।

भीलों का अपना कोई पुरोहित नहीं होता, इसलिये वे बलाइया के पुरोहितों को ही अपना गुरु मानते हैं, जो शूद्रों में अधम श्रेणी के माने जाते हैं। विवाह के समय पर वह पुरोहित अपने आप ब्राह्मण का जनेऊ पहन लेता है और इस प्रकार वह ब्राह्मण बन जाता है। विवाह के अवसर पर भोजन के साथ शराब के प्याले चलते हैं। वह उसमें भाग लेता है। ऐसे मौकों पर एक भयानक दृश्य उपस्थित होता है और उनमें प्राय कलह बढ़ जाती है।

भीलों में विवाह की प्रथा कुछ अजीब बातों के साथ होती है। वधू को दहेज में शक्ति भर देने की प्रथा है। लेकिन फिर भी वर के लिये यह जरूरी हो जाता है कि वह पिता को प्रसन्न करने के लिए एक भैंस, बारह रुपये और दो बोतल शराब की भेंट में दे।

भील-परिवारों में जब किसी बच्चे का जन्म होता है तो वह बना हुआ ब्राह्मण नवजात बच्चे का नाम करण संस्कार करता है। शिशु का नाम भील परिवार के देवता के नाम पर रखा जाता है। दिन के नाम पर भी नामकरण होता है, जैसे बुधवार को पैदा होने पर लड़के का नाम बुधुवा और लड़की का नाम बुधिया रखा जाता है।

जन्म और मृत्यु के समय भीलों में प्रचलित प्रथा के अनुसार गायक बुलवाया जाता है। ये गायक लोग भीलों के प्राय सभी बड़े गाँवों में पाये जाते हैं। उसकी वेश-भूषा एक जोगी अथवा बैरागी की होती है। वह कबीर के सिद्धान्तों को मानने वाला होता है। इसीलिये उसको बहुत से लोग कामड़ा जोगी अथवा कबीर पंथी कहते हैं।

जन्म के समय यह जोगी अपनी स्त्री के साथ आता है और दरवाजे के देहली के पास एक घोड़े की मूर्ति को रखकर खड़ा हो जाता है। उसके हाथ में एक तम्बूरा होता है। द्वार पर खड़े होकर वह बच्चों की रक्षिका शीतला माता की स्तुति करता हुआ भजन गाता है। उसकी स्त्री उसके स्वर में स्वर मिलाकर भजन गाने में सहायता करती है। पुरुष तम्बूरा बजाता है और उसकी स्त्री मंजीरा बजाती है।

भीलों के प्रत्येक गाँव में एक बड़ा ढोल रहता है। उसको बजाकर गाँव के लोगों को सूचना दी जाती है। उस ढोल के बजने पर गाँव के सभी लोग एकत्रित होते हैं और पैदा होने वाले शिशु के माता पिता को अपने व्यवहार के अनुसार उपहार देते हैं।

मृत्यु के समय भी सूचना देने के लिये ढोल बजाया जाता है। उस ढोल के बजने पर प्रत्येक परिवार से एक एक आदमी अपने साथ एक सेर अनाज लेकर आता है। मृतक के दरवाजे के पास जोगी बैठता है। उसके निकट घोड़े की एक मूर्ति रखी रहती है और जल से भरा हुआ मिट्टी का एक घड़ा होता है। आने वाला प्रत्येक व्यक्ति

घड़े के पास पहुँच कर अपने चुल्लू में थोड़ा सा जल लेता है और मुनष्य का नाम लेकर उस जल को वह घोड़े की मूर्ति पर छिड़क देता है। इसके बाद वह जो अनाज अपने साथ लाता है, उसे वह जोगी को दे देता है।

इस अवसर पर घोड़े की उस मूर्ति का इस प्रकार आदर क्यों होता है, यह मेरी समझ में नहीं आया। मैंने उसको जानने की कोशिश की। लेकिन जो मुझे बताया गया, उससे कुछ स्पष्ट जानकारी न हो सकी। मैंने जो कुछ जान पाया वह कहाँ तक सही है, यह नहीं कहा जा सकता। ऐसा मालूम होता है कि घोड़े की यह मूर्ति सूर्य का चिह्न है। भीलों की सभी जातियाँ सूर्य की पूजा करती हैं। उसके सम्बन्ध में इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जान सका।

हिन्दुस्तान में राजपूतों का एक लड़ाकू जाति माना जाता है। लेकिन इस देश के अनेक देशों और प्रदेशों में आदिवासी जातियाँ युद्ध करने में निर्बल नहीं हैं। उनके रहने के स्थानों पर सुरक्षा के लिये प्राचीन परकोटे बने होते हैं। वे इतने मजबूत होते हैं कि उनके द्वारा उनके गाँवों की रक्षा होती है और किसी शत्रु का आक्रमण उनकी बस्ती पर सीधा नहीं हो पाता।

अभी एक शताब्दी पहले की बात है। इन आदिवासी लोगों में जो उनका स्वामी होता था, उसके अधिकार में बाणों से युद्ध करने वालों के सिवा अश्वारोही सैनिकों की अच्छी खासी सेना होती थी। मुझे इस प्रकार के लोगों की जानकारी प्राप्त करने का अवसर मिला है। उनके एक स्वामी के सम्बन्ध में मुझे बताया गया कि उसके पास धनुष-बाण रखने वालों के अतिरिक्त आठ सौ सवारों की सेना है। उसकी फौज में प्रमुख लोग सामन्त कहे जाते थे। वे लोग पीतल की कमर पेटी बाँधते थे और कवच धारण करके युद्ध में जाते थे। ये लोग युद्ध में पीछे की तरफ देखना अपराध समझते थे। जब कोई सामन्त मारा जाता था तो उसका पद उसके बेटे भतीजे अथवा भाई को दिया जाता था। किसी निकटवर्ती सम्बन्धी के न होने पर मारे गये सामन्त का पद किसी योग्य व्यक्ति को दिया जाता था जिसको वह पद दिया जाता था, उसका चुनाव होता था।

यह बात जरूर है कि इन लोगों में एक लम्बे समय तक विद्रोही भावनायें चलीं और उन भावनाओं के दुष्परिणाम स्वरूप इनके प्रदेश को क्षति पहुँची। इन जातियों में राजभक्ति बहुत प्राचीन काल से चली आ रही थी। उसे ये लोग अपना धर्म मानते थे और उसके पालन में ये सभी लोग जीवन की आहुतियाँ देते थे। लेकिन उस अराजकता ने उनकी भक्ति और कर्तव्य परायणता में बड़ी बाधायें डालीं। ये लोग जिस राजभक्ति के बन्धन में बँधे हुये थे, वे बन्धन छिन्न भिन्न हो गये, उनकी बस्तियाँ एक दूसरे से अलग अलग होते हुए भी एक आदर्श में बँधी हुई थीं। वह आदर्श ढीला पड़

गया। राज-भक्ति का प्रेम फीका पड़ गया। उनकी उस अराजकता और विद्रोही भावना का यह दुष्परिणाम था, जो अर्से तक उन लोगों में चली।

फिर भी, भील लोग अपने समाज और रक्त के प्रबल पक्षपाती बने रहे। राणा लोगों के साथ दिल्ली के बादशाहों के जो विनाशकारी युद्ध हुए, उनमें इन पहाड़ी और जङ्गली जातियों ने राणाओं का पूरा साथ दिया। युद्ध के उन दिनों में अपने प्राणों की बलि देकर इन लोगों ने राणा और उसके राज्य की ही रक्षा नहीं की, बल्कि उससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि उन्होंने राजपूतों की स्त्रियों और लड़कियों को शत्रुओं के हाथों में नहीं जाने दिया।

इन भीलों के सम्बन्ध में हमने उन घटनाओं का वर्णन किया है, जब अमर प्रताप अपने शत्रु के साथ युद्ध कर रहा था, उस समय ये लोग उसका खजाना जावर की खानों में ले जा रहे थे और जब इन लोगों को मालूम हुआ कि यह स्थान भी सुरक्षित नहीं है तो वे उस खजाने को घाटियों के रास्ते से होकर ऐसे स्थानों पर ले गये, जो स्थान केवल उन्हीं लोगों को मालूम थे। इसके बाद की भी एक घटना है, जब सींधिया (१) ने राजधानी को घेर लिया था, उस समय राजधानी की सुरक्षा सङ्कट में पड़ गयी थी। लेकिन इन साहसी और बहादुर भीलों ने झील को पार करके राजधानी में घिरे हुये लोगों को रसद पहुँचायी थी।

लेकिन अब वे दिन नहीं रहे। प्राचीन काल का एक बहुत बड़ा समय ऐसा बीता है, जिसमें अपने प्रभु राणाओं के प्रति उनमें श्रद्धा थी, उनकी मर्यादा की रक्षा के लिये ये भील अपने प्राण देते थे और अपने इस कर्त्तव्य पालन की वे कोई कीमत नहीं चाहते थे। दोनों के बीच के वे दिन गौरव पूर्ण दिन थे। एक दूसरे के प्रति दोनों में—भीलों में भी और राणा लोगों में भी—अपने पन की अटूट भावना थी। राणा उनकी रक्षा में अपनी पूरी शक्तियाँ लगा देता था और राणा की मर्यादा की रक्षा के लिये ये भील अपने प्राण अर्पित कर रहे थे। वह गौरव पूर्ण जीवन दोनों की तरफ से था लेकिन वह स्तुत्य सम्बन्ध अब नहीं रह गया। दोनों तरफ की कर्त्तव्य परायणता अब अकर्मण्यता में बदल गयी है। इन भीलों के इस पतन और परिवर्तन का कारण उनकी गरीबी और उनके विरुद्ध होने वाले दमन तथा अत्याचार हैं।

गरीबी और अत्याचार में पड़े हुये लोगों का इस प्रकार पतन और परिवर्तन स्वाभाविक होता है। इन भीलों में जो अवगुण पैदा हो गये हैं, वे भी किसी से छिपे नहीं हैं। इन प्राचीन जातियों और राणा लोगों के बीच बिगड़े हुये सम्बन्धों और उनके परिणाम स्वरूप पतन को देखकर आश्चर्य होता है। यह एक महान दुख का विषय

(१) यह घटना सन् १७६६ ईसवी में उस समय की है, जब माधवराव सींधिया ने आक्रमण किया था।

है। उनके प्राचीन गुणों को देखकर और जानकर मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी ही और उससे भी अधिक पीड़ा इनके पतन को देखकर होती है। ये भील लोग जिनकी सहायता के द्वारा सुरक्षित रहते थे और सम्मानपूर्ण माने जाते थे, अब गरीबों और अत्याचार के शिकार होने पर वे उन्हीं में यहाँ चोरियाँ करते हैं। जो भील रक्षा करने के नाम पर सबसे अधिक ईमानदार और विश्वासनीय माने जाते थे, वही अब बेईमान, झूठे आचरणहीन और अविश्वासी माने जाते हैं। वही भील, जो जान और माल की हिफाजत करने थे अब उन्हीं को बरबाद करने के लिए नित नये रास्ते निकालते हैं। जिनका पहले वे सम्मान करते थे, उन्हीं को वे अब अत्यन्त घृणा से साथ देखते हैं।

इस प्रकार का मतभेद और अन्तर मुझे उन दिनों में अधिक समझने का मौका मिला, जब १८१७ १८ ई० में मुझको उनके और उनके अधिकारियों के बीच रास्ता की माँग में मध्यस्थ बनना पड़ा। मैं पहले लिख चुका हूँ कि मेरे ब्राह्मण प्रतिनिधि ने पश्चिमी पहाड़ों पर बसे हुए ७५० ग्रामों और उनमें रहने वालों से सन्धियाँ की थीं और स्वयं को साक्षी बनाकर तथा मेरा रुकाव साथ न दे इस प्रकार भीलों को गवाह लेकर उनको पूरा किया।

उन सन्धियों के बाद शान्ति और व्यवस्था कायम हो गयी। लेकिन बहुत दिनों तक चल न सकी। शक्तिशाली राजपूतों ने अपनी पुरानी हरकतें फिर आरम्भ कर दीं और पहले के झगड़ों का सिलसिला आरम्भ कर दिया। कावा का भी एक इसी प्रकार का मामला था। कावा राजधानी से पश्चिम की तरफ दस मील के फासले पर रहने वाली एक बड़ी बिरादरी है। उस बिरादरी के दो आदमियों को सलुम्बर सरदार के एक सामन्त ने मरवा डाला। उसका यह अमानुषिक कार्य दिन दोपहर ग्राम के परकोटे के भीतर एक सार्वजनिक कुएँ पर किया गया। ऐसा मालूम हुआ कि अपने इस तामसी कार्य के करने में उसने राणा की भी कोई परवाह न की।

इसके साथ साथ धरना अथवा शरण का भी एक मामला सामने आया और वह भी मेवाड़ के एक प्रसिद्ध सरदार के खिलाफ था। इस समय दो बातें सामने थीं। एक बात तो यह थी कि राणा ने अपने प्रतिनिधि के द्वारा अङ्गरेज सरकार को विश्वास दिलाकर राज्य के अन्तर्गत शान्ति और सुरक्षा की प्रतिज्ञा की थी और दूसरी बात इस समय यह पैदा हुई कि सलुम्बर सरदार के द्वारा धरना के अधिकार पर अत्याचार हुआ। इन दोनों बातों में इस समय एक की ही रक्षा की जा सकती है। चाहे की हुई प्रतिज्ञा का समर्थन किया जाय अथवा सलुम्बर सरदार की उपेक्षा की जाय। इन दो रास्तों में एक पर ही चला जा सकता था। यहाँ पर संशय और दुविधा में पड़ने की कोई गुञ्जाइश न थी।

खोज का काम आरम्भ कर दिया गया। लेकिन कोई नतीजा न निकला। रात के अँधेरे में अपराधी निकलकर भाग गया। परन्तु मैंने भी उसका पीछा नहीं छोड़ा

सलुम्बर की सीमा के अन्दर मैंने गम्भीरता के साथ उसको तलाश कराया। मैंने सलुम्बर के सरदार राव को आने के लिए खबर भेजी और उसके आने पर मैंने उससे साफ-साफ कहा—

या तो तुम अपने स्वामी राणा की अप्रसन्नता और हमारी शत्रुता का परिणाम भोगना पसन्द करो और यदि तुम ऐसा मुनासिब न समझो तो उस हत्यारे को शरण मत दो और उसे कानूनी सजा पाने के लिये सुपुर्द कर दो।

उस अपराधी को मालूम है कि मैं उसका कितना आदर करता था। लेकिन अपराधी को क्षमा करना कानूनों की उपेक्षा करना है।

उस सरदार ने उत्तर देते हुये कहा—वह अपनी जागीर को छोड़कर बनारस चला जायगा। उसके किसी पूर्वज ने किसी समय ऐसा किया था और उसने जमीन की अपेक्षा इज्जत को अधिक महत्व दिया था। वह बनारस जाकर घोड़ा के कोड़े बनाने लगा था और उनको बेचकर उसने अपनी जिन्दगी के दिन काटे थे। यह अपराधी भी वही कर लेगा। यदि उस शरणागत को सौंपा जाता है तो अपनी बिरादरी में ही उसकी बेइज्जती हो जावेगी।

उस सरदार ने बताया कि मुझे उसके सम्बन्ध में पहले से कोई जानकारी नहीं थी। इसको मैं शपथ पूर्वक आपके सामने कह रहा हूँ। मैं अपने नौकर को वही सजा दूँगा, जिसके लिये राणा की आज्ञा होगी।

कुछ देर की बातचीत के बाद सरदार के साथ एक समझौता हो गया। उसमें यह मान लिया गया कि अपराधी को सलुम्बर से निकाल दिया जायगा और उसको कहीं अन्यत्र चले जाने को आदेश दिया जायगा। जब वह वहाँ बाहर जाने के लिये निकलेगा तो राणा के आदमी उसे कैद कर लेंगे। इस प्रकार का निर्णय हो जाने के बाद उस अपराधी को राजधानी में लाया गया। उस समय परिस्थिति बदलती हुई दिखायी पड़ी। कुछ ऐसे नियम ढूढ़ निकाले गये कि उस अपराधी के सम्बन्ध में जो कुछ किया जा रहा था, उसकी सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर आ गयी और उसके फलस्वरूप मैं घृणा का पात्र बन गया।

यह परिणाम गलत निकाला गया। मैं अपनी तरफ से कुछ नहीं कर रहा था। मेरा समर्थन राणा के पक्ष में था। ऐसी दशा में मैं इस बात को नहीं चाहता था कि बिना किसी कारण के अङ्गरेज सरकार के प्रतिनिधि पर दोषारोपण हो। इसलिये मैंने स्पष्ट जवाब दिया कि जहाँ तक राणा की प्रतिष्ठा का प्रश्न है, उसमें मुझसे कुछ भी पूछने की आवश्यकता नहीं है। उसके बाद दूसरे दिन उस अपराधी के सम्बन्ध में मुझे उस समय जानकारी हुई जबकि उसकी हत्या कर दी गई। उसके मारने में भी जङ्गली

पन और राक्षसीपन से काम लिया गया। अपराधी को एक गहरा गड्ढा खादकर उसमे खड़ा कर दिया गया और उसके सिर को छोड़कर मिट्टी स पाट दिया गया। उसका सिर मिट्टी की सतह से ऊपर था। बाकी सब जमीन म गड़ा हुआ था। जब वह मरने के करीब पहुँच गया तो आखीर म हथौड़े से उसकी खोपड़ी को चूर चूर कर डाला गया।

इस प्रकार की घटना यदि कुछ वर्ष पहले हुई होती तो राणा की तरफ से इस प्रकार कोई भी कार्यवाही न की गयी होती। यहाँ तक कि उस अपराधी को इस प्रकार दण्ड देने की बात सोची भी न गयी होती। उस अपराधी को इस प्रकार मृत्यु दण्ड देने क बाद राणा ने उन भीलो को बुलाने क लिये आदमी भेजे, जो मारे गये भील क प्रतिनिधि थे। उन लोगो के आन पर पगड़ियो और चाँदी क कड़ो के रूप म भेंटे देकर काबा जाति को प्रसन्न किया गया। ऐसा करने से राणा को कई प्रकार स लाभ हुआ और उसकी सैनिक शक्ति को सहायता पहुँची।

यह एक दुर्भाग्य की बात है कि इन पहाड़ी लोगो क शुभ चिंतक कम हैं और सभ्य समाज से बहिष्कृत हान के कारण उनका ईसाउ (१) क लड़को के समान समझा जाता है। एक दूसरी घटना का दायित्व मेरे ऊपर आ पड़ा और वह भी उस समय

---

(१) बाइबिल क अनुसार ईसाउ आइजक और रैबेका का बेटा और जैकब का बड़ा जुड़वाँ भाई था। उसक शरीर मे जन्म से ही बहुत से बाल थे। इसीलिए उसको ईसाउ कहा गया। उसको शिकार का निहायत शौक था। इसी अभिप्राय से किसी समय वह बहुत दूर चला गया जब वह बहुत भूखा और प्यासा हुआ। उस समय उसका छोटा जुड़वाँ भाई जैकब दस्तरखान पर बैठा हुआ माँ क साथ अच्छी चीजें खा रहा था। उसके साथ बैठकर जब ईसाउ ने खाना चाहा तो जैकब ने इस बात पर उसको भोजन मे शामिल हाने दिया कि वह अपने बड़ होने का हक छोड़ दे। ईसाउ भूख के मारे तड़प रहा था, इसलिए उसने अपने समस्त अधिकारो को जैकब के पक्ष में छोड़ दिया, इसक बाद उसने दो विदेशी कनाटिश जिसको अब सीरिया पैलस्टाइन कहा जाता है—स्त्रिया से विवाह कर लिया। इसस उसका अब्राहम के पवित्र वंश से विच्छेद हो गया। लाल दाल के शोरबे के लिए अपने अधिकारो को छोड़ देने के कारण इसका नाम एडाम जिसका अर्थ लाल होता है—पड़ा। उस समय से उसके अनुयायी और साथी इडोमाइटस कहे जाने लगे। वही लोग ईसाउ के बेटा के नाम से मशहूर हैं। वे लोग उस समय के समाज में निम्नकोटि के समझे जाते थे। इसका कारण सिर्फ यह था कि कनानि स्त्रियो क साथ विवाह करके उसने अब्राहम का वंश छोड़ दिया था, जो श्रेष्ठ और पवित्र माना जाता था। अन्यथा उसके समाज से गिरने का और कोई भी कारण नहीं था।

जब मैं उनके बीच से चले जाने की तैयारी कर रहा था। यह दूसरी घटना भी कम दुख पूर्ण नहीं थी। राठोरों और हाडा राजपूतों के राज्य में लगातार आने-जाने से उदयपुर में मुझे रहने का बहुत कम समय मिला। उन दिनों में मेरी अनुपस्थिति के कारण इन गरीब भीलों को उनके शत्रुओं ने बेजा तरीके से दबाया और अपराधी काम करने के लिए उनको मजबूर कर दिया था। उनके साथ इतना ही नहीं होता था, बल्कि उनके इस प्रकार कार्यों की निगरानी होती थी। इसका सीधा अर्थ यह था कि जो काम वे नहीं करना चाहते थे, उनसे वे कार्य कराये जाते थे। राजपूत लोग उनको बहकाने और उकसाने का काम करते थे, जिससे वे अपना पूरा काम कर सकें। उनकी यह स्वाभाविक कमजोरी थी कि वे इस प्रकार के बहकावे में आ जाते थे और उस प्रकार के बेगदे काम करने लगते थे। इसी प्रकार के बहकावे का यह परिणाम था कि वे यात्रियों को लूट लेते और प्राय नीमच की छावनी के अङ्गरेज सिपाहियों के साथ छेड़छाड़ करके उनको तङ्ग करते थे।

उस समय छावनी का प्रधान अधिकारी कर्नल लडलो (१) था। उसके यहाँ से इस प्रकार की शिकायतें लगातार मेरे पास आ रही थीं। उन्हीं दिनों में एक और भी दुर्घटना हुई, एक फौज के कुछ आदमियों के साथ लूटमार करके ये लोग जङ्गल में भाग गये। यह समाचार पाने के बाद अपनी ही सेना के द्वारा उन लोगों का इसका बदला देने के लिए मुझे राणा के पास आदेश लेने के लिए जाना पड़ा। राणा से मिलकर और आदेश पाते ही लेफ्टीनेण्ट हैरबन के नेतृत्व में एक टुकड़ी तैयार की गयी। उस टुकड़ी के थोड़े से लोगों ने इतनी होशियारी से काम किया कि अचानक जाकर उस गाँव को घेर लिया और वहाँ के तीस आदमियों को—जिनको पीड़ित लोगों ने न केवल पहचाना, बल्कि उनके घरों में लूट का माल भी पाया गया—गिरफ्तार कर लिया।

लेफ्टीनेण्ट हैरबन उन कैदियों को छावनी में ले आये। उनको देखकर कर्नल लडलो और मैं—दोनों ही असमंजस में पड़ गये। यह समाचार मैंने राणा के पास भेजा। इसके साथ ही मैं इस सोच विचार में पड़ गया कि इन कैदियों के सम्बन्ध में होना क्या चाहिये। बहुत सोच विचार कर कर्नल लडलो को यह अधिकार दिया गया कि जो लोग गिरफ्तार किये गए हैं, उनमें पाँच-छै प्रमुख अपराधियों का चुनाव कर लें। इन चुने हुए अपराधियों को राणा के एक राजपूत अधिकारी को सौंप दिया गया। उन्हें फाँसी की सजा दी जा चुकी थी। उन अपराधियों को फाँसी दे दी गयी और उनके मृत शरीर उन स्थानों पर लटका दिये गये, जहाँ पर उन लोगों ने लूट मार की थी।

उन कैदियों में छै प्रमुख अपराधी चुने गये थे। उनमें पाँच को तो फाँसी दे दी गयी। लेकिन छठा आदमी अपनी युवावस्था में था। उसके लिए मैंने और

राणा—दोनों के सिफारिश की, इसलिए राजपूत अधिकारी ने उसको छोड़ दिया। इसके बाद उस बचे हुए छठे अपराधी को जीवन दान दिये जाने के बदले में धन्यवाद देने के लिए मेरे पास लाया गया। उसने मेरे सामने इस प्रकार के कभी अपराध न करने की प्रतिज्ञा की।

उस युवक अपराधी की अवस्था केवल उन्नीस वर्ष की थी मझोला कद और शरीर का दुबला पतला था। परन्तु उसका शरीर गठीला चेहरा खुश नुमा, चमकदार, खूबसूरत आँखे और बाल घने काले थे। उसकी मुखाकृति से प्रकट होता था कि वह अब भी डरा हुआ है। उसके यौवन की सरलता को देखकर सहज ही आभास होता था कि उसको अपराधों का ज्ञान नहीं है। मैं इन घटनाओं के सम्बन्ध में बहुत समय तक सोच विचार करता रहा, इन्हीं दिनों में मुझे यह भी बताया गया कि फौजी टुकड़ी के लोग और किसी मतलब से नहीं, बल्कि भीलिनियों की खोज में घूमा करते थे। हत्या के अपराध में मृत्यु दण्ड अच्छा नहीं मालूम होता बल्कि ऐसे अपराधों में जुर्माना की सजा काफी होता है और धन की चोट कम प्रभावशाली नहीं होती।

भीलों के विस्तृत परिवार में अथवा उनके वंश में सैरिया जाति के लोग भी माने जाते हैं। ये लोग मालवा और हाड़ौती को एक दूसरे से पृथक करने वाले पहाड़ों और उनकी ऊँची नीची जगहों में बसे हुए हैं। उनकी कुछ शाखाएं मालवा के किनारे से लेकर चन्देरी और नरवर के साथ साथ गोहद तक पायी जाती हैं। कुछ शाखायें बुन्देलखण्ड की पहाड़ियों में जाकर मिल गयी हैं। उनमें पहले कभी सरजा जाति के लोग रहा करते थे। ये लोग अब वहाँ पर नहीं मिलते। वे लोग मध्य भारत के सैरिया लोग थे। राजपूतों की छत्तीस जातियों में एक जाति सरासरा भी है सैरिया उसी का संक्षिप्त अथवा छोटा नाम है।

पुराने मिले हुए शिला लेखों से पता चलता है कि सैरिया हिन्दुस्तान की पुरानी जातियों में से एक है। उसके वंश परिचय के सम्बन्ध में अधिक खोज करने की आवश्यकता नहीं है। अस्व और अश्व एक ही जाति है। अन्तर केवल थोड़ा सा उच्चारण का है। यह जाति निश्चित रूप से इण्डो सीथिक जाति से सम्बन्ध रखती है। फारसी में अस्प शब्द का अर्थ घोड़ा होता है और संस्कृत में भी अश्व का अर्थ घोड़ा होता है। यह नाम इस बात का बहुत बड़ा प्रमाण है कि यह जाति मौलिक रूप से इण्डो साथिक है।

मध्य एशिया की प्राचीन जातियों में चौपायों के नामों के आधार पर नाम रखने की प्रथा थी इस पर मैं अन्यत्र प्रकाश डाल चुका हूँ। अस्व और अश्व के सिवा ट्रान्साक्साइना (१) के मेस और जाता की प्रसिद्ध शाखा नौमरिस अथवा लोमड़ी एवम्

(१) आमू और सर नदियों के बीच का भाग।

मुल्तान तथा उत्तरी सिंधु के बराह अथवा शूकर भी यही अर्थ रखते हैं। इस प्रकार पशुओं और वनस्पतियों के आधार पर जो नाम रख जाते थे, उनसे विभिन्न प्रकार के अर्थ लगाकर वंशों और परिवारों की विभिन्नता मानने की एक प्रथा सर्वत्र पायी जाती है।

जातियों और मनुष्यों के नाम कुछ आधार लेकर रखे जाते हैं। यह अवस्था संसार की प्रायः सभी जातियों में प्राचीन काल से लेकर अब तक पायी जाती है। इस प्रकार का आधार पूर्वजों के नामों और पदों के आधार पर भी होता है और देवताओं अथवा महापुरुषों के नाम पर भी नाम रखे जाते हैं। इस प्रकार की प्रथायें सभी देशों के समस्त जातियों में प्राचीन काल से रही है और आज तक उनके अस्तित्व चले आ रहे हैं।

कुछ जातियों के नामों के आधार इतने साधारण होते हैं कि जो एक कुतूहल उत्पन्न करते हैं। जैसे प्लाण्टाजेनेट झाँव का अर्थ देता है। लेकिन उसकी उत्पत्ति बुहारी से है। (१) इएडस और आवमस की उत्पत्ति अश्व, लोमड़ी और शूकर से, सीसोदिया राजपूत वंश की उत्पत्ति शशक अर्थात् खरगोश से और कुशवाहा राजपूतों की उत्पत्ति का आधार कुश नामक घास है। इसी प्रकार सभी जातियों, वंशों और परिवारों के नामों का आधार कुछ अर्थ रखता है। परन्तु बहुत से नामों के साथ वह उपयुक्त नहीं मालूम होता।

इस सैरिया जाति का निकास और विकास कहीं से भी हुआ हो, परन्तु उसके जीवन की बहुत-सी बातें ठीक उसी प्रकार की हैं, जैसी कि भील लोगों में पायी जाती हैं। लेकिन उनमें दुर्गुण नहीं पाये जाते। सैरिया जाति के लोगों में किसी प्रकार का परहेज नहीं है। कुत्ता और बिल्ली छोड़कर वे लोग सभी कुछ खाते हैं। उनमें खान-पीने की आदतें कहाँ से आयी और पश्चिम तथा दक्षिण में रहने वाले बिरादरी के लोगों में ये बातें पायी जाती हैं या नहीं, यह मैं नहीं जानता।

इन लोगों का अधिकांश जीवन शिकार पर निर्भर है। वे शिकार करना खूब जानते भी हैं। वे लोग नील गाय और जङ्गली सुअर से लेकर खरगोश तक का शिकार

(१) एन्जू के काउण्ट (ज्योफ्री) ने वीरता का परिचायक प्लाट जेनिस्टैक (बुहारी की तरह का तुर्रा) सबसे पहले अपने शिरस्त्राण में रखना आरम्भ किया था। वह जेरूसलम के राजा फुल्क का बेटा था। ज्योफ्री अत्यन्त सुन्दर था। इसलिये इङ्गलैण्ड के बादशाह हेनरी प्रथम ने अपनी विधवा लड़की एम्प्रेस माड का विवाह उसके साथ कर दिया था। उन दोनों से जो लड़का उत्पन्न हुआ, वह हेनरी द्वितीय के नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह ११५४ ईसवी में गद्दी पर बैठा और प्लाटाजेनेट वंश का राजा कहलाया। तीन सौ वर्षों तक यह पद इङ्गलैण्ड के बादशाहों की उपाधि बनकर रहा।

करते हैं। लोमड़ी, गीदड़ साँप और छोटी बड़ी सभी प्रकार की छिपकलियाँ उनके खाने के स्वादिष्ट पदार्थों में है। ये चीजें जङ्गलों में बहुतायत से पायी जाती हैं। सही बात यह है कि जिन जीवों और पशुओं को मनुष्य ने पालतू बना लिया है उनको छोड़ कर वे सभी कुछ खाते हैं। जङ्गल के फलों में वे तेंदुआ, चिरौंजी आँवला, इमली इत्यादि को एकत्रित कर लेते हैं। उनको वे स्वयं अपने और अपने परिवार के खाने-पीने के काम में लाते हैं और जो अधिक होता है उसे देकर वे अनाज ले लेते हैं। किसी भी बीमारी में ये लोग पेड़ों पत्तों और जड़ों का प्रयोग करते हैं। इन चीजों से वे तरह तरह की दवाएँ आवश्यकता पड़ने पर बना लेते हैं। इन जड़ों को वे जमीन खोद कर निकालते हैं। ये जड़ें विभिन्न प्रकार की हैं। उन्हीं में से कालीकाटा एक जड़ होती है, उससे माँडी अथवा कलफ तैयार किया जाता है। कुश जो एक प्रकार की घास होती है, उसकी रेशेदार जड़ों से ब्रश बनाते हैं। उन ब्रशों से कपड़ों की धूलि साफ की जाती है।

इस जाति के लोग अपने आस पास के जङ्गली स्थानों की लकड़ी काटते हैं और उसका व्यवसाय करते हैं। लकड़ियाँ काटते हुये वे लोग बहुत सा गोंद इकट्ठा कर लेते हैं। वह गोंद दवाओं और अन्य मौकों पर काम आता है। इस प्रकार के व्यवसाय में इस जाति के लोग बड़े होशियार और अनुभवी होते हैं। अपने अनेक कार्यों में वे ऐसे जानकार होते हैं जिनको दूसरी जातियाँ नहीं जानतीं। ये लोग अनेक प्रकार के पेड़ों की छालों और जड़ों को भिगोकर और मुलायम बनाकर मोटी पतली रस्सियाँ तैयार करते हैं उनका यह एक प्रमुख व्यवसाय है।

जिन वृक्षों की छाल और जड़ रस्सियाँ बनाने में अधिक उपयोगी साबित होती है उनमें कनूरा प्रमुख है। उसकी जड़ और छाल दोनों का उपयोग रस्सियाँ बनाने में होता है। छाल और जड़ को मिलाकर भी वे रस्सी बनाते हैं यह मैं नहीं जानता। मुझे जो कुछ जानने और समझने को मिला है उसके आधार पर मैं यही कह सकता हूँ कि वे छालों और जड़ों को भिगोकर और फिर कूटकर मुलायम और लचीदार बना लेते हैं। उसके बाद वे लोग उसमें से बहुत महीन रेशे निकालते हैं और उन्हें छाया में सुखाते हैं। उसके पश्चात् वे इच्छानुसार छोटे लम्बे पतले और मोटी रस्सी अथवा रस्से तैयार करते है।

वे लोग बहेड़ा और हड़ के फलों को भी एकत्रित करते हैं ये फल शाहाबाद की पहाड़ियों में अधिक पाये जाते हैं। उन फलों से अङ्गरेज लोग पीला रङ्ग तैयार करते हैं। इसी प्रकार रीठा एक दूसरा फल होता है जो कपड़े को सफेद करने में काम आता है। हाड़ौती के बयान में सैरिया जाति के लोगों का बयान स्पष्ट रूप में किया गया है। ये लोग मउआ नाम का फल एकत्रित करते हैं। उन फलों से वे एक अच्छी शराब तैयार करते हैं जो ह्विस्की से मिलती जुलती है।

सैरिया जाति के लोग निडर और साहसी होते हैं। वे लोग घटखी हुई चट्टानों मे चढ जाते हैं और मक्खियो के लगाये हुये शहद को बडी निर्भीकता के साथ निकाल लाते हैं। ये लोग खेती का काम भी करते हैं। लेकिन उन लोगो को अपनी खेती म कुछ अधिक नही करना पडता। अपने खेतो को वे खुरपे से थोडा-सा खोद देते हैं और उस खोदी हुई जमीन मे वे बीज डाल देते हैं। जब उनके खेत पकने की अवस्था मे आते हैं, उसस पहले ही वे उनमे खाना पीना आरम्भ कर देते हैं।

सैरिया लोगों के आचरण और विश्वास हमे बहुत प्रिय मालूम हुए। उन लोगो में कृतज्ञता की भावना बहुत अधिक पायी जाती है। (१) उनके सम्बन्ध मे आम तौर पर कहा जाता है कि किसी सैरिया को एक बार खाना खिला दीजिए, वह जिन्दगी-भर के लिये आपका प्रशंसक बन जायगा। वे किसी भी सहायता और सहानुभूति को बहुत अधिक महत्व देते हैं। नरवर, श्योपुर चम्बल नदी के बायें तरफ की पहाडियो मे वे अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ के उत्तर और पश्चिम—दोनों भागो मे भील लोग रहा करते हैं। लेकिन उनके रङ्ग रूप मे कोई विशेष अन्तर नहा होता। शरीर की गठन म कुछ अन्तर अवश्य पाया जाता है। उत्तरी भाग म जो भील रहते हैं, उनके होठ कुछ आगे की तरफ निकले हुए होते हैं। शरीर मोटा, तगडा और पेट बडा होता है। शरीर के इस निर्माण में वे मेवाड़ के भीलों की अपेक्षा छोटा नागपुर और सरगुजा के लोगो स अधिक मिलते-जुलते होते हैं।

---

(१) फतह नामक मेरा एक डाकिया था। राजस्थान के इतिहास म मैंने उसका उल्लेख किया है। उसने इन लोगो को डाक ले जाने का काम दिलाने के लिये चेष्टा की थी। वे उस काम में रख भी लिये गये थे। इन्ही जङ्गली जातियो के बल और विश्वास पर मैंने उन दिनो मे बम्बई और गङ्गा तटवर्ती प्रात के बीच डाक का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया था। यद्यपि मेरे ऊपर अनेक कार्यों का बोझ था, फिर भी मैंने अपना कर्त्तव्य पालन के नाम पर सिंधिया की छावनी के पोस्टमास्टर के काय का बोझ भी अपने सिर पर ले लिया था और १८१५ ईसवी म मार्क्वइस हेस्टिंग्स को—जो उन दिनो म गङ्गा के किनारे फर्रुखाबाद म था—विलायत से आयी हुई डाक बम्बई स इतनी दूरी पर केवल नौ दिनो में मैंने पहुँचायी थी। यह फासिला नौ सौ मील स अधिक था और रास्ता उन देशो से होकर गया था, जहाँ न तो ब्रिटिश का और न उसके किसी मित्र का कोई अधिकार था। उस समय मेरी सफलता का कारण यही लोग थे।

चौथा प्रकरण

आदिवासी जातियाँ, पुराने सिक्के और तरीके

गर्मी में रेतीले मैदानों की यात्रा—वल्लभी के निवासी—लाभ उठाने की मेरी अभिलाषा—राज्य की जागीरों पर जैनियों के अधिकार—राणा की धर्म भीरुता—बालनगर का जैन मन्दिर—मूर्ति पूजा का प्राचीन विस्तार—मीणा लोगों के ग्राम—ऊटवण के मीणा लोग और राजपूत—बालू के मैदानों में आग की चिनगारियाँ—भारत की गर्मी और विदेशी यात्री—देवड़ा के राजपूत—मारकण्डेश्वर मन्दिर का जल कुण्ड—सिरोही की रियासत का अभिनन्दन—सिरोही की स्वाधीनता—सिरोही और मारवाड़ में सन्धि।

शीतला माता की घाटी को पार करने के समय दोपहर हो चुकी थी आबू का ऊंचा शिखर देखने के साथ ही मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। मैं सायराक्यूज के महात्मा की तरह प्रसन्न होकर कह उठा—मिल गया। (१)

इसके आध घण्टे के बाद मैं बीजोपुर अपने मुकाम पर पहुँच गया। उस समय थर्मामीटर में ९८° और बैरोमीटर २८°६० था। उनके द्वारा मेवाड़ के मैदानों और अरवली के तटवर्ती दोनों तरफ फैले हुए मारवाड़ के ऊंचे मैदानों का फर्क मालूम हो रहा था। दिन के तीन बजने पर बैरोमीटर २८ ५० पर और थर्मामीटर १०२° पर था।

उस समय पश्चिम की तरफ आकाश में बादल जमा हो रहे थे और गर्म हवायें चलकर सिरोको (२) तूफान की स्मृतियाँ जागृत कर रही थीं। मैं गरम और सूखी बालू पर—जहाँ पर मेरा मुकाम था—खड़ा हुआ और उन ऊंचे स्थानों पर नजर डाली जिनको मैं पीछे की तरफ छोड़ आया था। उस समय मैंने अनुभव किया कि

(१) प्रसिद्ध ग्रीक वैज्ञानिक आर्कमिडीज को धातुओं के वजन में अन्तर होने का कारण उस समय मालूम हुआ जब वह अपने स्नानागार के टब में बैठा था। उस समय की अपनी सूझ में वह इतना खुश हो गया कि वह मिल गया मिल गया चिल्लाता हुआ बादशाह के दरबार में पहुँच गया और उसको अपने नंगे होने का ज्ञान न रहा। बादशाह ने इस खोज का काम उसको दे रखा था।

(२) सिरोको उस तूफानी हवा को कहते हैं जो भयानक धूलि के साथ समुद्र को पार करती हुई अफ्रीका की तरफ से चलकर इटली की तरफ आती है। दक्षिण की तरफ से चलने वाली गरम और तेज वायु को भी इस नाम से पुकारा जाता है।

टटक पहुँचाने वाले साधनों को फेंककर मैंने भूल की है। वहाँ का दृश्य आकर्षक था और मेवाड के चढाव की तरफ के किसी भी स्थान से अधिक प्रभावशाली मालूम होता था। उस स्थान से मैंने अरावली के उस मुकाम को देखा जो बिल्कुल सीधा दिखाई देता था। वहाँ का दृश्य अनोखा था। अनेक प्रकार के पत्थरों से बने हुए स्थान और मार्ग, गुम्बद के समान ऊँची चोटियाँ, जङ्गली झाडियों से घिरी हुई अथवार पूर्ण गुफायें, साफ और स्वच्छ जल देने वाले पानी के अनेक झरने आदि से वहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त सुन्दर मालूम हो रहा था।

गर्मी असाधारण रूप से बढ रही थी। अगर मुझे अपने कार्यों से छुट्टी मिली होती तो मैं दो सप्ताह पहले वहाँ से रवाना हुआ होता। इसलिये कि मानसून का आना आरम्भ हो गया है। कहीं ऐसा न हो कि मेरी अभिलाषायें मेरे मन में ही रह जाँय। मेरे इरादों का एक आवश्यक अङ्ग तो अभी से छूटा जा रहा है जिसके लिए मैंने भीलों के जङ्गलों में जाने की आशा इस मार्ग को अधिक पसन्द किया था। मैं सादडी की नाल से रायपुर जी (राणपुर) का मन्दिर देखना चाहता था। इसीलिये मैं इस तरफ से आया था।

मुझे सुनने को मिला है कि यह नाल अरावली के उन दरारों में से है, जहाँ से केवल पैदल यात्री ही निकल सकते हैं। वह स्थान मेरे इस मुकाम से सामने दिखायी पडता है। लेकिन वहाँ पहुँचने का मेरा साहस नहीं होता। इसका कारण यह है कि मेरी यात्रा का प्रमुख मार्ग उस स्थान के बिलकुल विपरीत पडता है। इसे तो मैंने दो वर्ष पहले ही देख लिया होता। इसलिये कि उदयपुर से आबपुर जाने के समय कभी भी उसको देखा जा सकता था। लेकिन मैंने इसका पहले कभी ख्याल नहीं किया।

मैंने अपना आम्मो वालो नामक जैन कस्बे की तरफ पहले ही रवाना कर दिया था। वहाँ पर सौराष्ट्र की पुरानी राजधानी बल्लभी के निवासी पाँचवीं शताब्दी में इन्डो-सीथिक लोगों के लगातार आक्रमणों से घबरा कर आ गये थे और वहीं रहने लगे थे। उन लोगों ने यहाँ आकर बहुत से पुराने सिक्के एकत्रित किये थे। उनमें से कुछ तो इन्डो-सीथिक सिक्के थे, उनमें एक तरफ वहाँ के किसी राजा की तस्वीर थी और दूसरी तरफ जो कुछ बना हुआ था, वह क्या था यह साफ जाहिर नहीं होता था। उनमें लिखे हुए अक्षर वहीं की लिपि में थे।

दूसरे सिक्के अन्य प्रकार के थे। किसी सिक्के में घोडे पर सवार भाला लिए हुए कोई चित्र था और किसी में किसी शूरवीर का अथवा घुटनों के बल बैठे हुए नन्दीश्वर की मूर्ति बनी थी। दूसरी तरफ संस्कृत में किसी राजपूत राजा का नाम लिखा हुआ था। उन सिक्कों में यह सब ठप्पे के द्वारा किया गया था। किसी सिक्के में तिथि तारीख, सन और जाति का जिक्र नहीं था। एक तीसरे किस्म का सिक्का मिला। उसमें एक तरफ नागरी लिपि में किसी हिन्दू नरेश का नाम था और दूसरी तरफ सह-

मद था। ऐसा मालूम होता है कि बादशाह गजनवी (१) ने विजय करने के बाद यह ठप्पा लगवाया होगा जैसे की फ्रांस की आजादी के समर्थकों ने लुई सोलहवें के सिक्कों में दूसरी तरफ स्वतन्त्रता की देवी की प्रतिमा अङ्कित करा दी थी। (२)

मेरी बड़ी अभिलाषा थी कि इस प्रदेश के प्राचीन नगरों में जाने और वहाँ के सम्बन्ध में खोज करने का अवसर मिले इसलिये कि अरावली के करीब अनहिलवाड़ा और सौराष्ट्र के निवासियों ने ग्रीक पार्थियन और हूण जातियों के लगातार आक्रमणों से क्षत विक्षत होकर यहाँ पर शरण ली थी।

पाली में मुझको मेवाड़ के राजाओं के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक नामावली प्राप्त हुई और आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस साधु पुरुष ने यह नामावली मुझे दी थी वह तेरह शताब्दी बीत जाने के बाद भी गुरु के नाम से सम्बोधित किया जाता था। धर्म पर राजपूतों की श्रद्धा होती है। वर्तमान राणा तो विशेष रूप से धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। इसलिये जैन सम्प्रदाय वालों के साथ उनकी अधिक सहानुभूति और आस्था रहती है। इस सहानुभूति और श्रद्धा का कारण जैनियों और जैन धर्मावलम्बियों की कोई विशेषता थी यह नहीं कहा जा सकता। उसका कुछ भी कारण रहा हो। लेकिन उनके प्रति श्रद्धा और आस्था आज तक राजपूतों में और राणा के वंशजों में पायी जाती है यह सही है।

मैंने यह जानने की कोशिश की कि जैन सम्प्रदाय वालों के द्वारा यहाँ के राणा वंश वालों पर क्या उपकार हुए हैं परन्तु इसके सम्बन्ध में कोई ठोस सामग्री मुझे नहीं

---

(१) सुल्तान महमूद गजनवी ने १०२१ ईसवी में पंजाब पर अधिकार कर लिया था। १०२१ ईसवी के पश्चात् लाहौर में उसके वंशजों की राजधानी कायम हुई, वहाँ सिक्कों में उन लोगों ने वहाँ के प्रचलित सिक्कों में एक तरफ अरबी लिपि के चौकोर आकार में ठप्पा लगवाया और दूसरी तरफ राजपूती नन्दी बैल की मूर्ति बनी रहने दी। महमूद ने स्वयं लाहौर में एक सिक्के पर ठप्पा लगवाया था। उस ठप्पे के द्वारा उस सिक्के पर लाहौर का महमूदपुर लिखा गया। उस सिक्के पर एक तरफ उसका अरबी में नाम लिखा है और दूसरी तरफ उसी का मतलब संस्कृत में लिखा गया है— कि अव्यक्तम् भारत इन्दा— (सी० जे० ब्राउन १९२१ पृ० ६६)।

(२) लुई १६ वाँ फ्रांस के बादशाह लुई १५ वें का पौत्र था। अपने पितामह की मृत्यु के पश्चात् वह १७७४ ईसवी में सिंहासन पर बैठा। १७८९ ईसवी में वहाँ पर क्रान्ति हुई जिसके कारण वह पेरिस से भाग गया। लेकिन गिरफ्तार कर लिया गया। १७९२ ईसवी तक विधान को स्वीकार कर लेने पर वह राज्य करता रहा। उसके बाद राजा की सत्ता का ही अन्त हो गया और वह जान से मार डाला गया। (ए० एम० ई० पृ० ८१८)।

मिल सकी। जैनियों के अधिकार में राणा के राज्य की बड़ी बड़ी जायदादें हैं, जिन पर उन लोगों का कानूनी तौर पर कोई हक नहीं है। उनको ये जायदादें और जागीरें क्यों मिली हुई हैं, इसका भी राज्य के पास कोई उत्तर नहीं है।

अनेक मौकों पर उन जैनियों के विरुद्ध मामले पैदा हुए हैं, जिनके सम्बन्ध में राज्य के अधिकारियों ने स्वीकार किया है कि इस प्रकार न जाने कितनी जागीरों पर जैनियों के अधिकार हैं, जिनका कोई आधार नहीं है। लेकिन राणा की तरफ से उनके विरुद्ध कभी कुछ किया नहीं गया। ऐसे मामलों पर विचार किये जाने और निर्णय करने के पहले ही हमेशा कहा गया कि इन लोगों का तङ्ग न किया जाय। इसलिए कि राणा-वंश पर इन जैनियों के बहुत बड़े उपकार हैं। उनसे राणा के वंश का कभी उद्धार नहीं हो सकता।

इस भावना की प्रेरणा से जब कभी जैन साधु अपने भक्तों को दर्शन देने के लिये आते हैं और उस सिलसिले में वे उदयपुर से होकर गुजरते हैं तो राणा स्वयं उनका स्वागत करने के लिये राज्य के प्रमुख अधिकारियों को लेकर जाते हैं और उनके साथ साथ राजधानी तक लौटकर आते हैं। राज्य की तरफ से उन लोगों को जो रियायतें और अधिकार मिले हुए हैं, उनका विस्तार में हम राजस्थान के पृष्ठों में वर्णन कर चुके हैं।

बीजोपुर (विजयपुर) चार हिस्सों में विभाजित है और उन पर राजपूतों का अधिकार है। वे लोग नाणावेड़ा की शाखा अथवा बिरादरी कहलाते हैं। वे लोग राणा प्रताप के वंशज हैं। बाबा उनकी उपाधि है। वहाँ के लोग राणा के दरबार में सनवाड़ के सरदार (१) के बराबर सम्मान पाते थे। लेकिन कुछ कारणों से वे सब बातें अब नष्ट हो गयी हैं और राणा प्रताप के वे वंशज अब जोधपुर की अधीनता में हैं। वे अपने पूर्वजों के गौरव का मूल नहीं हैं और जिसके शासन में है, उसके प्रति भी वे सम्मान प्रकट करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति राजपूतों के ऊँचे चरित्र का परिचय देती है।

राजस्थान का एक राजपूत मुझको एक बार मिला। वह मारवाड़ी पोशाक में था। लेकिन उसको देखने से उसके श्रेष्ठ वंशीय होने के सभी लक्षण जाहिर होते थे। बीजोपुर के राजपूतों का समय अब बिगड़ चुका था, फिर भी उनका व्यक्तित्व उनके श्रेष्ठ वंश का परिचय देता था। उसका सुदृढ़ और लम्बा कद, गोरा रङ्ग प्रभावशाली मुखमण्डल और गम्भीर आचरण अपने आप आकर्षण पैदा करता था। मैंने बहुत समय

(१) सनवाड़ के सरदार महाराणा उदयसिंह के तीसरे पुत्र वीरमदेव के वंशज होने के कारण वीरमदेवोत राणावत कहलाते हैं। बाबा उनका खिताब है खेरावाद के बाबा संग्रामसिंह के छोटे लड़के शम्भूसिंह को सनवाड़ की जागीर मिली थी।

तक बैठकर उसके साथ बातें की। उस बातचीत में वर्तमान परिस्थितियों की अपेक्षा हमने अतीत कालीन बात अधिक की। मेरी बातों से वह इसलिये और भी बहुत खुश हुआ कि उसके पूर्वजों के सम्बन्ध में उसकी अपेक्षा मुझे अधिक जानकारी थी।

६ जून—बीरगांव हमारा रास्ता अरावली में बराबर बराबर चल रहा था। लेकिन वह कभी कभी उसकी पतली चट्टानों के बहुत करीब पहुंच जाता था। सूर्य का प्रकाश न मिलने की हालत में वे चट्टानें बड़ी भयानक मालूम होता था। सूर्य के निकलते ही और उसका प्रकाश पड़ते ही हालत एक साथ बदल जाती थी।

हमने एक छोटा सा नाला पार किया जो जुआ नला (१) के नाम से प्रसिद्ध है। सिरोही और गोडवाड़ जिलों की सीमा पर होने के सबब से उसका राजनीतिक महत्व भी कम नहीं है। इसके पश्चात् हमने सूकड़ी नदी को भी पार किया जो लाहौर के किले के पास से होकर बहती हुई लूनी नदी में आकर गिरती है।

जिस स्थान से मैंने इस नदी को पार किया उसके करीब में एक छोटे से मंदिर में भी गया। यह मंदिर बालपुर शिव अथवा बाल नगर के शिव का मन्दिर कहलाता है। उसके देवता की प्रतिमा के सामने उसके वाहन पीतल के बैल की प्रतिमा है। मालूम होता है कि इस प्रायद्वीप में किसी समय इसी देवता की पूजा होती थी। ऐतिहासिक काल के आरम्भ में, जब हिरम (२) और टायर के नाविक जेरूसलम के बादशाह के यहाँ नौकर थे और नाव के खेने का काम करते थे उससे बहुत पहले भारत के लाल सागर के किनारे मिश्र और फिलिस्तीन के जलयान आते जाते थे। बाल और पीतल का बछड़ा—जिनका पूजन हर महीने की पन्द्रहवीं तारीख को होता है—व हिन्दुस्तान के बाल वर और नन्दी मिश्र देश के ओसिरिस (३) और मुविस (४) के सिवा और कुछ नहीं है। भारत में उसकी पूजा प्रत्येक अमावस्या को होती है। यह बालपुर अथवा बाल नगर ठीक वैसा ही है जैसे सीरिया का बलबेक अथवा हेलियोपालिस (५)। धार्मिक रीति रिवाज और विश्वास इस बात के प्रमाण हैं कि सभी देशों

---

(१) जवाई नाला जहाँ आजकल बाँध बाँधा गया है।

(२) हिरम प्रथम टायर का बादशाह और अबीबाल का बेटा था। उसने इस रायल के बादशाह सुलेमान के यहाँ बहुत से इमारती सामान के साथ कारीगर भेजे थे। (ए० शोर्ट सरवे आफ ह्यूमन हिस्टरी) पेज १७।

(३) मिश्र का प्राचीन नस्ल सौभाग्य का देवता, जिसकी पूजा इसलिए होती थी कि वह मृतकों के पाप पुण्य का निर्णय करता था।

(४) मुविस—मिश्र का वृषभाकृति देवता।

(५) मिश्र देश का प्राचीन नगर अब कैरो का छोटा नगर मतारिया कहलाता है। वहाँ पर सूर्य की पूजा होती थी। यहाँ प्रसिद्ध परेडा की ख्याति को सुनकर प्लेटो और अन्य दार्शनिकों ने यहाँ की यात्रा की थी।

की इन बातों मे समानता रही है। सूय का पूजन अनेक देशों मे होता था। देवताओं के नाम और उनस सम्बन्धित चीजे एक-सी लेकिन विभिन्न नामो से रही हैं। मूर्ति पूजा का आरम्भ कहाँ से हुआ, इसका अन्वेषण अनावश्यक मालूम होता है। वह यी और ससार म सवत्र फैली थी। उसका आधारहीन समझकर अनेक देशो के सुधारकों ने चेष्टा की और सफलता भी प्राप्त की। यूफ्राटिस (१) ऑक्सस अथवा गङ्गा के मैदाना म या सिनाई पहाडी प्रायद्वीप (२) या सौरद्वीप ? इस प्रकार उसके प्रारम्भ के लिए कोई भी नाम लिया जा सकता है। मूर्ति-पूजा और उसके तरीके सीरिया मे भी थे और वहीं स हिन्दुस्तान म इसका और इसक तरीकों का आगमन हुआ, इसके एतिहासिक तथ्य पाये जाते हैं। परन्तु एक ही चीज जब दो देशा म अथवा अनेक देशो म प्रचलित हो जाती है तो एक होने पर भी उसको कितनी ही बातो म भिन्नता और नवीनता आ हो जाती है।

अब हम बीरगाँव और भव-बनास म फिर लौटकर आते हैं। इस नदी का नाम करण कहाँ से हुआ और कैसे हुआ, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। यह निश्चित है कि नादू का केन्द्र दक्षिण की था, २५° पश्चिम चौबीस मील दूरी पर, यहाँ से अरावली की चोटियाँ, जिनको मैं अपने दूरदर्शक यन्त्र से देख सका था, सान्डो और रूपन गढ स सबसे ऊची दिखायी पडी। उन दोनो के बीच मे कुम्भलमेर कुछ दबा हुआ दिखाई दे रहा था। लेकिन वहाँ के निवासियो ने जाहिर किया कि सैमूर के करीब जरगावाली चोटी दिन के प्रकाश मे सभी चोटियो स ऊची दिखायी देती है। लूटमार करने वाले मीणा के कितने ही स्थान और ग्राम मुझे दिखायी पडे, जिनसे लोग अब तक भयभीत होते रहते हैं। व लोग उन पहाडो के ऐसे स्थानो में रहा करते थे, जो अरावली की शाखाओ के रूप म माने जाते हैं और भयानक जङ्गलो से ढके होने के कारण शत्रु के लिये प्रवेश असम्भव बना देते हैं।

मीणा के इन निवास स्थानो को मेवास कहा जाता है। उन लोगो क प्रमुख स्थान ऊटवण द० प० २५° पश्चिम १२ मील, कानूर द० १०° पूर्व ६ मील, राडर द० ३०° पश्चिम १० मील, रेवाडी उ० ६५° पश्चिम १२ मील है। अन्तिम स्थान का प्रधान माना जाता है। मालूम है, वह १३ मील पश्चिम म है। ऐतिहासिक लेखकों के लिए मीणों में बहुत सामग्री मिल सकती है। उनके आपसी झगडा एक दूसरे पर

(१) पश्चिमी एशिया की प्रसिद्ध नदी।

(२) सिनाइ—लाल सागर के ऊपर स्वेज और अकाबा की खाडियों के बीच मिस्र का प्रायद्वीप। बाइबिल में सिनाई पर्वत को उस प्रायद्वीप के दक्षिण में जेबेल कथरीना लिखा गया है। उसके दो शिखर हैं। उनमे एक जेबेल मूसा कहलाता है। कहा जाता है कि हजरत मूसा को ईश्वरत्व की प्रेरणा (इलहाम) इसी पर्वत पर मिली थी।

आक्रमणो और पडोसी राजपूतो के साथ होने वाले सङ्घर्षों से उनका जीवन भरा हुआ है। इस प्रकार के हमले और आपसी झगडे उनके रोजाना के हैं। आज ही मैंने इन मीणा लोगों के झगडों की जो कथा सुनी है वह अगर लिखी जाय तो एक अच्छा ग्रन्थ तैयार हो जाय।

यह झगडा—जो आज मैंने सुना—ऊटवण के मीणो और पिराई के राजपूतो के बीच में हुआ। इस प्रकार के झगडे दोनों तरफ से चलते ही रहते हैं। इन्हीं दिनो मे पिराई के राजपूतों के यहाँ कोई उत्सव था। जो राजपूत हमेशा किसी न किसी झगडे और मारकाट में रहा करते हैं और खतरों से सदा सावधान रहते हैं वे इस उत्सव के अवसर पर कैसे असावधान हो गये यह समझ में नहीं आया।

यह घटना कुछ इस प्रकार बतायी गयी। इस उत्सव मे पहले किसी मौके पर यहाँ के राजपूतों ने मेवास पर आक्रमण किया था। उनके गाँवों को जला दिया था और ऊटवण के प्रधान की माँ को कैद कर जोधपुर के करीब एक सैनिक मुकाम मे रखा था। उस कैदी स्त्री ने चाहे अपने किसी आदमी के आदेश को पाकर अथवा स्वयं अपनी इच्छा से कैद में रहने की अपेक्षा मर जाना अच्छा समझा। इसके लिये उसको साधन कहाँ से प्राप्त हुआ यह नहीं मालूम हो सका। लेकिन हुआ यह कि उसने मौका पाकर कोई विषैली चीज खा ली और आत्म हत्या कर ली।

यह समाचार ऊटवण में भी पहुँच गया। उसके लडके ने अपने आदमियो के साथ कोलूर की पहाडी पर जाकर मावल और राघवा के लोगों को एकत्रित किया। ऐसे कठिन और सङ्कट के अवसरों पर एकत्रित होने के लिये यह स्थान पहले से ही निश्चित था। वहाँ पर जमा होकर हमेशा से वे लोग आक्रमण की तैयारी किया करते थे और शत्रु से लडने के लिये शकुन देखा करते थे। अपनी तैयारी के बाद उस दिन भी उन्होंने शकुन के लिये बाण चलाया। वह निशाने पर ठीक लगा। उन्होंने अपना वह समय अनुकूल समझा। इस समय उनकी तैयारी हो चुकी थी। उत्सव के समय राजपूतों पर आक्रमण करने के लिये वे लोग रवाना हो गये।

अभी रात समाप्त होने में कुछ समय बाकी था और राजपूतों का उत्सव भी समाप्त नहीं हुआ था। किसी राजपूत को इस बात की आशंका न थी कि हम लोगों पर कोई आक्रमण करेगा। उसी असावधानी के समय आक्रमणकारियों की एक भीड ने आक्रमण किया और ऊटवण की माता का बदला लेने के लिए छियालीस राजपूतों की हत्या की गयी।

आज सवेरे दस बजे जब मैं अपने मुकाम पर गया उस समय थर्मामीटर ९६° पर था। दो बजे तक १०८ पर पहुँच गया। शाम को ५ बजे बादल आ गये और तापमान ८८° हो गया। सूर्यास्त बजे ८६° ही रह गया। बैरोमीटर इन्हीं मौकों

पर क्रमश २८°, ७१, २८°, ७३° २८°, ६५° और २८°, ७० पर रहा। छाया के समय थर्मामीटर १०८° से ऊपर नहीं गया। इस तापमान का प्रभाव मौसिम पर भी रहा। जानवर बराबर घूमते रहे। लेकिन मैं गर्मी की अधिकता को अनुभव करता रहा। जब मैं सामने के मैदानों की तरफ देखता तो मुझको सूखी रेत में आग की चिनगारियाँ उठती हुई दिखायी देती। एक तिपाई पर लटकते हुए बैरामीटर का जब मैं ठीक करने लगता तो उसके पीतल के भाग को छूने में जलन मालूम होती। इतनी गर्मी उन लोगों के लिये आसानी से सहन नहीं हो सकती, जो ठण्डे देशों के रहने वाले और ठण्डे खून वाले होते हैं। मेरे डेरे के बाहर का वायु, जो २५° अधिक गरम थी। असह्य नहीं थी। हिन्दुस्तान में रेगिस्तान की गरम हवा की अपेक्षा मुझको इङ्गलैण्ड के गर्म मौसिम में अधिक कष्ट मिला था।

यहाँ पर मैं इटली के प्रसिद्ध नगर नेपल्स के जाड़े के दिनों का उल्लेख नहीं करना चाहता, इसलिये कि वहाँ तो गर्मी का प्रभाव होते हुये भी मैं अपनी यात्रा को बराबर लिखता रहा। यहाँ पर मैं गर्मी की अधिकता की ही चर्चा करूँगा। यह गर्मी कितनी भयानक है और उसको सहन करने के लिये क्या साधन तथा उपाय हो सकते हैं, इस खोज पूर्ण कार्य को मैं उसके अवसर पर छोड़ता हूँ।

जब तापमान १०८° अथवा इससे भी कुछ कम होता है, उसी समय शरीर के रोम कूप खुल जाते हैं और लगातार पसीना आना आरम्भ हो जाता है। लेकिन वह पसीना सूखने के पहले वायु का सम्पर्क पानी के साथ ही ठंडक पहुँचाने का कार्य करता है। लेकिन तापमान की यह अवस्था एक सी नहीं रहती। प्रभातकाल तो ऐसा मालूम होता है कि पाला के से लक्षण हैं और दो-तीन घंटे के बाद सूर्य के निकल आने पर खेमे के भीतर ६०° से १००° तक और उसके बाहर खुली धूप में १३०° तक पहुँच जाता है। एक भयानक अन्तर है। इस अन्तर को मैंने किसी प्रकार सहन किया है। परन्तु जब मैं गुजरे हुए दिनों का स्मरण करता हूँ और मुझे अपने उन साथियों की याद आती है, जो इस भीषण गर्मी के कारण ही इस दुनिया से बिदा हो गये हैं। इस विषय का विवरण लिखते हुये मुझे कष्ट का अनुभव हो रहा है। हम लोग बीस थे। उनमें से दो जीवित हैं और उन दोनों में मैं ही एक ऐसा हूँ। जो अपने देश लौट जाने की आशा करता हूँ। उनके सम्बन्ध में लोगों की जानकारी के लिये यहाँ पर सूची दे रहा हूँ। मैं बड़ी पीड़ा के साथ यह लिख रहा हूँ कि जो लोग हिन्दुस्तान आते हैं, उन सबका यही हाल होता है। वह सूची इस प्रकार है—

रामगढ़—देशी बटालियन—कर्नल ब्रॉटन, मेजर रफसेज, लेफ्टीनेण्ट हिगाँट, ल० ब्रॉटन, डाक्टर लेडलॉ और लिमाण्ड, सभी स्वर्गवासी, २० वाँ अथवा मराइन रेजीमेण्ट, ल० कर्नल मक्लीन, मेजरयूल, कैप्टन मेनवारिंग, वेस्टन, पोटयूम, सालो,

ले० मनसी—मयो स्वर्गवासी। स० टौड १८३६ म आविन, आमिया के अनुवाद का लड़का पैरगन, मूत, मार्लेमू ने इस गिर गीरता करक हिन्दुस्तान छोड़ दिया था। मेरलाटन मूत, आर्टीलरी कैप्टन ग्राहम मूत।

११ जून—यहाँ हमारा आज का रास्ता नाड़ वारह मील का था, जो साफ और समतल था। बोरगांव से तीन मील चलकर हमने फिर गूगा नदी को पार किया और पशोरी अथवा पासरी पर पहुँच गये जहाँ पर आरपुर की हद पौशा बाकी था।

सात मील के फासिल पर पासलिया म एक भील वहां मिराही की एरे रियासत म हमने एक और जाति क लोगों को देखा। उनके राजा ने ब्रिटिश सरकार के सरंक्षण म आने के बाद अपने यहाँ एक चौकी कायम कर ली थी।

बोरगांव की भाँति यहाँ का भी कोई अपना महत्व नहीं है। यह बहुत दिनों तक लुटेरा का शिकार होता रहा और समय समय पर उचित और अनुचित उपाय से मूलवासी का गया था। परन्तु अब यहाँ और बोरगांव दोनों को हानि दूर कर गया थी। अब ये स्थान घोरे धीरे पनप रहे थे। आर्‌ यहाँ से द० १० पूर्व और दक्षिण २०° प० के बाद में १३ कोस अथवा पच्चीस मील पर था। भवाम के अक्षांश और माधव क्रमश द० ० पू० तथा उ० २० प० मे थे।

ऊन्टवण माचल और पासालिया के लुन्दा के कुछ नेता मुलाकात करने के लिए मेरे पास आये। बातचीत के सिलसिले मे उन लोगों ने अपनी पुरानी गलत आदतों को छोड़ देने के लिए वादा किया। ये लोग शरीर से पुष्ट और तेज होते हैं। ये लोग अपने साथ धनुष-बाण लिए रहते हैं और कमर की पेटी में कटार खोंसे रहते हैं।

मीणा लोगों की तरह अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर देवड़ राजपूत भी मुझसे मिलने के लिए आये। उनके साथ मैंने तीरंदाजी की होड़ की। सौभाग्य और संयोग से मेरा तीर देवड़ा के राजपूतों के तीरों से कुछ गज आगे निकल गया। उसके बाद एक बार फिर तीर चलाने का प्रस्ताव हुआ। लेकिन अपनी विजय को जोखिम में डालने की भूल मैंने नहीं की। देवड़ा राजपूतों की पोशाक का अन्तर केवल उनकी पगड़ी बाँधने मे ही नहीं था, बल्कि उनके बड़े बड़े पाजामे और घेरदार लपेटे हुए वस्त्रों मे भी था। चमेली के तेल में डूबी हुई जुल्फ उनके गालों पर आ गयी थी। आज सुबह के ६ बजे और दोपहर के ३ व ५ बजे थर्मामीटर क्रमश ८६° ८६ और ६६° पर था। बैरोमीटर उनके हा बजे क्रमश २८ ८०, २८° और २८ ७५ पर था। दूसरा बैरोमीटर इससे १४° नीचे था। लेकिन मैं उस पर यकीन नहीं करता था।

१२ जून—आज का रास्ता जंगली था। सम्पूर्ण रास्ते म विभिन्न प्रकार के वृक्ष थे। सात मील के बाद हम ऊन्टवण की पहाड़ी घाटियों को पार करके उस घाटी में पहुँचे, जहाँ पर देवड़ा राजपूतों की राजधानी थी। उससे एक मील आगे चलने के

बाद हमको एक पहाड़ी दुर्ग के खण्डहर मिले, जिसको उदयपुर के राणा कुम्भा ने कुम्भलमेर से मालवा के गोर वंशीय सुल्तान के द्वारा निकाले जाने पर, बनवाया था। वहाँ पर हमने सारणेश्वर मंदिर के दर्शन किये। वहाँ पर एक कुण्ड बना हुआ है। उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसका जल चर्म रोगी को सेहत करता है। हिन्दुस्तान के अन्यान्य गर्म पानी के सोतों की तरह इसका नाम भी शिव के नाम पर है। मंदिर की छत गोल और मेहराबदार है, जो खम्भों के ऊपर बनी हुई है। उसके गुम्बद का आकार-प्रकार अण्डा के रूप में है, जैसा कि इस प्रदेश में प्रायः देखने को मिलता है।

मंदिर के भीतर शिवलिंग की मूर्ति है। बाहर एक बहुत बड़ा त्रिशूल गड़ा हुआ है, वह बारह फीट ऊंचा है। कहा जाता है कि उसका निर्माण सात प्रकार की धातुओं से किया गया है। उसके दरवाजे पर दो प्रस्तर निर्मित हाथी हैं। पूरा मन्दिर एक मजबूत परकोटे से घिरा हुआ है। उसको माँडू के मुसलमान सुल्तान ने बनवाया था। कहा जाता है कि उस सुल्तान को कोढ़ का रोग था। यहाँ के कुण्ड में स्नान करके उसने उस रोग से मुक्ति पायी थी।

उस सुल्तान के कोढ़ से मुक्त होने की घटना सही है अथवा नहीं, इसके सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन किसी मंदिर की मरम्मत या उसकी भेंट कुरान तथा मोहम्मद पैगम्बर की शरियत के खिलाफ है। ऐसी हालत में उस सुल्तान ने यहाँ के मंदिर का परकोटा बनवाया था या नहीं, सही तौर पर यह नहीं कहा जा सकता।

नन्दिकेश्वर की मूर्ति असली नहीं है। उसको शिला लेख के साथ ले जाकर मेवाड़ के एक नये मंदिर में स्थापित कर दिया गया है। देवड़ा राजपूतों की समाधियाँ कुछ बातों में विशेषता रखती हैं। उनकी प्रत्येक समाधि के साथ एक शिला लेख लगा हुआ है। वर्तमान महाराव के पिता की छतरी में एक मंदिर बना हुआ है। उस मंदिर के पास ही मृतक की मूर्ति अश्वारोही रूप में है। रावराज की छतरी में और भी विशेषता है। उसमें चार सतियों के सिवा उसके राजपूत सामन्तों की एक पंक्ति भी है। सभी लोग तलवारें और ढालें लिए हुए हैं। चौहान जाति इण्डो-सेटिक जाति की ही एक शाखा है, इसका यहाँ एक स्पष्ट प्रमाण मिलता है। ये लोग बाद में ब्राह्मण हो गये थे।

देवड़ा राजपूतों की राजधानी सिरोही में मेरे आने पर अभिनन्दन मनाया गया। उस अभिनन्दन में सिरोही की श्रेष्ठ सुन्दरियों ने मेरे स्वागत में गान गाये। उस समय का सुन्दर दृश्य हिन्दुस्तान को छोड़कर मैंने अन्यत्र कहीं नहीं देखा। उनके गाना

८ ९ १६ ५ मजीरो की ताल बडी प्रिय और आकर्षक मालूम हो रही थी। ये सुन्दरियां गाना गाती हुई राव के आगे-आगे चल रही थीं। अभिनन्दन करने वालों का यह जुलूस मुझे अपने नगर मे ले जाने के लिए आया था। मैं उनके नगर में होता हुआ अपने उस डेरे में पहुँच गया, जो दक्षिण की तरफ लगभग आधा मील के फासिले पर था।

हमारी यात्रा आबू के साथ साथ चल रही थी। अब वह यहां से द० १०° पू० से द० २५° प० में था। प्रातः काल ६ बजे दोपहर को १ बजे और शाम को ६ बजे थर्मामीटर ८६° ९८°, और ९२° पर था एवम बैरोमीटर २८° ७५° २८° ७० और २८° ७५ पर था।

६ जून—सिरोही—आज सवेरे ८ बजे दोपहर को ३ बजे और शाम को ५ बजे बैरोमीटर क्रमशः २८° ७५, २८° ७५ और २८ ७० पर था जब कि थर्मामीटर ८४° ९५° ९२° और ९२° जाहिर करता था। दोपहर के बाद मुझको यहाँ पर कुछ ठडक मिल सकी। इस रियासत के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त करने के लिए एक दिन ठहरा। यह रियासत बहुत छोटी है। लेकिन इसकी प्रसिद्धि राजपूताना की किसी भी रियासत से कम नहीं है। जहां तक मैं जानता हूँ इस रियासत को कुछ विशेष अधिकार मिले हुए हैं। इसलिए कि १८१७ १८ ईसवी की पूरी शान्ति के पश्चात् इसके समस्त राजनीतिक अधिकार मेरी अधीनता में रहे हैं। मैंने अपनी पूरी शक्ति लगाकर मारवाड से इसकी राजनीतिक स्वतन्त्रता की रक्षा की थी। मारवाड के नरेश ने इसको अपने अधीन बनाये रखने के लिए न जाने कितने बहाने तैयार किये थे। जो अधिकारी मारवाड और ब्रिटिश सरकार के बीच मे मध्यस्थ थे उनको समझा बुझाकर विभिन्न प्रकार की दलीलो और तहरीरो के द्वारा यह साबित करने की पूरी कोशिश की गयी थी कि सिरोही मारवाड राज्य का एक अंग है। अपने इस प्रकार के पुष्ट प्रमाणो के द्वारा गवर्नर-जनरल मार्कुइस हेस्टिंग्स की मंजूरी भी प्राप्त कर ली गयी थी। लेकिन मैं समझता था कि इन दलीलो और तहरीरो मे केवल राजनीतिक चालें हैं। मैंने उस समय तक न जाने कितने राज्यो और रियासतो के बीच के झगडो को ईमानदारी के साथ तय कराने मे सफलता पायी थी। सिरोही के मामले मे भी मैं मारवाड का अन्याय समझता था। सारे अधिकारियो का मत एक तरफ था मेरा निर्णय दूसरी तरफ था। मैं सिरोही की समस्या भी न्याय के साथ सुलझाना चहता था। अन्त मे मुझे सफलता मिली और मैं देवडो की रियासत को शक्तिशाली विरोधियो के चंगुल से बचा सका।

सिरोही की समस्या बडी उलझन से भरी हुई थी। जोधपुर के अधिकारी राजा अभयसिंह के समय से सिरोही के रावो से कर और नौकरी लेने का अधिकार साबित करते थे। मैंने इसको सही सही समझने की कोशिश की और मुझे उन्ही के

इतिहास मे इसके विपरीत प्रमाण मिले, जिनमे साफ जाहिर होता था कि सिरोही रियासत के अधिकारियों ने जोधपुर के राजाओं की नौकरी की है। परन्तु यह मारवाड़ के राजा के लिए नहीं थी, बल्कि साम्राज्य के प्रतिनिधि के लिए थी। इसके सिवा गुजरात के युद्धो मे जब देवड़ा राजपूत लड़ाई पर गये थे, उस समय अभयसिंह का नेतृत्व उन लोगो ने स्वीकार किया था।

इस प्रकार के राजनीतिक और ऐतिहासिक प्रमाण थे, जो सिरोही रियासत की स्वतन्त्रता का समर्थन करते थे। मारवाड़ के अधिकारियो का यह भी कहना था कि सिरोही के प्रमुख और प्रधान सरदार नीमाज के ठाकुर ने जोधपुर की नौकरी की थी। इस प्रमाण को काटने के लिए यह दलील काफी थी कि सभी रियासतों मे कुछ न कुछ देशद्रोही और अवसरवादी लोग सदा से रहे है। सिरोही मे भी ऐसे लोग थे, जो सिरोही की मर्यादा के विरुद्ध काम करते थे और उन दिनों में सिरोही की शक्तियाँ इतनी कमजोर पड़ गयी थी कि उसकी तरफ से ऐसे लोगों को दबाने और रोकने की व्यवस्था नहीं की जा सकती थी। इसलिए किसी सरदार में ऐसा करने से उसकी जुम्मेदारी सिरोही रियासत पर नहीं आती थी।

इस सिलसिले में एक बात और भी थी। नीमाज मारवाड़ की सीमा पर था। इसलिये उसके लिये यह आवश्यक था कि उचित और अनुचित किसी भी तरीके से वह मारवाड़ को अप्रसन्न होने का मौका न दे। सिरोही की शक्तियाँ क्षीण हो चुकी थी। अपने सामन्तो और सरदारों पर भी उसका प्रभाव काम नहीं करता था। ऐसी हालत मे जो लोग अवसरवादी होते हैं, वे सभी प्रकार का लाभ उठाने की कोशिश करते हैं। नीमाज के समझदार और अवसरवादी ठाकुर ने जोधपुर की प्रबल शक्तियों की चापलूसी करके लाभ उठाने की कोशिश की। पहले भी सरदारो मे उसका स्थान ऊंचा था। वह इस मौके पर लाभ उठाकर और मिल मिलाकर अपना स्थान और पद से भी अधिक ऊंचा बना लेना चाहता था।

ऊँचा पद प्राप्त करने की अपनी अभिलाषा मे नीमाज के ठाकुर के सामने एक ही रास्ता था कि वह हर तरीके से जोधपुर नरेश को प्रसन्न करने की कोशिश करे। उसकी अभिलाषा इसी मे पूरी हो सकती थी। उस हालत मे जोधपुर ने जो कुछ चाहा, उस अवसरवादी ठाकुर ने उसे पूरा किया। मारवाड़ ने उस ठाकुर का फायदा उठाया। लेकिन सिरोही को अपने अधिकार मे बनाये रखने के लिए इतना ही काफी नहीं था कि नीमाज का ठाकुर उनके यहाँ नौकरी देता है। मारवाड़ का राजनीतिक पहलू सिरोही से कर वसूल करने मे था।

सिरोही मारवाड़ के अधिकार मे नहीं था और न वह कर देता था। इसलिए मारवाड़ की तरफ से अत्याचार, अनाचार और छुटपुट-हमले किये गये। ऐसा करके

जबरदस्ती जो वसूल किया लूट मार करके उसकी एक सूची कर वसूल करने के सम्बन्ध में तैयार की। इस मौके पर मारवाड़ के प्रतिनिधि ने उस सूची को सामने लाकर इस बात को साबित करने की कोशिश भी की कि सिरोही से मारवाड़ कर वसूल किया करता था। परन्तु कर वसूल करने के सम्बन्ध में यह सूची काफी नहीं थी। उसको देखकर साफ जाहिर होता था कि यह सूची कर वसूल करने की नहीं है। मारवाड़ के अधिकारियों के सिवा उस सूची में कहीं पर भी सिरोही की तरफ से किसी के हस्ताक्षर नहीं थे। इस कर वसूली के सम्बन्ध में मारवाड़ की ओर से कोई भी ऐसा कागज सामने नहीं लाया गया, जो सही साबित होता और न किसी कागज अथवा तहरीर में सिरोही के किसी अधिकारी के हस्ताक्षर थे, जो कर देने की स्वीकृति को प्रमाणित करते। राज्य और रियासत के बीच में होने वाला कोई भी इकरारनामा भी देखने को नहीं मिला और न कोई प्रमाण इस विषय में पेश किया गया कि मारवाड़ को सिरोही पर आक्रमण करने की आवश्यकता क्यों पड़ी। प्रत्येक अवस्था में यह प्रमाणित होता था कि मारवाड़ के इन हमलों का कारण सिरोही की कमजोरी थी और जो कर वसूल किया हुआ दिखाया गया, वह सिरोही में की गयी लूट-मार का धन था। किसी प्रकार यह साबित नहीं हो सका कि सिरोही की रियासत मारवाड़ के अधिकार में रही है।

मारवाड़ की ओर से एक कागज ऐसा अवश्य पेश किया गया, जिसमें सिरोही के वर्तमान राव के बड़े भाई के हस्ताक्षर थे। अपनी किसी परिस्थिति और बेबसी में पकड़कर बड़े राव ने जोधपुर की अधीनता को स्वीकार करने के लिए हस्ताक्षर किये थे। परन्तु उस परिस्थिति और बेबसी को छिपाया गया। घटना यह थी कि बड़े राव अपने पिता की भस्म गंगा में प्रवाहित करने को लिये जा रहे थे, उसी मौके पर वे कैद कर लिये गये और उनसे अधीनता स्वीकार करने के लिए यह तहरीर लिखा ली गयी। देवड़ा के राजपूत सरदार इस तहरीर का आशय और सही नहीं मानते थे। मेरी समझ में भी जो तहरीर किसी बेबसी में करायी गयी है, वह रद्दी के सिवा और क्या हो सकती है। न्याय के सामने उसका कोई महत्व नहीं हो सकता। वास्तव में अपनी इच्छा से सिरोही के अधिकारियों ने एक पैसा भी जोधपुर को कभी अदा नहीं किया।

मारवाड़ की पेश की गयी जब सभी दलीलें बेकार साबित हो गयीं तो एक नयी चीज पेश की गयी। उसमें कुछ जान जरूर मालूम पड़ती थी। सिरोही की रियासत बहुत कमजोर पड़ गयी थी और उसमें यह क्षमता नहीं रह गयी थी वह लुटेरों का सामना कर सके और उनके अपराधों का दण्ड दे सके। इस दशा में लुटेरों के जो हमले सिरोही में होते थे, उनसे जोधपुर को नुकसान पहुँचता था। इसलिए

जोधपुर को यह अधिकार होना चाहिए कि वह सिरोही की रक्षा के लिए लुटेरा का दमन कर सके।

जोधपुर के प्रतिनिधि ने अपनी माग को प्रमाणित करते हुए एक हाल की घटना पेश की। उसमें बताया गया कि ऊटवण और माचल के लोगो ने मारवाड की सीमा पर हमले किये और भयानक रूप से लूटमार करके जान माल का नुकसान पहुँचाया। इस घटना को बडी बुद्धिमनी के साथ सामने रखा गया, उसका मध्यस्थ लोगो पर प्रभाव भी पडा।

लेकिन इस घटना को स्पष्ट करते हुए दूसरे पक्ष की तरफ से कहा गया कि जोधपुर के विरुद्ध किये गये हमले में केवल मीणा का ही अपराध था। सही बात यह है कि वे मीणा लोग जोधपुर के थे और मारवाड की ओर से उन लोगो को उकसाया गया था। उनकी उत्तेजना का कारण था, जिसके सम्बन्ध मे हमले का उत्तरदायित्व मारवाड पर ही आता है।

इसके बाद ही सिरोही के प्रतिनिधि ने बडे साहस के साथ प्रश्न किया। यदि हमारे मीणों के हमलो से—जिनको रोक सकने की क्षमता आज हममे नही है—जोधपुर की फौज हमारी सीमा के भीतर प्रवेश करती है और हमारी सीमा के अन्तर्गत अपनी चौकियाँ कायम करती है, जैसा कि किया भी गया है तो जोधपुर की पहाडी जातियों से पडोसियो को जो नुकसान लगातार पहुँच रहा है, उसका उत्तर मारवाड के पास क्या है? यदि हमारे मीणो के हमलो के अपराध में हमको मारवाड की अधीनता स्वीकार करने के लिये विवश किया जा सकता है, तो मारवाड की पहाडी जङ्गली जातियो के आक्रमण करने के अपराध मे मारवाड के सम्बन्ध मे क्या होना चाहिए? मारवाड और जोधपुर के पास इस प्रश्न का क्या उत्तर है?

मारवाड की तरफ से सभी प्रमाण बडी बुद्धिमानी के साथ रखे गये थे। लेकिन सच्चाई न होने के कारण उनके धराशायी होने में देर न लगी। मैं मारवाड की राजनीति को भली भाँति समझ रहा था। मैं जानता था कि मारवाड के अधिकारी सिरोही की स्वाधीनता के साथ खिलवाड कर रहे हैं। इसे अन्याय समझकर मैंने सिरोही की स्वतन्त्रता को सुरक्षित बनाने मे पूरी शक्ति से काम लिया और इस कार्य में भी मुझको सफलता मिली। इस ईमानदारी और सच्चाई के बदले मुझे जोधपुर के राजा और उसके चापलूस मुसाहिबों की घृणा का शिकार होना पडा। देवडा राजपूत मेरे इन कार्य से सन्तुष्ट हुए, उन्होंने कृतज्ञता प्रकट की। लेकिन शत्रुओं का भूत उनके दिमाग में बना रहा और इसके कारण भी थे। उनकी भूमि और सीमा का विभाजन नहीं हुआ था।

गवर्नर जनरल मार्क्विस हेस्टिंग्स का इरादा था कि राज्यों और रियासतों के

सभी आपसी झगड़ों को शान्त कर दिया जाय। उनकी इस अभिलाषा में जोधपुर के राजा के होने वाले अपमान का प्रतिकार भरा हुआ था। वह देवड़ा राजपूतों पर जो आधिपत्य कायम करना चाहता था, उसमें उसको सफलता नहीं मिली। इसलिये इस्तिगासे का इरादा किसी प्रकार उसको शान्ति और सन्तोष देने का था।

मैंने गवर्नर जनरल के मन्सूबे को भली भाँति समझ लिया था अतएव एक सुझाव देते हुए मैंने कहा कि इसके लिये एक आसान तरीका है और वह यह कि जोधपुर के राजा से पिछले दस वर्षों की वसूली का हिसाब तलब कर लिया जाय और उसका एक निश्चित रकम उसको ब्रिटिश सरकार से बराबर मिलता रहे।

मेरा यह सुझाव जोधपुर के राजा के अधिकारों को भविष्य में अरक्षित बनाने का काम कर रहा था। न्याय की इस कसौटी पर कसे जाने के लिये वह राजा तैयार नहीं हुआ। यद्यपि मैंने अपना यह सुझाव जाहिरा तौर पर उसके पक्ष में उपस्थित किया था। लेकिन यह तो उसी दशा में सम्भव हो सकता था, जब उसके साथ कुछ भी ईमानदारी होती। सच्चाई तो उसमें कुछ थी नहीं। इसलिये उसको अपने चारों तरफ खाई दिखायी दे रही थी।

मैंने अपना यह सुझाव अपनी सरकार के सामने रखा। मेरा अभिप्राय यह था कि ऐसा होने से सिरोही पर किसी प्रकार का आर्थिक बोझ नहीं आता और न उसकी स्वाधीनता को किसी प्रकार आघात पहुँचता है। इससे राज्य और रियासत—दोनों की सुरक्षा होती है। मेरे सुझाव का अमली जामा पहनाया गया। लेकिन जोधपुर का राजा मान नियमित रूप से वसूली का कोई हिसाब नहीं दे सका। उसका कारण यह था कि उसने सिरोही में कभी कर तो वसूल किया नहीं था। आवश्यकता पड़ने पर झगड़े और फसाद करके जबरदस्ती कुछ वसूल कर लेते थे। ब्रिटिश अधिकारी इस बात से डर रहे थे कि आगे चलकर इन दोनों के बीच फिर कोई संघर्ष पैदा न हो जाय। इसलिये दोनों के मध्य एक सन्धि की गयी और एक निश्चित रकम जोधपुर का वार्षिक सिरोही से दिलाकर हमेशा के लिये झगड़ा शान्त कर दिया गया। सिरोही अब अपने सभी मामलों में स्वतन्त्र है और उस समय से वह ब्रिटिश सरकार की अधीनता में है।

उस सन्धि के बाद सिरोही की हालत बदलने लगी। वहाँ के युवक राव ने अपने कर्त्तव्यों का पालन किया। अपराध और आक्रमण करने में मीणा जाति का रोक दिया गया है। सम्पूर्ण रियासत में सुरक्षा के लिये चौकियाँ कायम की गयी हैं। किसानों, गृहस्थों और व्यापारियों को अभय पत्र देकर विश्वास करा दिया गया है कि उनको अब किसी भी खतरे से बेफिक्र हो जाना चाहिए। पूरी रियासत जो उजाड़ हो रही थी, फिर से आबाद हुई। लुटेरे और आक्रमणकारियों के भय से जो किसान घर छोड़कर भाग गये थे उन्होंने निर्भय होकर खेती करना आरम्भ किया। जो व्यापारी सिरोही

रियासत मे व्यापार करना चोरो के घरो मे अपनी धरोहर रखना समझते थे, उन्होंने व्यापार आरम्भ कर दिया। रियासत मे दूकानदारों का पता नही था, अब वहाँ पर दूकानें खुल गयी हैं और जो मीणे लोग गिरोह बनाकर लूट मार किया करते थे, वे सब भले आदमी बनकर सबके बीच मे आते जाते और अपना काम करते हैं।

इस प्रकार छोटे और बडे कार्य न जाने कितने मैंने यहाँ पर किये हैं। सिरोही की तरह का एक भीषण सङ्कट भीलवाडा मे भी था। उसका वर्णन मैं राजस्थान के इतिहास मे कर चुका हूँ। देवडा राजपूतो और पहाडी जाति के मीणा लोगों के चरित्र बहुत भयानक थे। ये मीणा जो उस सन्धि के बाद मनुष्य बन गये, पहले चीतो के समान खतरनाक थे। उनके आतङ्क चारो तरफ फैले हुए थे। वे न तो स्वयं सुखी थे और न दूसरो को वे सुख शान्ति से रहने देते थे। इन जङ्गली जातियों को कैसे मनुष्य बनाया गया, इसे देखकर लोग आश्चर्य करेंगे। जो लोग मनुष्य जाति के हितैषी हैं, मैं उनको अपना एक परामर्श देना चाहता हूँ कि जो जातियाँ किसी प्रकार हमारे सरक्षण में आ जावें, उनके सुधार-काम मे हमको बहुत धैर्य और सहनशीलता से काम लेना चाहिए। किसी के विद्रोह करने पर भी बुद्धि से काम लेने की आवश्यकता होती है। उचित और अनुचित का ज्ञान हमको बुद्धि के द्वारा ही होता है। यदि उसका प्रयोग न किया जाय तो फिर मनुष्य और पशु मे क्या अन्तर रह जाता है।

विद्रोही को दण्ड दिया जाना चाहिये। लेकिन उसके सुधार की दृष्टिकोण से। यदि ऐसा न किया गया तो विद्रोह शान्त होने की अपेक्षा प्रज्वलित भी हो सकता है और उसको शान्त करना उसी दशा मे सम्भव हो सकता है जब समझ से और दूरदेशी से काम लिया जाय।

मैं इसे स्वीकार करता हूँ कि जो प्रान्त और प्रदेश ब्रिटेन के अधिकार मे आये हैं, उनको नियन्त्रण में रखने के लिये दण्ड देने की जो व्यवस्था की गयी है, उसमे बुद्धि की अपेक्षा बर्बरता से अधिक काम लिया गया है। हमे यह कभी न भूलना चाहिए कि न्याय को भूल जाने वाला कभी भी सफल शासक नहीं हो सकता। जो सबल और शक्तिशाली होता है, उसको न्याय और सहानुभूति से काम लेना पडता है। शासन करने वाली जातियाँ यह भूल जाती है कि मनुष्य मे कर्त्तव्य-पालन का ज्ञान स्वाभाविक रूप से नहीं होता। उसकी प्रवृत्तियाँ उसको उसके विरुद्ध आचरण के लिये मजबूर कर देती हैं। ऐसी दशा मे बडी समझदारी से काम लेना पडता है।

तलवार के बल पर चलने वाला शासक स्थायी नहीं होता। लेकिन इस सत्य का ज्ञान शासको मे रह नही जाता। गवर्नर जनरल से लेकर छोटे से छोटे सरकारी कर्मचारी भी शासन करते हुए तलवार का ही प्रयोग करना चाहते हैं। इन अपराधों का जो सही सही नही समझते, वे सारा अपराध उस पर मढ़ते हैं, जो वास्तव में अपराधी नही होता। कितने लोग इस बात को जानते हैं कि अधिकारियो के इन अपराधों

मे हमारी इङ्गलैण्ड की सरकार का हाथ नही है। वह प्रजा का अनिष्ट नही चाहती। लेकिन उसके कानूनो को अमल मे लाना तो उन अधिकारियो का काम होता है जिनको जुम्मेदारी दी जाती है।

शासन के मूल मे और उसके अधिकारियो मे एक बडा अन्तर रहा करता है। प्रत्येक अधिकारी छोटा और बडा अपने कार्यों की सफलता दिखाकर सरकार से प्रशसा प्राप्त करने के लिए बेचैन रहा करता है। और सरकार भी ऐसे अधिकारियो की सफलता को देखकर प्रसन्न होती है। इन परिस्थितियो मे सरकार की वही अवस्था होती है, जो अवस्था उस परिवार की होती है, जिसका कोई बेटा, भतीजा अथवा कोई व्यक्ति जायज और नजायज—किसी भी तरीके से नौकरी के द्वारा धन पैदा करके लाता है और उस धन को पाकर परिवार के लोग उसकी प्रशसा करते हैं, वे नही जानते की इस धन के प्राप्त करने मे उसको कितना अधिक अन्याय एवम् पाप करना पडा है।

शासन की बागडोर जिनके हाथो मे होती है अपराधी वास्तव मे वे ही होते हैं। शासन की व्यवस्था करते हुए लोग न्याय और अन्याय बहुत कम देखते हैं और जब कभी उनके कार्य सचालन मे किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न होती है तो उसका विनाश कर दिया जाता है। लकिन ऐसा नही होना चाहिए और न हमारी सरकार का यह उद्देश्य है।

किसी जाति अथवा देश के विजय करने मे विजेता की एक क्रमबद्ध योजना होती है। उसके अनुसार विजित लोगो मे उस योजना का प्रचार और प्रसार किया जाता है। वह योजना किसी भी विजित जाति और देश को राजनीतिक दासता से मुक्ति दिलाने की तरफ ले जाने का काम करती है। शासन मे आज बहुतो ने हमको अपने जीवन का एक लक्ष्य मान लिया है। लेकिन मानव जाति का हित इस प्रकार के शासन के द्वारा आसानी के साथ नही पनपता। उसके साधनो मे योग्यता के स्थान पर अयोग्यता का ही अधिक प्रयोग होता है।

प्रजा पर जब करो का बोझ इतना बढ जाता है कि उससे उनकी गरीबी लगातार बढती जाती है तो हम यह कहने का साहस किसी भी दशा मे नही कर सकते कि हमारे शासन का बोझ अधिक और असह्य नही है। इस दशा मे कोई कुछ कहे हम तो स्पष्ट रूप से यह कह देना चाहते है कि हमारी सरकार के द्वारा प्रजा से वसूल करने के लिए जो कर लगाये जाते हैं, वे प्रजा के आर्थिक ढाँचे को उठाने के लिए नहीं, बल्कि सरकारी खजाने भरने के लिए लगाये जाते हैं। आज अर्से से भारत हमारी सरकार के सम्पर्क में है और इन दिनो मे जो कुछ यहाँ पर सरकार की तरफ से किया गया है वह किसी से छिपा नहीं है। ईमानदारी के साथ यहाँ की पहले की परिस्थि-

तिया का आज के जीवन के साथ मुकाबिला किया जाय तो जो अन्तर सामने आता है, उस पर धूल नहीं डाली जा सकती।

इस देश में जिन भागों का संरक्षण हमारे द्वारा हो रहा है, उनका सामाजिक विकास आज किसी से छिपा नहीं है। रोम ने जो राष्ट्रों की जननी है—योरप के दूरवर्ती प्रदेशों को जीतकर अच्छी आबादी कायम की, लोगों के जीवन को विकसित करने की चेष्टा की, जिन प्रान्तों और प्रदेशों को जीता, उन्हें अपनी सरकार में शामिल किया और उनको गौरव प्रदान करने के लिए अनेक प्रकार के साधनों की व्यवस्था की। शिक्षा का विस्तार किया, व्यवसाय की वृद्धि की और उनमें एक अच्छा जीवन पैदा किया। इन सभी बातों ने योरप में रोम के अच्छे शासन का प्रमाण दिया। एक अच्छे शासक को ऐसा करना चाहिए। ब्रिटेन ने प्रजा के हित में क्या इस प्रकार किया है और यदि नहीं किया तो उसमें जिम्मेदारी किसकी है?

हम ऊपर लिख चुके हैं कि शासकों और शासितों के अधिकारियों में प्रायः एक बड़ा अन्तर पाया जाता है। हमारी सरकार की भावना भारत की प्रजा को सुखी और सम्पन्न बनाने की है। लेकिन उसकी यह भावना उसी दशा में सफल हो सकती है, जब हम लोग उसी भावना से काम लेंगे। हमारे आने के पहले इस देश की सामाजिक और राजनीतिक किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं थी। यहाँ के लोग आपस में लूटमार करते थे। एक जोरदार, कमजोर का खून चूसा करता था और देश की इस अवस्था में बाहर की जातियों ने आकर जिस प्रकार लूटमार की थी, वह परिस्थिति किसी से छिपी नहीं है। मराठों के हमलों से और उनकी लूट से राजस्थान भयानक रूप से वीरान हो चुका था। उन्हीं दिनों में इङ्गलैण्ड के अंग्रेजों का यहाँ आगमन हुआ और सरकार के अधिकारियों ने यहाँ की सुरक्षा कायम करने की कोशिश की लेकिन जो कुछ किया गया, उतना सब काफी है?

इस देश का शासन प्राप्त करने में तलवार को महत्व दिया जाता है। उसके सम्बन्ध में मैं यहाँ पर एक उदाहरण देना आवश्यक समझता हूँ। इस देश की प्रजा में जो कानून हम चलाने की चेष्टा करते हैं, उनकी रचना इङ्गलैण्ड में हुई है। वहाँ के रहने वाले अंग्रेजों को यहाँ के निवासियों का अधिक अनुभव नहीं है। जब तक देश की प्रजा का अनुभव नहीं होता, उसकी आवश्यकताओं का ज्ञान नहीं होता, उस समय तक कोई भी शासक प्रजा के साथ अच्छी भावना रखते हुए भी अपने ऐसे कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता, जिसमें राजा और प्रजा दोनों का हित हो।

इङ्गलैण्ड से जो लोग गवर्नर होकर इस देश में आते हैं, उनको एक ऐसी नयी दुनियाँ का सामना करना पड़ता है जिसकी भाषा, बोली, आवश्यकता और रहन सहन—सभी से वे अपरिचित होते हैं और इससे भी अधिक अनजान वहाँ की प्रजा अपनी सरकार और अधिकारियों से होती है। दोनों के बीच एक सामञ्जस्य और समन्वय कायम

करने के लिए कुछ समय की आवश्यकता पड़ती है। उस समय के पहले ही वे गवर्नर वापस चले जाते हैं और उनके स्थान पर दूसरे आ जाते हैं।

भारत जैसे महान और विशाल देश के जन समूह के लिए ऐसे कानून बनाना, जो यहाँ की अव्यवस्था को बदलने में सफल हो सके, यह कार्य साधारण नहीं है। इस देश में भी अनेक प्रान्त और प्रदेश हैं, उनकी बोली और वाणी एक दूसरे से भिन्न है। उनकी प्रवृत्तियाँ भी प्रायः एक दूसरे के विरोध का काम करती हैं। इस दशा में और देश की इन परिस्थितियों में प्रजा का हित करने में आसानी से सफलता नहीं मिल सकती। यहाँ की वर्तमान व्यवस्था में बहुत परिवर्तन की आवश्यकता है। जो राज्य हमारे संरक्षण में आ चुके हैं, उनके साथ सन्धियाँ करके हम अपने अच्छे व्यवहार कायम कर सकते हैं और उनके बिगड़े हुए रास्ते को अच्छा बना सकते हैं।

यहाँ के राज्यों में भी बड़ी भिन्नता है। एक होने पर भी उनमें परस्पर सद्भावना और शुभचिंतना नहीं है। इसलिए एक बड़ा भारी कार्य यह है कि किसी स्थायी व्यवस्था के द्वारा इन राज्यों की आपसी प्रतिकूलता दूर की जाय और उनको एक रूप रेखा में लाने की कोशिश की जाय। ऐसा किया जा सकता है लेकिन उसमें शासन के साथ-साथ सद्भावना की अधिक आवश्यकता है। (१)

---

(१) मैंने अपने इन विचारों को बहुत पहले लेख के रूप में तैयार कर लिया था। उसके बाद मुझे मिस्टर मैकान के उस भाषण को पढ़ने का संयोग और सौभाग्य प्राप्त हुआ, जो भारत की समस्या पर दिखाया था। मकान ने अपने उस भाषण में उन अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला था, जिन पर मैं स्वयं अपने विचारों को जाहिर कर चुका था और उनकी पाण्डुलिपि तैयार करके छापने के लिए प्रेस में भेजने वाला था। वे विचार इस प्रकार हैं—जहाँ तक मैं समझता हूँ किसी दूसरे देश को कानूनों की इतनी अधिक आवश्यकता नहीं है, जितनी कि भारत को। यहाँ के न्यायकर्ताओं को सबसे पहले यह समझने की जरूरत है कि यहाँ पर किन कानूनों को लागू करना है और यहाँ की प्रजा को यह समझ लेने की आवश्यकता है कि उसको किन कानूनों की अधीनता में रहना है। मैं पूरे तौर पर समझता हूँ कि यहाँ के विभिन्न नियमों और कायदों को मिलाकर एक करने में और उन्हें सबके लिए हितकर बनाने में इस दशा में सफलता मिल सकती है जब कि उस एकीकरण के द्वारा किसी भी जाति और धर्म को आघात न पहुँचाया जाय। यह एक बहुत बड़ी आवश्यकता है। सबसे पहले अपने इस उद्देश्य को समझ लेने की जरूरत है। हम किसी जाति और धर्म को आघात पहुँचा कर कोई बड़ा कार्य नहीं कर सकते। यह बात सही है कि हम कोई नई योजना किसी पर जबरदस्ती लादना नहीं चाहते और न हम किसी को ठेस पहुँचाना चाहते हैं। सब की भलाई को सामने रखकर हमको कानून बनाने और उनको बढ़ने की जरूरत है।

अब हम देवडा रियासत के विषय में कुछ लिखना चाहते हैं। यह रियासत हमारे किसी साधारण अङ्ग्रेजी प्रान्त से बड़ी नहीं है। इसकी लम्बाई सत्तर मील और चौडाई पचास मील है। इसकी जमीन का एक बड़ा भाग पहाड़ी है और जो हिस्सा बराबर जमीन का है। यह रेगिस्तान का किनारा पडता है (१) और वह किसी कदर रेतीला भी है। रियासत के पहाड़ी हिस्से में कितनी ही उपजाऊ घाटियाँ हैं। रेतीले और समतल जमीन में मक्का, गहूँ और जौ अधिक पैदा होता है।

इसके सभी झरने अरावली और आबू पहाड से निकले हैं। इन झरनों के द्वारा रियासत कई भागों में बट जाती है। इसकी सीमा नक्शा देखने से साफ साफ समझ में आती है—पूर्व में अरावली पहाड है, उत्तर और पश्चिम में मारवाड के पश्चिमी जिले गोडवाडा और जालोर हैं। पश्चिम की तरफ पालनपुर की रियासत है। यह रियासत अब ब्रिटिश सरकार के अधिकार में है।

बादशाहत के दिनों में जब गुजरात सबसे अधिक सम्पन्न तथा धनी सूबा में गिना जाता था, उन दिनों में सिरोही का अपना एक अलग से महत्व था। इसलिए कि समुद्री किनारे के भागों से राजधानी और भारत के दूसरे बड़े बड़े नगरों में जाने वाले व्यापारी लोगों के काफिले इसी सिरोही में ठहरा करते थे। यही कारण है कि हरबट, (२) ऑलिरियस, (३) डेलावेले वर्नियर, (४) और थीवनॉट आदि सभी यात्रियों ने अपनी यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकों में सिरोही के वर्णन किये हैं। इन यात्रियों में किसी ने

---

(१) ऐसा मालूम होता है कि सिरोही रियासत का नाम उसकी भौगोलिक स्थिति के अनुसार रखा गया है। सिर अर्थात् ऊपरी भाग और रोही अर्थात् जङ्गल इस प्रकार बना सिरोही।

(२) यार्क निवासी सर थामस हर्बट ने सन् १६२६ से १६२६ तक पूर्वी देशों की यात्रा की थी जिसका वर्णन उसने "सम ईयर्स ट्रैवल्स इन्टु एशिया एण्ड अफ्रीका' नामक अपनी पुस्तक में किया है और उसकी वह पुस्तक सन् १६३४ ईसवी में प्रकाशित हुई थी। पूर्वी देशों की यात्रा सम्बन्धी पुस्तकों में यह पुस्तक अत्यन्त श्रेष्ठ मानी जाती है।

(३) एडम ऑलिरियस जर्मनी में 'ड्यूक आफ हाल्स्न" का पुस्तकाध्यक्ष था, इसके पश्चात् उसने कई सरकारी पदों पर रहकर काम किया।

(४) पीटर डेलावेले वर्नियर नामक यात्री इटली का रहने वाला था। सन् १६२३-२४ में उसने बादशाह जहाँगीर के समय हिन्दुस्तान की यात्रा की थी। उसका पश्चिमी भारत की यात्रा का वर्णन बहुत अच्छा है। उसके जीवन चरित्र के साथ, उसकी यात्रा का वर्णन एडवर्ड ग्रे ने दो भागों में प्रकाशित किया था और वह प्रकाशन लन्दन से १८६२ ईसवी में हुआ था।

भी राजपूतों का वर्णन करते हुए किसी प्रकार की प्रशंसा नहीं की। ऐसा मालूम होता है कि उन दिनों में लूटमार की सभी आदतें इन राजपूतों ने अपने मातहत मीणा लोगों से सीख ली था और उनके उस समय के इन आचरणों का किसी यात्री पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। उस समय में राजपूत ऐसा क्यों करते थे, इसको समझने और खोजने की उन यात्रियों ने चेष्टा नहीं की। हुआ यह कि जो कुछ उनके सामने आया और जो कुछ उनको सुनने तथा जानने को मिला, उसी को सत्य समझकर उन लोगों ने अपनी यात्राओं के वर्णन में लिखा।

वह जमाना मुगल बादशाहों का था। बादशाह के कार्यकर्ता और अधिकारी लोग अनियन्त्रित रहकर लोगों से धन वसूल करने का काम करते रहते थे। इस प्रकार के अत्याचार मारवाड़ के उन राजाओं की तरफ से भी कम नहीं हुए थे, जिन्होंने बादशाह की मातहती मंजूर कर ली थी और जो रियासतें उनसे कमजोर थीं, उनको वे लूटा करते थे। इस प्रकार के कितने ही कारणों से वहाँ की रियासतों का सही तौर पर विकास नहीं हो सका।

इस रियासत के स्थानीय महत्व का कारण था। आबू पर्वत का संरक्षण यहाँ के राजा के अधिकार में था। उस पर्वत पर जो मन्दिर थे उनमें भारत के सभी स्थानों से जैन धर्मावलम्बी आया करते थे। उन मन्दिरों में जाने का प्रयास इन यात्रियों में किसी ने नहीं किया। यह एक आश्चर्य की बात है। यह सम्भव नहीं है कि उन मन्दिरों की प्रसिद्धि से वे जानकार न हुए हों। इन विख्यात स्थानों की अवहेलना करना किसी अच्छे यात्री का काम नहीं है और इस प्रकार के विवरण का अभाव यात्रा का एक बड़ा अभाव होता है। फ्रांसिस बर्नियर एक प्रसिद्ध अङ्गरेज यात्री था। सन् १६५६ से १६६८ ईसवी तक उसने मुगल दरबार में रहकर वह एक चिकित्सक की हैसियत से मरीजों का इलाज करता रहा। यात्रा-सम्बन्धी उसके दो ग्रन्थ प्रकाशित हुए—'ट्रैवेल्स इन दि मुगल इम्पायर' (१६५६—१६६६) और 'बर्नियर ट्रैवेल्स'।'

इसी प्रकार जीन डी थीवनॉट भी प्रसिद्ध यात्री था। १६३३ ईसवी में वह पेरिस में पैदा हुआ था। वह भूगोल और भौतिक विज्ञान के अध्ययन का अधिक प्रेमी था। उसने अनेक स्थानों की यात्रा की थी। जहाँ पर वह गया था, उनके सभी प्रकार के विवरण उसने लिखे हैं। ३४ वर्ष की अवस्था में ही उसकी मृत्यु हो गयी। मरने के पहले बारह दिन पहले तक वह अपनी यात्रा के विवरण लिखता रहा। उसके इन लेखों को टॉवर करके उसके दो मित्रों ने प्रकाशित कराया था।

दूसरे दिन उस रियासत में ठहर कर मैंने राव से मुलाकात की और भेंटों का आदान प्रदान किया। इस मौके पर राव के सभी सरदार एकत्रित थे। राजा के सम्मान में इस प्रकार महत्वपूर्ण मसनद सजाकर पहले कभी नहीं हुआ था। मालिक राव के बदले के तालमेल में किस प्रकार का मामला की कमी थी उसको समझकर मैंने

अपनी सरकार की तरफ से नजराना पेश किया। ऐसा करने मे हमे अधिक खर्च नहीं करना पडा। इसलिए कि जवाहिरात और कीमती पोशाकें तो मुझे मेवाड के राणा जी के यहा से भेटो मे मिली था। उनके सिवा, कीमती साज से सजा हुआ एक हाथी, एक घोडा, जवाहिरात से जडी हुइ मातिया की माला, एक कीमती सिरपेंच और अच्छी सख्या में दान, दुशाली, पारचा, मलमल के थाना अच्छी पगडिया, साफो और कितने ही योरप के बन हुए कपडा स भरा हुआ थाल, भट म दिया गया।

दापहर के समय मैं वापसी मुलाकात के लिए उनके पास गया। उस समय वे अपने दरबारियो के साथ, मेरे खेमें की आधी दूर तक मुझे लेने क लिए आये और अपन महलों तक वे साथ ले गये। वहा पर जो बैठक हुई। उसमे शान्ति की व्यवस्था पर, शत्रुओ के आक्रमणो को सुरक्षा पर और ब्रिटिश-सरकार का सवरण प्राप्त करने पर परामर्श होता रहा अन्त में भेंटो को सामने लाया गया। मैंने उनको स्वीकार करते हुए कहा कि इन सब चीजो को यही इस समय रहने दिया जाय, बाद मे मैं यहाँ से ले लूगा। पूर्वीय देशो मे भेंटो के लेने-देने में ऐसा प्राय होता है और यह तरीका एक प्रथा क रूप मे है। इसलिये जो सामान मुझे भेंटो मे देने के लिय लाया गया था, वह ताशाखाने म वापस भेज दिया गया।

राव श्योसिंह सत्ताईस वर्ष का जवान लडका था। उसका कद छोटा था। उसकी मुखाकृति से बुद्धिमत्ता का परिचय नही मिलता था। उसके बदन का रङ्ग गोरा था और देखने सुनने में बुरा नही था। लेकिन उसके शरीर मे वह शौर्य था, जिसको चौहान जाति अपना वैभव मानती है। उसमें शासन क अनुभव की कमी मालूम होती थी। उसका कारण था। अब तक उसने अपनी जिन्दगी में मोणा लोगो, कोलियो और अपने पडासी जोधपुर के भयानक लागों के हमलो का मुकाबिला किया था और उसको अपने ये दिन नीमाज मे ठाकुर के छल फरेबो मे व्यतीत करने पडे थे। शान्ति और सन्तोष का जीवन बिताने के लिये उसे अवसर ही नही मिला था। इन सङ्कटो और कठिनाइयो ने उसको अपने जीवन में अनुभव प्राप्त करने का और शान्ति पूर्ण जीवन व्यतीत करने का मौका नहीं दिया था।

नीमाज के सरदार की शत्रुता का परिणाम अब तक राव श्योसिंह के महलो में मौजूद था, जहाँ पर वह सरदार एक जङ्गली जानवर की तरह आकर घुसा था और उसने वहाँ की सभी सजावट की कीमती चीजों को टुकडे टुकडे कर डाले थे। वह सरदार स्वभाव से ऐसा ही था। इसलिये कि एक बार उसने विद्रोही जोधपुर की सहायता स अपने स्वामी के विरुद्ध सेना लाकर आक्रमण किया था। उसका अभिप्राय राव को पदच्युत कराने का था और राठौर नरेश दोना को इस प्रकार लडाकर अपनी अधीनता मे लाना चाहता था। सरदार की वह योजना सही और मौके की नही थी। अन्यथा

पाँचवाँ प्रकरण

मन्दिर, पुजारी और पण्डे

मेरिया के जैन मन्दिर—सीरोरिया का झरना—आबू पर्वत की चढ़ाई—ऊँचे शिखरों पर पहुँचने के लिए इन्द्रवाहन—रात में पहाड़ों पर गीदड़ों और लोमड़ियों की आवाजें—बुद्धि मन्दिर की पूजा—पहाड़ों पर विभिन्न प्रकार के वृक्ष—हिन्दुओं के गणेश देवता—पुजारियों की लूट—हिन्दू देवताओं की सवारियाँ—आबू पर्वत के विचित्र दृश्य—मन्दिरों के महन्त—पहाड़ों के झरने—अघोरी और उनका पुराना सम्प्रदाय—जैनियों और अन्य लोगों के मन्दिर।

१० जून—मेरिया साढ़े ग्यारह मील। दस मील तक सीधा रास्ता चलना पड़ा। प्रारम्भ के पाँच मील का रास्ता एक घाटी से होकर गया है। वहाँ बहुत दिनों से खेती के लिए हल नहीं चलाया गया। आजकल वहाँ पर चारों तरफ जङ्गल दिखायी देता है।

पहले मील के साथ-साथ पालड़ी ग्राम के करीब एक छोटे से नाले को पार किया। उस नाले का कोई नाम नहीं था। उसके बाद चौथे मील पर एक झरना पार करना पड़ा। यह झरना आबू की चोटी से निकलकर कालिन्द्री के सरदार के निवास-स्थान से होते हुए सूकड़ी तक बहकर लूनी नदी में जाकर मिल जाता है।

पाँचवें मील पर हम घाटी के दाहिने तरफ मुड़े। उसके दक्षिण के आखीर में सिंदुरु नाम का एक ग्राम है। यहाँ से आबू की पूर्वी ढाल पर दो मशहूर गाँव दाँता और नेठारा थे जो एक दूसरे से पाँच मील के फासिले पर हैं। यहाँ तक हमारे मार्ग की दिशा दक्षिण ५०° थी, अगले तीन मील तक द० १५° प० की ओर हमको घूमना पड़ा। यहाँ पर हमने सिरोही के मार्ग को हमीरपुर गाँव के पास पार किया। वहाँ पर एक चट्टान थी। उसके एक तरफ बहुत ऊँचा ढेर था, जो एक खम्भे की सूरत में दिखायी देता था और कुछ फासिले से वह एक छोटा सा मीनार मालूम होता था। यह पहाड़ के नाम मशहूर था।

यहाँ से हमारा मुकाम तीन मील के फासिले पर मेरिया में था। पहाड़ियों के बीच में बसा हुआ यह एक पुराना गाँव था। वहाँ पर कम से कम पाँच जैनियों के मन्दिर थे। वह गाँव तीन भागों में बटा हुआ था, एक भाग खालसा कहलाता है।

उसका लगान राज्य की तरफ से वसूल किया जाता है। दूसरा भाग एक दवड़ा जागीर दार का है और तीसरा भाग किसी भाट को मिला हुआ है। आबू का सबसे बडा हिस्सा अब द० ७०° पू० से द० १५° पू० को था।

	८ बजे प्रात	दोपहर	तीन बजे शाम	६ बजे शाम
बैरोमीटर	२८°७१	२८°७१	२८°६५	२८°६२
थर्मामीटर	८६°	६४°	६८	६४°

११ जून—पालडी सात मील छै फर्लांग पर। आरम्भ के चार मील द० ५५° प० दिशा में जाकर हम सुनवेरा नामक गांव मे पहुंच गये। यहाँ से आबू का सबसे ऊंचा भाग द० ८५° पू० से द० मे है और उसकी सबसे ऊंची चोटी द० पू० मे है। दो मील और चलने पर नीची वाली श्रेणी मे सरोरिया गांव में पहुँच गये। वहाँ पर हमने दूसरा झरना पार किया। उस स्थान से दक्षिण की तरफ दो मील चलने पर हम अपने मुकाम पालडी मे पहुंच गये। उसके उत्तर मे उसी के नाम की एक छोटी-सी नदी है, जो पहली नदी की तरह आबू की दरारो से निकलती है। उसकी सीमायें उ० ७०°पू० और द० ५०° के बीच मे है। सबसे ऊंचा शिखर उस स्थान से द० ७० पू० मे चार मील अथवा पाँच मील की दूरी पर है। सबेरे ८ बजे, दोपहर मे १ बजे और ३ बजे और फिर शाम को ६ बजे बैरोमीटर क्रमश २८° ७५ २८ ७० २८° ६५ और २८° ६५ पर था। एवम् थर्मामीटर ८६° ,६६° ६८ और ६२° पर था। मेरे पास एक दूसरा थर्मामीटर था उसका मैं विश्वास कम करता था। शाम को ६ बजे २८° ४३ बता रहा था। इस तरह उससे २२ का अन्तर पडता था। लेकिन बाद मे देखनेसे मालूम हुआ कि मैंने जिस थर्मामीटर पर विश्वास किया था, वह सबसे अधिक गलत था।

इसके पश्चात् हम आबू के करीब आ गये और उसके एक सुविधाजनक स्थान पर अपना खेमा लगवाया। उस स्थान पर चौबीस घंटे ठहरना और उन चट्टानो के सम्बन्ध मे जानकारी प्राप्त करना, जिनके ऊपर हमे पहुँचना था हमारे लिए साहस का कार्य था।

सारा दिन उस पर्वत पर चढ़ने के सम्बन्ध मे तैयारियाँ करने मे व्यतीत हुआ। इस साहसपूर्ण चढाई के लिए बहुत सावधानी बरतने की आवश्यकता थी। सिरोही के राव ने अपने चालीस मजबूत आदमियो को इसलिए हमारे पास भेजा था कि वे मुझे और मेरे आदमियो को उठाकर चोटी पर ले जायेंगे। उन आदमियो के पास दो सवारियाँ थी। उनको व इ-वाहन कहते थे। उन सवारियो म दो लम्बे बाँस थे और उनके बीच म एक फुट लम्बी चौडी बैठने के लिए चौकी थी। उस पर बैठकर कोई भी आदमी उस पहाड पर पहुंच सकता था, जो बोध पवत के नाम से प्रसिद्ध है। स्वास्थ्य

अच्छा न होने के कारण मुझे इन आदमियों की सहायता लेने में किसी प्रकार का असमंजस नहीं हुआ।

उन आदमियों के पास जो दूसरी सवारी थी, वह हमारे उस गुरू के काम में आ गयी, जो हमारे साथ था और यहाँ के मंदिरों के दर्शन करने के लिए आया था। हमारा सारा समय उन लोगों के साथ बातें करने और अपने उद्देश्य की पूर्ति के सम्बन्ध में विचार करने में व्यतीत हुआ। उसके बाद रात आरम्भ हुई। कुछ समय के बाद गीदड़ों की आवाजें और लोमड़ियों की तेज बोलियाँ शुरू हुई। मैं बड़ी सावधानी के साथ उनकी इन आवाजों को सुन रहा था। ऐसा मालूम हो रहा था कि वे लोमड़ियाँ अपनी बोली और भाषा में जङ्गल के जानवरों को खबर दे रही थीं कि शिकार होने के लिए कुछ लोग अपने-आप इस पहाड़ी जङ्गल में आ गये हैं और शिकार के लिए यहाँ के जानवरों का इससे अच्छा मौका फिर न मिलेगा।

मैं थका तो था ही। दूसरे दिन वहीं फिर यात्रा का कार्यक्रम था। इसलिए विश्राम प्राप्त करने के अभिप्राय से मैं भी अपने स्थान पर पहुँच गया।

१२ जून—मैंने क्रेमलिन (१) में जो भी देखा है और अलहम्ब्रा (२) के सम्बन्ध में जो कुछ जाना है, उन सबसे बढ़कर यहाँ दो महल मुझे बहुत पसन्द आये। एक तो आम्बेर का दूसरा जयपुर का। तीसरा महल जोधपुर (३) का भी है, जो अपनी प्रतिष्ठा रखता है। परन्तु पश्चिमी रेगिस्तान के करीब आबू के जैन मन्दिर हैं। उनके लिए लोगों का कहना है कि वे इन सभी से बहुत श्रेष्ठ हैं। यह धारणा विशप हेबर (४)

(१) रूसी भाषा में क्रेमलिन का अर्थ राजदुर्ग होता है। वहाँ का सबसे अधिक प्रसिद्ध क्रेमलिन (दुर्ग) मास्को का है। वह एक पहाड़ी के ऊपर मॉस्क्वा नदी के सामने बना हुआ है और एक ऊँची दीवार से घिरा हुआ १०० एकड़ में फैला हुआ है।

(२) स्पेन का राजमहल, एक पहाड़ी पर ग्रानाडा नदी के सामने है। उसके भीतर अद्भुत कारीगरी देखने को मिलती है।

(३) आमेर के प्राचीन महलों को महाराजा पृथ्वीराज ने (१५०३ १५२७ ई०) बनवाया था। विशप हेबर ने आमेर के उन राजमहलों को देखा था। जयपुर के महल भी महाराजा सवाई सिंह के बनवाये हुए हैं। जोधपुर का राजदुर्ग, जोधपुर राज्य के संस्थापक राव जोधा ने सन् १४५६ ई० में बनवाया था।

(४) रेनाल्ड हेबर का जन्म सन् १७८३ ई० में हुआ था। वह एक विद्वान कवि था। पैलेस्टाइन नामक कविता पर उसको ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी से प्रथम पुरस्कार मिला था। १८२३ में वह कलकत्ता का विशप होकर आया था। सन् १८२६ ई० में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके मरने के बाद उसकी एक पुस्तक का सम्पादन उसकी विधवा पत्नी एमिला ने किया था, जिसका प्रकाशन सन् १८२८ ई० में हुआ था।

की है जिसने सबसे पहले भारतीय विषयों की जानकारी ब्रिटिश जनता को करायी थी।

सवेरे के चार बजे से ही मेरे खेमे में तैयारियां होने लगी। उसके आध घण्टे के बाद मैं अपने घोड़े पर सवार हो गया। मेरे गुरू और बैरोमीटर दाहिने बायें थे। हमारे पहाड़ी भी पीछे पीछे चल रहे थे। उनके पास इन्द्रवाहन सवारियां थीं और टोकरों में खाने पीने का सामान भरा हुआ था। वे चीजें ऐसी थी, जो ब्राह्मणों और जैनियों के लिए भी परहेज वाली नहीं थी।

मेरे साथ जो सिपाही थे, उनमें हिन्दू, ब्राह्मण और राजपूत भी थे। वे सभी मेरी सहायता के लिए आये थे लेकिन उनके आने का मुख्य उद्देश्य बुद्ध की पूजा करना था और जो पूजा वे उसके मन्दिर में ही करना चाहते थे।

हम लोग पूरे एक घण्टे तक उस जङ्गल के टेढे मेढे रास्ते में भटकते रहे। वे जङ्गली रास्ते पहाड़ को चारों तरफ से घिरे हुए थे। रास्ता न मिलने पर मैं वहां से लौटकर उस स्थान पर आया जहां से चढ़ाई आरम्भ हुई थी। वहां पर मैंने बैरोमीटर एक तिपाई पर लटकाया और देखा कि वह २८'५५ बता रहा था। उससे मालूम हुआ कि समतल भूमि से कम से कम ऊंचाई से दस सक्रण्ड कम थे। प्रातःकाल ६ बजे हमने चढ़ाई की तरफ चलना आरम्भ किया और सात बजकर बीस मिनट पर उस चढ़ाई के देवता गणेश के मन्दिर पर पहुंच गये, वह स्थान गणेशघाट कहलाता है।

वहाँ तक पहुँचने में हम लोगों को बहुत परिश्रम करना पड़ा कुछ विश्राम प्राप्त करने और अगले रास्ते के सम्बन्ध में समझने बूझने के लिए हम चौथाई घण्टा वहां पर ठहरे। मेरे साथ के सिपाहियों और रानियों ने यानी आबू के जङ्गली निवासी लोगों ने मन्दिर के पास के छोटे-से झरने के जल से जो गणेशकुण्ड अथवा बुद्धि का झरना कहलाता है—अपने सूखते हुए गलों को तर किया। उस झरने का जल एक्सास्टाइटीज (१) के जल की तरह गंधक मिला हुआ खारी था।

मेरे साथ जो पहाड़ी लोग आ गये थे, उनका जिक्र ऊपर किया जा चुका है। वे अपने शरीर में काफी मजबूत और साहसी थे। मेरा ध्यान पहले से ही उनकी ओर था। मैंने देखा कि वे एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर बड़ी खूबसूरती के साथ पहुँच जाते हैं और दस गज गहरे गड्ढों को वे लोग आसानी के साथ लांघ जाते हैं। उनके इस साहस और फुर्तीपन को देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। वे लोग अपने इन्द्रवाहनों को लांघने के समय मजबूती से पकड़ लेते थे क्योंकि वे ऐसे मौकों पर लचक जाते थे। चट्टानों और

(१) स्विटजरलैण्ड का एक झरना, जिसका जल खारी गंधक मिश्रित और चूना मिला है। अल्पस (बलू बजरी) मिश्रित होने के कारण उसका एक्सास्टाइटीज कहा जाता है।

गड्ढों के स्थानों पर भी वे लोग बिना किसी संकोच और भय के चल रहे थे। उनकी इन हालतों से हमारे साथ का वृद्ध गुरु बहुत नाराज होता। इसलिए कि वह दुबला-पतला और कमजोर आदमी था। वह चाहता था कि ये लोग चट्टानों को पार करने और गड्ढों को लांघने में तेजी न करें और सावधानी से कदम उठावें। गुरु की इन हिदायतों पर वे लोग ध्यान नहीं देते थे। इसलिए गुरु लगातार उन लोगों की शिकायतें करता रहा। उसका शिकायत करना ठीक ही था। उन आदमियों की चालों से बेचारे गुरु की हड्डियों को तकलीफ पहुँचती थी। जब गुरु उनकी शिकायत करते तो वे पहाड़ी लोग हँसते और जवाब देते हुए कहते—पहाड़ों पर चढ़ना और वैकुण्ठ की सीढ़ियाँ पार करना बराबर होता है।

ये पहाड़ी लोग राहुती कहलाते हैं और वे अपने आपको राजपूत कहते हैं। जो लोग मेरे साथ थे, वे अधिक तो परमार राजपूत थे, शेष लोग चौहान और परिहार जाति के थे। उनमें सोलंकी एक भी न था। यदि इस अवसर पर उस जाति के लोग भी होते तो हमारे पास अग्नि कुल के चारों वर्गों के लोग होते, जो पुराणों के आधार पर अपनी उत्पत्ति आबू के अग्नि कुण्ड से बतलाते हैं। उनका कहना है कि जब दैत्यों अथवा आदिवासी (टीटन्स) (१) लोगों ने शिव की पूजा करने वालों को यहाँ के देव-गिरि से भगा देने के लिए युद्ध आरम्भ किया था।

जो पहाड़ी लोग हमारे साथ थे, वे प्रतिष्ठित राजपूतों की अपेक्षा पहाड़ों की जङ्गली जातियों से अधिक मिलते जुलते थे। इसका कारण इन लोगों का पहाड़ी जातियों के साथ रहन सहन है। उसके कारणों में जलवायु का भी प्रभाव है। कम आमदनी होने के कारण इनके जीवन स्तर बहुत गिरे हुए हैं। शरीर और उनकी अन्याय बातें उनकी गरीबी का परिचय देती हैं। यह भी सम्भव है कि ये अपनी गरीबी में पहाड़ी जाति के साथ रहकर न केवल उनके ऊपरी जीवन से भिन्न हों, बल्कि उन जातियों के साथ रहते रहते, दोनों के रक्त भी मिश्रित हो गये हों। यह असम्भव नहीं है कि इनके पूर्वज राजपूत रहे हों। लेकिन अपनी गरीबी और कंगाली के कारण इनके पूर्वज पहाड़ों पर चले गये हों और वहाँ की जङ्गली जातियों के साथ रहकर और उनकी तरह काम-काज करके अपना जीवन निर्वाह करने लगे हों।

पहाड़ों की इस चढ़ाई में बाँसों के पेड़ बहुतायत से मिलते हैं। थूहर के वृक्ष भी यहाँ पर कम नहीं हैं। यहाँ पर ऊँचे पेड़ नहीं दिखायी पड़ते। लोगों का कहना है कि थूहर के वृक्ष तो अरावली की विशेषता है। वहाँ पर एक झरना देखा, उसका जल एक तेज धारा के रूप में निकलता था। इसका नतीजा यह हुआ था कि प्रवाह के लिए

---

(१) ग्रीक की पौराणिक कथाओं में टीटन (आरम्भिक मनुष्यों) को जादूगर माना गया है और वे अपने जादू के चमत्कार से जो चाहते थे, कर लेते थे।

जन ने स्वय पहाडी स्थानो को काटकर रास्ता बना लिया था। इस पहाड पर गुफाओ और बिल्लौरी पत्थर अधिक पाये जाते हैं। वे एक से नही मिलते। कही पर दोनो प्रकार के पत्थर मिलते हैं और कही पर एक कम मिलता है और दूसरा अधिक मिलता है। दोनो प्रकार के मिलने वाले पत्थरो मे इस प्रकार के कम पाये जाते हैं। कुछ ऐसे पत्थर भी वहाँ पर मिलते हैं, जो इन दोनों प्रकार के पत्थरो से भिन्न होते हैं। इन पत्थरो की भिन्नता और भी कई प्रकार की है। कुछ भूरे और खुरदरे भी होते हैं और कही कही पर स्लेटी रग के पत्थर पाये जाते हैं। इस प्रकार मिलने वाले पत्थर कुछ मोटे और कुछ पतले भी होते हैं।

मेरे साथ मे गुरू बडे मजे के आदमी हैं। उनका नाम पानचन्द्र है और मैं उनको मैन भी नाम का प्रधान मानता हूँ। इस पहाडी रास्ते के सम्बन्ध मे व जो बाते बताते, वे बड मनोरजन की होती। इस पहाडी चढाई का कोई रास्ता नही था। यहाँ की चट्टानो मे स्थापित गणेश माने जाते हैं। मेरा ख्याल यह है कि अगर पहाड की चढाई के आरम्भ मे ही इन देवता की स्थापना की गयी होती तो अधिक अच्छा होता। इस लिए कि गणेश देवता को देखकर चढाई चढने वाले को शक्ति मिलती और उनका रास्ता बहुत कुछ सुलभ हो जाता। लेकिन गणेश की स्थापना यहाँ पर उस स्थान पर की गयी है जहाँ चढाई की भयानक स्थिति लगभग खतम हो जाती है इसलिए देवता के भक्तो को जो शक्ति और सहायता मिल सकती थी, उससे उनको वचित हो जाना पडता है और वहाँ पर आकर वे अपने देवता के दर्शन करते हैं, जब उनकी यात्रा के कष्टो का खात्मा हो जाता है।

हिन्दुओ के पौराणिक ग्रन्थो में इन देवताओं के विवरण बडे विस्तार के साथ लिखे हैं और प्रत्येक देवता की अलग अलग प्रतिष्ठा और परिभाषा की गयी है। उन पुराणो में किसी भी देवता का एक ही गुण बताया गया है। प्रत्येक देवता का अलग मन्दिर बताया गया है। मन्दिरो के पुजारियो और देवताओ की रूप-रेखा भी उन ग्रन्थो मे भिन्न भिन्न लिखी गयी हैं। इस प्रकार इन पुराणो ने सम्पूर्ण देश को, देवताओ और मन्दिरो का देश बना दिया है। इन देवताओ के साथ साथ, इन पुजारियो की एक जाति बन गयी है।

इन पुजारियो की प्रतिष्ठा और परिभाषा कम नही है। भक्त लोग अपनी जबो में जो रुपये पैसे लेकर आते हैं, वे सब इन पुजारियो की जेबो मे चले जाते हैं और उन भक्तो की कमाई हुई सम्पत्ति लेकर ये पुजारी अपने उपदेशो के द्वारा उनके प्राणो मे पाप और पुण्य के नाम पर भयानक भय उत्पन्न करते रहते हैं। विभिन्न प्रकार के देवताओ के कार्यों और कर्तव्यो के सम्बन्ध मे इन भक्त लोगो को जो समझाया जाता है, उसको बिना समझे हुए उस पर विश्वास कर लेना और सिर झुका कर मान लेना ही एक मात्र काम होता है। पारसी लोगो के पुराणो मे भी उनके देवताओ के सम्बन्ध

में कुछ इसी प्रकार की मिलती जुलती बातें पायी जाती हैं, जिनके वर्णन मैं अपने राजस्थान के इतिहास में कर चुका हूँ।

इस वौद्धिक देवता का मुख और मस्तक हाथी का मुख माना गया है। इसके सम्बन्ध में व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है। देवताओं के सम्बन्ध मे कुछ इसी प्रकार की बातें प्राय सर्वत्र पायी जाती हैं। लेकिन उसका वाहन चूहा माना जाता है, यह समझ मे नही आता। ग्रीक लोगो ने सरस्वती माइनीरवा के साथ उल्लू को जोड़ा है। वह बुद्धि का धारण करता है। लेकिन गणेश की सवारी म चूहा क्या माना गया है यह किसी प्रकार समझ मे नही आता।

कुछ विश्राम करने के बाद हम फिर आगे की तरफ बढे और बीच मे रुकते हुए दस बजे पठार के सबसे नीचे के भाग में पहुँच गये। मेरे बैरोमीटर मे आज प्रातः काल से ही कुछ गड़बड़ी के लक्षण दिखायी दे रहे थे, विशेषकर उसमें, जिस पर मैंने अधिक विश्वास किया था।

गणेश मन्दिर पर मेरा यह बैरोमीटर २७° ६५ पर था, अर्थात् रेगिस्तान के मैदानो से सिर्फ एक सहस्र यानी ६०० फीट ऊचाई पर, लेकिन मुझे स्वय अपने नेत्रों से दिखायी दे रहा था कि हम अरावली के पठार से भी ऊँचे आ चुके हैं।

पहाड़ की चोटी पर पहुँचने के बाद यह बात और भी अधिक साफ हो गयी, जब कि दो घंटे तक लगातार चढाई पर चलने के बाद भी पारा केवल ३०° पर ही बना रहा। उस समय बैरोमीटर २७ ३५ पर था। थर्मामीटर ७७° पर था। इसका अर्थ यह कि उस समय के मैदानी गर्मी से १५° कम था। इस तरह वह चढाई के सम्बन्ध म ठीक ठीक जानकारी दे रहा था। दो वर्ष पहले अरावली से मारवाड़ म उतरने के समय भी मुझे पारा ने धोखा दिया था और उस समय घिरे हुए स्थानो की ऊचाई के सम्बन्ध मे मेरा सन्देह वैसा ही बना रहा था। लेकिन उसके पश्चात् मैंने यह साबित कर दिया कि मारवाड़ के मैदान मेवाड़ के मैदानो से पाँच सौ फीट ऊँचे हैं। यही कारण है कि इस मौके पर मैंने दोनो नलियो को फिर से भरा। इसके पहले उसको साफ कर लिया था और चाल में किसी प्रकार का अन्तर न आ सके, इसलिए पारा को चढाई के स्थान पर लाकर उसकी जाँच कर ली थी। अब हम सत शिखर की तरफ आगे बढे। वह अधिकाश चोटियो से ऊचाई पर था।

हमारा रास्ता एक जङ्गल मे होकर गया था। उस जङ्गल मे करौंदो और काँटो के तरह की बहुत सी झाड़ियाँ थी और उन सभी म विभिन्न प्रकार के फल और फूल थे। यहाँ पर करौंदे के पेड़ अधिक सख्या मे थे और इन दिनो मे उसके फल पका करते हैं। इन जङ्गली फलो का जायका लेने के लिए हम स्थान स्थान पर ठहर जाते थे। परिश्रम और थकावट के मौके पर ये फल खाने में बड़े अच्छे लगते थे। उनसे थकान और प्यास दानों की रोक होती थी।

करौंदे का छोटा सा फल भी खाने में स्वादिष्ट था। लेकिन मैं उससे पहले से परिचित नहीं था। इसलिए वह मेरे लिए नया था। करौंदे के समान स्वाद या ताजगी खाने का गुण नहीं था।

आधे रास्ते के बाद हम उरिया में होकर निकले। यह आबू की चढ़ाई की बारह डालियाँ में से है। हम जितना ही आगे की तरफ बढ़ते थे आबू की नयी और विचित्र चीजें सामने आती जाती थीं। उसकी सुन्दरता और मनोरंजन की कोई सीमा नहीं थी। एक चीज खतम होती थी और दूसरी नयी सामने आ जाती थी। विविध प्रकार की वनस्पतियों से सारा भाग भरा हुआ था। उनके सम्बन्ध में अलग वर्णन अन्यत्र करने का हम प्रयास करेंगे।

जब हम आबू की सबसे अधिक ऊँची चोटी पर पहुँचे, जहाँ पर अब तक द्वारप का कोई यात्री नहीं पहुँचा था, उस समय सूर्य आकाश के बीच में पहुँच चुका था। लेकिन जब हम मारवाड़ के मैदान में होकर गुजरे तो वहाँ पर पठार की सतह से सात सौ फीट की ऊँचाई थी। उस समय भी मेरा बैरामीटर केवल १५° की ही ऊँचाई बता रहा था और अभी तक २७° १० पर ही ठहरा हुआ था। लेकिन थर्मामीटर ७२° पर आ गया था और बैरामीटर की अपेक्षा सही रास्ता बता रहा था।

दक्षिण की तरफ से शीतल वायु तेजी के साथ चल रही थी। उसके कारण सर्दी बढ़ गयी थी और उससे बचने के लिए पहाड़ी लोगों ने अपने साथ की कम्बलियाँ ओढ़ ली थीं। उस समय का एक दृश्य बड़ा अनोखा था। बादलों के समूह हमारे पैरों के नीचे नीचे आ गये थे और उन्हीं में से कभी कभी सूर्य की किरणें दिखायी दे जाती थीं।

यहाँ की इस ऊँचाई पर एक छोटा सा गोल चबूतरा है। उसके चारों तरफ छोटी सी चार दीवारी बनी हुई है। उसके एक तरफ एक गुफा है। उसमें ग्रेनाइट पत्थर के एक बड़े भाग पर विष्णु के अवतार भृगु के चरण चिह्न बने हुए हैं। यहाँ पर आये हुए यात्री उनके दर्शन करके अपना अहोभाग्य मानते हैं। उसके दूसरी तरफ सीता सम्प्रदाय के प्रवर्तक और संचालक रामानन्द (१) की खड़ाऊँ हैं। यह स्थान अत्यन्त अंधकार पूर्ण है। वहाँ पर उसी सम्प्रदाय का एक शिष्य रहता है। वह अब किसी

(१) रामानन्द स्वामी का अपना एक सम्प्रदाय है और उस सम्प्रदाय के स्वतन्त्र रूप से कुछ उद्देश्य हैं। रामानन्द स्वामी ने सीता लक्ष्मण सहित श्रीराम की उपासना का एक विधान तैयार किया है। रामानन्द के सिद्धान्तों के अनुसार सीता को प्रकृति के रूप में माना गया है। इसी प्रकार लक्ष्मण और राम के सम्बन्ध में भी उस सम्प्रदाय की अपनी एक अलग से विचारधारा है। इस सम्प्रदाय का मूल आधार सीता जी को माना गया है।

विदेशी का अपने यहाँ आया हुआ देवता है तो वह घंटा बजाने लगता है और यह घंटा उस समय तक बजता रहता है, जब तक उस विदेशी की तरफ से मंदिर की भेंट चढ़ाई नहीं जाती है। वहाँ के महात्मा के चारों तरफ यात्रियों के डण्डों का एक ढेर रहता है, जो इस बात का प्रमाण देता है कि आये हुए यात्रियों ने बिना किसी विघ्न के अपनी यात्रा समाप्त कर ली है।

पहाड़ के ऊपर कई स्थानों पर गुफायें देखने को मिलीं। उनसे प्राचीन काल की आबादी के कुछ संकेत मिलते हैं। कितने ही स्थानों पर गोल सूराख देखने को मिले उनकी तुलना तोपों के गोलों से होने वाले सूराखों के साथ की जा सकती है।

उस स्थान पर रोशनी के मुकाबले अंधकार अधिक था। मैं धैर्य के साथ सारा दृश्य देखता रहा और उस संन्यासी के साथ बातें करता रहा। उसने मुझको बताया कि बरसात के दिनों में जब आकाश का वातावरण स्वच्छ और साफ हो जाता है तो यहाँ से जोधपुर का राजदुर्ग और लूनी पर बने हुए मकान एवं बालोतरा का रेगिस्तानी मैदान साफ साफ दिखायी देता है। उसके इस कथन की सच्चाई में कुछ समझने में कुछ समय की आवश्यकता थी। कभी कभी सूर्य के निकलने पर सिरोही तक फैली हुई भीतरिल नामक घाटी और पूर्व की तरफ लगभग बीस मील के फासले पर बादलों से ढकी हुई अरावली की चोटियों में अम्बा भवानी के मंदिर को देखकर उसकी कही बात का अनुमान किया जा सकता था।

कुछ समय के बाद सूर्य अपने पूरे प्रकाश के साथ आकाश पर दिखायी पड़ा। उस समय हमारी नजर काले बादलों को पीछा करती हुई दूर तक चली गयी। उस समय का दृश्य गम्भीर था। फैले हुए आकाश में एक अजीब नीरवता थी। अगर यहाँ के विस्तृत स्थान से नजर को दाहिनी ओर की तरफ को घुमाया जाय तो परमारों के टूटे हुए किले दिखायी देंगे। उसकी टूटी हुई दीवारों पर जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो वहाँ का दृश्य पुरानी स्मृतियों को जाग्रत करता है। वहाँ पर एक खजूर का पेड़ है। वह काफी ऊँचा है और उसकी पत्तियाँ बहुत ऊँचाई पर जाकर उस वृक्ष के मस्तक को बताती हुई संकेत करती हैं। इसके कुछ ही दाहिने तरफ घने जङ्गलों के पीछे देलवाड़ा की गुम्बदें दिखायी पड़ती हैं। वहाँ पर और भी दृश्य हैं जो स्पष्ट होने लगते हैं।

यहाँ के पठार के धरातल पर कितने ही झरने बहते हुए दिखायी देते हैं। वे सभी अपने निकास के लिए जहाँ जैसा स्थान पाते हैं ग्रहण कर लेते हैं और उनका जल ऊँचे नीचे रास्ता से होकर जहाँ कहीं रास्ता पाता है, प्रवाहित होता है। यहाँ पर अनेक दृश्य सामने थे सभी में प्रतिकूलता और भिन्नता थी। नीला आकाश, रेतीला मैदान, संगमरमर से बने हुए महल और प्रासाद एवम् विभिन्न प्रकार के छोटे-

बड़े भवन अपने अलग अलग दृश्यों का परिचय देते हैं। पहाड़ की टूटी फूटी चट्टानों और वृक्षों के जङ्गलों के दृश्य ही दूसरी तरह के थे।

वायु आ-चल रही थी, उसमें शीतलता थी। उसकी ठंडक में इस प्रकार के दृश्य देखने में अधिक से अधिक आनन्द आता था। जो लोग ऐसे स्थानों पर पहुँचने का कभी कष्ट नहीं उठाते, वे इन प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता का अनुभव नहीं कर सकते मेरे साथ के सभी लोग यहाँ के दृश्य देखकर प्रसन्न हो रहे थे, ऐसा मालूम पड़ता है, इसलिए कि हम लोगों में कोई किसी से अधिक बातें नहीं कर रहा था।

इसी समय मुझे ख्याल हो आया कि अब हम लोगों के यहाँ से लौटने का समय है। हम लोग बहुत अधिक थक चुके थे और थकावट अनुभव करते थे। यदि पहाड़ों के ये दृश्य देखने को न मिले होते तो कदाचित इतना परिश्रम करना सबके लिये सम्भव न होता। लेकिन जो विभिन्न प्रकार के दृश्य नेत्रों के सामने आये, उनसे न केवल मनोरंजन हुआ, बल्कि एक बड़ी ताजगी भी प्राप्त हुई। उसके परिणाम स्वरूप हम सभी लोग इस कठोर यात्रा को हँसते और खेलते हुए पार कर सके। अब यहाँ से लौटना आवश्यक हो गया था। इसलिए कि हमारे ठहरने का स्थान अब भी यहाँ से दो मील की दूरी पर था।

लौटने के समय हमारे सामने उतार था। चढ़ाई की अपेक्षा उतार की तरफ चलने में बहुत कुछ आसानी होती है। इस सुविधा के साथ चलते मैं भी दोपहर के बाद तीन बजे के पहले हम अवलेश्वर नहीं पहुँच सके। मुख्य स्थान में बैरोमीटर २७ २५, और थर्मामीटर ७८° पर था चार बजे उसका पारा ८२° पर पहुँच गया। उसमें दिन की गर्मी के एक असाधारण परिवर्तन हो गया। बैरोमीटर में भी उस समय ५° का परिवर्तन हुआ। अब वह २७° २० पर था। साढ़े पाँच बजे वह २७° १७ पर और थर्मामीटर ७८° पर आ गया।

हमारा रास्ता सुगन्धित पेड़ों और फूलों के बीच से होकर गया था। इन स्थानों की सुन्दरता और उपयोगिता का बखान नहीं किया जा सकता, आज का मनुष्य उसे न समझे और अपने झूठे विश्वासों और ज्ञान के अभाव में कृत्रिम निवास-स्थान की रचना करे, यह दूसरी बात है। लेकिन जिसको प्रकृति के सौन्दर्य को समझने का ज्ञान है वह झूठे प्रपंच में कभी न फँसेगा।

पाखण्डी पण्डों की दासता में फँसे हुए भारतवर्ष के अगणित स्त्री-पुरुषों को देखा था और उनके अन्धविश्वास के सम्बन्ध में सुना भी था, न जाने कितना पढ़ा था, परन्तु आज जो कुछ मैंने देखा, वह अब तक के सारे मामलों से विचित्र और अनोखा साबित हुआ। मैंने अभी तक पण्डों और पुजारियों को देखा था। उनके व्यवसायों का अध्ययन किया था और जो कुछ उनके सम्बन्ध में जानकारी हो सकी थी,

उस पर प्राय विस्मय किया करता था। मैं सोचा करता था कि आज के युग में मनुष्य इस प्रकार के अन्धकार में कैसे पड़ा हुआ हैं।

हिन्दुस्तान में पण्डों, पुजारियों और साधु सन्तों के द्वारा जो पाखण्ड फैला हुआ है, वह इतने अधिक विस्तार में है कि उस पर पूरे तौर पर प्रकाश डालने के लिए एक बड़ा स्थान चाहिए। लेकिन उन सबके आगे और भी ऐसे लोग हैं जो उनके सम्बन्ध में धूल डालते हैं।

मेरा अभिप्राय भारत के अघोरी लोगों से है। इस देश में इनका एक अलग से सम्प्रदाय चलता है। मैं इस सम्प्रदाय को और उस सम्प्रदाय में रहने वालों को बहुत अधिक पतित मानता हूँ। जङ्गल के पशुओं में सियार नाम का एक जानवर होता है। मनुष्यों में अघोरी को मैं वही स्थान देना चाहता हूँ। यद्यपि वह सियार इन अघोरियों से अनेक अर्थों में अच्छा होता है। पशु होकर भी वह इतना अधिक गन्दा नहीं होता, जितने गन्दे ये अघोरी होते हैं। आधी रात का कब्रों और श्मशानों में घूमने वाले अघोरी से कोई भी पशु स्वच्छ और साफ हो सकता है। इसलिए सियार जैसे पशुओं को भी दुर्गन्ध और सड़ान से घृणा होती है। परन्तु अघोरी लोगों को उससे भी घृणा नहीं होती।

अघोरी लोगों की बहुत विचित्र हालत होती है। उनकी तरह का पतित मनुष्य नहीं, कोई पशु नहीं मालूम होता। भूख के समय अघोरी के लिये मरा हुआ मनुष्य और मरा हुआ कुत्ता बराबर समझता है। उसके जीवन का पतन यहीं तक नहीं है। वह इससे भी बहुत आगे है। एक अघोरी मल और पाखाना भी खा लेता है और इसमें उसको कुछ भी घृणा नहीं होती। मैंने सुना था कि ये अघोरी आबू में ही नहीं, बल्कि दूसरे पहाड़ों की कन्दराओं और गुफाओं में भी पाये जाते हैं। प्रसिद्ध द आनविले (१) ने इन अघोरियों को राक्षसों की एक जाति माना है। इन अघोरियों के सम्बन्ध

(१) द आनविले का जन्म १६९७ ईसवी में पेरिस में हुआ था। उसने प्राचीन भूगोल शास्त्र का अध्ययन करके बहुत से खोज के काम किये थे, पुराने विश्वासों में सही बातों का निष्कर्ष निकाला था और विभिन्न प्रकार के संशोधन किये थे। भौगोलिक परिस्थितियों में खोज की थी और जिनके सम्बन्ध में सही प्रमाण नहीं मिलते थे, उनको उसने अपने मानचित्र में स्थान नहीं दिया था। अपने अनुसन्धानों और संशोधनों को अधिक उपयोगी बनाने के लिये उसने १७६८ ईसवी में अपनी एक पुस्तक प्रकाशित की थी, उसका अङ्गरेजी में अनुवाद प्रकाशित हुआ था।

सन् १७७५ ईसवी में उसको भूगोल का एक विद्वान मानकर एकेडेमी आफ साइंस का सभासद बनाया गया और बड़े सम्मान के साथ उसे राजकीय प्रथम भूगोल शास्त्री नियुक्त किया गया। जनवरी १७८२ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी।

म उसने अपने देशवासी विद्वान लेखक थोवनाट के शब्दों के उदाहरण देते हुए सन्देह प्रकट किया है। उसने लिखा है कि थोवनाट ने वहाँ के निवासियों में ऐसी वीरता और साहसपूर्ण बहादुरी को अनुभव किया कि उनके करीब पहुंचने के लिये अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर जाना आवश्यक हो गया। वे उन लोगों से कुछ और अधिक आगे होते हैं। जिनको मुर्दाखोर अथवा मुर्दा खाने वाला कहते हैं। इस प्रकार की जानकारी पहले किसी यात्री को न थी। इससे जाहिर होता है कि इसके लिखने वाले को मुर्दाखोरों के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं थी।

हिन्दुस्तान में ये लोग अघोरी के नाम से प्रसिद्ध हैं, लेकिन उनके और भी नाम हैं। वे नाम दूसरे देशों की भाषा से सम्बन्ध रखते हैं। फारसी में इन लोगों को मुर्दाखोर कहा जाता है। ग्रीक लेखकों के द्वारा इस विषय में जो विवरण पाये जाते हैं, उनसे भी पता चलता है कि इस प्रकार के लोगों का एक समुदाय बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा है। उस समुदाय के लोगों से थोवनाट (१) और मानविले के सिवा अरिस्टाटिल, टीटियस जैसे प्राचीन विद्वान अपरिचित नहीं रह सके।

मैं आज के युग के एक भयानक राक्षस की गुफा से होकर गुजरा। उस राक्षस ने आबू और उसके आस-पास के क्षेत्रों को बहुत भयभीत कर रक्खा था। उस राक्षस का नाम फतहपुरी था। वह बुड्ढा था फिर भी जब कोई वहाँ पहुँच जाता तो वह उसको मार कर खा जाता।

कुछ दिनों के पश्चात् उस राक्षस ने अपने आपको उसी गुफा में समाधिस्थ करने का निश्चय किया। ऐसे लोगों के आदर्श का पालन बहुत जल्दी होता है। उसके निश्चय की पूर्ति की गयी। उसकी गुफा का द्वार बन्द कर दिया गया। इसके साथ ही यह भी निश्चय हो गया कि उस गुफा का द्वार उस समय तक बन्द रहेगा जब तक कोई मनुष्य शरीर की खोज करने वाला आकर उस में खोज अथवा जब तक मस्तिष्क का अध्ययन हिन्दुओं की जानकारी का एक अङ्ग न बन जावे।

उसके संस्मरणों और यात्राओं की संख्या ८८ और मानचित्रों की संख्या २११ था। डी मस नामक एक प्रकाशक ने उसकी सम्पूर्ण कृतियों को प्रकाशित करने का निश्चय किया था। लेकिन सन् १८३२ ईसवी में उसकी भी मृत्यु हो गया। इसलिये वह प्रकाशक अपने जीवन काल में उसकी दो ही रचनायें प्रकाशित कर सका।

(१) इस अहमदाबाद नगर में पहले वे लोग रहते थे जिनका नर भक्षण, मुर्दों का माँस खाने अथवा इस प्रकार कुछ और कहा जाता था और अभी बहुत दिन नहीं बीते जब यहाँ के बाजारों में मनुष्य का मांस बिका करता था और उस लोग अपने खाने के लिए खरीदकर ले जाते थे।

—ट्रेवेल्स आफ एम० डी० थोवनाट

मुझे जाहिर किया गया कि अब भी ऐसे भाग्यहीन पहाडी गुफाओं मे रहते हैं, वे कभी-कभी गुफाओं से बाहर भी निकलते हैं। परन्तु वे उन फलों अथवा खाने के पदार्थों की खोज में रहते हैं, जिनको लेकर राहगीर लोग उनके रास्ते में आते हैं।

इसी मौके पर मुझे एक देवड़ा के राजपूत सरदार ने बताया कि थोड़े दिन पहले जब वह अपने मृत भाई के शव को जलाने को लिए जा रहा था, उस समय एक दानव या राक्षस—जो अघोरी कहलाता है—अर्थी के सामने आया और यह कहकर कि इस शव की बहुत बढ़िया चटनी बनती है मृत शरीर को माँगा। उस सरदार ने यह भी मुझे बताया कि ऐसे लोगों पर अर्थात् अघोरी लोगों पर आदमी के मारने का अपराध नहीं लगाया जाता। (१)

जैन मन्दिर के हाते में अथवा उसके निकट किसी नर भक्षक की गुफा का होना आश्चर्य की बात है। जैन सम्प्रदाय का सबसे पहला सिद्धान्त यह है कि मनुष्य की ही नहीं, किसी छोटे से छोटे प्राणी का मत मारो। जो सम्प्रदाय अहिंसा पर ही आधारित हो, उसके किसी मन्दिर के निकट ऐसी गुफा का होना निहायत विचित्र और आश्चर्य की बात है। अपने सिद्धान्तों के कट्टर—फिर चाहे वे शैव हों अथवा वैष्णव—किसी दूसरे सम्प्रदाय से कोई सम्पर्क नहीं रखते। कुछ यह भी होता है कि एक सम्प्रदाय के लोग, दूसरे सम्प्रदाय वालों के साथ साधारण व्यवहार और शिष्टाचार कायम रखते हैं। जब मनुष्य को ज्ञान नहीं होता, उस दशा में वह जो कुछ करता है, उसी को वह सही समझता है। अज्ञान के अन्धकार में पड़े हुए लोग दयालु होकर घृणित अघोरी को भी खाने के लिये भोजन देते हैं और ऐसा करने में वे कभी संकोच नहीं करते।

ओरिया और अचलेश्वर के मन्दिरों के बीच में हमें कितने ही छोटे छोटे मन्दिर देखने को मिले। उनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध नंदीश्वर का मन्दिर था। उसके द्वारा एक बात की सच्चाई का आभास हुआ। जिसके सम्बन्ध में अभी तक कुछ निश्चय नहीं हो सका था। हमने सुना है कि इन देवताओं की स्थापना विभिन्न तरीकों से होती है और देवताओं की मूर्तियाँ भिन्न भिन्न अपना आकार प्रकार रखती हैं।

यह मन्दिर, चम्बल के झरनों पर बने हुए गङ्गा भ्या और उदयपुर के निकट बने हुए मन्दिरों की बिल्कुल नकल मालूम होती है। इसकी सादी किन्तु मजबूत बना-

(१) इस जाति का विशेष रूप से रहने का स्थान बड़ोदा है। वहाँ पर अब भी इस सम्प्रदाय की संरक्षिका अघोरेश्वरी माता का मन्दिर पुराने स्थान पर बना हुआ है। वह माता जीर्ण शीर्ण स्त्री के रूप में मनुष्य का भोजन करती है ऐसा कहा जाता है। इस माता के भक्त लोग उस समाज के अन्तर्गत माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के मानने वालों की हालत यह है कि जो कुछ उनके सामने आता है। उसे वे खा लेते हैं, कच्चा माँस हो, पका हुआ हो, जिन्दा का हो या मरे हुये का हो, शराब हो अथवा उनका अपना पेशाब हो। उनके सामने परहेज की कोई बात नहीं रहती।

पट, उसके चौकोर खम्भे, जो देखने में पुराने ढङ्ग के मालूम पड़ते हैं, बिल्कुल उसी ढाँचे में ढले हुये दिखायी देते हैं। उनको देखकर इस बात का विश्वास हो जाता है कि यह मन्दिर भी उन्हीं दिनों में कारीगरों के द्वारा बनाया गया है। वहाँ पर एक ही शिला लेख है। उससे यह साफ जाहिर होता है कि अनहिलवाड़ा के भीमदेव सोलङ्की ने इसका पुनरोद्धार कराया था।

लगातार साढ़े दस घण्टे तक चलते रहने के बाद दिन के तीन बजे तक रावमान के यहाँ पहुँचे और उनके कुञ्ज में ठहरे। उनका यह स्थान उनकी छतरी और अग्निकुण्ड के बीच में था। यहाँ पर मैं एक जैन धर्मावलम्बी वैश्य यात्री के सत्कार और सद्व्यवहार से बहुत प्रभावित हुआ। उसने अपनी रावटी में विश्राम करने के लिये यह कहकर मजबूर किया—कि 'मुझे तो खुली हवा में लेटना ही है। यदि आप इसको प्रयोग में न लावेंगे तो इसकी उपयोगिता बेकार हो जावेगी। मुझे उसका यह तर्क बड़ा प्रिय मालूम हुआ। क्या समझकर उसने मुझसे इस प्रकार आग्रह किया और अपनी मधुर तथा आवश्यक बातचीत से उसका प्रयोग करने के लिये मुझे विवश किया मैं बड़ी देर तक गम्भीरतापूर्वक इस पर विचार करता रहा। मुझे इसके समझने में देर न लगी कि उस जैन यात्री के इस सत्कार में हिन्दुस्तान का आतिथ्य सत्कार भरा हुआ है। यहाँ के लोग अपने पास आये हुये किसी भी देशी अथवा परदेशी का आदर करना खूब जानते हैं।

मैंने उसके आग्रह और अनुरोध को धन्यवाद देकर स्वीकार किया। मैं रात में ओस को बहुत बचाता हूँ। यदि मैं उसका परहेज न करूँ तो निश्चय ही मुझे कोई शारीरिक कष्ट हो जाय और मेरी यात्रा का कार्यक्रम सङ्कट में पड़ जाय। ऐसी हालत में उसकी रावटी में रात को लेटने से मुझे बहुत आराम मिला।

खेमें का सामान लाने जाने के समय तक मैं अचलेश्वर के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिये बातें करता रहा। मैं जानता था कि हिन्दुओं के पुराणों में अचलेश्वर की प्रसिद्धि बहुत है। इसलिये उसके सम्बन्ध की एक एक बात को जानने और समझने की मैं कोशिश करता रहा।

मान अग्नि कुण्ड लगभग नौ सौ फीट लम्बा और दो सौ चालीस फीट चौड़ा है। वह एक मजबूत चट्टान को खोदकर बनाया गया है। उसके भीतर के हिस्से में मजबूत ईंटें लगाकर उसका निर्माण किया गया है। कुण्ड के बीच में एक चट्टान पर जन्म जननी माता के मन्दिर को देखा। वह बहुत कुछ गिर चुका था और अब एक खण्डहर के रूप में रह गया था। कुण्ड के उत्तर की तरफ जितने ही छोटे छोटे मन्दिर बने हुए हैं। उनका निर्माण पाण्डवों भाइयों के नाम पर किया गया है। उनकी हालत भी अब अच्छी नहीं रह गयी। मरम्मत न होने के कारण वे भी अब खण्डहर के सिवा और कुछ नहीं हैं।

पश्चिम की तरफ अचलेश्वर का मन्दिर है। इस मन्दिर का देवता की रक्षा करने वाला देवता माना जाता है। उस मन्दिर में भली प्रकार देखने और समझने की कोशिश की। उसके निर्माण में मुझे कोई विशेषता नहीं मालूम हुई। सजावट की चीज़ भी उसमें कुछ नहीं थी। उस मन्दिर की सादगी मुझे अधिक प्रिय मालूम हुई। मेरी समझ में मन्दिर की सादगी, उसके सम्मान और महत्व की वृद्धि करती है। यह मन्दिर चौकोर जमीन पर बीच में बना हुआ है। देखने से भी मालूम होता है कि यह मन्दिर बहुत पुराना है। इसके भीतर जाते ही देवी मीरा (१) की मूर्ति दिखायी पड़ती है। कहा जाता है कि वह देवी यहाँ के देवता की स्त्री है। नीचे एक चट्टान पर बना हुआ ब्रह्मखाल दिखलायी देता है। उसकी अनेक बातें हैं जिनके सम्बन्ध में बहुत-सी बातें यहाँ के लोगों से सुनने को मिलती है। उनको सुनकर और जानकर दर्शनार्थ जो भक्त लोग यहाँ पर आते हैं, वे अधिक आकर्षित और प्रभावित होते हैं।

मन्दिर के सामने एक बड़े आकार प्रकार में पीतल का बैल बना हुआ है। उसके दोनों तरफ कुछ कटे हुए अथवा टूटे हुए स्थान देखने में आते हैं, जो इस बात का सुबूत देते हैं कि पिछले किसी समय में अहमदाबाद का बादशाह अथवा सुल्तान मोहम्मद बेगड़ा यहाँ पर आया था और धन के लोभ में उसने मन्दिर के कुछ स्थानों को खोदवाकर मन्दिर को नष्ट करने की कोशिश की थी। उसको खजाना मिला या नहीं, इसका तो कुछ पता नहीं, लेकिन उसने जो इस प्रकार का अत्याचार किया था, इसका प्रमाण हमेशा के लिए कायम हो गया। कहा जाता है कि उस सुल्तान को इस अत्याचार का बदला मिल गया। जब वह आबू से उतर रहा था, उस समय वह एक घटना में शिकार होते-होते बच गया। वह घटना इस प्रकार है जिन बुर्जों के करीब से होकर वह निकल रहा था, उनमें से अगणित मधुमक्खियाँ एक साथ निकल पड़ीं। उन सबने उस सुल्तान पर एक साथ आक्रमण किया। वह सुल्तान अपने साथ के आदमियों के साथ भागा और जालौर के आगे जाकर उसने साँस ली।

मधु मक्खियों के इस आक्रमण से सुल्तान बड़े संकट में पड़ गया था लेकिन वह किसी प्रकार निकल गया। सुल्तान और उसके आदमियों पर शहद की इन मक्खियों के आक्रमण से बड़ी खुशियाँ मनायी गयीं। मक्खियों के आक्रमण से बचने के लिए सुल्तान का भागना मन्दिर के पुजारियों और भक्तों में अपनी विजय के रूप में माना गया। वहाँ पर इस विजय के स्मारक के रूप में एक मन्दिर बनवाया गया, सुल्तान और उसके आदमियों के भागने पर उनके जो अस्त्र शस्त्र गिर गये थे, उनको एकत्रित करके और उनको तोड़कर एवम् गलाकर एक बहुत बड़ा त्रिशूल तैयार किया गया,

(१) इस ग्रन्थ के मूल लेखक ने यहाँ पर मीरा देवी की मूर्ति का उल्लेख किया है। यह मीरा कौन थी, यह स्पष्ट नहीं होता। —अनुवादक

जिसको मन्दिर के देवता के सामने स्थापित किया गया। इस प्रकार भगवान देवता की सवारी नन्दी के अपमान का बदला लेकर वहां के मालुम, महन्तों, पुजारियों और साधु भक्तों ने उस त्रिशूल के सामने सिर झुकाना और उसका सम्मान करना आरम्भ किया। उस दिन से आज तक उस त्रिशूल की पूजा होती है।

वहां प्रधान मंदिर के सामने और आस पास, चारों तरफ छोटे छोटे मन्दिर बने हुए हैं। उनमें से एक मंदिर के सामने की तरफ बाहर गहरे जल में हजारफनवाले नागनाथ पर भगवान नारायण की मूर्ति लेट रही थी। यह दृश्य भविष्य में किसी समय आने वाले प्रलय का भय भरता और दर्शकों के दिलों में उत्पन्न करता है। भगवान नारायण इस समय योगनिद्रा में हैं। उस निद्रा से जागने पर वे अपने आराम सूखे स्थल पर जाते हैं। मैंने मन्दिर का वह स्थान देखा तो मेरी समझ में कुछ आया नहीं। मैंने वहां के महन्त से पूछा—

मन्दिर में जहाँ पर विष्णु भगवान को स्थान दिया गया है, क्या वह इस योग्य है कि उसे भगवान को दिया जाय ?

मेरी बात को सुनकर महन्त ने कुछ दबी जबान उत्तर दिया। मुझे तो सूने के लिए स्थान चाहिए था। मेरे पास और कोई स्थान नहीं था।

इसके बाद मैंने उस मन्दिर के भीतर जाकर देखा तो मैं आश्चर्य में आ गया। उस पहाड़ से निकले हुए चूने का एक बहुत बड़ा ढेर उस मन्दिर के भीतर था और उस चूने के कारण मन्दिर की सारी अच्छाइयाँ नष्ट हो रही थीं। मैंने क्षण भर तक मन्दिर की भीतरी हालत देखी। मैं सोचने लगा अगर इस महन्त का मतलब निकलता और जरूरत पड़ती तो यह भगवान के शत्रु को पीस कर चूना बनाने में संकोच न करता।

यहाँ पर पाताल्श्वर का सबसे अधिक सम्मान है। स्वर्ग के सभी देवता पाताल्श्वर के अधीन माने जाते हैं। उससे मालूम होता है कि पूजा की परिपाटी कितनी पुरानी है। संसार की समस्त असभ्य जातियाँ आदि काल से पूजा करती रही हैं।

मंदिर से बाहर निकलने पर दरवाजे में गधा की खुदी हुई मूर्तियों को देखा। उनकी मूर्तियाँ अच्छे ढङ्ग से नहीं गढ़ी गयी थीं। मंदिर के बाहर चारों तरफ ऊंचे पेड़ खड़े हुए हैं। उन वृक्षों में आम के पेड़ प्रमुख हैं। उनके बीच-बीच में अंगूरों की बेलें हैं। उन बेलों को कभी कलम नहीं किया गया। फिर भी उन बेलों में खूबसूरत और मोटे-मोटे अंगूर लगे हुए थे। वे अभी कच्चे थे। लोगों से मालूम हुआ कि पहाड़ पर जो वृक्ष और फल हैं वे सब यहाँ की प्राकृतिक पैदावार है। किसी ने इनका लगान और उपजाने का कार्य नहीं की। उन वृक्षों के सिवा चम्पा, चमेली, सेवती और मोगरा आदि के पेड़ जो थे, वे चारों तरफ एक बड़ी संख्या में दिखायी देते थे। अचलेश्वर के

मन्दिर में कोई शिला लेख नहीं था। लेकिन मुझको उसके पास ही तालाब मे शिला-लेख मिला, जिसकी मैंने प्रतिलिपि करवा ली।

इस मन्दिर की तरफ अग्नि कुण्ड के पास सिरोही के रावमान की छतरी बनी हुई है। राव का एक जैन-मन्दिर में बलिदान हुआ था। (१) वहाँ के संगमरमर के पत्थर पर उनके मारे जाने का निशान बताया जाता है। कहा जाता है, कि वहीं पर उनकी मृत्यु हुई थी। उसके देवता के मंदिर के सन्निकट उसका दाह संस्कार हुआ था। उसकी पाँच रानियाँ उसके शव के साथ सती हुई। स्मारक के बीच में एक वेदी पर उन रानियों की मूर्तियाँ खुदी हुई हैं। इस स्मारक की छतरी खम्भों पर आधारित है। उन मूर्तियों में रानियों को हाथ जोड़े हुए और आँखें नीची किये हुए दिखाया गया है। ऐसा मालूम होता है कि वे भगवान से प्रार्थना कर रही हैं। हमारे स्वामी के पापों की मुक्ति के लिये हमारी आहुतियाँ स्वीकार की जाय और उसको जमराजा से छुड़ाकर हिन्दुओं के वैकुण्ठ में भेजा जाय।

उस मारे गये राव के पापों की मुक्ति के लिये उसकी पाँच रानियों ने अपने प्राणों की आहुतियाँ देकर, अपने स्वामी को, उसके पापों की मुक्ति के लिये और स्वर्ग भेजे जाने के लिये प्रार्थनायें कीं, उस स्वामी की, जो आम लोगों में प्रसिद्ध निर्दय, मुरा पापी, अत्यन्त अन्यायी और दुराचारी था।

अग्निकुण्ड के पूर्व की तरफ परमार वंश के संस्थापक आदि परमार के मन्दिर के अब खण्डहर भी गिर गये हैं। लेकिन आदिपाल की मूर्ति अब भी अपनी आधार शिला पर ज्यों की त्यों खड़ी हुई है। उसको मैंने बड़ा श्रद्धा के साथ देखा। उस मूर्ति की सारी बातें प्राचीन काल की रहन-सहन और वेश भूषा का स्मरण कराती थी। यह मूर्ति संगमरमर पत्थर की बनी हुई है और लगभग पाँच फीट ऊँची है। मैंने भारत में अब तक जितनी मूर्तियाँ देखी हैं, वह मुझको उन सबसे अच्छी मालूम हुई। इस चित्र में परमार एक तीर से भैंसासुर को मार रहा है। इसलिये कि वह रात के समय अग्नि कुण्ड का पवित्र जल पी जाया करता था, कहा जाता है कि उसी की रक्षा के लिये परमार का जन्म हुआ था। तीर अब भी अपने निशाने पर लगा हुआ है उसको देखकर परमार के अचूक बाण का सहज ही अनुमान होता है। उसने जिस स्थान पर मारने के लिये अपना तीर फेंका था, ठीक उसी स्थान पर उसका तीर जाकर लगा और उससे तीन गहरे घाव हो गये।

---

(१) रावमान करें कल्ला परमार ने अपनी कटार का वार करके जान से मार डाला था। उसके मारे जाने पर, उसकी माता ने १६३४ वि० स० में मानेश्वर का मन्दिर बनवाया और उसमें सवहो होने वाली पाँचों रानियों की मूर्तियाँ बनवाईं।

—सिरोही राज्य का इतिहास

रास्ता की बहुत सी मूर्तियाँ नष्ट हो चुकी हैं। वे मूर्तियाँ स्लेटी पत्थर पर बड़े भद्दे तरीके से गढ़ी गई थी और उन मूर्तियों में उनके कोई विशेष चिह्न नहीं दिखाई देते थे। बाण मारते हुए स्कन्ध तक परमार का दाहिना हाथ कान तक खिंचा हुआ है। ऐसा मालूम होता है, जैसे वह अभी भी बाण मारने की चेष्टा में है। उसकी भुजायें खुली हुई, कसीली और भली प्रकार गठित हैं। मूर्ति में कलाई का मोड़ बड़ा खूबसूरत है। लेकिन उंगलियों का मुड़ना कुछ आवश्यकता से अधिक मालूम होता है।

मूर्ति में परमार के सभी अंग सुगठित दिखाये गये हैं, आकार प्रकार भी सुन्दर है। किसी मूर्ख ने धनुष के एक हिस्से को तोड़ दिया है। वह धनुष बाँस का बना हुआ नहीं, बल्कि भैंसे के सींग से बनाया गया है। उसकी खिंची हुई प्रत्यञ्चा रेखन में बड़ी अच्छी मालूम होती है। मूर्ति में परमार का मस्तक विशाल और सुन्दर है उसमें और भी उसके प्राकृतिक लक्षण देखने को मिलते हैं। उसके शरीर पर एक घेरदार लम्बा चौड़ा अंगरखा है, वह जाँघों तक लटका हुआ है। उसको देखकर अरावली के रहने वाले लोगों के कपड़ों और अंगरखों की याद आती है, उस पर एक कमरबन्द है। उसमें कटार खोसी हुई है। हाथों और पैरों के आभूषणों के साथ तीन लड़ी की एक मोतियों की माला भी इस मूर्ति में दिखायी देती है।

मूर्ति की चरण चौकी के निम्न भाग में एक लेख था। परन्तु किसी मूर्ख ने उसके महत्वपूर्ण अंश, सम्वत् और साल को मिटा दिया है। वह इस प्रकार है—
'सम्वत् [मास फाल्गुण] वसन्त, बृहस्पतिवार तिथि १३ कृष्णपक्षे
श्री रास सार्वभौम राजा अचलगढ़ की राजगद्दी पर बैठा। परमार श्री धारावर्ष (१) ने अचलेश्वर के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया।

---

(१) धारावर्ष नाम कदाचित राजपूत कवियों (चारणों) के रूपक से लिखा गया है। यह धारा शब्द तलवार की तेज धार को प्रकट करता है और उसी के लिए यहाँ पर नाम के साथ धारा शब्द का प्रयोग किया गया है। शत्रु के सिर पर तलवार के आघातों को हिन्दू कवियों ने वर्षा के पानी की बूंदों के रूप में वर्णन किया है। और अगर ऐसा नहीं है तो उसके नाम में मध्य भारत की प्राचीन राजधानी धार के परमारों की शाखा का सम्बन्ध प्रकट किया है। धारावर्ष ने अपने नाम की वास्तविकता का परिचय उस समय दिया जब आक्रमणकारी लोगों के सिर पर सिरोही की तलवार चल रही थी। फरिश्ता ने आबू के इस राजा की शूरता और वीरता का वर्णन बड़ी खूबसूरती के साथ किया है। उसका पुष्कर इतिहास के पाठक हिन्दू और मुसलमान— दोनों ही बड़े असमञ्जस में पड़ गये हैं। धारावर्ष नाम के इन दोनों अर्थों में कौन सही है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता।

कङ्कालेश्वर मन्दिर के शिलालेखों से धारावर्ष का समय सम्वत् १२६५ अथवा १२०६ ईसवी जाहिर होता है। लेकिन मुझको उस शासक के सम्बन्ध में कुछ भी बातों की जानकारी नहीं है, जिसके नाम के साथ राम शब्द लगा हुआ है। इस समय के परमार राजपूत, जिनके छोटे-से राज्य में चन्द्रावती, आबू और सिरोही नामक तीन मनहूर नगर थे। वे अनहिलवाड़ा के राजाओं की अधीनता में थे। मूर्ति की बनावट से इस बात का पता नहीं चलता कि यह लेख ठीक उसी समय लिखा गया था, अथवा आबू में राज्य करने वाले अन्तिम राजा धारावर्ष ने अपने वंश के आदि पुरुष के स्मारक में इस मूर्ति का निर्माण कराया था। लेकिन उसके समय में कला का बहुत-कुछ पतन हो चुका था। (१) यह सम्भव है कि उसने इस स्मारक के द्वारा मन्दिर के जीर्णोद्धार की बात सोची हो और उसी भावना से उसने उसका निर्माण कार्य कराया हो।

हिन्दू भाटों की कविताओं में प्रायः कुछ चीजों का सही,सही अनुमान हो जाता है। उन लोगों ने उसके साम्राज्य के विनाश का कारण राजनैतिक न मानकर नैतिक माना है। इसका सम्बन्ध है अचलेश्वर के रहस्यों के साथ, उनको खोजने में एक अधर्म-पूर्ण कार्य किया गया था। यहाँ पर जो आख्यान मिलता है, उसमें कोई बात बहुत स्पष्ट नहीं मालूम होती। मुझसे लोगों ने जो कुछ भी कहा, उसे सुनकर मैं किसी सही नतीजे पर नहीं पहुँचा। इस तरह के आख्यान प्रायः अधूरे और अस्पष्ट मिलते हैं अथवा उनके बनाने वाले सही सही प्रकाश नहीं डाल पाते।

अचलेश्वर का आख्यान आबू और अग्नि वंश के इतिहास के साथ पूर्ण रूप से सम्बन्ध रखता है। उस वंश को शिव ने दैत्यों से युद्ध करने के लिए उस समय पैदा किया था, जब उन राक्षसों ने इस पहाड़ पर शिव के साथ अत्याचार करना आरम्भ किया था। कुछ इसी प्रकार का उपाख्यान टीटन लोगों (टीटन्स) के द्वारा (ज्युपीटर) के युद्ध के सम्बन्ध में भी मिलता है। (२) उपाख्यान अलग-अलग है। परन्तु आधार एक सा है। इसके सम्बन्ध में स्पष्ट वर्णन राजस्थान के इतिहास में किया जा चुका

(१) इस वर्णन से कुछ प्रतिकूल का आभास होता है। परन्तु इसी समय के जैन मन्दिरों में बनी हुई मूर्तियाँ इसकी तरह सुन्दर और कलापूर्ण नहीं हैं। जिन लोगों ने दोनों स्थानों की मूर्तियों को देखा है, वे इसे स्वीकार करेंगे।

(२) ग्रीक पौराणिक कथाओं के अनुसार टाटन स्वर्ग और पृथ्वी की आदि सन्तान माने गये हैं। उन कथाओं में बताया गया है कि उनकी संख्या कुल दस थी— पाँच पुरुष और पाँच स्त्रियाँ। ज्युपीटर के अवैध पुत्र डायोनिसस की हत्या के षड्यन्त्र में ये लोग ज्युपीटर की अवैध पत्नी जूनो के साथ शामिल हो गये थे। इसलिये ज्युपीटर ने युद्ध करके उनका अन्त कर दिया।

है। इसलिए यहाँ पर अर्बुद की उत्पत्ति के विषय में ही कुछ बातें जो पौराणिक कथाओ के आधार पर हैं, नीचे लिखी गयी हैं।

उस युग मे जब मनुष्य पापो से बहुत दूर था और नैतिक विचार रखता था, यह स्थान अर्बुद शिव और उनके लाखो भक्तो का था। वे सभी इस स्थान को सबसे बडा देवस्थान मानते थे और शिव के दर्शनो के लिए एकत्रित होते थे। वे सभी ऋषि मुनि शिव के प्रतिनिधि वशिष्ठ मुनि की अध्यक्षता मे यहाँ पर रहकर और कद-मूल फल आदि खाकर एवम् दूध पीकर तपस्या करते थे। उन दिनो मे यहाँ पर पर्वत नही था और सम्पूर्ण अरावली की भूमि समतल थी। यहाँ पर एक बहुत विशाल कुण्ड अथवा जलाशय था जो इतना गहरा था कि उसकी गहराई नापी नही जा सकती थी। उस कुण्ड मे मुनि की कामधेनु गो गिर गयी थी। उसको चमत्कार तरीके से निकाला गया था। ऐसी दुर्घटनाये फिर न हो, इसके लिए मुनि ने बर्फीले कैलाश पर्वत पर रहने वाले शिव की आराधना की। मुनि की प्रार्थना सुनी गयी और हिमाचल को बुलाकर पूछा गया कि उनके बर्फीले स्थान से निकल कर अपने आत्म त्याग का परिचय देने वाला कौन है? इसको सुनकर हिमाचल का छोटा लडका आत्म त्याग करने के लिए तैयार हो गया।

उस पुत्र के शरीर मे एक अभाव था, वह यह कि वह पुत्र लगडा था। इसलिए चल सकने मे असमर्थ था। इसलिए नागो का राजा तक्षक उसको अपनी पीठ पर बिठाकर ले जाने के लिए तैयार हुआ। उस तक्षक की सहायता से वह लडका वशिष्ठ मुनि के निवास-स्थान पर पहुँच गया और उसने अपने आने का समाचार बताकर मुनि की आज्ञानुसार उस गहरे कुण्ड मे कूद पडा। इसके लिये जो तक्षक उसे लेकर आया था, तैयार न हुआ और उसने उसके गिरने के साथ ही अपने शरीर के घेरे डालकर उसे लपट लिया और उसको अपने साथ जकडे रहा। अपने इस बलिदान के साथ उसने प्रतिज्ञा की कि उसका नाम उस पर्वत के नाम के साथ सम्मिलित कर दिया जाय। उसी समय से इसका नाम अर्बुद पडा। अर अर्थात् पहाड और बुद अर्थात् बुद्धि जिसका अर्थ सर्प होता है। लेकिन या तो पर्वतो के पिता हिमालय को यह कुण्ड भरने के लिए पर्याप्त नही मालूम हुआ अथवा किसी अन्य परिवर्तन से दुखी होकर तक्षक ने एक ऐसी परिस्थिति पैदा कर दी कि एक भयानक भूकम्प आरम्भ हो गया और उस भूकम्प को रोकने के लिए वसिष्ठ को महादेव का स्मरण करना पडा। उस दशा मे शिव ने पाताल से अपना पैर पृथ्वी के ऊपर तक फैलाया, जिससे उनका अगूठा पर्वत की चोटी पर दिखायी देने लगा। आया हुआ भूकम्प बन्द होकर अचल पर्वत हो गया और निकले हुए अगूठे पर मन्दिर का निर्माण हुआ। इसलिए इसका अचलेश्वर नाम पडा।

अचलेश्वर का यह आख्यान है। उसका अर्थ समझने के लिए बहुत कुछ इधर-उधर देखना पडता है। इस आख्यान का सक्षेप मे अभिप्राय यह है कि पृथ्वी के रूप में

गाय कुण्ड में गिर गयी थी। यह एक प्रकार ~ न्य और अत्याचार का सूचक है। उन दिनों मे राक्षस लोग अर्थात् विधर्मी शिव की पूजा करने वालों को तंग करते थे और उनकी पूजा में विघ्न डालते थे। इसी अवसर पर शायद अग्नि कुण्ड से अग्नि वंश की उत्पत्ति हुई है और वही पर अचलेश्वर के मन्दिर का निर्माण हुआ है।

इस चट्टान की दरार को देवडा के राजपूत सरदारों ने मढवा दिया था। वह दरार चाँदी से मढी गयी थी। कहा जाता है कि पाताल अर्थात् नरक से किसी प्रकार भय न खाने वाले किसी भील ने उस कीमती चाँदी को चुरा लिया। वह उस चाँदी को लेकर जा रहा था और एक भील भी आगे नही गया कि वह बिल्कुल अंधा हो गया। उसी दशा में उसने पश्चाताप करके चाँदी की उस चद्दर को उसने एक पेड में लटका दिया। उस चाँदी चद्दर को ढूढने वाले आ रहे थे। उन्होंने उस पेड के पास आकर चाँदी की चद्दर को प्राप्त कर लिया। उसके बाद उस भील के नेत्रों का प्रकाश लौटकर आ गया। चाँदी की उस चद्दर को अग्नि में शुद्ध किया गया और फिर उसको अपने देवता की मूर्ति मे ढालकर फिर उस दरार पर स्थापित किया गया। इसके पहले भी यही किया गया और अगर उस चाँदी में देवता की मूर्ति न होती तो वह चद्दर लौटकर न आती और न वह ले जाने वाला भील ही अन्धा होता, यह प्रताप उस देवता की मूर्ति का था।

इस प्रकार की और भी कितनी घटनायें सुनने और जानने को मिली। नैतिक पतन मे वे एक से एक बढ़कर हैं। यहाँ पर मैं एक घटना का और उल्लेख करना चाहता हूँ, जो अधार्मिकता का एक बड़ा उदाहरण है। उस घटना का सम्बन्ध इस मन्दिर के साथ है। आबू और चन्द्रावती के परमार राजा ने ब्रह्मलाल के एक उपाख्यान की सच्चाई का पता लगाने के सम्बन्ध में निश्चय किया।

परमार राजा ने मन्दिर के पास के झरने से नहर निकालने का आदेश दिया। नहर निकाली गयी और [illegible] महीने तक लगातार उसमें झरने का जल प्रवाहित होता रहा। इन्ही दिनों में हुआ यह कि वह परमार राजा चन्द्रावती के सिंहासन से उतार दिया गया और उसके वंश में कोई दूसरा राजा नहीं हुआ। (१)

१३ जून—सवेरे [illegible] बजे मैं अग्नि कुण्ड से अचलगढ के लिए रवाना हुआ। उसकी टूटी हुई छतरियाँ हमारे चारों तरफ फैले हुए घने बादलों में छिपी हुई थी। चढ़ाई के इस स्थान पर थर्मामीटर ६६° और बैरोमीटर २७° १२ अंश पर था। सुबह [illegible] बजे शिखर पर बैरोमीटर २६° ९७ और थर्मामीटर ६४° पर था। राजकीय दरबार के लिए मैंने हनुमान दरवाजे से प्रवेश किया, ग्रेनिट के बड़े बड़े पत्थरों से यह

(१) मूँता नैणसी की प्रख्यात और बड़वा की पुस्तकों में हूण परमार नाम लिखा है। लेकिन शिला लेखों में कोई उल्लेख नही मिलता। अन्य किसी पुस्तक में भी उसका वर्णन नहीं पाया जाता।

दरवाजा विशाल छतरियों से बनाया गया था, बहुत पुरानी होने के कारण यह छतरियाँ खाली पड़ गयी थी। वे दोनों छतरियाँ ऊपर की तरफ एक कमरे से जुड़ी हुई थी। वह कमरा रक्षकों के रहने के लिए बनवाया गया था और दरवाजा नीचे के किले का प्रवेश द्वारा था। उसकी दीवारें टूटी हुई थी। दूसरे दरवाजे के करीब चम्पा का पेड़ होने के कारण वह चम्पा पोल के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन पहले उसका नाम गणेश द्वार था। किले के भीतर जाने के लिए यही दरवाजा है। इस पीछे वाले दरवाजे से अन्दर प्रवेश करने पर सबसे पहले पार्श्वनाथ का जैन मन्दिर दिखाई देता है। उस मन्दिर को मांडू के सेठों ने (१) अपने खर्च से बनवाया था, उसकी आजकल मरम्मत हो रही है। इसके खम्भे ठीक उसी तरह के हैं, जिस प्रकार अजमेर के प्राचीन मन्दिर के। (२)

ऊपर के किले के सम्बन्ध में कहा जाता है कि उसको राणा कुम्भा ने बनवाया था, (३) जब उसको मेवाड़ के चौरासी किलों से निकाल दिया गया था। लेकिन यह सही नहीं मालूम होता। वास्तव में उसने अचलगढ़ के उस दुर्ग का—जिसका अधिकांश भाग बहुत प्राचीन है—जीर्णोद्धार ही करवाया था। यहीं पर अनाज के वे कोठे भी हैं जो राणा कुम्भा के भण्डार कहे जाते हैं। उनमें भीतर की तरफ बहुत मोटा और मजबूत सीमेंट का प्लास्टर है। लेकिन उसकी छत टूट गयी है। उसके पास बाईं तरफ उसकी रानी का प्रासाद है, जो हिन्दुओं के अगस्त कूट आफ मण्डल (ओखा मण्डल) की होने के सबब से ओखा राणी कही जाती थी। उस दुर्ग में एक छोटी सी झील भी है। उस झील का नाम सावन भादो है। जून की गर्मी के दिनों में भी जल से भरी रहने के कारण वह इस नाम को सार्थक करती है।

---

(१) मालवा के सुल्तान गयासुद्दीन के प्रधान मन्त्री सुंदरा सहसा सालिग के बेटे ने राव जगमाल (१५४० १५८० वि०) के समय में यह मन्दिर बनवाया गया था और उसकी प्रतिष्ठा श्रीजय कल्याण सूरि ने सं० १५६६ वि० में करायी थी।

(२) कहा जाता है कि अजमेर का ढाई दिन का 'झोपड़ा' एक जैन मन्दिर था, जिसको शहाबुद्दीन गोरी ने मसजिद में बदल दिया था उस समय वहाँ की देव प्रतिमा अजमेर की गोधा गली में नया मन्दिर बनवाकर प्रतिष्ठित की गयी। वही यहाँ का पुराना मन्दिर माना जाता है।

—अजमेर हरविलास शारदा पृ० ४४७

(३) महाराजा कुम्भा ने १४५२ ईसवी वि० सम्वत् १५०९ में माघ सुदी १५ को अचलगढ़ के किले का निर्माण कराया था। इसके अनेक प्रमाण कितनी ही पुस्तकों में पाये जाते हैं।

—महाराजा कुम्भा, हरविलास शारदा, पृ० १२१

पूर्व की तरफ सबसे ऊँचे स्थान पर परमार राजपूतों का बुर्ज बना हुआ है। उसके बाद खण्डहर ही दिखायी पड़ते हैं। वे आज तक राणा कुम्भा के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहाँ से उस बहादुर जाति के स्थलों और महलों को देखा जा सकता है जिसने उस स्थान पर, जहाँ पर मैंने निरीक्षण किया था, आत्म रक्षा के लिये अपना खून बहाया था। इसी समय मुझको अन्तिम चौहान की स्त्री इच्छिनी के बहादुर बन्धु लक्ष्मण का स्मरण आया, जिसका नाम उसके स्वामी के साथ दिल्ली के स्तूप पर लिखा हुआ है। सभी वर्णों के राजपूत सात शताब्दियों के बाद भी उसके प्रति अपना सम्मान प्रकट करते हैं और जो लोग पश्चिमी देशों से आते हैं, वे भी उसके वीरतापूर्ण कार्यों की प्रशंसा करते हैं। चन्द बरदाई ने उसके कीर्ति कलाप को छन्द बद्ध कर दिया है। इस प्रकार उसका नाम सदा के लिये अजर-अमर हो गया है।

इन टूटे हुए प्रासादों के ढेरों के बीच में खड़े होकर किसका मन पीड़ित न हो सकेगा? इन गम्भीर पत्थरों पर, जिन पर हम चल रहे हैं, उन टूटी फूटी चट्टानों के टुकड़ों पर आज जङ्गली बेलें फैल गयी हैं और जहाँ पर कभी शूर वीरों के ऊँचे झण्डे फहराये जाते थे, कितने इतिहासों की गौरवपूर्ण गाथायें छिपी पड़ी हैं? ये छत विहीन प्रासाद एक दिन छतवाले थे, जिनकी दीवारें आज विध्वंस हो चुकी हैं, वे एक दिन किले की भाँति मजबूत थीं। ये स्थल, जो आज सुनसान हो रहे हैं, एक दिन शूर-वीरों की तलवारों से गूँजा करते थे।

सूर्य के द्वारा जिस प्रकार चारों तरफ फैला हुआ अन्धकार दूर हो जाता है, ठीक उसी तरह इस प्रभावशाली प्रदेश का क्षेत्र आँखों से दिखायी पड़ने लगा। प्रत्येक क्षेत्र के अलग अलग दृश्य हैं। प्रदेशों में जितने स्थान हैं, उतने ही उनके मनोहर दृश्य भी हैं। स्थान के बदलते ही दृश्य बदल जाता है और जो नया दृश्य सामने आता है, वह अनेक प्रकार की नवीनता लिये हुए होता है। प्रत्येक दृश्य की नयी-नयी खूबियाँ देखकर चित्त प्रसन्न हो उठता है।

इन दृश्यों में सबसे पहले देलवाड़ा के जैन मन्दिर (द० ८०° प० छै मील दूरी पर), उनके पीछे अर्बुदा माता का शिखर है, फिर गुरु शिखर (उ० १५° पू० ४ मील पर), जिसके क्षेत्र की बहुत-सी चोटियाँ दिखायी पड़ीं, उन चोटियों में प्रत्येक के अपने साथ एक जनश्रुति का समन्वय है, इस प्रकार दृश्यों का आगमन आरम्भ हुआ।

तीन घण्टे तक यात्रा करने के बाद अधिक सर्दी के कारण—जबकि थर्मामीटर ६४° पर था—मुझे वह स्थान छोड़ देने के लिये मजबूर होना पड़ा। उसी समय मेरे पथ प्रदर्शक ने मुस्कराते हुए कहा—इन्द्र और पर्वत का झगड़ा बहुत पुराना है।

वहाँ से उतरने के समय मेवाड़ के शूर-वीरों का सरदार राणा कुम्भा की अश्वारोही पीतल की प्रतिमा को मैंने श्रद्धा के साथ नमस्कार किया। राणा कुम्भा के

यहाँ पर अनेक युद्धों मे अपने शौर्य का परिचय दिया था। राणा कुम्भा की मूर्ति के पास ही उसके बेटे राणा मोकल और पौत्र उन्य राणा की मूर्तियाँ हैं। उस राणा उन्य ने सैकडो राणाओ की उज्ज्वल कीर्ति पर कालिख पोती थी। इसका सहज ही मुझको स्मरण हुआ, मैं उसकी प्रतिमा के पास खडा न रह सका और अपने हृदय में एक पीडा को दबाकर उसके पास से हट गया। उसकी कायरता और भीरुता पर मेवाड के शूर वीरों का ही नही रोना पडा, बल्कि जिन शत्रुओ ने उसकी अकर्मण्यता का लाभ उठाया, उन्होंने भी उसकी भीरुता पर उसे धिक्कारा। बाबर के साथ युद्ध करने वाले राणा उन्य के पौत्र राणा साँगा ने कहा है "अगर उन्यसिंह पैदा न हुआ तो राजस्थान मे तुर्कों का राज्य कायम न होता।'

उन मूर्तियो के साथ एक चौथी मूर्ति राणा कुम्भा के पुरोहित की थी, वह देखने सुनने में सबसे अच्छी मालूम होती थी। उस पुरोहित की वहाँ पर मूर्ति क्यो थी, यह मैं समझ नही सका। लेकिन जहाँ तक मैं समझता हूँ कि उसने अवश्य ही कोई वीरता का कार्य किया होगा, जिससे उसकी प्रतिमा को यहाँ पर स्थान दिया गया। इसलिये कि ब्राह्मणो ने भी समय समय पर तलवार चलाने और युद्ध करने का काम किया है, ऐसी दशा में यदि किसी पुरोहित ने युद्ध करते हुये अपनी आहुति दी है तो निश्चय ही उसको इस प्रकार का स्थान मिलना चाहिए।

इन टूटी हुई दीवारो के बीच में जो मूर्तियाँ दिखायी देती हैं, वे इस बात का प्रमाण देती हैं कि इन वीरों ने आवश्यकता पडने पर जन्म भूमि समाज और देश की स्वाधीनता के रक्षा के लिये युद्ध किया था और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये अपने प्राणो को बलिदान किया। दुनिया में बलिदान होने वालो की पूजा होती है। इनकी भी हो रही है और जो इनकी प्रतिमाओं के सामने आता है वही नत मस्तक होकर इनको नमस्कार करता है। इस पूजा का कारण यह है कि इन्होंने अचलगढ की रक्षा के लिये अपने प्राणो को उत्सर्ग किया था। इसलिये उनकी प्रतिमाओ पर रोजाना केशर चन्दन लगाया जाता है। इन प्रतिमाओ की पूजा और आराधना उस समय तक होती रहेगी जब तक ससार म वीरों का अस्तित्व रहेगा और शौर्य के गाने गाये जायँगे।

इन मूर्तियो के सामने पूजा और प्रार्थना करने वाले उनके वशज नही हैं, उनके वशजो को तो इन त्यागो और बलिदानो का ज्ञान भी नही है। इसलिये उनके वशजो के द्वारा ये प्रार्थनायें न होकर उनके द्वारा होती हैं, जो त्याग और बलिदान का महत्व समझते हैं और वीर पुरुषो का सम्मान करना जानते हैं। यद्यपि उनका इन वीरो के साथ जाहिरा तौर पर कोई सम्बन्ध और सम्पर्क नही होता। वे यहाँ आने पर इन प्रतिमाओ के दर्शन करते हैं और उन्हे अपनी श्रद्धा की भेंट करते हैं।

इन प्रतिमाओं पर साधारण फूस के छप्पर छाये गये हैं। इन छप्परो से मूर्तियों की जो शोभा बढती है और उनकी महानता का सबक मिलता है। वह सबक

हम न मिलता, अगर इन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा संगमरमर के मन्दिर में की गयी होती।

यहाँ की प्रत्येक वस्तु में जैन धर्म की आभा है। वृषभदेव (१) का मन्दिर देखने के लायक है। इस मन्दिर की इतनी अधिक ख्याति का कारण यह है कि इसमें चौबीस तीर्थङ्करों में से उन बारह तीर्थङ्करों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की गयी हैं, जिनको देवत्व अथवा निर्वाण प्राप्त हुआ था। इनका वजन कई हजार मन बताया जाता है और इनका निर्माण सभी प्रकार की धातुओं से हुआ है। (२)

भीतरी किले के समीप बायें हाथ की तरफ पार्श्वनाथ का मन्दिर है, वहाँ पर उसकी प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी है। इस मन्दिर का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार अनहिलवाड़ा के प्रसिद्ध राजा कुमारपाल ने कराया था। वह राजा जैन धर्म का संरक्षक और जैनियों के प्रभावशाली आचार्य हेमचन्द्र का शिष्य था। मूर्ति को तैयार करने में ऊपरी कला का चित्रण किया गया है। लेकिन वास्तव में प्रतिमा के निर्माण में जिस कला का प्रदर्शन होना चाहिये था, उसका अभाव है।

दोपहर को एक बजे अचलगढ़ की तलहटी में बैरोमीटर २७° ४ और थर्मामीटर ७८° पर था। लेकिन तीन बजे बैरोमीटर २६° ६५ और थर्मामीटर ७८° जाहिर कर रहा था। दिन के ग्यारह बजे एक समझदार नौकर को भेजकर गुरु शिखर पर पारे की स्थिति देखी गयी तो मालूम हुआ कि बैरोमीटर २६° ८६° और थर्मामीटर ६८° पर था। इसके पहले जो परीक्षण किये थे, उनमें और इनमें जो अन्तर मिला, उसके सम्बन्ध में आगामी पृष्ठों में प्रकाश डाला गया है।

दिन में सर्दी बढ़ने पर जब मैं शिकार के लिए इधर उधर घूम रहा था, उसी समय राजपूतों के सैनिक बाजों की आवाज मेरे कानों में आयी। इसके थोड़ी ही देर बाद देवड़ा राजा का लवाजमा रियासती शान शौकत के साथ दिखायी पड़ा। उसके साथ झण्डे लहरा रहे थे। ढोल और बाजे बज रहे थे। वे लोग आमों के पेड़ों से घिरे हुए और देवता अचलेश्वर के मन्दिर की ओर बढ़ रहे थे। इस दृश्य का वातावरण एक नया उत्साह उत्पन्न कर रहा था। परमार राजपूतों का टूटा हुआ किला उस दिन की याद दिला रहा था, जब वह अपनी जवानी में था। उसके मस्तक पर झण्डे लह

(१) वृषभदेव और नन्दीश्वर का एक ही अर्थ है। दोनों प्रतिमा बैल की हैं, कौन जैन मन्दिर किस तीर्थङ्कर का है, यह जानने के लिए उसकी चौकी पर बने चित्र को देखना चाहिए, जैसे बैल, सर्प, शेर आदि। इसलिए कि जैन मन्दिर का प्रत्येक तीर्थङ्कर अपना अलग अलग चिह्न रखता है।

(२) इन मन्दिरों में सब चौदह मूर्तियाँ हैं। उनका वजन मिलाकर १४४४ मन बताया जाता है।

रात में और उसके नीचे युद्ध होते थे। मरने वाले मरते थे, उनको कोई कफन देने वाला न था। यह किला उस दिन को याद दिला रहा है जब रक्त की होली खेली जाती थी। अब उसके वे दिन नहीं रहे और इस किले को अब उस प्रकार के दिन देखने को न मिलेंगे, जब शत्रु और मित्र अपने हाथों में तलवारें लेकर एक दूसरे पर प्रहार करते थे और बलिदानों का महत्व बढ़ाते थे।

आबू और सिरोही का स्वामी राव श्योसिंह फिर मुझसे मिलना चाहता था। उसने इसके लिए अपना इरादा जाहिर किया। मैं इसके लिए तैयार नहीं था। न तो मैं उसे अनावश्यक कष्ट देना चाहता था और न मैं अपनी यात्रा में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न करना चाहता था। मैंने अपने इस इरादे को बड़ी नम्रता के साथ उसके सामने पेश किया। लेकिन मेरी प्रार्थना का उस पर कोई प्रभाव न पड़ा।

मैं अपने विचारों को जाहिर करने के बाद चुप हो गया था। उसी मौके पर उसके एक दूत ने आकर मुझे सूचना दी कि राव ने मुझसे मिलने के लिए इजाजत माँगी है।

इसके उत्तर में मैं कुछ कह न सका। मैं कुछ की तरफ रवाना हुआ और वहाँ पहुँचने पर मैंने देखा कि उसके समस्त जागीरदार दोनों तरफ श्रेणीबद्ध होकर खड़े हैं। मैं उनके बीच से होकर आगे बढ़ा तो देखा कि राव श्योसिंह मेरा स्वागत करने के लिए सामने आ रहे हैं।

राव श्योसिंह और उसके सरदारों ने मुझसे मिलकर इस प्रकार आलिंगन किया, *जैसे पिता और पुत्र एक, दूसरे से मिलते हैं।* सबसे मिलकर और उनका स्नेह प्राप्त करके मैं बहुत खुश हुआ। जब यह सब हो चुका तो राव ने मुझसे अपने साथ चलने और सिंहासन पर बैठने के लिए अनुरोध किया। मैंने हँसकर उसके इस सम्मान को नम्रता के साथ नामंजूर कर दिया। मेरी अस्वीकृति को सुनकर राव ने गम्भीर होकर कहा मैं अपनी वाणी और भाषा से उस व्यक्ति के प्रति अपना आभार कैसे प्रकट करूं, जिसने मेरे राज्य और मेरे सम्पूर्ण देश को कष्टों से छुटकारा दिलाया है।

राव ने फिर कहा—मैं एक सच्चे चौहान की हैसियत से जङ्गलों के भीलों के साथ रहकर जिन्दगी के दिन काटने के लिए तैयार था परन्तु जोधपुर की मातहती में रहकर जिन्दा रहने के लिए तैयार नहीं था?

मुझे इस मौके पर राव पहले से कुछ अच्छा मालूम हुआ। उसके दिल में आज किसी प्रकार की घबराहट न थी और आबू के पवित्र वातावरण में स्वतन्त्रता के सुख का वह अनुभव कर रहा था। इस समय मैंने उसके साथ कुछ देर तक बातें कीं। ये बातें उसके राज्य की भलाई के सम्बन्ध में थीं और कुछ दूसरी बातें भी थीं। मैंने राव को समझाया कि प्रजा का उत्थान कैसे हो सकता है, बेगार की प्रथा को बन्द कर देना क्यों बहुत जरूरी है, व्यापारियों को सुविधायें देना राज्य की तरफ से

क्या आवश्यक है। इस तरह की बहुत सी बातों के साथ साथ मैंने राव को समझाया कि जङ्गली जातियों को दबाने, अपने अधिकार में लाने और उनको अच्छा आदमी बनाने के लिए क्या किया जा सकता है ?

इसके बाद राव के पूर्वजों के विषय में कुछ देर बातचीत होती रही। मुझे खुशी है कि उनके सम्बन्ध में जितनी मुझे जानकारी है, उतनी उसको स्वयं अपने पूर्वजों और उनके इतिहास के सम्बन्ध में नहीं है। मेरी बातों को राव बड़े ध्यान से सुनता रहा। मुझे भी बड़ा आनन्द आ रहा था। जब बातें हो चुकी तो दोनों ओर से एक दूसरे से भिन्न होने के समय आग्रह पेश किये गये। राव ने आग्रह और अनुरोध किया कि मैं उसको कभी भूलूँगा नहीं, अपने स्वास्थ्य के प्रति कभी उपेक्षा नहीं करूँगा मैंने भी उससे आग्रह और अनुरोध करते हुए कहा कि वह अपने प्रति, अपने राज्य के प्रति और अपनी प्रजा के प्रति सदा ईमानदार और उदार रहेगा।

अब हम दोनों के विदा होने का समय उपस्थित हुआ दोनों ने एक दूसरे की तरफ मुस्कराते हुए देखा। उसी समय राव और उसके सारे सरदारों ने एक साथ, एक स्वर से मेरा अभिनन्दन किया। उन सबके अभिनन्दन की आवाज से मेरा मन और मस्तिष्क गूँज उठा।

इसके बाद अपने सरदारों के साथ मुझसे बिदा हुआ। जब वे लोग आबू के ढाल पर से उतर गये तो मैं भी उस स्थान से लौटा और वापस आते हुए अचलेश के मन्दिर पर एक बार जाने और वहाँ के महन्त से मिलने का इरादा किया। मुझे उस मन्दिर से और महन्त से स्नेह हो गया था और उस महन्त ने मुझको भी अपना शिष्य मान लिया था। वहाँ पहुँचने पर और मुलाकात करने पर मैंने महन्त को कुछ चीजें भेंट में दी। उन्हें पाकर वह बहुत प्रसन्न हुआ।

मुझे अब इस स्थान से देलवाड़ा के लिए रवाना होना था। लेकिन अग्निकुण्ड और उसके आस-पास के मनोरञ्जक स्थानों और पदार्थों को देखने में इतना अधिक समय लग गया कि मैं वहाँ से रवाना होकर शाम होने के समय तक भी अपने स्थान पर पहुँच न सका। रास्ता अच्छा नहीं था। इतना अधिक ऊँचा नीचा था कि जो लोग इस प्रकार के मार्ग पर चलने के अभ्यासी नहीं हैं उनको बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

बादलों का वातावरण होने के कारण मौसिम अच्छा न था। कुछ सर्दी से जुकाम हो गया था और शरीर भारी हो रहा था। ऐसी हालत में मुझको स्वप-वाहन की सहायता लेनी पड़ी। यात्रा समाप्त होते होते हमको एक मील के आस पास चक्कर लगाना पड़ा। उस झील के किनारे कनेर और सफेद गुलाब के फूलों की अधिकता

बड़ी संख्या में धारा और न यात्री इसको देखने के लिए आते हैं। इसके निर्माता का नाम विमलशाह था उसने इस मन्दिर को बनवाकर अमर कीर्ति प्राप्त की है। वह अनहिलवाड़ा का प्रसिद्ध व्यापारी था और अनहिलवाड़ा भारत का एक प्रसिद्ध नगर एवम् जैन धर्म का केन्द्र था। इस नगर के अन्तिम दिनों की बात यह है कि जब यह मन्दिर बन चुका और उसकी इमारत सबके सामने आयी, उस समय मन्दिर की और उसके निर्माता की ख्याति पैनकर पृथ्वी से लेकर आकाश तक पहुँच गयी, जैसा कि उस समय के भाट कवियों ने उसके सम्बन्ध में कहा—उसने अपने नश्वर धन से इस मन्दिर को बनवाकर अमर कीर्ति प्राप्त की। लेकिन इस मन्दिर की नीवें जब खड़ी हुई और उनके निर्माण का कार्य तेजी से चल रहा था, उन्हीं दिनों वे पश्चिमी भारत की राजधानी नष्ट कर दी गयी वहाँ के सारे व्यापारियों को लूट लिया गया और उनकी समस्त सम्पत्ति आक्रमणकारियों के अधिकार में चली गयी। इमारत के पहले यह स्थान कट्टर शिव और वैष्णव लोगों के अधिकार में था वे धर्मावलम्बी किसी विरोधी मतवाले के प्रति सहानुभूति और सहनशीलता रखना नहीं जानते थे। लेकिन नहरवाला के साहूकारों ने बुद्धिमानी से काम लिया उन्होंने आबू के किसी अन्य स्थान की अपेक्षा इसी स्थान को अधिक महत्व दिया और अपनी सम्पत्ति के बल पर सफलता प्राप्त करने का निश्चय किया।

कहा जाता है कि उन साहूकारों का यह निश्चय धर्म का निश्चय था। उनके इस निश्चय की विजय धन की विजय थी और उनकी इस विजय के लिए स्वयं लक्ष्मी का आगमन आरम्भ हुआ। उस समय इतनी अधिक सम्पत्ति एकत्रित हो गया कि उन्होंने अपनी भूमि को चाँदी के सिक्कों से पाट देने की स्वीकृति दी। सम्पत्ति का प्रलोभन साधारण नहीं होता। शिव और विष्णु के भक्तों के अभिशाप का डर भुलाकर परमार राजा ने जैन साहूकारों से अगणित रुपये लिए। उस राजा का नाम कहीं पर स्पष्ट नहीं किया गया। लेकिन मन्दिरों के निर्माण की तिथियों से प्रकट होता है कि यह वही देवताओं का शत्रु धारावर्ष था, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

कहा जाता है कि यह सफलता लक्ष्मी की कृपा से प्राप्त हुई। साहूकारों ने भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करने में कमी नहीं की और उन्होंने दरवाजे पर दाहिने हाथ की ओर एक सुन्दर ताक में लक्ष्मी की मूर्ति को प्रतिष्ठित करके अपनी कृतज्ञता का परिचय दिया।

वृषभदेव का यह जैन मन्दिर एक समतल भूमि पर बना हुआ है। उस स्थान की लम्बाई पूर्व से पश्चिम एक सौ अस्सी फीट और चौड़ाई एक सौ फीट है। विमलशाह (१) के द्वारा निर्मित इस मन्दिर के भीतर चारों तरफ किनारे किनारे कोठरियाँ बनी हुई

(१) विमलशाह गुजरात के राजा भीमदेव सोलंकी का मंत्री था, उसी ने यह

है। लम्बाई की तरफ उन्नीस उन्नीस और चौड़ाई की तरफ दस दस कोठरियाँ हैं। प्रत्येक कोठरी की लम्बाई, चौड़ाई बराबर है। इन कोठरियों के बीच की दीवारों के रूप में दो दो खम्भे बने हुए हैं। उन पर बनी हुई छत ढालू है। प्रत्येक कोठरी के प्रवेश द्वारा के सम्मुख एक ऊंची वेदी का निर्माण किया गया है, उसमें चौबीस जिनेश्वरों में से एक-एक की मूर्ति स्थापित है। दो दो खम्भों के मध्य में खूबसूरत मेहराबें हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण मन्दिर साफ और श्वेत संगमरमर पत्थर का बना हुआ है।

मन्दिर के भीतर प्रत्येक कोठरी, खम्भे, छतरी और वेदी की बनावट अजीब सजावट और कारीगरी के साथ की गयी है। उसके निर्माण में जो कला और कारीगरी देखने को मिलती है वह असाधारण है। मन्दिर में सब मिलाकर अट्ठावन कमरे हैं। उन सभी का निर्माण अनोखे ढङ्ग से किया गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि एक एक कमरे को समझने और पूरे तौर पर उसका अध्ययन करने के लिए एक दिन की जरूरत है। मन्दिर में कितने कमरे हैं और सम्पूर्ण मन्दिर के अध्ययन के लिए कितने दिन चाहिए, इसी से मन्दिर के विस्मयपूर्ण चमत्कार का अनुमान लगाया जा सकता है।

मन्दिर में विशेषतायें अनेक और विभिन्न प्रकार की हैं। मुझे बताया गया है कि मन्दिर के विभिन्न कोठों और कमरों का निर्माण अनेक नगरों के विभिन्न जैन मतावलम्बी सम्पत्तिशाली व्यक्तियों ने कराया है। यही कारण है, उनमें सभी कोठों और कमरों की शैली में विभिन्नता है। परन्तु सम्पूर्ण मन्दिर का भली-भाँति निरीक्षण करने पर आसानी से समझ में आता है कि उसकी प्रारम्भिक योजना किसी एक ही विशेषज्ञ के द्वारा बनी है। जो कुछ भिन्नता है, वह थोड़ी बहुत दक्षिण पश्चिम कोन पर है। हो सकता है उसका निर्माण किसी नयी योजना के द्वारा हुआ हो। मन्दिर का निर्माण काल प्रत्येक दरवाजे की देहली पर खुदा हुआ है।

हम उस चौक में उतरे हैं, जो चौकोर पत्थरों से जड़ा हुआ है। उसको पार करने पर वृषभदेव के मन्दिर के सामने सभा मण्डप पड़ता है। शैव मन्दिरों में इस स्थान पर बैल अथवा नन्दी की मूर्ति बनी होती है और उसका प्रमुख देवता (शिवलिंग) भीतर के किसी स्थान पर स्थापित किया जाता है। जिसने पुजौलो के ज्यूपिटर सेरापिस (१) के मन्दिर की मूर्तिकला को ध्यानपूर्वक देखा है, उसमें शैव मन्दिरों को कोई

मन्दिर वि० सं० १०८८, सन् १०३१ में बनवाया था और इसके लिए उसने यह जगह आबू के परमार राजा धंधुक से ली थी।.. सिरोही राज्य का इतिहास पृ० ६१।

(१) ग्रीक लोगों ने मिश्र के (एपिस) और (आसिरिस) देवताओं के गुणों को मिलाकर इस देवता की रचना की है। वह देवता उपज का देवता माना जाता है।

भी बात छिपा हुई नहीं है। जैनियों के मन्दिरों में सजावट की कोई विशेष सामग्री
नहीं होती। भक्त लोग अपने अनुकूल आवश्यक सामग्री की व्यवस्था कर सते हैं। इस
मण्डप के ऊपर चौबीस फीट व्यास की एक छतरी है, उसका आधार उसके नीचे के स्तम्भ
हैं। ये स्तम्भ चौवार बने हुए हैं। भीतर के ये सब दृश्य उसी समय देखने में आते हैं,
जब उसके भीतर जाकर देखा जाता है। बाहर से एक अण्डाकार गोला सा ही दिखाई
देता है। उसका भार एक आधार पर टिका हुआ है, जो आड़ा बना है। प्रत्येक दो स्तम्भ
एक तोरण के साथ सम्बन्ध रखते हैं और उस तोरण की आकृति तथा बनावट एक विशेष
प्रकार की सुन्दरता लिये हुए है। उस पर बहुत अच्छा काम किया गया है।

पूर्व, उत्तर और दक्षिण की तरफ से लम्बे मण्डप को रविश के स्तम्भों म
मिलाते हैं और इस प्रकार मिलकर वे सब मंदिर के एक अङ्ग की पूर्ति करते हैं।
स्तम्भों के बीच के स्थान पर जो छतें हैं वे चपटी और गुम्बद की शक्ल म हैं। व यहो
छत म जाकर मिल जाती हैं। इन सबका निर्माण दर्शकों का अपनी ओर आकर्षित
करता है।

उनके भीतर सतह के सुन्दर स्थानों पर रामायण, महाभारत और दूसरे ग्रन्थों
की बहुत सी पंक्तियाँ लिखी हुई हैं। व सभी पंक्तियाँ दर्शकों के दिल म बहुदेवता और
बहुदेवतावाद के प्रति आस्था और विश्वास उत्पन्न करती हैं। उसके दूसरी तरफ राम
करने वाली गोपियों स घिरे हुए फूलों और मालाओं से सजे हुए कन्हैया की मूर्ति अपनी
कारीगरी के साथ दर्शकों के देखने म आती है।

वृषभदेव के मन्दिर मे जाने के लिए छोटी छोटी सीढ़ियां की पंक्तियाँ हैं। ये
तीन भागों मे विभाजित हैं। अर्थात स्तम्भों की रविश, भीतर का दालान और तीर्थङ्कर
का मन्दिर। यहाँ पर पूजा के लिए एकत्रित विभिन्न और विविध प्रकार के उपकरण
एकत्रित हो जाते हैं। इसलिए जो यात्री केवल कला का निरीक्षण करना चाहता है,
उसको यह उपकरण अपनी तरफ आकर्षित नहीं करते।

मन्दिर के भीतर जाने के समय सबसे पहले मैंने संगमरमर की बनी हुई दो
शिलायें देखी। उसमे एक शिला पर वहाँ का एक भक्त केसरियानाथ पर चढ़ाने के
लिए केसर का एक सुन्दर उबटन तैयार कर रहा था केसर के द्वारा ही केसरियानाथ के
नाम की प्रसिद्धि हुई है। भक्त लोग पहले उसके पास पहुँच कर श्रद्धापूर्वक प्रार्थना करते
हैं, फिर मूर्ति को स्नान कराते हैं और फिर धूप के बाद वे लोग अपने इस देवता को
केसर अर्पण करते हैं।

उसके विशाल और विस्तृत प्राङ्गण मे पहुँचने के साथ ही मैंने उस चित्र को

उसकी मूर्ति दाढ़ीदार और सिर पर एक टोकरा लिए है। इस देवता की पूजा का प्रमुख
स्थान अनेकवेरिएदूपा में था।

देखा, जिसने मुझको अपने तम्बू के भीतर लेटने के लिये उदारता और आग्रह प्रकट किया था, वह उस समय अपने देवता की मूर्ति के सामने बैठा हुआ ध्यान मग्न हो रहा था। उसकी कमर में धोती का एक फेटा था और उसके शेष शरीर पर कोई कपड़ा न था। वह अपने दाहिने हाथ से देवता को धूप दे रहा था, उस धूप में गोंद, राल और कुछ अन्य उपयोगी चीजे थी। वे सब मिलकर जल रही थी। उसके मुख पर चारो तरफ से लपेटी हुई कपड़े की एक पट्टी थी उसको वह अपने मुख और नाक पर इस-लिए लपेटे हुए था कि जिससे उसकी अपवित्र श्वास निकल कर देवता की तरफ न आ सके। उसका यह भी अभिप्राय हो सकता था कि पूजा के समय उसके मुख और नाक से निकली हुई साँस के द्वारा किसी कीटाणु की मृत्यु न हो जाय, इसलिए कि ऐसा होने स जो पाप होगा, उसका दण्ड भुगतना पड़ेगा और देवता क अभिशाप का अधि-कारी बनना होगा।

उन मित्र ने मुझे देख लिया था और पहचान भी लिया, लेकिन वह देव मूर्ति की आराधना के समय कोई बाधा नहीं उत्पन्न होने देना चाहता था। इसीलिये वह ध्यान मग्न बना रहा, उसके मुख मण्डल पर शांति पूर्ण एक शोभा थी। वह उसके मनोभावो मे भरी हुई शांति का स्पष्ट परिचय दे रही थी।

मन्दिर के भीतर क दालान मे विभिन्न प्रकार की मूर्तियाँ थी और प्रत्येक मूर्ति क निकट पीतल के घन्टे लग हुए थे। उन घन्टो का पूजा और अराधना के समय बजाया जाता था। वहीं पर एक तरफ लोहे की एक बहुत बड़ी पेटी रखी हुई थी।

मन्दिर म एक ऊची वेदी पर ऋषभदव की विशाल मूर्ति स्थापित थी, वह सात धातुओं के द्वारा बनायी गयी थी। धातु निर्मित होन क कारण वह स्फटिक के रूप मे अत्यन्त आकर्षक थी। उसके ललाट में बीचों बीच एक अत्यन्त कीमती हीरा लगा हुआ था। उस मूर्ति क ऊपर एक बहुमूल्य सुनहरी जरी का चन्दवा बना हुआ था और सामने धूपदाना में धूप तैयार की जा रही थो।

इस प्रकार इस भव्य मन्दिर म अध्ययन के लिये एक अपार सामग्री है। परन्तु वह सामग्री सभी क लिए समान रूप मे आकर्षक नही है। दर्शकों भक्तों और यात्रियों के दृष्टि कोण अलग अलग होते हैं। जो यात्री कला के अध्ययन के लिए इन मन्दिरो में आते हैं, उनका सम्बन्ध यहाँ की अन्य अगणित बातों के साथ नहीं रहता। उनका ध्यान अपनी आवश्यकता और सिद्धात पर केंद्रित रहता है। यही बात सम्पूर्ण मन्दिर क सम्बन्ध म है। मेरी स्थिति अन्य यात्रियो से भिन्न है। मुझे ता मनुष्य की अथवा उसकी कारीगरी की कोई भी विशेषता सहज ही अपनी ओर आकर्षित करती है। मैं ता उस प्राचीन काल के मनुष्य जीवन के एक एक जर्रे का अध्ययन करना चाहता हूँ। जब इन मन्दिरो का निर्माण हुआ था। यहाँ पर आने के पहले मैंने बहुत कुछ सुन

रखा था और जो कुछ सुना था, उन्हीं के आधार पर यहाँ पर आने और इन देव मन्दिरों के दर्शन करने की बड़ी अभिलाषा उत्पन्न हुई थी परन्तु यहाँ पहुँचने के बाद मेरी मानसिक परिस्थिति में बड़ा परिवर्तन हो गया है। मेरे अन्तरतर में जो उत्सुकता थी, वह यहाँ आने पर खो गयी है। मैं अपनी मानसिक स्थिति के विवेचन में भी अपने को असमर्थ पाता हूं। यहाँ पर अगर धूप का धुआं, घृत से भरे हुए दीपकों का प्रकाश, मन्दिर के भीतर का दूषित वातावरण, केसरियानाथ की भयानक और आकर्षणहीन मूर्ति—इन सबके सामने मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मैं यमलोक में आ गया हूँ और जमराज की मूर्ति की तरह केसरियानाथ के सामने खड़ा हूं।

कुछ समय तक विक्षुब्ध रहकर मैंने अपने कुतूहल को शान्त किया और शुद्ध वायु को प्राप्त करने के अभिप्राय से मैं बाहर निकल आया। मैंने चारों ओर प्रकृति के वृक्षों की हरियाली को देखा और उनसे जो मुझे स्वस्थ वायु प्राप्त हुई, उससे मुझको बड़ी शान्ति मिली।

वृषभदेव के दाहिनी तरफ चौक के दक्षिण-पश्चिम कोने में एक विशाल कमरे में देवी को स्थापित करके अनहिलवाड़ा के साहूकार ने अपना नाम अमर बनाने के साथ-साथ देवी के प्रति अपनी भक्ति भी प्रकट की है। उसके पास के कोठे में अत्यन्त प्रसिद्ध बाईसवें जिनेश्वर नेमिनाथ—जो अरिष्ट नेमि अथवा श्याम भी कहे जाते हैं—स्थापित हैं। यह मूर्ति—जो बहुत बड़ी और तीर्थङ्कर के समान है—एक सगमरमर के पत्थर की बनी हुई है। सगमरमर का यह पत्थर डूंगरपुर की खान से प्राप्त हुआ था।

यहाँ से चलकर हम एक चौकोर कोठे में पहुँच गये। उसकी छत कई एक खम्भों पर टिकी हुई है। इस कोठे के दरवाजे पर वृषभदेव की तरफ मुंह किये हुए मन्दिर के निर्माता की अश्वारोही मूर्ति है। वह एक पुरुष की ऊंचाई से भी बड़ी है। उसके पीछे उसका भतीजा बैठा हुआ है और उसके ऊपर एक छाता लगा हुआ है जो उसके गौरव का परिचय देता है। वृद्ध साहूकार की पोशाक बड़ी भद्दी-सी मालूम होती है। उसके सिर पर पश्चिमी भारत के सरदारों की तरह मुकुट के समान कोई चीज मालूम होती है। उसका भतीजा कोई चीज उसको दे रहा है। ऐसा मालूम होता है कि भतीजे के हाथ में इस विशाल मन्दिर के बनवाने के हिसाब का गोल गाल कागजों में लपेटा हुआ एक डण्डा है। कदाचित उसी को वह उसे दे रहा है।

उस निर्माता के चारों तरफ मूर्तियाँ थीं और उनकी संख्या दस थी, वे मूर्तियाँ हाथियों के साथ थीं और उन पर बैठे हुए सवारों तक प्रत्येक मूर्ति की ऊंचाई छै फीट थी ये मूर्तियाँ सगमरमर की बनी हुई हैं। यहाँ के लोगों का कहना है कि ये मूर्तियाँ मोरप के उन राजाओं की है, जिनको विमलशाह ने सम्पत्ति देकर यह शपथ दिलाई थी कि वे कभी भी इस मन्दिर और यहाँ के देवताओं का असम्मान नहीं करेगें और उन

राजाओ ने शाह से इस प्रकार सम्पत्ति लेकर इस मन्दिर और उसके देवताओं का सदा सम्मान करने के लिए वचन दिया था।

कहने वालों ने योरप के उन राजाओं की संख्या बारह बतायी। उस समय मैंने उन लोगो से कहा कि योरप के उन राजाओ की संख्या बारह तो उस दशा में होती हैं, जब उनकी मूर्तियों के साथ विमलशाह और उसके भतीजे की भी गिनती कर ली जाय और यदि उन राजाओ मे शाह एवम उसके भतीजे को न गिना जाय तो वे दस ही रह जाते हैं। मेरी इस बात को सुनकर उन लोगो को बड़ा आश्चर्य हुआ। इस लिये कि यहाँ पर इसके सम्बन्ध में फैली हुई जन श्रुति म उन राजाओं की संख्या बारह बतायी जाती है।

इसके बाद मैंने उन लोगों से फिर कहा कि योरप के इन नास्तिक राजाओ के चार चार हाथ हैं। यह सुन कर उन लोगों के विस्मय का ठिकाना नही रहा। ऐसी दशा मे उन लोगों ने साहूकार और उसके भतीजे को उन राजाओ में शामिल नहीं किया कि साहूकार न तो राजा था और न उसके चार हाथ थे। अब उन लोगा की जन श्रुति का प्रश्न हमारे सामने रह जाता है। वह सही है, इस पर विश्वास करने के लिये उन लोगो ने बड़ा जोर दिया। उनका इस पर दृढ़ विश्वास इसलिये था कि योरप के उन राजाओं के सम्बन्ध में शताब्दियो से यह विश्वास यहाँ के लोगों का चला आ रहा है, इसलिये वह जन श्रुति झूठी नही हो सकती

मैं इस किम्वदन्ती पर किसी प्रकार अविश्वास करने की बात नही सोचता। योरप के राजाओ ने सोना लेकर इस साहूकार से सम्भव है कि ऐसा वादा किया हो। यद्यपि ऐसा करना मूर्ति-पूजन में शामिल है और मूर्ति पूजकों को नास्तिक माना गया है। लेकिन मूर्ति पूजा पहले योरप के देशो में थी। इसलिए इस जन श्रुति को निराधार होने का एक ही कारण हो सकता है कि इस पर विश्वास करने वाले योरप के उन राजाओ की संख्या बारह कह रहे थे। लेकिन जब मैंने उनको समझाया तो आसानी के साथ उन्होंने मान लिया और साहूकार तथा उसके भतीजे को अलग कर लेने पर उनकी संख्या दस रह गयी। शताब्दियों से इस जन-श्रुति पर लाखों आदमियों ने विश्वास किया। इसलिये यह आसानी के साथ कहा जा सकता है कि लाखो मनुष्यों का विश्वास क्या झूठा हो सकता है। लेकिन साधारण समझ से जो अगर काम लिया जाय तो सच्चाई के नाम पर जन श्रुतियों का महत्व मालूम हो जायगा। इन बारह राजाओ के सम्बन्ध में जो जन श्रुति प्राचीन काल से चली आयी है, उस पर अपने अंध-विश्वास के कारण यहाँ तक यकीन किया कि शताब्दियों से लेकर आज तक किसी ने आँखें खोलकर उनको देखा भी नहीं और छै फीट ऊँची सगमरमर की दस मूर्तियों को वे बारह मूर्तियाँ मानते रहे। अधविश्वास कितना झूठा होता है, इसके लिए इससे बड़ा प्रमाण और क्या चाहिए ?

काई भी जन-श्रुति इतिहास की घटना नहीं हो सकती। जहाँ कहीं उसका उल्लेख करना पड़ता है तो उसके साथ ही किम्वदन्ती अथवा जन श्रुति को जोड़ दिया जाता है। समस्त जन-श्रुतियाँ गलत और निराधार होती हैं, यह भी नहीं कहा जा सकता लेकिन जिनको सत्य की खोज करनी होती है, उनको आँखें खोल कर देखना पड़ता है और समझ से काम लेना पड़ता है। वे कहीं लिखी नहीं जाती और जो चीजें लिखी हुई मिलती हैं, प्राय उनमें भी अतिशयोक्ति और भावावेश मिलता है। शताब्दियों से जो चीजें जबानी चली आ रही हैं। वे अपनी मौलिकता को मिटाती हुई इतने समय के बाद कितनी सही रह सकती हैं, इस पर निष्पक्ष होकर विचार किया जा सकता है।

इस जन श्रुति के सम्बन्ध मे लोग आपस में बातें करते रहे और दूसरे दिन सवेरा होने के बाद मेरे सामने उसके सम्बन्ध में एक नया विश्वास लोगों ने आकर प्रकट किया, उनका कहना था कि योरप के वे बारह राजा सहूकार के पारिवारिक लोगों में खप गये। उनकी इस बात को सुनकर मैंने कहा—

''मालूम होता है कि यह घटना साहूकार की कोई पौराणिक कथा है और उस कथा में साहूकार की उत्पत्ति राजपूतों की चौहान शाखा से मानी है, क्योंकि उनके देवता चतुर्भुज हैं और साहूकार को उनके बीच में इसलिए रखा गया है कि उसने उसके वंश में एक महत्वपूर्ण धार्मिक कार्य किया है।'

मैंने अपनी यह बात बड़ी गम्भीरता के साथ उनसे कही। वे लोग भी बहुत सावधान होकर सोचने लगे और फिर मेरी बात का उत्तर देते हुये उन लोगों ने बड़ी गम्भीरता के साथ कहा—''भगवान जानें।'

उनके इस उत्तर को सुनकर मुझे हँसी आ गयी। वे लोग बड़े सीधे सादे थे और उनमें भोलापन था। उस जन श्रुति पर विश्वास करने वालों ने यह भी नहीं सोचा कि मनुष्य के चार हाथ नहीं होते और जब योरप के वे राजा मनुष्य थे तो उनके चार हाथ कहाँ से आये। अंध विश्वास कितना खतरे का होता है। जिनको वे लोग योरप के राजा कहते थे, वे कदाचित् किन्हीं देवताओं की मूर्तियाँ थीं और इसीलिये उनके चार हाथ मूर्तियों में बनाये गये थे। यहाँ के लोग इन मूर्तियों को योरप के राजा कैसे कहने लगे, यह समझ में नहीं आया।

इसका कुछ भी आधार हो, एक तुर्क को इन मूर्तियों के साथ कोई सहानुभूति नहीं थी, उसने अपने आक्रमण के समय इन मूर्तियों के चारों हाथों को तोड़ दिया। और उनके अधकटे हाथों को छोड़ दिया। उन टूटे हुए हाथों से पता चला कि इन मूर्तियों के चार चार हाथ बनाये गये थे। लेकिन यहाँ के लोगों ने उनके इन अधकटे हाथों पर कभी विचार नहीं किया। यह उनके अन्धविश्वास का परिणाम है।

मन्दिर निर्माता की अश्वारोही मूर्ति के पीछे कुछ फीट ऊँचा एक स्तम्भ है।

वह सगमरमर की तीन सीढ़ियों पर बना है। उस स्तम्भ के तीन खण्ड हैं। एक के बाद दूसरा पहला है। इस स्तम्भ में बहुत-से ताक (आले) बने हुए हैं। प्रत्येक आले में ध्यान-मग्न जिनेश्वर की मूर्ति है। इस प्रकार के स्तम्भ प्रायः सभी जैन मन्दिर मे पाये जाते हैं।

दिल्ली का कुतुबमीनार इसकी कुछ बातों की उपमा में आ सकता है। इस्लामी कारीगरों ने उसके निर्माण में अपनी श्रेष्ठ कला का परिचय दिया है। चित्तौर के पहाड़ पर भी इसी प्रकार का एक स्तम्भ है। उसकी ऊँचाई अस्सी फीट है और उस पर भी इसी प्रकार की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। उसमें सबके ऊपर एक खुली हुई गुम्बद बनी है। वह खम्भो के ऊपर रखी गयी है। वहाँ के शिला-लेखों की नकलें जरूर मैंने अपने पास रखी हैं और उनके अनुवाद भी किये हैं। उन शिला-लेखों में एक म राणा कुम्भा के उस समय का वर्णन है, जब उसको मेवाड़ से निकाला गया था। उस समय उसने परमार राजपूतो के उजड़े हुए किला पर सूर्यवंशी राजपूता का झण्डा फहराया था।

यहाँ के एक एक पत्थर मे इतिहास की अपूर्व सामग्री है। लेकिन उसका प्रयोग करने के लिये यह बहुत आवश्यक है कि उनके सम्बन्ध की प्राचीन घटनाओ की अच्छी जानकारी हो। इसके अभाव में उसका कोई उपयोगी प्रयोग नही हो सकता।

साहूकार के कामों का पूरा अध्ययन करने के लिए एक महीने का समय आवश्यक था। लेकिन मेरे पास इतना समय नही था। इसलिये कि इसी प्रकार के और भी कितने ही महत्वपूर्ण स्थान थे, जहाँ पर पहुँचना मेरा अत्यन्त आवश्यक था। इसीलिये यहाँ का जरूरी अध्ययन किसी प्रकार पूरा करके मैं अपनी यात्रा म आगे बढने की चेष्टा में था।

चौक क आगे कुछ सीढ़ियों पर चढ़कर सब से प्रसिद्ध तेईसवें जिनेश्वर पार्श्वनाथ के मन्दिर म गये। यह अपनी अनेक अच्छाइयों में दूसरे मन्दिरो से अधिक ख्याति रखता था। इस मन्दिर का निर्माण भी जैन धर्म के विश्वासी तेजपाल और बसन्तपाल नामक वैश्य भाइयो ने करवाया है। वे दोनों भाई धारावर्ष के राज्य में चन्द्रावती नगरी के रहने वाले थे। उन दिनो मे भीमदेव पश्चिमी भारत का एक मात्र शासक था और उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी।

इस समय में जिस मन्दिर में पहुँचा, उसका नकशा और उसकी सजावट बनावट पूर्ण रूप से वृषभदेव के मन्दिर की तरह की है। लेकिन कुछ बातो मे यह उससे उत्तम भी है। सब से पहली बात यह है कि इसके निर्माण में बड़ी सादगी म काम लिया गया है। इसके खम्भे कामदार हैं और अधिक ऊँचे हैं। भीतर की तरफ छत में बड़ी कारीगरी का काम किया गया है और इस अर्थ में इसकी श्रेष्ठता को सभी स्वीकार करते हैं।

इसके गुम्बद का व्यास भी दो फीट अधिक अर्थात् छब्बीस फीट है। संगमर-मर के वजनी भार पट्ट लगभग पन्द्रह फीट लम्बे हैं और ऊपर के रखे हुए भारों के मुकाबिले में ठोस तथा वजनदार हैं। यहाँ के खम्भों की पंक्ति ठीक उसी प्रकार की है, जैसी कि पहले लिखी जा चुकी है और पहले के मन्दिर की तरह इसमें भी बीच-बीच में स्तम्भ हैं और उनका सिलसिला चौक तक चला गया है।

बीच की गुम्बद और इसके आस पास की छतरियों पर जो कारीगरी की गयी है, उसकी विचित्रता इतनी अपार है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। इसकी छत सुदृढ़ और विशाल है और ऐसे ढंग से उसका निर्माण किया गया है जिसको लिखना और बता सकना साधारण काम नहीं है। इसलिए उसकी इस कारीगरी के सम्बन्ध में इतना लिखना ही काफी होगा कि उसकी उपमा गॉथिक गिरजाघरों की ऊंची दीवारों में उभरी हुई चोटियों के साथ दी जा सकती है। लेकिन वहाँ के गिरजाघरों की कारीगरी में कोई फूल पत्तीदार ऐसी रचना नहीं है, जो इस मन्दिर की उपमा में अधिक महत्व रखती हो।

छत में लटके हुए तीन तीन फीट लम्बे बेलन की तरह के लटकन हैं और छत के जिन मुकामों पर वे लटके हुए हैं, वहाँ की शोभा देखते ही बनती है। वह कई अर्थों में बड़ी आकर्षक है। यहाँ के अर्द्ध गोलाकार गुम्बद बराबर के भागों में बटे हुए हैं। उनके बीच के स्थानों में भी कुशल कारीगरी के नमूने हैं। एक भी भाग में मदिरा की गोष्ठी को चित्रित किया गया है। उसमें बैठे हुए सभी लोग मदिरा के नशे से मतवाले होकर आनन्द विभोर हो रहे हैं। उस उत्सव में सभी प्रकार के लोग शामिल हैं। सम्पत्तिशाली बसन्त के इस उल्लास में अपनी लक्ष्मी का ध्यान भूल गये हैं और अपने धन को जल की तरह खर्च कर रहे हैं।

एक दूसरे विभाग में विभिन्न प्रकार की मालायें बनी हुई हैं, उनमें फूलों, फलों और पक्षियों को अंकित किया गया है। यह चित्रण भी बहुत स्पष्ट है। इसी विभाग में अनेक शूरवीरों के चित्र भी दिखाये गये हैं। प्रत्येक के हाथ में तलवार है। इन शूरवीरों में कदाचित् एक अनहिलवाड़ा का राजा भी है। इसके बाद हमारा ध्यान वहाँ के तोरण की तरफ जाता है। वह देखने में अत्यन्त मोहक है और देखने में समुद्री परियों-सा मालूम पड़ता है।

अब हम मण्डप की तरफ से चलकर मन्दिर की ओर आते हैं। सौंदर्य घर पर हम दालान में पहुँचे। उसमें दाहिने और बायें एक-एक आला बना हुआ है और प्रत्येक आला ऐसे ढंग से बनाया गया है कि उसका आधा भाग दीवार के भीतर है और आधा भाग बाहर की तरफ है। वहाँ का धरातल वेदी के रूप में बना हुआ है और उस स्थान के छोटे छोटे खम्भे एक अत्यन्त सुन्दर कामदार चन्दोवा को अपने ऊपर रखे हैं। उनकी बनावट बहुत साधारण है। परन्तु उसकी सादगी में आकर्षण है।

सादगी को इस छवि को कोई भी आसानी से कहीं अन्यत्र देख न सकेगा। छैनी का काम इतनी खूबसूरती के साथ किया गया है कि जो देखने में मोम में ढला हुआ मालूम होता है।

कहा जाता है कि इन आलों के बनाने मे सवा लाख रुपय खर्च किये गये हैं। इन आलों को बनवाने वाला वहाँ का एक धनिक है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उन दिनों में यहाँ के धनवानों की हालत कितनी अच्छी थी। वहाँ पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित है। उनका चिह्न सर्प है। पूजा की सामग्री यहाँ पर भी वही है, जो पहले लिखी जा चुकी है। यहाँ पर भी हमको केशर का अपण, घी से भरे हुए दीपक, धूप मूर्ति के माथे पर हीरा और चाँदी की मूर्ति देखने को मिलती है।

अब हम उस चौक मे आते हैं, जो मन्दिर के चारा तरफ है। इस चौक का क्षेत्रफल लगभग उतना ही है, जितना पहले वाले चौक का। शायद ही कुछ अधिक हो। दोहरे खम्भो की रचिना भी उतनी ही मोहक है, परन्तु इसके खम्भों मे सादगी अधिक है। उसकी छत में अच्छी कारीगरी का काम किया गया है। मन्दिर की सभी छतें मिलाकर नब्बे से कम नहीं हैं। उनमे आज भी काम जारी है। छत के भीतरी भाग मे देवियों, देवताओ, किन्नरो और शूरवीरो के चित्र दिखाये गये हैं। उनके साथ-साथ जहाज भी देखने को मिलते हैं। यहाँ के निर्माताओं ने जहाजो के द्वारा समुद्री व्यापार करके अपरिमित सम्पत्ति एकत्रित की थी। उन दिनो में अनहिलवाड़ा का बड़ा गौरव था। यहाँ के सारे व्यापारिक स्थानो का वह केन्द्र था और आस पास के सभी पड़ोसी राज्यो में वहाँ का व्यापार जहाजों के द्वारा होता था। पड़ोसी राज्यों का व्यापारिक माल इसी नगर में उतरता था और वहाँ से हिन्दुस्तान के दूसरे नगरों मे जाता था।

इसी समय मेरे सामने एक दूसरी परिस्थिति आयी। यहाँ जो जहाज दिखाये गये थे, उसमे ग्रीक देवतापन (१) का चित्र बना हुआ था। इस देवता के शरीर का आधा भाग बकरे की तरह बना था और उसके मुँह म एक बाँसुरी थी। पूर्व की तरफ के खम्भो के बीच में अच्छी सजावट की गयी है। वहाँ पर हाथियों का एक जलूस चित्रित किया गया है। उन पर सवार बैठ हैं और बहुतों पर गाने बजाने का समान भी मौजूद है। हाथी का चित्रण एक ही सफेद संगमरमर के पत्थर पर किया गया है। उसकी बनावट मामूली है और उसकी ऊचाई चार फीट है। सामने की तरफ एक स्तम्भ है। यह ठीक उसी प्रकार का है, जैसा कि पहले मन्दिर में देखा था।

यहाँ पर बहुत से कोठे हैं और प्रत्येक कोठे की वेदी पर किसी-न किसी जिनेश्वर की मूर्ति रखी हुई है। प्रत्येक मूर्ति लगभग चार फीट की है। यहाँ पर जितने

(१) ग्रीक चरागाहों का देवता, जो आर्केडिया मे पूजा जाता है।

कोठे हैं, उन सब की वेदियों पर इसी प्रकार जिनेश्वरों की मूर्तियाँ स्थापित हैं। इनकी स्थापना बड़ी सुन्दरता के साथ की गयी है।

इन मंदिरों में विशेषतायें अनेक हैं और वे सभी एक दूसरे से भिन्न हैं। आवश्यक तो यह था कि उनके वर्णन पूरे तौर पर अलग अलग किये जाते। लेकिन मेरे लिए यह बहुत कठिन है। समय की कमी है, यहाँ पर और भी बहुत से मंदिर हैं। समय के अभाव में उनके सम्बन्ध मे मैं कुछ नही लिख सका। उनकी संख्या कम नहीं है। उदाहरण के तौर पर भीनेशाह का मंदिर, वह निर्माता के नाम से ही प्रसिद्ध है। उसकी बनावट दूसरे मंदिरो से बिल्कुल विपरीत है। वह चार खण्ड का बना हुआ है और मादड़ी की था। वाले मंदिर से मिलता जुलता है। लोगो का कहना है कि इस मन्दिर में स्थापित जिनेश्वर की पीतल की प्रतिमा लगभग १०८,००० पाउण्ड के बराबर है। यह प्रतिमा पीतल की भूमि पर स्थापित है। वह देखने मे धर्मोपदेशक की तरह मालूम होती है। उसके आस पास की भूमि में कितने ही विभाग किये गये हैं और उन विभागो मे तीर्थङ्करो, मनुष्यो और विभिन्न पशुओ की मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। इनके तैयार करने में ऐसी कारीगरी से काम लिया गया है, जो देखने म वे मूर्तियाँ बनी हुई मालूम होती है। यहाँ पर कुछ और भी मूर्तियाँ हैं, जो सात तरह क धातुओं से बनी हुई हैं।

हमने इसका आरम्भ विशप हैबर के वर्णन क साथ किया था। हम उसी के साथ इसका अंत भी करना चाहते हैं। उसने लिखा है कि उसने जेपुर व महलो में जो कुछ देखा था, वह क्रेमलिन और अलहम्बा दोनों से श्रेष्ठ था। पश्चिमी मरुभूमि के तट पर आबू के जैन मंदिर विशप हैबर ने नहीं देखे थे, वे मंदिर उन सबसे श्रेष्ठ हैं, जिनको विशप ने देखा था। यहाँ पर मैं स्पष्ट बताना चाहता हूँ कि आगरे क ताज महल को छोड़कर, कहीं की कोई इमारत जैनियो के इन मंदिरो से श्रेष्ठ नहीं है। यह दूसरी बात है कि अपनी रुचि विशेष क कारण किसी को कोई अच्छी लगे और किसी को कोई।

किसी भी इमारत की विशालता और दृढ़ता ही उसकी श्रेष्ठता की माप-दण्ड नहीं होती। सबसे बड़ी विशेषता उसके निर्माण आकार प्रकार और कलापूर्ण चित्रण की होती है। किसी निर्माता ने अपनी इमारत के निर्माण में सबसे अधिक सम्पत्ति खर्च की है लेकिन उसकी उपयोगिता का और उसके श्रेष्ठ होने का यह भी कोई माप-दण्ड नहीं है। बल्कि कोई भी निर्माण अपनी श्रेष्ठता का दावा उसी दशा में कर सकता है जब उसके प्रशंसक अधिक संख्या में हों और उसका निर्माण अधि-कांश लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता हो।

एक बड़े विस्मय की बात तो यह है कि इस प्रकार के गौरव की सामग्री रेगिस्तान के किनारे पहाड़ों की उन चोटियों पर मौजूद है, जहाँ पर सीधे सादे अद्-

सम्य, अशिक्षित और दुनिया की बातों से अनजान अपने थोड़े से आदमियों के साथ पहाड़ी और जंगली जातियाँ रहा करती हैं। इन प्रसिद्ध मंदिरों के निर्माण की योजनायें, जिनके तैयार कराने में न जाने कितने लाख रुपये व्यय किये गये और उनसे भी अधिक हीरा जवाहिरात से मंदिरों की मूर्तियों की शोभा बढ़ायी गयी, मरुभूमि के निकट इतने ऊँचे पहाड़ों पर उनके निर्माताओं ने क्यों बनायी, इसका सही कारण क्या है, यह तो नहीं कहा जा सकता। लेकिन उसका एक बहुत बड़ा लाभ जो इन मंदिरों का मिला, वह यह है कि आक्रमणकारी इस्लाम के प्रचारक इस मरुभूमि के निकट नहीं जा सके और वे इन ऊँचे पर्वतों पर बने हुए प्रसिद्ध जैन मन्दिरों को कोई बड़ी क्षति नहीं पहुंचा सके।

मैं दलवाड़ा की अभी आधी यात्रा ही पूरी कर सका था कि दिन समाप्त होने पर आ गया और सायंकाल के आसार पृथ्वी पर चारों तरफ दिखायी देने लगे। उस समय पक्षियों की आवाजों को सुनकर मैंने एकाएक अनुभव किया कि वसिष्ट मंदिर की यात्रा करने के लिये रवाना होने का समय आ गया है। वह मंदिर अब भी यहाँ से पाँच मील की दूरी पर था और वहाँ पहुँचने के लिए मैं उत्सुक हो रहा था।

आबू क्षेत्र का सबसे अधिक आकर्षक भाग मुझे यहाँ पर देखने का मिला। इस भाग में खेती अधिक होती है। यहाँ पर रहने वालों की संख्या भी अधिक है और झरनों के साथ साथ विभिन्न प्रकार की वनस्पति के पेड़ और पौधे अधिक पाये जाते हैं।

यहाँ की कुछ भूमि में हरी हरी घास उगी हुई और फैली हुई देखकर ऐसा मालूम होता है, मानों प्रकृति ने यहाँ पर हरे कालीन बिछा रखे हैं। एक और विशेषता है। यहाँ पर जो चीजें देखने को मिल रही हैं, वे एक दूसरे से भिन्न हैं। यहाँ पर पक्षियों की किस्में अलग अलग हैं। उनके स्वरों में भी भिन्नता है। इसलिए उन सबकी आवाजें अत्यन्त प्रिय और आकर्षक मालूम होती हैं। उनके स्वरों में इतनी सुन्दरता और प्रियता का अनुभव न होता, यदि उनके स्वरों में भिन्नता न होती। कहीं-कहीं पर निर्मल जल के झरने भी देखने को मिले। इन सबको देखकर मुझे उस क्षेत्र का स्मरण हो रहा था, जहाँ पर अब मैं जाने को था।

यहाँ की खेती के दृश्य देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मैंने ध्यान पूर्वक उसको देखा। वहाँ का प्रत्येक खेत बड़े परिश्रम के साथ जोतकर तैयार किया गया था। यहाँ के इस छोटे से भाग में आबू की बारह ढाणियाँ हैं और मैं उनको चार में से होकर गुजरा था। यहाँ पर बने हुए घर बहुत साफ-सुथरे दिखायी दे रहे थे और उनके भीतर और बाहर प्रकृति का सौन्दर्य था। ये घर झोपड़ियों के रूप में तैयार किये गये हैं जिनमें से अधिकांश गोल हैं और उनमें मोटी मिट्टी पोती गयी है। इन

झोपड़ीदार घरों को सुंदर और स्वास्थ्यप्रद बनाने के लिये विभिन्न प्रकार की योजनाओं को काम में लाया गया है। खेतों को पानी देने के लिये झरनों के जल का प्रयोग किया जाता है। यहाँ पर पानी बहुत नजदीक निकलता है, इसलिए कुओं को गहरा नहीं खोदना पड़ता।

इन खेतों के किनारों पर जंगली गुलाब के बहुत-से पेड़ हैं। उन पेड़ों में गुच्छे दिखायी देते थे। उनको यहाँ पर कूजा कहा जाता है। उनके बीच-बीच में शिवप्रिया के वृक्ष हैं, जो हिन्दुस्तान के बगीचों में बहुतायत से पाये जाते हैं।

दाड़िम के पेड़ जिनको यहाँ पर आमतौर से अनार कहा जाता है ग्रेनिट की पहाड़ी पर टूटी फूटी चट्टानों में उगे हुये थे। अनेक स्थानों पर खूबानी के पेड़ भी थे। वे पेड़ फलों से लदे हुए थे। वे कच्चे थे और उनके रंग हरे थे।

मेरे पास अंगूर लेकर कुछ लोग आये। उनको देखकर मालूम हुआ कि वे अंगूर यहीं के वृक्षों के हैं। यहाँ पर अंगूर और चकोतरा, जिसको मैंने देखा नहीं, आबू के प्रमुख फलों में माने जाते हैं। यहाँ पर आम भी बहुत होते थे और लोबेलिया की तरह नीले और सफेद फूलों के गुच्छों की एक घनी बेल ने सेवार से ढकी हुई शाखाओं पर मजबूती के साथ अपना स्थान बना लिया है।

यहाँ के लोग आम को बहुत उपयोगी मानते हैं और उसे अम्बाली कहा करते हैं। इन लोगों को अन्य फलों के मुकाबिले में आम बहुत पसन्द आता है। अचलगढ़ में ऊँचे-ऊँचे खजूर के बहुत से पेड़ थे। ये वृक्ष अपने आप पैदा होते हैं। विभिन्न प्रकार के फूलों को यहाँ पर अधिकता है। इन फूलों में चमेली और गुलाब की सभी किस्में जंगली झाड़ियों की तरह उगी हुई हैं। सुनहरी चम्पा—जिसका पौधा फूल वाले पौधों में सभी से अच्छा माना जाता है, वह मैदानों में बहुत कम पाया जाता है। लोगों का कहना है कि वह शताब्दी में एक ही बार फल देता है। उस चम्पा के पौधे यहाँ पर लगभग सौ सौ गज के फासिले पर फूलों से भरे हुए लहरें ले रहे थे उनकी सुगंध से वायु प्राणों को शक्ति दे रही थी।

संक्षेप में यहाँ के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि यहाँ पर झरने हैं घाटियाँ हैं विभिन्न प्रकार के वृक्ष हैं वनस्पति के पौधे हैं, चट्टानें हैं, जंगल हैं, अनाज के अच्छे खेत हैं अंगूर की बेलें हैं टूटे-फूटे किले हैं जिन पर आजकल घास और पौधे हैं।

देलवाड़ा से आधा रास्ता चलने के बाद एक मील की दूरी पर ऊँची चोटी पर एक चट्टान थी। यहीं की एक दरार के निकट आबू की रक्षा करने वाली देवी का एक मन्दिर है, उस देवी को यहाँ के लोग अर्बुद की माता कहते हैं, कुछ लोग उसे बुद्धि पर्वत की माता कहते हैं। उसका लगभग आधा भाग पत्तों से ढका हुआ है, उस दरार से एक छोटा-सा नाला निकलकर चक्कर लगाता हुआ, पहाड़ी की पूर्वी ढाल पर

वैरिली की घाटों में बहती हुई कई एक दूसरों नालियो के साथ बनास नदी में आकर मिल जाता है। वह नदी पहाड़ी के किनारे बिलकुल करीब बहती है।

हमने यहाँ पर कुछ पुराने मन्दिरों, घरों के खण्डहरों और गुफाओं को देखा, जिनमें उन दिनों ऋषि लोग रहा करते थे और ईश्वर की आराधना करते थे। बहुत-से वृक्षों की छाया में एक बड़ी सुन्दर कुटी देखने को मिली, उसमें कितनी ही ऐसी बातें थी, जो दर्शकों के मन को आकर्षित करती थी। यहाँ पर फलों की इतनी अधिकता थी कि उनको खाकर कोई भी आराम के साथ गर्मी के दिन व्यतीत कर सकता है। यहाँ पर एक ही अभाव है। पानी यहाँ का खारा है, लेकिन उसको शुद्ध किया जा सकता है।

कुछ दूर चलने के बाद हमने एक झील देखी, वह लगभग चार सौ गज लम्बा है, उसको देखने-समझने के लिए चौबीस घंटो की आवश्यकता थी, लेकिन समय के अभाव के कारण मैं उसका पूरा आनन्द नही ले सका।

जिसने राहुल नदी पर एमरनाथ से तीन मील ऊपर की झील को देखा है, उनको मालूम है कि उसके चारो तरफ चट्टानें हैं। उसके पास एक जङ्गल है। उस झील में जलमुर्गाब आजादी के साथ घूमा करते हैं। इस पहाड़ी स्थान पर किसी शिकारी को चाहे वह बन्दूक वाला हो अथवा जाल वाला हो—शिकार खेलने की इजाजत नहीं है। यहाँ के लोग 'अहिंसा परमोधर्म' पर पूर्ण रूप से विश्वास करते हैं। इसके विरुद्ध यहाँ पर शिकार करने वाले को मृत्यु का दण्ड दिया जाता है।

लोगों का कहना है कि इस झील का जल अगाध है। उसकी कभी कोई थाह नहीं पा सका। यहाँ पर मुझको ज्वालामुखी के लावा के चिह्न कहीं पर दिखायी नही पड़े।

दो तीन ढाल पार करने के बाद मैं उस घाटी पर पहुँच गया, जहाँ से बसिष्ठ के मन्दिर के लिये रास्ता गया है। मैं उनके दृश्य को देखने के लिये तैयार नहीं था। इसलिये कि उसको देखने के लिये दिन का खुला प्रकाश आवश्यक था। यहाँ पर मैंने अपना गाड़ी छोड़ दी थी, इसलिये कि उसमें बैठे बैठे मैं थक गया था। हमारे सामने एक गहरी खोह पड़ गयी। उसको पार करने के लिये एक ही रास्ता था कि चट्टान के टूटे फूटे पत्थरों पर चलकर उसे पार किया जाय। उस स्थान पर एक बहुत पतली चट्टान थी। वृद्ध गुरु मेरे आगे आगे चल रहे थे, वे बहुत थक गये थे। इसलिये वे बैठ गये। उनके बैठने का तरीका भी कुछ विचित्र था। वे इस प्रकार थक गये थे कि वे बैठने के समय पहाड़ी पथ प्रदर्शकों का सहारा लेकर बैठे थे।

गुरु महाराज यहाँ की विभिन्न बोलियाँ जानते थे, लेकिन वे किसी को अपनी बात समझा नहीं सके। लेकिन उन पहाड़ी आदमियों ने गुरु की बात को समझने की

अन्तिम परमार की छतरी मुझे दिखायी पड़ी। वह मन्दिर से अलग बनी हुई थी। इस पर एक अठारह गुम्बद खम्भों पर रखा हुआ है। नीचे की तरफ एक बेदी पर परमार की मूर्ति खड़ी हुई है वह मुनि के प्रति अपनी विनम्रता प्रकट कर रहा है। यह मूर्ति धुद्ध पीतल की बनी हुई है और साढ़े तीन हाथ ऊंची है। किसी आक्रमणकारी मुसलमान की दृष्टि इस पर गयी और उसने इस मूर्ति की जाँघ पर कुल्हाड़ी चलवायी।

शिलालेखों से जाहिर होता है कि मुनि ने आबू के प्रति किये हुये प्रथम वर्णित अपराध के कारण धारावर्ष की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। इस पर्वत पर राज्य करने वाला अपने वंश का वह अन्तिम राजा था। इतिहास में धार परमार के नाम का आज भी गौरव है। जो लोग पहाड़ों पर रहते हैं, वे इसी नाम से उसको पुकारते हैं। शत्रुओं के इतिहास में भी बादशाह कुतुबुद्दीन के विजेता के रूप में उसका उल्लेख किया गया है इससे उसके गौरव का पता चलता है।

वह परमार राजा अलतमश के समय उसकी अधीनता में उस समय तक नहीं आया, जब तक कि नाडोल के चौहान राजपूत शत्रु के साथ मिल नहीं गये। उन्हीं की एक शाखा देवड़ा कुछ दिनों के बाद परमारों के वंश में मान ली गयी। इन शिलालेखों में देवड़ा के नाम जो पट्टे लिखे गये थे, उनका उल्लेख किया गया है।

चौक के दाहिने किनारे पर पातालेश्वर का एक छोटा-सा मन्दिर है। वह धरातल से कुछ सीढ़ियाँ नीचे है। इस देवता के सम्बन्ध में कोई भी आश्चर्य की चीज मन्दिर में नहीं मिलती। यहाँ पर केवल कुछ छोटे देवताओं की छोटी छोटी मूर्तियाँ हैं और उन सबके साथ पातालेश्वर की मूर्ति दीपक के साधारण प्रकाश में दिखायी पड़ती है।

एक वेदी पर—जिस पर कोई छत नहीं है अनेक देवमूर्तियाँ मौजूद हैं। उनके कितने ही भाग नष्ट हो गये हैं। इन मूर्तियों में जमना के नाथ श्याम की मूर्ति सबसे अधिक आकर्षक है। यहाँ पर इसी प्रकार के दो स्तम्भ भी हैं। उनकी ऊंचाई दो दो फीट की है। और उनका विभाजन कई भागों में किया गया है। उनमें देवताओं की मूर्तियाँ भी बनी हुई हैं। अगर ये मूर्तियाँ (सिनेनों) की तरह की होती तो इनको अधिक गौरव दिया जा सकता था।

चौक के बीच में दो पौराणिक मूर्तियाँ और भी हैं। जिनको हिमाचल के बेटे नन्दिवर्द्धन और उसके मित्र सर्प की बतायी जाती हैं। यह सर्प वही है, जिसने इन्द्र के वज्र की चोट से बनने वाले गड्ढे को भरने के लिए हिमालय के बेटे को भेजा था। इसके करीब कुछ सती स्त्रियों के स्मारक भी बने हैं। उन पर अच्छी कारीगरी की गयी है।

मुनि वशिष्ठ के आश्रम में जो कुछ भी देखने के योग्य था, मैंने सब कुछ देखा और उसके बाद मैं अपने डेरे में लौटकर आया। अपनी यात्रा के सम्बन्ध में जो मुझमें

उत्साह और अभिरुचि थी, उसके फलस्वरूप घूमते हुए मैंने पूरे सोलह घण्टे व्यतीत किये थे। जब मैं अपने मुकाम पर लौटकर आया तो मेरी थकावट की कोई सीमा न थी। मेरे शरीर में जोर का बुखार था, सर्दी भी लग रही थी और मेरा सम्पूर्ण साहस पस्त हो चुका था।

इस थकान और परेशानी के समय हरी चाय का एक प्याला मुझे अमृत के समान मालूम हुआ। मुझे बहुत आराम मिला। आबू के विभिन्न स्थानों में घूमते हुए जो दृश्य देखे थे, वे सभी मेरे नेत्रों के सामने घूम रहे थे। वायु तेज थी, वह घाटी के हरे और ऊँचे वृक्षों से होती हुई चारों तरफ लहरें ले रही थी। हरे पत्तों की पंक्तियों से आलिंगन करती हुई जो वायु आ रही थी, वह अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद थी और हम लोगों के थके हुए शरीरों में भी प्राणों का संचार कर रही थी।

अपने मुकाम पर पहुँचने के बाद मुझको आबू के एक-एक दृश्य का स्मरण होने लगा। मुझे उसके करने बड़े प्रिय मालूम हो रहे थे। जब मैं अपने खेमे में लेटे हुए विश्राम कर रहा था, उस समय मुझको साधुओं और संतों के मिले हुए स्वर सुनायी दे रहे थे और उनके स्मरण से मुझको बड़ा सुख मिल रहा था। अनेक लोगों के स्वर एक साथ मिलकर एक सुन्दर स्वर में बदल गये थे और वे कहीं पर भी बेसुरे नहीं होते थे। पर्वत की एकान्त साधना में सभी का एक स्वर, एक ही भाव और आराधना एक अनोखे सौन्दर्य की सृष्टि कर रहा था।

मैं इस सौन्दर्य ही तक नहीं रहा। मैं कुछ और भी साथ गया। उस समय एकाएक मुझको मेवाड़ के राणा राजसिंह के कुछ शब्दों का स्मरण हो आया—

"मस्जिद में मुल्ला की बाँगसुनो और मन्दिर में घण्टों की आवाज"

मस्जिद और मंदिर का उद्देश्य एक ही है, जिनकी हम आराधना करते हैं, दोनों हो, दो नहीं है एक ही है, फिर उसके प्रति हमारे अलग-अलग विश्वास क्यों हैं? किसी एक की आराधना विरोधी विश्वासों के साथ करके हम दूसरों को नहीं, अपने आपको धोखा देते हैं। हम इस आराध्यदेव—परमात्मा को अपनी आराधना से प्रसन्न करना चाहते हैं, लेकिन हम उन लोगों के साथ शत्रुता रखना चाहते हैं, जो खुद भी उसी के पुजारी हैं, जिसकी हम पूजा करते हैं। अपने इन झूठे विश्वासों से क्या हम परमात्मा को प्रसन्न कर सकेंगे?

ऐसे ही समय पर मुझको हिन्दुओं के एक धार्मिक ग्रंथ रामायण की याद आयी। हिन्दुओं का वह एक प्राचीन ग्रंथ है। उसकी रचना वाल्मीकि ने की है। प्राचीन काल में यह प्रथा थी कि राजा और सामंत लोग ऋषियों के पास जाकर नैतिक शिक्षा प्राप्त करते थे। रामायण में राम और सीता के जीवन का वर्णन काव्य में किया गया है।

रामायण का सम्मान हिन्दुओं में घर घर मे है। सभी लोग उसको श्रद्धा के साथ पढ़ते हैं। बाल्मीकि की इस रामायण में भक्ति सम्बन्धी बहुत अच्छी बातें लिखी गयी हैं। उसके वर्णन में राम के जीवन की घटनाओं के अतिरिक्त नैतिक ज्ञान की शिक्षा भी दी गयी है।

इस प्रकार सोच विचार में कुछ देर तक पड़े रहने के बाद मैं सो गया और जब मैं जगा तो आबू के वही दृश्य मुझे दिखायी देने लगे। मन्दिर के साधु-सन्तों के द्वारा स्तोत्रों का पाठ सुनायी पड़ने लगा। मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो अब भी मेरे सामने मुनि की स्तुति हो रही है। पातालेश्वर-देवता की मूर्ति मुझे दिखायी पड़ रही थी।

रात में कई बार सोया और कई बार जागा। सोने पर मुझे मालूम होता कि मैं अपने साथियों में पर्वत की यात्रा कर रहा हूँ और प्रकृति के दृश्य देख देखकर प्रसन्न हो रहा हूँ। प्रातःकाल सात बजे चारों तरफ धुन्ध छायी हुई थी, उसके कारण वहाँ की हरियाली भी साफ दिखायी नहीं पड़ती थी। मठ धूलिमय हो रहा था। मैं पहाड़ के किनारे किनारे चलकर बाग में टहलने लगा। उस बाग में कुछ पौधा को छोड़कर और कुछ नहीं था। मेरा ख्याल था कि सूर्य के निकलने पर यह धुन्ध समाप्त हो जायगी, उस समय मैं कुछ दूसरे दृश्य देख सकूँगा। लेकिन मेरा यह ख्याल सही नहीं निकला।

यहाँ का यह मन्दिर बहुत सम्पन्न माना जाता है। मन्दिर की आमदनी यात्रियों से होती है। राजा, रईस और सम्पत्तिशाली अपना धन इस प्रकार के मन्दिरों के बनवाने और मरम्मत कराने में शौक से खर्च करते हैं। किसी भी हालत में इस मन्दिर के पास धन का अभाव नहीं है बल्कि इफरात है। अभी कुछ दिन पहले की बात है, सिरोही के राव बखसिंह ने इस मन्दिर की इमारत को नया जीवन देने में दस हजार रुपये खर्च किये थे और आबू की सरस्विका दुर्गादेवी पर सोने का छत्र चढ़ाया था। लेकिन बेरर के राजा ने देवी के चढ़ाव में आये हुए धन को पिछले दिनों बचाने के लिए भयानक प्रयत्न किया और बटवारे के नाम पर देवड़ा के राजा को भेंट को मन्दिर से हटवा दिया। इसलिये कि मन्दिर की इस सम्पत्ति का प्राय अपहरण होता था।

१५ जून—जिस बैरोमीटर का मैं विश्वास करता था, वह अचलेश्वर से रवाना होने के समय टूट गया। इस टूटे हुए और बचे हुए बैरामीटर में लगभग १४०° का अन्तर था। इसलिए कि टूटने वाले में २६°६५ और दूसरे में २५°५५ थे। वसिष्ठ के मन्दिर पर इसमें २६°२० और थर्मामीटर में ७२° थे। इसलिए आबू की ऊंचाई का ठीक ठीक पता लगाना अभी तक बाकी था। इस कार्य की पूर्ति समुद्र तट पर पहुँचने के बाद हो सकती थी अथवा किसी अन्य प्रकार का प्रयोग करने पर।

अतएव इसके द्वारा जो ऊंचाई जाहिर हो रही थी, उसका मेरे अनुमान के साथ बहुत कुछ मेल खाता था। वहाँ पर चढ़ाई चढ़ते हुए मैंने बड़ी सावधानी के साथ अनुमान से काम लिया था।

सबेरे के समय आठ बजे कुछ बदलों को हालत में हमारा उतरना आरम्भ हुआ। रास्ता क्रमशः ढालू था। कई सौ गज तक ऐसा रास्ता मिला, जहाँ पर पेड़ काट काटकर गिराये गये थे और खेतों के लिए जमीन निकाली गयी थी। इसलिए चलने में बड़ी रुकावट हो रही थी। लोहे के खुरपे यहाँ पर हल का काम करते हैं। उनसे गड्ढे करके मक्का आदि के बीच बो दिये जाते हैं।

उतराई में करीब करीब एक तिहाई रास्ते में विभिन्न प्रकार के फलों की अधिकता रही। उन फलों में फालसे और करौंदे के फल अधिक थे। उसके आगे चलने पर इस प्रकार के फल कम होने लगे और धीरे-धीरे वे सब गायब हो गये। यह स्थान उसी प्रकार के धरातल के समान था, जिस प्रकार मैंने पहले चढ़ाई की तरफ जाते हुए देखा था और जहाँ पर हमारे बिगड़े हुए बैरामीटर ने २७°३५ अंश बताये थे। बहुत सी जड़ें, बाहर निकली हुई थीं। बातचीत में लोगों ने मुझे बताया कि बारिश हो जाने पर यहाँ के बहुत से पेड़ों में फूल आ जाते हैं।

ग्यारह बजे दिन में हम लोग पहाड़ की तलहटी में तालाब के पास पहुँच गये। वहीं पर मिलने के लिये मैंने अपने आदमियों को आदेश दिया था। लेकिन वहाँ पर न तो कोई आदमी दिखायी पड़ा और न कोई घोड़ा। इसका नतीजा यह हुआ कि मुझको गिरवर के सरदार का अहसान लेना पड़ा और उसने अपनी सहज उदारता के साथ मुझे दो घोड़े दिये। एक घोड़े पर मैंने अपने बूढ़े गुरु को बिठाया और दूसरे पर एक लंगड़े नौकर को बैठा दिया। मैं गिरवर के जङ्गल से चार मील आगे आकर अपनी गाड़ी पर बैठा हुआ अपने मुकाम की खोज करता रहा।

यह पहले लिखा जा चुका है कि यहाँ का घना जङ्गल आबू की तलहटी के किनारे किनारे दूर तक चला गया है। इसको पार करने में मेरे साथ के लोगों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। इस मुसीबत को किसी समय गुजरात का सुलतान (१) उठा चुका था। वहाँ पर एक ऊंचा पेड़ था। वह कोढ़ी पेड़ कहलाता है, इसलिए कि उसकी छाल कोढ़िया कही जाती है। उस ऊंचे पेड़ से बर्रों का एक बहुत बड़ा दल निकल पड़ा और वह हमारे साथ के आदमियों पर टूट पड़ा।

यात्रा करते हुए इन बर्रों के सम्बन्ध में किसी को कुछ अनुमान न था। बर्रों को संख्या बहुत अधिक थी। उनका आक्रमण भयानक रूप से हुआ और साथ का प्रत्येक

(१) महमूद बेगड़ा।

आदमी बड़े सकट में पड़ गया। उस समय वृद्ध गुरु ने (जॉन गिल्पिन) (१) की तरह
साहस से काम लिया और ऐंड़ लगाकर अपने घोड़े को बड़ी तेजी के साथ आगे की
तरफ दौड़ाया। उनके कपड़ों में चिपकी हुई बरें अगणित सख्या म दिखायी पड़ी।
हमारे एक सिपाही ने बरों के आक्रमण से घबराकर अपनी बदूक फेंक दी। उसको
इस बात का ध्यान नही रहा कि मुझको बन्दूक नहीं फेंकना चाहिए। मैं अपनी गाडी
पर बैठा हुआ था। मुझे छोड़कर सब लोग चले गये। उस समय मेरे ऊपर एक
नौकर ने आ कर चद्दर न डाल दी होती तो पता नही मेरा क्या हाल होता। मैं स्वय
एक तो बीमार था और बरों का एक साथ भीषण आक्रमण हुआ था। अपनी बीमारी
में मैं भागने के योग्य नही था। इसलिए मेरे बचने की कोई सूरत न थी और मैं बरों
का शिकार हुआ होता। लेकिन कुछ तो चद्दर से ढक जाने के कारण मेरी किसी
प्रकार रक्षा हो सकी और दूसरे रक्षा का एक कारण और भी मुझे अन्य यात्रियों ने बताया
कि अचलेश्वर में भेंट चढ़ाने के कारण इस सकट से प्राणों की रक्षा हो सकी है।

कुछ भी हो, मुझे किसी बरें का एक डक नहीं लगा। जिस तरफ से बरों का
आक्रमण हुआ था, उस तरफ हमारा लगड़ा नौकर ठाकुर की गाड़ी पर बैठा हुआ
'या अली, या अली' चिल्लाता हुआ भागता रहा। उसके सिर पर पगड़ी अथवा साफा
नहीं था और इस हालत में वह लगातार भागता रहा। कुछ समय के बाद बरों का
आक्रमण कम हुआ। उस समय मैंने अपने एक सिपाही को भेजकर डोली मगायी।
इसलिए कि उस भागने वाले आदमी को बरों ने इतनी बुरी तरह से काटा था कि
उसकी हालत बड़ी खराब हो गयी थी।

दोपहर के समय हम लोग शिखर पहुँचे। यहाँ मुझे मालूम हुआ कि मेरे साथ
के लोग पालड़ी से चलकर अभी अभी यहाँ आये हैं। यही बैरोमीटर २८°६० पर था
और पालड़ी म जहाँ पर चढ़ाई शुरू हुई थी, २८ ४० जाहिर कर रहा था।

(१) विलियम कूपर की प्रसिद्धि व्यगहास्य प्रधान कविता में थी। गिल्पिन
लन्दन का निवासी था और आलनी के करीब उसकी रियासत थी। वहीं पर विलियम
कूपर १७८५ ई० में रहा करता था। कवि ने लिखा है कि अपने विवाह की बीसवी
वर्ष गाँठ का उत्सव मनाने के लिए जॉन गिल्पिन और उसकी पत्नी ने एडमन्टन नामक
स्थान पर जाने का इरादा किया। रास्ते म गिल्पिन का घोड़ा नियन्त्रण से बाहर हो
गया और वह दस मील तक दौड़ता हुआ चला गया। इसलिए उसको वापस लौटना
पड़ा। रास्ते में गिल्पिन की हालत बड़ी अजीब हो गयी, जिसका वर्णन हास्यप्रद है।
कूपर को गिल्पिन की यह कहानी लेडी ऑस्टिन ने बतायी थी। उस समय वह बहुत
उन्मन था। उसने जब इस कहानी को सुना तो वह कुतूहल होकर रात भर हँसता
रहा और सवेरे उठने पर उसने उसको कविता में लिखा।

मैं कहीं पर लिख चुका हूँ कि यहाँ के लोग आबू की बाहरी परिधि का अनुमान ४० से ५० मील तक का लगाते हैं। यह अनुमान कहाँ तक सही है, इसके लिए मैंने एक छोटा सा नक्शा तैयार किया है। वह गुरु शिखर से वसिष्ठ के मंदिर अथवा उतार की तलहटी में तालाब तक पहुँचने के मार्ग के आधार पर तैयार किया गया है। जो मैंने नक्शा तैयार किया है, वह बिल्कुल सही है, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु उससे एक सही आधार लिया जा सकता है। उसकी सामान्य दिशा दक्षिण-पश्चिम है और उसके सभी मोड़, उतार चढ़ाव एवम ऊँचाई को सामने रखकर जो अनुमान बैठता है, वह बाईस मील का है। परन्तु गुरु शिखर से मैदान तक के सीधे ढाल के लिए हम चार मील अधिक शामिल कर देते हैं। अतएव इस पहाड़ का विस्तार छब्बीस मील आता है। अगर इसमें से एक तिहाई भाग कम कर दिया जाय तो तलहटी का विस्तार मालूम हो जायगा और यही इसकी अनुमान पर आधारित सबसे बड़ी परिधि हो सकती है।

लेकिन मेरी समझ से यह बहुत अधिक मालूम पड़ता है। यदि हम उत्तर में गुरु शिखर से दक्षिण में वसिष्ठ के मंदिर तक की सीधी रेखा को आबू का सीधा समतल हिस्सा मानकर अनुमान लगावें तो जो अनुमान निकलेगा, वह अधिक सही होगा। यह रेखा सोलह मील की है। उतार-चढ़ाव नीची-ऊंची और टूटी-फूटी जमीन का सीधा फासिला बारह मील से अधिक नहीं हो सकता। इन चौंतीस और चौबीस मील के अधिक-से अधिक व्यासों का मध्य परिणाम लगभग तीस मील अथवा पैंतीस मील की परिधि का आता है और वह अनुमान के अनुकूल ही है।

हिन्दुओं के इस पर्वत और ईसाई धर्म से सम्बन्धित माउन्ट सिनाइ के प्राकृतिक दृश्यों में बहुत बड़ी समानता है, वह यद्यपि यहाँ से चार अंश अधिक उत्तर में होते हुए भी तापक्रम में परिवर्तना के साथ वनस्पति में एक सा है। आजकल के यात्रियों में से सबसे पहले निर्भीक यात्री बर्कहार्ड भी माउन्ट सिनाई के शिखर पर उन्हीं दिनों में पहुँचा था, जब मैं आबू पर था। वे दिन जून महीने के थे। उसने लिखा है कि तलहटी में थर्मामीटर १००° [illegible] ११० तक पहुँचा था और उसने शिखर पर इङ्गलैण्ड की गर्मियों का सुख ७६° पर उठाया था।

मेरे पास थर्मामीटर तलहटी में ६५° से १०८° तक था और शिखर पर ६४° से ७६° तक था। उसने लिखा है कि खूबानी, जो काहिरा में अप्रल के आखीर तक पूरी तौर पक जाती है, वह सिनाइ पर्वत पर जून के मध्य कालीन दिनों तक खाने के योग्य नहीं होती। आबू के उस देशीय फल की भी यही हालत थी, जो मूसा के पहाड़ पर पैदा होने वाले फल से कहीं अच्छा था। बर्कहार्ड ने। सिनाइ (१) की ऊंचाई

(१) माउन्ट सिनाई की ऊंचाई ७,६१२ फीट है।

का कोई उल्लेख नही किया है। लेकिन गर्मी और जाड़े के दिनो में उसको ढकने वाली बर्फ के आधार पर उसका हिसाब लगाया जा सकता है। उस प्रकार का दृश्य हिन्दुस्तान के दक्षिण मे कभी देखने मे नही आता।

अब आबू (१) की यात्रा समाप्त हो गयी, इसलिए मुझको संतोष मिला। लेकिन अभी तक चन्द्रावती की यात्रा बाकी थी। लेकिन उसको पूरा करने के लिये अब साहस काम नही करता। इसलिये ऐसा जान पड़ता है कि जितनी भी यात्रा मैंने कर ली है, उसी पर संतोष कर लेना पड़ेगा।

आबू की यात्रा मे मेरी सारी सामर्थ्य समाप्त हो गयी। लगातार स्वास्थ्य गिरता जाता है, आज भी बुखार बढ़ रहा है। चेहरे और हाथो मे सूजन पैदा हो गयी है। सूर्य की धूप पड़ने के कारण इस सूजन मे कष्ट भी होता है। वैसे तो इन पर्वतों की यात्रा करने और प्राकृतिक जीवन मे विचरण करने मे सुख ही मिलता है। यहाँ की ठण्डी वायु म उत्साह बढाने की अपूर्व शक्ति है। लेकिन अगर स्वास्थ्य अच्छा न हो तो वही ठण्डी वायु नुकसान भी पहुचाती है।

मेरा एक नया अनुभव है कि इस प्रकार की यात्रायें करने मे बहुत समय की आवश्यकता होती है। इसलिये मैंने यह भी स्वीकार किया है कि जिसके पास इस प्रकार अधिक समय न हो, उसको इन यात्राओ में नही आना चाहिए। इसलिये कि यहाँ पर छिपे हुये ऐतिहासिक कीमती भण्डारो को देखने के लिये बहुत समय चाहिये। समय के अभाव मे कोई भी अन्वेषक कुछ नहीं कर सकता और न लाभ उठा सकता है।

मेरे समान यात्री को बहुत काम करना पड़ता है। विवरण के साथ मानचित्र, विभिन्न दृश्यो की चित्रावली, रेखाचित्र, पहाड़ियाँ और मंदिरो के चित्र, शासकों के परिचय, शासन सम्बन्धी वर्णन, पुराणों की कथायें परम्परायें और प्रथाये, विभिन्न प्रकार के जीवन, पशु-पक्षियो, खनिज पदार्थों एवम् वनस्पति विज्ञान की सामग्री आदि सभी का यात्राओ मे संकलन करना पड़ता है। ऐसा करने के बाद ही कोई भी इस प्रकार की यात्रा के अध्ययन और मनोरंजन की सामग्री दे सकता है।

इस योजना को लेकर यात्रा का कार्य, इतना बड़ा हो गया है, जिसको मैं अच्छे अन्वेषक यात्रियों के लिये छोड़ता हूँ।

---

(१) आबू माहात्म्य नामक पुस्तक मैंने खरीद ली, उसमे आबू की धार्मिक बातो के विवरण हैं, राजाओं की धर्मनिष्ठा मंदिरो का निर्माण, यहाँ के पेड़ पौधे आदि सभी चीजों के विवरण इसमें दिये गये हैं। मुझे अपने गुरु यती के द्वारा इसको पढ़ने का मौका नही मिला। रायल एशियाटिक सोसाइटी के संग्रहालय में उस पुस्तक को सुरक्षित रूप मे रखा दिया है।

सातवाँ प्रकरण

स्मारक और घूमनेवाली जातियाँ

गिरवर और चन्द्रावती के दृश्य—स्मारकों की दशा—चन्द्रावती का विध्वंस—विदेशी यात्रियों के समय घूमनेवाली जातियों की अवस्था—मैदानों में प्रवेश—पाल्हनपुर जिले का दीवान—सिद्धपुर का शिव मंदिर—रुद्र-माला के टूटे फूटे हिस्से—साठ हजार वर्ष तक नरक में रहने का भय—भारत की मूर्ति निर्माण कला—मंदिरों में अप्सराओं की नाचती हुई सुंदर मूर्तियाँ।

१६ जून—गिरवर आकाश में बादल उमड़ रहे हैं। उनको देखकर मालूम होता है कि मानसून आ गया है और किसी भी समय जोर का पानी बरस सकता है। ऐसी दशा में मुझे आगे तेजी के साथ बढ़ना चाहिये, अन्यथा झरनों में पानी बढ़ जायगा और बड़ौदा जाने का मेरा रास्ता रुक जायगा। चन्द्रावती की यात्रा छूट रही है, इसका मुझे दुख है। उसकी यात्रा करने में जो मुझे प्रलोभन रहे हैं और आज भी हैं, उनको मैं भुला नहीं पाता। लेकिन यहाँ पर उसके सम्बन्ध में कुछ विवरण देना चाहता हूँ। कदाचित् अपने पाठकों को उनसे कुछ संतोष मिलेगा।

चन्द्रावती को लोग चन्द्रौती भी कहते हैं। यह एक ऊँची और मजबूत दीवार से घिरी हुई है, इसीलिये चन्द्रावती नगरी अथवा चन्द्रौती नगरी कहलाती है। यह नगरी दक्षिण पूर्व में गिरवर से दस मील के फासिले पर सिरोही राज्य के अन्तर्गत एक जागीर है। मैं गिरवर के सरदार की सज्जनता और उदारता का आभार मानता हूँ। लेकिन एक अन्वेषक की हैसियत से मैं उनको कभी क्षमा करने के लिये तैयार नहीं हूँ जिन्होंने यहाँ के स्मारकों के सम्मान को नष्ट किया है। इनको विध्वंस किया गया है और इन्हें बेचा भी गया है।

इन स्मारकों के साथ मेरा घनिष्ट सम्बन्ध है। यह सम्बन्ध और सम्पर्क एक अन्वेषक और यात्री के लिये अत्यन्त स्वाभाविक है। तुर्कों के आक्रमण में यहाँ के स्मारकों का विनाश हुआ है और इनके पतन के अपराधी वे भी हैं, जिन्होंने स्वामी की हैसियत से अपने लोभ के कारण इनको बेचने का कार्य किया है।

इस प्रकार के स्मारक ऐतिहासिक सम्पत्ति में गिने जाते हैं और सैकड़ों तथा सहस्रों वर्षों के बाद भी उनके सम्मान और महत्व में कोई कमी नहीं आती। बल्कि सत्य यह है कि ये स्मारक जितने ही पुराने होते जाते हैं, उतना ही उनका सम्मान

बढ़ता जाता है। यदि इनके अस्तित्व किसी प्रकार मिटते हैं अथवा मिटाये जाते हैं तो वर्तमान और भविष्य को अतीत के साथ जोड़ने के लिये जो कड़ियाँ होनी हैं, वे नष्ट हो जाती हैं और उस दशा में भविष्य अपने अतीत को खो देता है।

परमार राजपूतों के गौरव को सुरक्षित रखने के लिये यहाँ की प्रकृति ने बड़ी उदारता से काम लिया है। साथ ही यहाँ जो विशाल मंदिर बनाये गये हैं उनके द्वारा यहाँ का गौरव बहुत कुछ बढ़ गया है। लेकिन पिछले बहुत दिनों से यहाँ पर जो परिवर्तन हुये हैं, उनको सुनकर और जानकर मेरे जैसे किसी भी अन्वेषक के हृदय में पीड़ा का होना स्वाभाविक है। मैं जानता हूँ कि यहाँ के जिन मार्गों में अच्छे पथिकों, व्यापारियों और धनवानों की भीड़ दिखाई देती थी, वहाँ आज भालुओं, रीछों और जंगली जानवरों ने अधिकार कर लिया है। अनेक स्थानों पर भीलों के आतंक बढ़ गये हैं चन्द्रावती के विध्वंस के साथ-साथ उसका व्यापार विध्वंस की अवस्था को प्राप्त हुआ है और आज की अवस्था इतनी बदली हुई है कि यदि यहाँ के रास्तों, प्राचीन स्मारकों और मंदिरों के विवरण पुराने ग्रंथों और शिला लेखों में न मिलते तो उनकी सही बातों का कुछ भी पता नहीं चलता।

मुझे सबसे पहले चन्द्रावती के सम्बन्ध में विवरण 'भोज चरित्र' नामक पुस्तक से मिले। उसमें लिखा है कि जब किसी आक्रमणकारी ने राजा भोज को धार के सिंहासन से उतार दिया तो वह भागकर चन्द्रावती आया। इस विवरण से पता चलता है कि यह नगरी उन दिनों में धार के राज्य में थी। लेकिन उसकी स्थिति क्या थी, इसके अच्छे विवरण मुझे किसी सूरत से बहुत दिनों तक प्राप्त नहीं हुए। लेकिन जब मुझे मालूम हुआ कि इस चन्द्रावती का नाम कुछ बिगड़कर अथवा बदलकर चन्द्रौती या चन्दौती हो गया है तो उसके सम्बन्ध में सही स्थिति को समझने के लिए मुझे रास्ते दिखायी देने लगे।

मेरे दल का एक सदस्य शिला लेखों का पता लगाने के लिए गया था। इस नगरी का पता थापी नामक ग्राम के एक तालाब में लगे हुए शिला लेख से चला। वह तालाब अरावली के दक्षिण की तरफ कोराट की एक जागीर में है। इस शिला लेख में चित्तौड़ के गहलोत राजाओं के और अनहिलवाड़ा के सालंकियों, चन्द्रावती के परमारों और नाडोल के चौहानों के युद्धों का बयान है। उसमें लिखा हुआ है—

अरिसिंह के दो लड़के कन्हैया और बीधुक बड़े बहादुर थे। वे दोनों ही चन्द्रावती के युद्ध में भगवान गुप्त के साथ युद्ध करते हुए मारे गये। भगवान गुप्त के दो लड़के थे भीमसिंह और लोरसिंह। भीमसिंह की वही हालत हुई और वह भी युद्ध करते हुए मारा गया। उसका भाई लोरसिंह नर्मदा नदी के पास शूलि महेश्वर के नगर को विजय करने की अभिलाषा में मालवराज सोमवर्मा के द्वारा युद्ध में मारा गया।

उस शिलालेख में और भी अनेक बातों के उल्लेख हैं। उसके आखीर में तिथि के स्थान पर १३२ लिखा हुआ है, उसकी अन्तिम संख्या मिट गयी है। इसको सवत् १३२५ विक्रमी अथवा १२६९ ईसवी समझना चाहिए। चन्द्रावती के युद्ध का समय इससे लगभग एक शताब्दी पहले का है। ऐसा शिलालेखों से मालूम होता है। अरि-सिंह चौहान और सोमेश्वर परमार के लेखों में इसके विवरण दिये गये हैं। इनमें से पहला मुझे नाबोल में और दूसरा हारावली में मिला था।

इस तरीके से राजा भोज के इतिहास से हमको चन्द्रावती के दो समयों का पता चलता है, पहला सातवीं शताब्दी में और दूसरा १२ वीं शताब्दी में। पहले समय से भी बहुत दिन पूर्व इसके अस्तित्व का पता चलता है। लेकिन इसका आधार जनश्रुतियाँ और लोक कथाओं के सिवा दूसरा कुछ नहीं है। इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरा समय भी उसका हमारे सामने आता है, वह समय है १५ वीं शताब्दी का, जब पश्चिमी भारत की नयी राजधानी अहमदनगर को तरक्की देने के लिए इस नगरी का सर्वनाश हो चुका था।

मैंने राजस्थान के इतिहास में उस वंश का भली प्रकार वर्णन किया है, जिसने चन्द्रावती को मिटाकर इस नगरी को ही नहीं, बल्कि गुजरात की प्राचीन राजधानी अनहिलवाड़ा को विध्वंस करके अहमदाबाद को बसाया था। अहमद नगर, जिसकी स्थापना और सुन्दरता हिन्दुस्तान की प्रसिद्ध कारीगरी का प्रमाण दे रही है, आज बड़ी तेजी के साथ अपने विनाश की ओर जा रहा है। अपना धर्म छोड़ने वाले जफ़र (१) जो इतिहास में अपने मुस्लिम नाम वजीर-उल्मुल्क के नाम से मशहूर है—के अहमद ने नयी राजधानी कायम करके अपनी ख्याति बढ़ाने की कोशिश की और इसके लिए उसने वह स्थान चुना, जहाँ पर भीलों की एक कौम रहा करती थी और जिनकी लूटमार और आक्रमण से वहाँ पर आतंक छाया हुआ था।

उसने उन लोगों को वहाँ से भगा दिया और उसको एक नगर के रूप में बसाया। वह स्थान अच्छा नहीं था, स्वास्थ्य के लिए भी अनुकूल नहीं था। इसके लिए उसने चन्द्रावती की सामग्री को ही अहमदाबाद नहीं पहुँचाया, बल्कि उसने वहाँ की सम्पूर्ण श्री को अहमदाबाद पहुँचाने का प्रयत्न किया। उसने कोशिश की कि वहाँ के रहने वाले निवासी भी इस स्थान को छोड़कर वहाँ आकर रहें। इस इरादे से उसने चन्द्रावती के मकानों और मन्दिरों के मिटाने का कार्य किया। (२)

---

(१) जफ़र, वह बाद में मुजफ्फर खान के नाम से मशहूर हुआ। राजविनोद महाकाव्य में इस प्रकार का उल्लेख पाया जाता है।

(२) इसी प्रकार का सत्यानाशी कार्य किसी समय अहमद से बड़े सनकी बादशाह महमूद खिलजी ने किया था। वह दिल्ली को मिटाकर विन्ध्याचल को बसाना

यह अधोगति वहाँ के सभी लोगों के लिए दुख पूर्ण थी। लेकिन जैन उपासकों के अश्रुपात करने का साधन बन गयी। एक जैन तपस्वी जब चन्द्रावती के इस विध्वंस और विनाश को देखता और देखता कि उसके प्राचीन तीर्थ स्थानों के मन्दिरों के स्थानों पर मस्जिदों के निर्माण हो रहे हैं तो वह प्राचीन काल के उन यहूदियों की तरह फूट-फूटकर रोता, जैसे वे यहूदी अपने स्थानों से निकाले जाने पर रोये थे।

अब चन्द्रावती के सम्बन्ध में समझने के लिए कुछ समय के लिए फिर आ जाइये। गिरवर और चन्द्रावती के आधे भाग पर माहोल अथवा मावल नामक एक ग्राम है। वह इस नगर का एक प्रसिद्ध स्थान माना जाता है। इस ग्राम में उसका एक दरवाजा है। बनास नदी माहोल और नष्टप्राय नगर के पास होकर प्रवाहित होती है। वह नगर इस नदी के करीब बसा हुआ है। उस गाँव के पहिले एक पर्वत-श्रेणी पड़ती है, वह अधिक ऊँची नहीं है। पर्वतों की वह श्रेणी आबू की तलहटी से दक्षिण की तरफ जाती है। उसका रास्ता एक घने जङ्गल की तरफ से है। उस जङ्गल से मेरा सामान निकल नहीं सका। यहाँ का प्रमुख नगर अब जङ्गली पेड़ों से भर गया है।

उस रास्ते में जो कुए पड़ते थे, वे सब मिट्टी और कूड़े से भर गये हैं, मन्दिर फूट गये हैं, उस विध्वंस और विनाश में जो सामग्री बाकी रह गयी है, उसको गिरवर का सरदार खतम किये देता है। जिस किसी को आवश्यकता है वह गिरवर के सरदार से खरीद लेता है।

एक तरफ वहाँ पर अम्बादेवी और तारिंगा के मन्दिर हैं और उसकी दूसरी तरफ आबू है। इन दोनों के बीच में चन्द्रावती है। अम्बादेवी और तारिंगा के मन्दिर यहाँ से पूर्व की तरफ पन्द्रह मील के फासिले पर हैं और लगभग इतनी ही दूरी पर पश्चिम की तरफ आबू है। ये मन्दिर अत्यन्त आकर्षक और सुन्दर हैं। उनमें जैनी तथा शैव महन्त पूजा करते हैं। जनश्रुति के आधार पर यह नगरी धार से भी पुरानी मानी जाती है और यह नगरी उन दिनों में पश्चिमी भारत की राजधानी थी और परमार यहाँ के शासक थे। उनके अधिकार में मारवाड़ के सभी किले थे। उन किलों और परमारों के राज्यों के विवरण यहाँ के प्राचीन काव्यों में पाया जाता है। उस विवरण में बताया गया है कि परमार जाति का अधिकार सतलज से नर्मदा नदी तक फैला हुआ था और धार राज्य पर भी उसी का शासन था। यूँ तो यह नगरी अपनी सुरक्षा के लिए सभी प्रकार से काफी पायी जाती है। लेकिन किसी आपत्ति काल में आबू का किला इसके निवासियों को आश्रय देता रहा होगा ऐसा अनुमान लगाना अस्वाभाविक न होगा।

चाहता था। लेकिन उसकी यह सनक कामयाब नहीं हो सकी और उसकी योजना बेकार हो गयी।

व्यापारिक दृष्टिकोण से आज चन्द्रावती का कोई बड़ा महत्व न हो, यह सम्भव है। लेकिन पूर्व के देशों में सदा से धार्मिक यात्रियों को महत्व मिला है और इस प्रकार की यात्राओं के जो प्रमुख स्थान थे, वहीं व्यापारिक केन्द्र भी रहे हैं। इस अर्थ मे चन्द्रावती का ऊँचा स्थान था और इसी आश्रय के आधार पर उसने भौतिक उन्नति भी की थी। इसके प्रमाण मे अनेक बातें कही और लिखी जा सकती हैं। सबसे बड़ा प्रमाण इसके सम्बन्ध में आबू पर बना हुआ वैश्यों का मन्दिर है। अपने वैभव के लिए वह प्रसिद्ध है।

वैश्यो के इस मंदिर का निर्माण विक्रम सम्वत् १२८७ और सन् १२३१ है। यह मन्दिर इस्लामी आक्रमणों के चालीस वर्ष बाद बनाया गया था। इस मन्दिर की विशालता, उसके निर्माण की कुशलता और विविध कलाओं की व्यञ्जना पर अधिक प्रकाश नहीं डाला जा सकता। उसके गौरव से अपने आप उसका स्पष्टीकरण होता है। बहुत दिनों तक उसकी यह ख्याति सुरक्षित बनी रही।

शिलालेख के पढ़ने से पता चलता है कि चन्द्रावती पर धारावर्ष का एक मात्र शासन था। शिला लेख मे इसके लिखे होने के बावजूद यह सत्य है कि उसने अनहिलवाड़ा की सत्ता को स्वीकार कर लिया था। और उस अधीनता से छुटकारा पाकर धारावर्ष के पूर्वज जैत ने अपनी लड़की ऐच्छिनी दिल्ली के अंतिम सम्राट पृथ्वीराज को समर्पित कर दी थी। (१)

धारावर्ष के बाद परमार राजपूत अधिक दिनों तक अपनी स्वाधीनता की रक्षा न कर सके इसका प्रमाण वशिष्ठ मन्दिर के एक शिलालेख में मिलता है। उसमें आबू पर जालोर के राजा कान्हड़ देव चौहान की विजय का उल्लेख है। उसी लेख मे यह भी लिखा है कि अगर परमार राजा अपने अधिकार को फिर से प्राप्त कर ले तो वह इस मन्दिर की जागीर को बराबर जारी रखे। यदि वह ऐसा न करे तो उसको साठ हजार वर्षों तक नरक मे वास करना होगा।

इस लेख में कोई तिथि नहीं लिखी हुई है। लेकिन उसके लड़के वीरमदेव को अलाउद्दीन ने सम्वत् १३४७, सन् १२९१ ईसवी में जालोर से निकाला था। इसलिए मालूम होता है कि धारावर्ष के लड़के प्रेलदम अथवा प्रह्लादन से कान्हड़ देव ने आबू का राज्य छीना था। किसी भी अवस्था में यह विजय स्थायी नहीं थी, इसलिए कि देवड़ो

---

(१) कविचन्द उन्तालीस पुस्तक मे उस युद्ध का बयान किया गया है, जिसमे अनहिलपुर के राजा भीमदेव ने आबू की स्वतंत्रता के लिए कोशिश की थी। उस सघर्ष में भीमदेव की पराजय हुई थी और वह मारा गया था। उसके एक सौ आठ सामन्तों मे जैत्र नामक एक सामन्त था। उसने अपनी जागीर फिर से प्राप्त कर ली थी और उसका बेटा सलखण चौहान का गौरव बढ़ा।

के इतिहास में लिखा है कि राव लुम्बा ने आबू पर सम्वत् १३५२ अथवा १२६६ ईसवी में और चन्द्रावती पर सम्वत् १३५६ सन् १३०० ईसवी में स्थायी रूप से विजय पायी थी। (१)

जिस युद्ध मे देवडा लोगो ने परमारो से अधिकार प्राप्त किया था, वह युद्ध बाडेली नामक स्थान में हुआ था। उसी युद्ध में अगनसेन का लडका मेरुतुंग अपने सात सौ आदमियों और सम्बन्धियों के साथ मारा गया था। इन दिनो मे चौहान लोग परमारो के मातहत सामन्तों की सख्या को लगातार कम करते रहे, जितनी लड़ाइयां हुईं, प्रत्येक के मौके पर एक नयी कौमी शाखा पैदा होती रही। इस तरीके से उनकी अनेक शाखायें पैदा हो गयीं और उस दशा मे उनके प्रमुख का महत्व ही नष्ट हो गया। रहा यह कि उस दशा में उनके वशजो को प्रमुख की मामूली आज्ञाओं का ही पालन करना पड़ता था। मदार और गिरवर आदि के सरदार इसी श्रेणी के हैं।

इस प्रकार के विवरण एक अन्वेषक के लिये चाहे जितना महत्व रखते हों, लेकिन साधारण पाठकों को इनके पढने मे आकर्षण न मिलेगा। इसलिये मैं अब चन्द्रावती को यहीं से छोडता हूँ। सम्वत् १४६१ सन् १४०५ ईसवी में राव सुन्दू (२) के द्वारा सिरोही बसाये जाने पर और अहमदाबाद के आबाद होने पर चन्द्रावती पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी थी।

सिरोही के खडहरो को देखने के लिए मैंने अपने साथ के कुछ लोगो को भेज दिया था। इसलिये कि वहाँ के अवशेषो को ठीक ठीक समझने और उनकी जानकारी प्राप्त करने की मुझको आवश्यकता थी और इस जानकारी का ज्ञान देवडा लोगों की बातों के द्वारा नहीं लगता था। यद्यपि मैंने उन लोगों से एक एक बात को समझने की चेष्टा की और जो कुछ व कहते थे उसको मैं बडी सावधानी के साथ सुनता था। परन्तु मुझको मालूम होता था कि इनकी बातो से मैं सही विवरण प्राप्त कर सकने में समर्थ न हो सकूंगा।

---

(१) गौ० ही० ओझा ने इस घटना का होना सम्वत् १३६८, सन् १३११ में लिखा है, उसका विवरण सिरोही राज्य का इतिहास पृष्ठ १८७ में पाया जाता है।

(२) राव शिवभाण अथवा शोभा ने वि० स० १४६२, सन् १४०५ ईसवी में सिरणवा नामक एक पहाड़ी के नीचे शहर बसाया था और उस पहाडी के ऊपर किले का निर्माण कराया था। यह किला आज भी सिरोही से लगभग दो मील की दूरी पर टूटी-फूटी हालत में मौजूद है। वह नगर उसके स्वामी के नाम पर शिवपुरी अथवा पुरानी सिरोही के नाम से प्रसिद्ध है। वर्तमान सिरोही को राव शोभा के लडके सहस्रमल्ल ने वैशाख सुदी २ स० १४८२ सन् १४२५ में बसाया था—सिरोही राज्य का इतिहास।

इसलिये मैंने अपने साथ के विश्वासी लोगों को उसके सही विवरण प्राप्त करने के लिये भेज दिया था। जिस खोज को मैं सिन्धु के किनारे आरोर, जमना के किनारे सूरपुर चम्बल के निकट बरोली, हड़ौती मे चन्द्र भागा और इस प्रकार के दूसरे स्थानों से कम महत्वपूर्ण नही समझता था। मुझे अपने आदमियों के द्वारा चन्द्रावती के टूटे मंदिरो, तालाबो, कुओं और अन्य स्थानो के जो विवरण प्राप्त हुये, वे मेरे बड़े महत्व के साबित हुये। खम्भे टूटकर और गिरकर मिट्टी में मिल गये थे, मूर्तियों के टुकड़े टुकड़े हो गये थे। उनको देखकर मालूम होता था कि युद्ध में उनके टुकड़े किये गये हैं।

मैं जानता हूँ कि मेरी इस यात्रा में अन्वेषण के बहुत से कार्य छूटे जा रहे हैं, कितने ही अधूरे हैं। परन्तु उनके सम्बन्ध मे मैं जितना चाहता था, नही कर पा रहा। इस दशा मे मैं यह सोचकर सतोष करता हूँ कि शेष कार्यों की पूर्ति भविष्य मे किसी यात्री के द्वारा होगी। एक आश्चर्य की बात यह है कि भारत मे इस कला का परिचय उसके धार्मिक स्थानो पर ही मिलता है। एक चित्तौर ऐसा जरूर है कि जहाँ पर इस कला का प्रदर्शन धार्मिक स्थानो के अतिरिक्त भी किया गया है। कुछ इसी प्रकार के दृश्य मिश्र मे भी देखे जाते हैं। भारत में पारिवारिक स्थानों के निर्माण के साथ-साथ कुओं, और जलाशयों एवम् बावड़ी आदि के निर्माण में भी इस प्रकार की कला देखी जाती है। इनके निर्माण सार्वजनिक हित मे किये जाते हैं। और इनकी इमारतें अनेक स्थानो पर बड़ी विशाल देखने को मिलती हैं। बावड़ा के व्यास प्राय मैंने बीस और पच्चीस फीट के देखे हैं। उनकी गहराइ अलग अलग मिलती है। कही कही पर वे बहुत नीचे तक चले गये हैं और इस प्रकार की बावड़ी के निर्माण में इमारतों के से चमत्कार देखने को मिलते हैं। उनको कई कई खडो मे विभाजित किया गया है। और प्रत्येक खड में छोटे और बड़े कमरो का निर्माण किया गया है।

इस प्रकार की बावडी का निर्माण ऐसे ढंग से किया जाता है कि जिससे गरमी के दिनो मे सरदारो के परिवार आराम के साथ वहाँ रह सकें। पूरी बावडी मे ऊपर से नीचे तक जाने के लिये और पानी की सतह के नीचे तक मजबूत सीढ़ियाँ तो बनी ही होती हैं, लेकिन उसके प्रत्येक कमरे में चढ़ने और उतरने के लिये, बड़ा खूबसूरत सीढ़ियाँ बनी हुई देखने को मिलती हैं। इन सीढ़ियों के द्वारा एक खड से दूसरे खड में आसानी के साथ कोई भी जा सकता है। इन खडो और उनके कमरो तथा सीढ़ियों का निर्माण ऐसे ढग से किया जाता है कि उनमें आने जाने में किसी प्रकार की कोई असुविधा नहीं होती।

इनकी इमारतों के निर्माण में बहुत सावधानी बरती जाती है, जिससे कि वे सैकड़ों और सहस्रों वर्ष तक उसी मजबूती में बनी रहें, जिनमें उनका निर्माण हुआ

है। अगर उनको भीतर की तरफ काफी ढाल न रखा जाय और उनकी दीवारें बहुत मोटी न हों तो बाहरी दबाव और उगने वाली वनस्पतियों के कारण इस प्रकार की बावड़ी कुछ ही शताब्दियों में नष्ट हो जाय।

इस प्रकार की इमारतों के बनवाने और उनमें खर्च करने के लिये यहाँ के राजाओं में कदाचित् ही कोई समर्थ हो। मेरा अनुमान है कि दतिया का राजा ही इसके लिए अपवाद हो सकता है। क्योंकि उसने एक विशाल और सुन्दर जलाशय की इमारत बनवायी थी और उसके निर्माण में बहुत धन व्यय किया था। अपने अन्वेषण में मैं जिस नतीजे पर पहुँचा हूँ उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि प्राचीन काल में हिन्दुस्तान की अपरिमित सम्पत्ति व्यापारियों, सम्पत्ति शालियों और शासकों के द्वारा मंदिरों शिवालयों, तालाबों, कुआ और बावड़ियों के बनवाने में खर्च होती थी।

मेरे अन्वेषण दल के आदमियों ने चन्द्रावती के खंडहरों में परमारों के समय के तीन सिक्के भी प्राप्त किये। उनमें एक सिक्के पर जो छाप है, वह स्पष्ट है। यहाँ पर मैं अब अपना इतिहास सम्बन्धी शुष्क वर्णन रोक कर अपने एक मित्र के सजीव और प्रिय वर्णन को लिखता हूँ। मेरा अनुमान है कि उसके पढ़ने में पाठकों को मनोरंजन मिलेगा। मैं अपने इस मित्र का बहुत आभारी हूँ, इसलिये कि मेरी खोज में आश्चर्यता पैदा करने का कार्य किया। (१)

विनाशकारी सिरवर के सरदार ने—जिसकी निन्दा मैंने इन पृष्ठों में पहले की है—और भी बुरा काम किया। उसने अब शिव का शिखर बद्ध देवालय और अद्वैतवाद के उपासक जैनियों के कीमती तोरण तथा कलापूर्ण मेहराबें नष्ट कर दी हैं। उसने उनको निकलवा कर बेच दिया है, और जिन्होंने उनको खरीदा है, वे उनको तोड़कर अपने यहाँ निर्माण के काम में लाये हैं।

परमार राजाओं की पुरानी राजधानी चन्द्रावती के खंडहर आज भी आबू पहाड़ की तलहटी से बारह मील दूर बनास नदी के किनारे उस क्षेत्र में मौजूद हैं, जहाँ पर घने जंगल हैं। इस प्रसिद्ध राजधानी के विवरण कहानियों और कथाओं के सिवा अन्यत्र कहीं नहीं मिलते। सन् १८२४ ईसवी के आरम्भ तक योरप के लोगों को इसके सम्बन्ध में कुछ भी जानकारी नहीं थी। उसका अपना कोई इतिहास नहीं था और जन श्रुतियाँ भी उसके सम्बन्ध में उस समय तक कुछ नहीं कहती थीं। हिन्दुस्तान में आकर और राजपूताना में पहुँचकर मैंने दूसरी रियासतों के साथ इसके सम्बन्ध में भी जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की। उस दशा में उसके खंडहरों में जो कुछ देखने और जानने को मिला, उनमें केवल संगमरमर और पत्थरों के टुकड़े देखने में

(१) यहाँ पर लेखक का अभिप्राय कर्नल हन्टर ब्लेयर से है, जिसने आबू को रेखा चित्रों में तैयार किया था और उसे इङ्गलैण्ड ले गया था।

आये। उन भग्नावेशों को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह राजधानी किसी समय निश्चय ही विशाल और वैभवपूर्ण रही होगी। इसकी इमारतें कितनी सुन्दर आकर्षक और देखने के योग्य उन दिनों में थी, इसका अनुमान आज भी उसके खण्डहरों से लगता है।

चन्द्रावती की प्राचीन बीस इमारतों का ज्ञान उस समय लोगों को हुआ, जब सन् १८२४ ईसवी में हिज एक्सलेन्सी सर चार्ल्स कालिन ने अपने आदमियों के साथ वहाँ का निरीक्षण किया, उन प्रसिद्ध बीस इमारतों में एक का वर्णन नीचे की पंक्तियों में किया जाता है

यह कोई मंदिर है और वह ब्राह्मणों के द्वारा बनवाया गया था। उसके निर्माण में जिस कला-कौशल का काम किया गया है, वह अनुपमेय और अद्वितीय है। उसकी मूर्तियों का निर्माण मनुष्यों की आकृति में किया गया है, वे बड़ी खूबसूरती के साथ इमारत में लगायी गयी हैं, भारत की मूर्ति निर्माण कला में उसका श्रेष्ठ स्थान है, उस मंदिर की अनेक मूर्तियाँ तो ऐसी हैं, जिनको देखकर निर्माण-कला के प्रसिद्ध लोग आश्चर्य करते हैं। मंदिर में सब मिलाकर एक सौ अड़तालीस मूर्तियाँ हैं। दो फीट से नीची कोई भी मूर्ति नहीं है। वे सभी मुगल कारीगरों के द्वारा बनायी गयी हैं और वे मन्दिर के ताखों में स्थापित हैं।

मंदिर की प्रधान मूर्तियाँ इस प्रकार हैं त्र्यम्बक अर्थात् तीन मुँह वाली आकृति, उसकी रान पर स्त्री बैठी हुई है, दोनों एक गाड़ी पर सवार हैं, बीस भुजाओं के शिव, वही शिव जिनके बाईं ओर एक भैंसा है और शिव का दाहिना पैर गरुड़ पर रखा हुआ है, महाकाल की एक मूर्ति, उसके भी बीस भुजायें हैं, एक हाथ में वह नर-मुण्ड पकड़े हैं, उसका शेष शरीर नीचे पड़ा हुआ है।

उस मूर्ति को इतना भयानक क्यों बनाया गया है, यह समझ में नहीं आया, कटा हुआ सिर उनके हाथ में है और उससे ताजा खून नीचे गिर रहा है। मूर्ति के दोनों तरफ कुबेर की पत्नियाँ खड़ी हैं। उनमें से एक कटे हुये सिर से गिरते हुये खून का पान कर रही है और दूसरी पत्नी किसी के कटे हुये हाथ को निगल रही है। वहाँ पर इस प्रकार की और भी मूर्तियाँ हैं, उनकी आकृतियाँ एक-दूसरे से भिन्न हैं।

यहाँ पर भिन्न-भिन्न प्रकार की मूर्तियों के चमत्कार मुझे देखने को मिले, वहाँ पर अप्सराओं की मूर्तियाँ भी हैं, जो नृत्य कर रही हैं। उन अप्सराओं के हाथों में फूलों की मालायें हैं और वे विभिन्न प्रकार के बाजे अपने हाथों में लिये हैं। इन अप्सराओं की मूर्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक बनायी गयी हैं। यहाँ की समस्त इमारत श्वेत संगमरमर पत्थर की बनी हुई है। इस इमारत के अनेक भाग ऐसे हैं, जिनकी आभा प्रभा में आज तक कोई अन्तर नहीं आया। इमारत के कितने ही भाग गन्दे और काले हो गये हैं, ऐसा मालूम होता है कि धुने हुये होने के कारण कुछ मौसिम

की खराबियों से उनका रङ्ग बदरङ्ग हो गया है। लेकिन इन खराबी के आ जाने पर भी उनमें जो कारीगरी की गयी है उसमें कोई फ़र्क नहीं आया। बल्कि वह कहीं-कहीं पर और भी स्पष्ट हो गयी है।

मंदिर के भीतरी भाग में उच्चकोटि की निर्माण कला देखने में आती है। बीच में गुम्बद बना हुआ है, उसका निर्माण भी असाधारण रूप में किया गया है। मंदिर का बाहरी भाग उतना आकर्षक नहीं है, जितना भीतरी भाग। छत की दशा अधिक बिगड़ गयी है। आगे की जमीन में जो खम्भे बने हैं, वे देखने में रविश के मालूम होते हैं, ये खम्भे भी सगमरमर के ही बने हैं। इसी सगमरमर की बनी हुई बहुत सी टूटी हुई मूर्तियाँ, कोरनिस, खम्भे और शिलायें पास के चौक में पड़ी हैं, जो एकत्रित करके ढेर कर दी गयी हैं। उनका एक दिन निर्माण हुआ था और आज वे सभी मूर्तियाँ—जो एक दिन पूजी जाती थीं—टूट फूट जाने के कारण इस पतन को प्राप्त हुई हैं।

१६ जून—सरोतरा अपनी थकान को बहुत कुछ दूर कर चुका था, सिरोही के इतिहास से जो कुछ मिला, उसे लेकर मैंने उस मुकाम को छोड़ दिया।

सवेरे १० बजे थर्मामीटर ८६° पर था और बैरोमीटर २८° १० पर था, फासिला द द० प० में १० मील। रास्ता एक घने जङ्गल में होकर गया था। उस जङ्गल में धाक के पेड़ अधिक थे। उस रास्ते में पैदल लोग और पशु आसानी के साथ निकल जाते थे। लेकिन बड़े पशु उसमें से होकर नहीं निकल सकते थे। इसलिये मैंने अपने आदमियों को कुलहाड़ियों के साथ आगे भेज दिया था कि वे जहाँ आवश्यक समझें, जङ्गल को काटकर रास्ता साफ़ कर।

उत्तरी भारत और बन्दरगाहों के बीच में यह प्रदेश किसी समय व्यापारियों के लिये प्रसिद्ध मार्ग था। लेकिन वह अब वीरान हो चुका है, यहाँ की सभ्यता और सुविधायें मिट गयी हैं और यह उन्नत प्रदेश प्राचीन काल के जङ्गली जीवन में पहुँच गया है। किसी समय यहाँ पर आबू, तारगी और चन्द्रावती आदि के चमकते हुए दृश्य थे। उनमें कुछ तो नष्ट हो चुके हैं और कुछ नष्ट प्राय हैं। इस प्रदेश के इस विध्वंस और विनाश को देखकर और यहाँ के राजाओं, नरेशों तथा सम्राटों के वैभवों का अनुमान लगाकर हिन्दुओं के "संसार नाशमान है।" के सिद्धांत की ओर कुछ समय के लिए देखना पड़ता है।

इस क्षेत्र की जो सड़कें किसी समय प्रसिद्ध व्यापारियों और यात्रियों से भरी रहती थीं और फौजी घोड़ों के टापों से गूँजा करती थीं, आज सूनी पड़ी हुई हैं। ऐसा मालूम होता है कि अब इन रास्तों में जङ्गल के निवासियों के सिवा और कोई चलने वाला नहीं रह गया। जङ्गलों और पहाड़ों पर रहने वाले लोग कभी-कभी इन रास्तों

से निकल पडते हैं और जो लोग उनको इन रास्तो में मिल जाते हैं, उनको लूट-मार-कर फिर जङ्गलो मे चले जाते हैं।

प्राचीन काल में योरोपीय यात्रियो के आने के दिनो मे ये रास्ते सुरक्षित नही थे। और इनमे राजपूतो तथा भीलों की घुमक्कड जातियों के लोग घूमा करते थे। उन आवारा जातियों की हरकतो के विवरण, रहन सहन और कारनामों के विवरण थोवनाट और ओलोरिअस ने खूब दिये हैं। उनको पढ़कर मालूम होता है कि देवडा निवासी मेरे मित्रो के नैतिक जीवन मे बादशाह शाहजहाँ के समय से लेकर अब तक कोई अन्तर नही आया। (१)

गिरवर से चार मील की दूरी पार हमने एक झरना पार किया। वह झरना कालेडी के नाम से प्रसिद्ध है और गिरवर से चार मील पश्चिम की तरफ गूँगपाल अथवा मूगथल नामक एक छोटी सी झील से निकलकर प्रवाहित होता है। हमारे दाहिने तरफ पश्चिम की ओर चार मील पर तीन शिखरो का एक ऊँचा दुर्ग है। उसके ऊपर काली लोगों की देवी आया-माता का मन्दिर है। बहुत-से लोग उसको ईषानी देवी भी कहते हैं। इस देवी और घोडे की प्रतिमा की ही ये लोग प्राचीन काल में पूजा करते थे। (२)

इस त्रिकूट से पहाडो की एक श्रेणी पश्चिम मे डीसा और दाँतीवाडा की तरफ जाती है। इस श्रेणी की पहाडियाँ ऊपर से देखने मे एक दूसरे से पृथक दिखायी

---

(१) यहाँ की यात्रा में हमको बनजारे व्यापारियो का एक काफिला अर्थात् कारवाँ मिला। उसके आदमियो ने कहा कि दो सौ राजपूतो ने उन पर आक्रमण किया था और उन्होने एक सौ रुपये माँगे। उन्होने यह रकम माँगते हुए कहा कि सौ रुपये देने पर हम लोग तुमको कोई नुकसान नही पहुँचायेंगे। यह सुनकर हमको अपनी हिफाजत के लिए सावधान हो जाना पडा। इसलिए कि उन लोगो ने इसके पहले एक दिन सौ आदमियो को देखा था। इनमे पहले के कुछ आदमी भी थे। वे लोग एक बैल लेकर सन्तुष्ट हो गये और कुछ नही कहा। लेकिन पहले जो लोग मिले थे, उनसे जाकर मिल गये और उसके बाद इन लोगो ने हम पर आक्रमण किया।

—ओलोरियस भाग १

(२) यहाँ पर सबसे पहले मैंने पृथ्वी माता की मूर्ति देखी है। ईषानी, ईशा-दवी, अवनी पृथ्वी, सर्वधानी आया माता आदि की मूर्तियाँ यहाँ पर थीं। इनकी पूजा होती थी। लेकिन घोडे की पूजा का क्या अभिप्राय है यह मेरी समझ मे नहीं आया। कदाचित इसलिए कि वह सबसे अधिक तेज चलता और दौडता है। यहाँ पर मुझे इस बात का भी पता चला कि इसके सम्बन्ध मे कोलियो, भीलों और (सिरिया) जातियो के लोगों में कोई भिन्नता नही है।

देती हैं। लेकिन जमीन में वे एक दूसरे से मिली हुई हैं और उन पहाड़ियों से भी उनका सम्पर्क है, जिन्हें हमने गिरवर और चन्द्रावती के बीच में पार किया था। इन पहाड़ियों का क्रम कुछ फासिले के बाद टूट जाता है। इनकी चोटियाँ ऊपर से एक दूसरे से पृथक नहीं मालूम होता और ऐसा जान पड़ता है कि आस-पास के फैले हुए जङ्गल में से ये चोटियाँ निकली हैं।

दूसरी तरफ अरावली पहाड़ियों का क्रम है। वहीं पर पन्द्रह मील के फासिले पर एक सुन्दर घाटी है। उसमें बनास का जल प्रवाहित होता रहता है। वहीं से आरासण और तारिंगो के मंदिरों का मुकुट होकर अरावली दक्षिण की तरफ चलता है और कुछ दूरी तक उसके क्रम को कायम रखता हुआ नर्मदा की तरफ चला गया है। इस श्रेणी का कोई एक क्रम नहीं है वह श्रेणी बायीं तरफ बीस मील के फासले पर दांतन में जाकर समाप्त हो जाती है। वहाँ पर राणा का पद धारण करने वाले बरड़ नामक राजपूत जाति के सरदार का निवास स्थान है। कहा जाता है यह जाति किसी समय सिंध की घाटी की तरफ से आयी थी। पौराणिक कथाओं में बताया गया है कि देवी स्वयं लोगों को उस घाटी से यहाँ पर लायी है कि माता के मन्दिरों में जो सोना चाँदी चढ़ता है, उसका आधा भाग बाँट लेने के लिए ये अधिकारी माने जाते हैं।

इसी सरदार ने अर्बुदा देवी के मन्दिर से सोने का कीमती प्याला लेकर अपने अधिकार में कर लिया था। उस पर एक दोषारोपण और किया जाता है। कहा जाता है कि उसने दाहू सरदार के चढ़ाये हुये आरासण की देवी के ऊपर अपना पापी हाथ डाला था।

यदि इस सरदार का आना सिन्धु से ही हुआ है तो निश्चित है कि इसके पूर्वज कई शताब्दी पहले यहाँ पर आये होंगे। इस देवी का एक मन्दिर सिन्धु के पश्चिम में मकरान के तट पर अब भी मौजूद है।

गिरवर और सरोत्रा (१) के मध्य कुरेतर नामक ग्राम में हमने बनास नदी को पार किया। यहाँ पर वह नदी जङ्गली मार्गों से होकर सरोत्रा की तरफ चला जाती है। उसी के तट पर हमने मुकाम किया। वहाँ पर चारों तरफ जङ्गल व और जङ्गली मुर्गों की आवाजें सुनायी दे रही थीं। कोयलों की आवाजें तो दक्षिण की तरफ निश्रा-सणी तक हमको सुनायी पड़ती रही।

कोली लोग कोयल को सुक्सी कहा करते हैं अर्थात् सुख देने वाला पक्षी। इसका अर्थ कुछ उसी प्रकार है। जैसे कमेड़ी का अर्थ 'कामदेव का पक्षी' होता है।

---

(१) सरोत्रा पालनपुर राज्य की उत्तरी पूर्वी सीमा पर बनास नदी के किनारे भीलों का एक छोटा-सा ग्राम है।

उदयपुर की घाटी और कोटा के कठार के निवासी भी इस पक्षी को कुछ इसी प्रकार के नामों से पुकारते हैं। उसका अर्थ यह होता है कि यह कामदेव का प्यारा पक्षी है। जो लोग जङ्गलों और पहाड़ी गुफाओं में रहते हैं और अपने मामूली कारबार करते हैं उनकी इस प्रकार की भाषा और उनके शब्दों को सुनकर एक समझदार और सभ्य आदमी आश्चर्य चकित हो सकता है।

सरोत्रा कोलीपाड़ा का एक जङ्गल है और यहाँ की अनेक बातों के साथ साथ बोलने की भाषा बिल्कुल बदली हुई है। सिरोही के लोगों की बातें मैं थोड़ी बहुत समझ लेता था और मेरी बातें वे लोग समझ लेते थे। परन्तु यहाँ के लोगों की बातों को समझने में मुझे बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यहाँ के लोग एक साधारण सी बात जो मुझसे करते हैं उसको मैं समझ नहीं पाता और यही हालत यहाँ के लोगों की उस समय हो जाती है, जब मैं कोई बात उनसे कहता हूँ।

यहाँ के लोग कोलियों के वंशज हैं। ये लोग उस समय तक अपने इसी प्रकार की जिन्दगी व्यतीत करेंगे, जब तक यहाँ का जङ्गली जीवन समाप्त न हो जायगा। यहाँ का जङ्गल उतना ही पुराना है, जितनी की ईसानी देवी पुरानी है। यहाँ से चन्द्रावती सोलह मील और दाँता छब्बीस मील कहा जाता है। वसिष्ठ का मन्दिर उ० २५° पू० तथा त्रिकूट वाली पहाड़ी उ० २५° से ३५° पू० पर है।

१७ जून—चित्रासणी दिशा द० द० प०, फासला साढ़े ग्यारह मील का। यहाँ पर हमको फिर से मैदान दिखायी पड़े। आरम्भ के सात मील तक रास्ता उसी घने जङ्गल में से है, जहाँ पर वह रास्ता समाप्त होता है। वहाँ अभी कुछ दिन पहले पालनपुर के राजा ने एक ग्राम बसाया है। इसके आगे दो मील चलने पर हमको एक दूसरा झरना पार करना पड़ा। वह झरना बलराम नाला के नाम से मशहूर है। यह झरना अरावली पर्वत से निकलता है और चार मील नीचे की तरफ बहते हुए बलराम के छोटे से मन्दिर के पास बनास नदी में जाकर मिल जाता है।

यहाँ पर वह जङ्गल समाप्त हो जाता है, जिसमें होकर हमको आबू से पच्चीस मील चलना पड़ा था। पहाड़ियों की वह श्रेणी—जिसका बयान मैं आगे कर चुका हूँ—कहीं कहीं ऊँची चोटी की शकल में अपने प्रारम्भिक क्रम का परिचय देती थी। वह हमारे रास्ते से चार मील के फासिले पर बराबर चली आ रही थी। इसी प्रकार दक्षिण पश्चिम में ईसानी श्रेणी भी दाँतीवाड़ा की तरफ मुड़ गयी थी।

आज की यात्रा समाप्त होने के साथ साथ मिट्टी में बालू बढ़ने लगी थी और उसका प्रभाव पेड़ तथा वनस्पति में भी स्पष्ट दिखायी देने लगा था। घो और पलास—जिसके पत्तों से लोग प्याले और तश्तरी का काम लेते हैं—अब यहाँ दिखायी नहीं पड़ते थे। उनके स्थान पर बबूल, हमेशा हरे रहने वाले पीलू और करील के पेड़

दिखायी देते थे। लगातार बालू बढ़ती जा रही थी। यहाँ की यात्रा में जमीन का ढाल बढ़ता जाता था और बैरोमीटर में उसी को साबित कर रहा था, जो दोपहर के समय २८° ८० पर था बैरोमीटर ६६° बना रहा था। चीरासरी के करीब से मैंने आबू की तरफ उ० उ० पू० आखिरी बार देखा।

१८ जून—पालनपुर। दिशा द० प० फासिला नौ मील। यह कस्बा एक छोटे से जिले का थाना है। वह आजकल बम्बई प्रान्त में अङ्गरेज सरकार के अधिकार में है। यहाँ का प्रधान आधे रास्ते पर मेरे स्वागत करने के लिए आया। वह प्रधान यहाँ का दीवान कहलाता है। मुझसे मिलकर उसने बहुत अधिक सम्मान प्रकट किया और फिर अपने साथ अपने नगर ले गया।

दीवान ने मुझे लजाकर अपने नगर में मेजर माइल्स के निवास स्थान पर ठहराया। माइल्स उन दिनों यहाँ का रेजीडेण्ट एजेण्ट अर्थात् स्थानीय प्रतिनिधि था। उसके संरक्षण में इस नगर ने बड़ी उन्नति की थी। दीवान मुसलमान है। उसको जालोर तथा गुजरात के राजाओं ने जागीर के रूप में यह इलाका दे रखा था। कदाचित वह जागीर दीवान के पूर्वजों को दी गयी, परन्तु जागीर में राठौर सरदार ने उनको वहाँ से निकाल दिया था।

वह दीवान एक होनहार युवक है। उसका व्यवहार सज्जनता से भरा हुआ अत्यन्त संतोषजनक और सम्मानपूर्ण था। उसके यहाँ जो नौकर हैं, वे अधिकांश सिन्धी हैं। उनकी सेवाओं के लिए जमीनें मिली हुई हैं। पालनपुर के आस पास एक परकोटा बना हुआ है। यहाँ पर घरों की सख्या छै हजार बतायी जाती है। प्राचीन काल में पालनपुर चन्द्रावती राज्य में एक प्रमुख जागीर के रूप में था। इस पालनपुर को पाल नामक परमार राजपूत ने बसाया था। इसीलिये इसका नाम पालनपुर (१) पड़ा।

---

(१) प्राचीन काल में पालनपुर का नाम प्रह्लादनपत्तन था, उसके इस नाम का कारण यह था कि चन्द्रावती के धारावर्ष परमार राजपूत के छोटे भाई प्रह्लादन देव ने इसको बसाया था। लोगों का कहना है कि विक्रम सम्वत् में दो शताब्दी पहले यह कस्बा उजड़ गया था। उसके बाद पालनसी चौहान ने इसको फिर से आबाद कराया, इसलिए इसका नाम पालनपुर पड़ा। बहुत से लोग यह भी कहते हैं कि जगना के जगदेव परमार के भाई पाल परमार ने इसको बसाया था। इन दोनों जन श्रुतियों में सही क्या है, यह नहीं कहा जा सकता। दोनों प्रकार की बातों को सुनने के बाद और उन पर विचार करने से मालूम होता है कि देवड़ा के चौहानों के द्वारा सन् १३०३ ई० में आबू और चन्द्रावती को विजय के बाद पालनसी ने इसकी उजड़ी हुई हालत को सम्भाला और उसे फिर से आबाद कराने के लिए जो भी उपाय आवश्यक

पाल परमार की मूर्ति को मैंने देखा, उसके प्रति आज भी यहाँ के लोगों में सम्मान है। ध्यानपूर्वक देखने के बाद भी उसका आकार-प्रकार मेरी समझ में नहीं आया। इसलिए कि यह मूर्ति चूने के उस ढेर में गडी हुई है, जो इस मंदिर की मरम्मत के लिए मगाकर यहाँ पर एकत्रित किया गया है। मैं यह नहीं कह सकता कि यह मूर्ति पालनपुर मे ही थी अथवा चन्द्रावती से लायी गयी है। लेकिन यह तो साफ जाहिर है कि आबू पर्वत पर राक्षस को मारने वाले की जो मूर्ति है, उसके मुकाबिले में यह मूर्ति साधारण है। यद्यपि दोनों मूर्तियो की बहुत सी बातें बहुत कुछ मिलती-जुलती हैं। इसके पुरानी अथवा नवीन होने का अनुमान उसको देखकर आसानी के साथ किया जा सकता है। उसकी बनावट उसके प्राचीन होने का मजबूत प्रमाण देती है। इसमे सन्देह नहीं किया जा सकता।

बल्हरा के राजाओं में प्रसिद्ध सिद्धराय की जन्म भूमि यही पालनपुर है। यदि यह बात सच है—जैसा कि कुमारपाल के इतिहास में लिखा है तो उसकी माँ निश्चय ही राजाकरण की स्त्री, हिन्दू कुल देवी के मन्दिर की यात्रा न करके अपनी गर्भावस्था मे अपने निश्चय को पूरा करने के लिए सिन्धु के पश्चिम में किसी स्थान की यात्रा करने के लिए गयी होगी। इसके सम्बन्ध में विस्तार मे फिर कभी लिखूगा।

मैं आज और कल—दो दिन मेजर माइल्स के साथ रहा। उसके सम्पर्क मे मेरे अड़तालीस घंटे जिस प्रकार सुख-सतोष में कटे, वैसे बहुत कम अवसर प्राप्त होते हैं। मेजर माइल्स सहृदय मित्र और सह अधिकारी ही नहीं था, बल्कि उसके मनोभावों में भी उन्हीं विचारों ने घर बना रखा था, जो मेरे मन मे प्रवेश पा चुके थे। इस अर्थ म हम दोनों की अभिलाषायें एक थीं। इसलिए हम दोनों में बातें करने के लिए बहुत बडी सामग्री थी। प्राचीनकाल की जातियों के चरित्र और रहन सहन के सम्बन्ध मे हम दोनों की जानकारी एक सी थी। यहाँ के जङ्गली क्षेत्रो मे अपनी तरह का धुन वाला सहृदय मित्र पाकर मुझे कितनी बडी प्रसन्नता हुई, यह बता सकना सम्भव नहीं है। मुझे इस समय अपार सतोष और सुख मिला, ऐसा मालूम हुआ, मानो मेरा मानसिक बोझ कुछ हलका हो गया।

मालूम हुए, वे सभी किये, इस प्रकार उसकी हालत बदली। चौदहवीं शताब्दी के मध्य-कालीन दिनों में चौहानों को मुसलमानों ने पराजित किया था, उन मुसलमानों का नेतृत्व मलिक युसुफ कर रहा था, उसके कुछ आदमियों ने औरङ्गजेब के अन्तिम दिनों में—शासन के कमजोर पडने पर अपने आपको दीवान घोषित कर दिया था। उनको दीवान की पदवी दी नहीं गयी थी और न किसी इतिहास से यह साबित होता है।

गजेटियर आफ बाम्बे प्रेसीडेंसी भाग ५
जेम्स एम० कैम्पबेल १८८० पृ० ३०८

मैंने मेजर के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए उसको अपोलोडोटस (१) के बैक्टी रियन तगमें की एक प्रति भेंट की जो मुझको अवन्ती के सरहद्दरा में अथवा अजमेर की झील पर मिला था।

२० जून—सिद्धपुर : इस नगर के सम्बन्ध में (डी अनाविले) ने लिखा है—इसका नाम बहुत कुछ इसके गुणों के आधार पर रखा गया है, इस प्रकार की धारणा तो उसके नाम पर की जाती है। लेकिन सही बात यह है कि बल्हरा के राजा सिद्ध-राम के नाम से इसका यह नाम रखा है। इसके सही होने का प्रमाण यह है कि यहाँ के अधिकांश लोग विश्वास पूर्वक कहते हैं कि इस नगर को राजा सिद्धराम ने बसाया था। बहुत लोगों का यह कहना भी है कि राजा सिद्धराय अथवा सिद्धराज ने इसको बसाया नहीं था, बल्कि जब इसकी दशा बहुत जीर्ण शीर्ण हो गयी थी तो उसने इसको नया जीवन दिया था। इसके सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ अनेक प्रकार की हैं। उसमें सही क्या है और गलत क्या है, इसका निर्णय बिना किसी आधार के नहीं किया जा सकता। (२)

---

(१) सिकन्दर महान के बाद उसके राज्य का सीरिया नामक प्रदेश सिल्यूकस के हिस्से में आया था और सिल्यूकस के वंशज (यूक्रेटाइडेस) के अधिकार में बैक्ट्रिया, काबुल की घाटी, गान्धार और पश्चिमी पंजाब था। उसके वंशज ईसा से लगभग अड़तालीस वर्ष पूर्व तक उनमें शासन करते रहे। इनके सिवा, ग्रीक वंश के कुछ अन्य लोगों ने भारत के कुछ स्थानों पर अधिकार कर लिया था उसकी जानकारी अब खोदाई में मिलने वाले सिक्कों के द्वारा हो रही है। इन्हीं सिक्कों में अपोलोडोटस प्रथम और द्वितीय के सिक्के भी मिले हैं। उनकी लिपि खरोष्ठी, उनमें अपोलोडोटस को महारजस अपलन्तस लिखा गया है। पेरीप्लस के विद्वान लेखक ने भी अपोलाडोटस और मिनाण्डर के सिक्कों का भड़ोच में मिलना स्वीकार किया है।

अरली हिस्ट्री आफ इण्डिया—वी० स्मिथ

(२) सिद्धपुर सरस्वती के उत्तरी ढाले किनारे पर बसा हुआ है। कहा जाता है कि मूलराज ने उत्तरी भारत से ब्राह्मणों को लाकर यहाँ पर बसाया था। उन ब्राह्मणों के आने से यह स्थान सिद्ध पुरुषों का निवास स्थान हो गया और उसी के आधार पर इसका नाम सिद्धपुर पड़ा। इसका प्राचीन नाम श्रीस्थल अथवा श्रीस्थलक था और यह स्थान अत्यन्त पवित्र माना जाता था, जिस तरीके से पितरों का श्राद्ध और तर्पण प्रयाग और गया में किया जाता है उसी तरह मातृ पक्ष के पूर्वजों का श्राद्ध और तर्पण सिद्धपुर में होता है। उस स्थान के सम्बन्ध में हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थों में लिखा है—गया से स्वर्ग आठ मील पर है, प्रयाग से चार मील पर और श्रीस्थल से-जहाँ पूर्व की तरफ सरस्वती बहती है—स्वर्ग केवल एक हाथ की दूरी पर

जो लोग मूलराज को इसका निर्माता मानते हैं, उनका कहना है कि उसने इसक जीर्णोद्धार का कार्य अम्बादेवी के मन्दिर से प्रवाहित होने वाली सरस्वती नदी के तट से आरम्भ किया था। प्राचीनकाल में गृह निर्माण कला कितनी उन्नति पर थी, इसके अत्यधिक प्रमाण यहाँ पर देखने को मिलते हैं। यहाँ पर बनी हुई इमारतें जो टूट चुकी हैं, उनसे भी उस कला की विशेषता का पता चलता है। यह मन्दिर रुद्रमाला अर्थात् युद्ध के देवता का मन्दिर कहलाता है। परन्तु यह मंदिर बुरी तरह से टूट गया है और उसके टूटे हुए भाग इस प्रकार अस्त व्यस्त हो गये हैं कि मन्दिर के आकार-प्रकार की कल्पना कर सकना असम्भव हो गया है। टूटे हुए भाग बरामदों अथवा कुछ इसी प्रकार के हिस्सों के हैं। लोगों का कहना है कि मण्डप के आगे बने हुए नन्दी गृह और छतरी के ये टुकड़े हैं। उसमें रुद्र का वाहन नन्दी बैठा हुआ था। निज मन्दिर तो अब मस्जिद में बदल चुका है। लोगों के कथनानुसार यह इमारत आयताकार थी और पूरी इमारत पाँच खण्डों में बनी हुई थी। अभी तक उसका एक खण्ड बना हुआ है, यदि उससे अनुमान लगाया जाय तो इमारत एक सौ फीट से कम ऊँची न रही होगी।

इमारत का जो हिस्सा बचा हुआ है, वह पूरी इमारत के दो खण्डों का खण्डहर ही है। वह चार-चार खम्भों पर ठहरा हुआ है और तीसरे खण्ड के स्तम्भ बिना छत के हो गये हैं। उनको देखकर हम जिस अहदयगान को अनुभव करते हैं, उसके महत्व और वैभव का कहीं पर अन्त नहीं है?

बिना किसी आधार और छत के लटके हुए स्तम्भ जाहिर करते हैं,
कि दूसरे का आधार कोई आधार नहीं हैं, आधार अपना होता है।
छतों की टूटी हुई पट्टियाँ जाहिर करती हैं कि जो सबसे ऊँचे,
होता है, सबसे पहले पतन और विनाश उसी का होता है।
खण्डहरों के रूप में दिखायी देने वाली इमारत,
एक दिन अपने यौवनावस्था में थी और उन दिनों में।
वह दीन-दुर्बल इमारतों से घृणा करती थी। इस,
इमारत का अब वह समय नहीं रहा, जब उसकी शक्ति और।
सौंदर्य का विकास मात्र था और वह भीषण तूफानों, भूकम्पों,
तथा मिटाने वाले कठोर आघातों को देखकर मजाक उड़ाती थी।

समय के प्रकोपों ने इसी को नहीं, इसके पड़ोसी अहमद के नगर अहमदाबाद

है। कुछ जन श्रुतियों के आधार पर लोगों का विश्वास है कि बारहवीं शताब्दी में सिद्धराज जयसिंह रुद्रमाल का निर्माण कराया था। उसके बाद इस स्थान का नाम सिद्धपुर पड़ा। (दी अरकेलोजिकल एंटीक्यूटीज आफ नादर्न गुजरात)।

को अद्वितीय मर्यादा को धराशायी कर दिया है। (१) मेरे मित्र और सहयोगी मान नीय (लिकन स्टैनहोप) ने अगर इस रुद्रमाला के भग्नावशेषों का वर्णन न किया होता तो मुझे उनके सम्बन्ध की जानकारी न होती, उस वर्णन से मुझे जो कुछ मिला है, उसे मैंने सम्मान पूर्वक अपने पाठकों की जानकारी के लिए यहाँ पर लिखा है

यह मस्जिद खुरदरे और बालूदार पत्थर से बनी हुई है और उसके अनेक स्थानों में दानेदार बिल्लोरी पत्थर भी लगे हुये हैं। इमारत के अनुसार उसकी निर्माण-कला भी प्रशंसनीय है। मुझे वहाँ पर दो शिला लेख मिले। उनमें एक जाहिर करता है कि राजा मूलराज ने इसको सम्वत् ६६८ सन् ६४२ ईसवी में बनवाना शुरू किया था। दूसरे शिला-लेख से पता चलता है कि सिद्धराज ने इसको पूरा करवाया। उसमें लिखा हुआ है—सम्वत् १२०२ सन् ११४६ ईसवी में मार्च महीने की चौथ कृष्ण पक्ष का सोलंकी सिद्ध ने इस रुद्रमाला को बनवाकर पूरा किया और शुद्ध मन से शिव का पूजन कराया, इससे संसार में उसकी कीर्ति बढ़ी।

राजा मूलराज अनहिलवाड़ा के सोलंकी वंश का था और उसने इस इमारत के बनवाने का निर्माण कार्य आरम्भ किया था।

इस मन्दिर के सम्बन्ध में एक पद्य मिला। उसमें अलाउद्दीन के द्वारा इसके विध्वंस का विवरण मिलता है—'सम्वत् १३२३ सन् १२६७ ईसवी में म्लेच्छ अला-उद्दीन आया। नरेशों का सर्वनाश करते हुए उसने रुद्रमाला का विध्वंस और विनाश किया।'

फरिश्ता के अनुसार, इसी वर्ष में गुजरात विजय किया गया और यहाँ के राजा करण को मारा गया। उसको कुछ इतिहासकारों ने भूल से गोहिल लिखा है। लेकिन उस निर्दय अत्याचारी अलाउद्दीन के मन में—जो खूनी और कातिल नाम से प्रसिद्ध हुआ—मालूम पड़ता है एक दहशत पैदा हुई और उसने मूर्ति पूजकों के इस विशाल मन्दिर का शेष भाग ज्यों-का त्यों छोड़ दिया।

मेरे मित्र ने सांखला भाट के साथ मेरा परिचय कराया। उसको बहुत-सी पुरानी बातों का स्मरण था। उन स्मरणों के सम्बन्ध में उसने बड़ी देर तक न जाने कितने पद्य सुनाये। उसने अपने पद्यों के द्वारा बताया।

(१) यहाँ पर अहमदाबाद की प्रसिद्ध मस्जिद—जिसमें ऐसी मीनारें थीं, जिन पर चढ़कर कोई भी आदमी झूल सकता था और इसलिए वे मीनारें भूलती हुई मीनारों के नाम से मशहूर थीं उस मस्जिद की सम्पूर्ण इमारत बड़ी खूबसूरत और मजबूत थी। भूकम्प ने बड़ी निष्ठुरता के साथ उसको नष्ट कर दिया। यदि कैप्टेन ग्राइण्ड ले ने अपनी पुस्तक में उसका वर्णन न किया होता तो आज उसका पता भी न होता।

रुद्र के मन्दिर में १६०० स्तम्भ थे, १२१ रुद्र की मूर्तियाँ थी। वे मन्दिर के विभिन्न स्थानों पर रखी हुई थीं। १२१ सोने के कलश थे, १८०० अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ थीं ७२१३ विश्राम करने के लिए कमरे अथवा कोठे थे। वे मन्दिर मे भीतर से लेकर बाहर तक बने हुए थे। १,२५००० उनकी संख्या थी, जिनम जालियाँ पर्दे, निशान और पताका लिए हुये चोबदार, शूर वीर, यक्ष, मनुष्य, पशु पक्षी और पुतलियाँ आ जाती हैं।

मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में लिखा हुआ मिलता है कि इसके निर्माण में सिद्ध राज ने एक करोड़ चालीस लाख सोने के मुद्रा खर्च किये। यहाँ पर मुद्रा का अभिप्राय क्या है और उसका मूल्य क्या होता है, यह स्पष्ट नहीं किया गया।

इस प्रसिद्ध मन्दिर के अनेक अवशेष और भग्न भाग अब कोली लोगों के घरों से घिरे हुए हैं। इसलिए यह चिन्ता करना स्वाभाविक हो गया है कि रुद्र के मुरुडों (१) के टूट कर गिरने से कहीं उनके घर और मस्तक चूर चूर न हो जाँय। यद्यपि उनकी नींव मजबूत चट्टानों पर है, फिर भी लोगों का कहना है कि सन् १८१६ ईसवी के भूकम्प में, जिससे सम्पूर्ण पश्चिमी भारत प्रभावित हुआ था, दो विशाल स्तम्भ टूटकर गिरे थे।

मन्दिर के टूटे हुए भागों का दृश्य उन झोपड़ियों से भली प्रकार देखा जा सकता है, जो वहाँ पर—मन्दिर के सामने की जमीन पर बनी हुई हैं।

---

(१) रुद्र युद्ध का दवता माना जाता है और उसकी माला मनुष्य के कटे हुए सिरों से बनी होती है।

आठवाँ प्रकरण

राज्यों के विध्वस और विकास

पश्चिमी भारत की प्राचीन राजधानी नहरवाला और उसकी खोज—ग्रीस के भूगोल शास्त्री और अरब के भूगोल वेत्ता—भूगोल शास्त्रियों की भूलें—इतिहासकार हेरोडोटस—अनहिलवाड़ा का प्राचीन इतिहास—बल्हरा के पद का रहस्य—सूर्य की आराधना—वलभी नगर के अवशेष भाग और उसकी राजधानी का परिवर्तन—उन दिनों की घटनायें—भारत मे ऐतिहासिक सामग्री—अनहिलपुर की स्थापना और जनश्रुति—भारत में उन दिनों की क्रान्ति—बल्हरा के सिक्के—नवीं शताब्दी में यह थी।

द ऑनविले और रेनेल (१) के समय से अब इस देश में भूगोल के सम्बन्ध में बहुत कुछ प्रगति हो चुकी है लेकिन पश्चिमी भारत की राजधानी नहरवाला की परिस्थिति उस समय तक वैसी ही बनी रही, जब तक सन् १८२२ ईसवी मे मैंने वर्तमान पट्टण के बल्हरा राजाओं के सम्बन्ध म खोज का कार्य आरम्भ किया था। उसका नाम और कार्य भूगोल शास्त्रियों के लिये एक भीषण पहेली बनी हुई थी।

पट्टण के इस छोटे नगर का नाम अनुरवाडा अथवा अनहलवाडा है, उसका यही नाम यहाँ के राजवंशी इतिहास के अनुसार सही माना जाता है। इसका बिगड़ा हुआ रूप नेहलवड़े अथवा नेहरवल है। लेकिन असली नाम यही है।

पुराना समय अब समाप्त हो चुका है और वह समय नहीं रहा जब किसी के लेख और अनुरोध न आसानी के साथ मान लिये जाँय। प्राचीन काल में किसी के लिखे हुए को अधिक महत्व दिया जाता था, लेकिन आज का समय कुछ और है। आज बड़े से-बड़े विद्वान की लिखी हुई चीजों में सत्य और असत्य की खोज की जाती

---

(१) रेनेल भूगोल के सम्बन्ध में प्रसिद्ध विद्वान था। सन् १७५६ ईसवी में अपनी चौदह वर्ष की अवस्था में वह नाविक सेना के कार्य में भरती हुआ। सन् १७६० ईसवी में वह भारत आया। १७६७ ईसवी में उसको सर्वेयर-जनरल का पद दिया गया। ग्यारह वर्ष के बाद १७७८ ई० में वह रायल एशियाटिक सोसायटी का सदस्य चुना गया। भूगोल के सम्बन्ध म वह एक अधिकारी माना जाने लगा। भूगोल के सम्बन्ध में उसने अनेक पुस्तकें लिखी हैं।

है। हैरोडोटस (१) प्राचीन इतिहास लेखक माना जाता है। परन्तु उसके लिखे हुए न जाने कितने ऐतिहासिक तथ्य सही नहीं माने जाते। उसके लिखे हुए ग्रंथ में बहुत से स्थल निराधार हैं। बिना किसी आधार के उसने जो कुछ सुना, उसी को सत्य मानकर लिख दिया। यह कर्त्तव्य उस इतिहासकार का न होना चाहिए, जिसने इतिहास की प्राचीन बातो में अनुसधान का कार्य किया है।

कितनी ही बातें हैरोडोटस ने भारतवर्ष की प्राचीन जातियो के सबध मे लिखा है। उनका भी कोई आधार नही है। एक स्थान पर उसने लिखा है कि पद्दर नाम की एक नदी अजमेर की पहाडियो से निकलकर कच्छ की खाडी मे गिरती है। सही बात यह है कि पद्दर नाम की कोई नदी न तो अजमेर की तरफ से निकलती है और न कच्छ की खाडी में गिरती है।

कुछ इसी प्रकार की और भी बहुत सी बातें हैं। उसने सिन्धु नदी के किनारे रहने वाले पदीन लोगों का उल्लेख किया है। यह भी गलत है। हैरोडोटस ने पदीनो को शिकारी और कच्चा मांस खाने वाला लिखा है। ऐसा मालूम होता है कि उसने भारत में पारधी कहलाने वाली शिकारी अथवा बहेलिया जाति के सम्बध मे जो कुछ सुना था, उसी को उसने पदीनो क सबध मे मान लिया था।

अब हम अनहिलवाडा राज्य के सबध मे ऐतिहासिक प्रकाश डालना चाहते हैं। अनहिलवाडा बन्दरगाह न होते हुए भी हिन्दुस्तान का वह टायर (नगर) था। क्योंकि भारतीय बन्दरगाह तो खम्भात मे था। परन्तु यह असम्भव नहीं मालूम होता कि प्राचीन टायर नगर ने यहाँ क व्यापार में सहायता की हो। उसी के कारण अफ्रीका और अरब का काल अत्यन्त प्राचीन काल से कई शाखाओं में विभाजित हो गया था और यह भी नही माना जा सकता कि सालोमन के साथी और हिरम के नाविको ने भारत के सीरिया और सौर भूमि का रास्ता उस समय तक खोज नहीं लिया था।

---

(१) हैरोडोटस का जन्म ४८४ वर्ष ईसा से पूर्व माना जाता है। वह एक ऐतिहासिक विद्वान था और उसने विश्व के इतिहास पर विशाल ग्रंथ लिखा था। उस इतिहास में तत्कालीन सभी ग्रीक ग्रंथों का वर्णन मिलता है। हैरोडोटस ने अपनी बीस से सैंतीस वर्ष की अवस्था तक ससार के कितने ही देशो का भ्रमण किया था। एशिया माइनर और ग्रीस के साथ साथ अनेक देशों की उसने यात्रा की थी। पहले वह एथेन्स में रहा करता था। उसके बाद वह इटली में आकर रहने लगा था। उसने अपनी पुस्तक की भूमिका बहुत विस्तृत लिखी है। लेकिन उसके बाद के इतिहासकार उसके लेखों को बहुत प्रामाणिक नहीं मानते। भारत क सबध में उसकी जानकारी बहुत कम थी।

कुमारपाल चरित्र एक ऐतिहासिक काव्य ग्रंथ है। उसमें अनहिलवाड़ा के राजवंशों का चरित्र काव्य में लिखा गया है। इस ग्रंथ से कुछ वर्णन लेने के पहले कुछ और ऐसी बातें हैं जिन पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

सौराष्ट्र भारतवर्ष का एक प्रमुख प्रदेश है। वहाँ पर जो जातियाँ आकर बसी थीं, उनमें बल्ल नाम की भी एक जाति थी। उसको कुछ लेखकों ने इन्दु वंश की शाखा माना है। इसी आधार पर इसका नाम 'बलि का पुत्र' पड़ा है। उसका मूल रूप बालों का देश, बल्ख अथवा ग्रीक लोगों का बैक्ट्रिया है। इस अनश्रुति के भीतर कुछ भी सच्चाई हो परन्तु इस जाति के राजाओं की भाटों के द्वारा जो सुनने को मिलता है, उससे इसका निश्चित रूप से समर्थन होता है। एक दूसरे विद्वान का कहना है कि राम के बड़े लड़के लव के पुत्र का नाम बल्ल था। उसने धङ्क नामक एक प्राचीन नगर को विजय किया था। वह नगर मुंगीपट्टन कहलाता है और धला चौन वहाँ की राजधानी है।

कुछ समय के बाद इस वंश के लोगों ने वलभी की स्थापना की और बाल राय (१) का पद ग्रहण किया। इस प्रकार ये लोग सूर्यवंशी राजपूत थे, इन्दुवंशी न थे। मेवाड़ के राणा भी सूर्यवंशी ही हैं। ढाँक का वर्तमान शासक भी—जो मेरे उस तरफ आने के समय बैरी था—इस्स वंश का है। इस वंश के लोग केवल सूर्य की उपासना करते हैं और सौराष्ट्र में सूर्य देवता के मंदिर अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

आचार-विचार, रहन-सहन, आकृति प्रभृति और अनश्रुति के आधार पर यह मान लेना असंगत नहीं है कि यह कैथी इण्डोसीथिक जाति की शाखा है और कदाचित म्लेच्छवंशीय होने की बात छिपाने के लिये राम के वंशज होने की कहानी गढ़ी गयी है। वलभी की परिधि-जिसको मानचित्र में वलह (२) लिखा गया है और जिसके सम्बन्ध में राम सम्बन्धी बातों का अब कोई पता नहीं चलता—बारह अथवा पन्द्रह मील कही जाती है। यहाँ की इमारतों के खंडहरों से बड़ी-बड़ी ईंटें निकलती हैं वे डेढ़ से दो फीट तक लम्बी हैं। इसके विषय में अन्यत्र लिखने की हम चेष्टा करेंगे।

---

(१) बल्हराय अथवा बल्हरा शब्द का सम्बन्ध बल्लभराय से राय अथवा राजा से है। उसका सम्बन्ध केवल सोमवंशी वंश के राजाओं से ही नहीं है। वलभी का राज्य सन् ७६६ ईसवी के करीब नष्ट हो चुका था और चौलुक्य राजा मङ्गलीश के मर जाने के बाद उसका राज्य दो भागों में विभाजित हो चुका था। उनमें से पुलकेशिन के वंशज कल्याण कीर्ति वर्मा को पराजित करके मान्यखेट के राष्ट्रकूट वंशी दन्ति दुर्ग ने ७५१ ई० के करीब उसका राज्य प्राप्त कर लिया था और बल्लभराज अथवा बालराय की उपाधि धारण की थी।

(२) वल्लभ नगरम्।

ऊपर कुमारपाल चरित्र का उल्लेख आ चुका है। उसमें वंश और राजधानी के परिवर्तन का वर्णन उस समय से शुरू होता है, जब चावड़ो और सोरों ने बल्लों से राज्य का अधिकार छीन लिया था और उसकी राजधानी का बलभी से अनहिलवाड़ा ले आये थे। यह काव्य ग्रन्थ (१) अट्ठतीस हजार श्लोकों में है और संस्कृत भाषा में लिखी गयी है। जैनियों के प्रसिद्ध गुरु सैलग सूर आचार्य (२) ने उस ग्रंथ की रचना की है।

यहाँ पर मैं उस काव्य ग्रंथ की सामग्री को न तो क्रमशः लेना चाहता हूँ और न उसका शाब्दिक अनुवाद करना चाहता हूँ, बल्कि उसके उन्हीं अंशों को लेना चाहता हूँ, जो इस राज्य के प्राचीन गौरव के संबंध में प्रकाश डालते हैं। उन अंशों से यहाँ के राजवंश और राजाओं की तालिका देने में सहायता मिलेगी, प्रसिद्ध राजाओं के संबंध में अनेक आवश्यक बातों के उल्लेख किये गये हैं। यह बात सही है कि इस प्रकार के विवरण और वर्णन के प्रति साधारण पाठकों की रुचि नहीं होती। फिर भी इस प्रकार के विवरण मैंने यहाँ पर देने की चेष्टा की है। इसका कारण यह है कि किताबों के बहुत से पाठकों और विशेष कर न जाने कितने लोगों ने मान लिया है कि हिन्दुओं के ग्रंथों में ऐतिहासिक सामग्री नहीं है। यह जरूर है कि वह सामग्री जिस रूप में पाई जाती है, वह सब इतिहास मान लिया जाता है तो जिस सामग्री से इतिहास बना हुआ पड़ा है, वह नष्ट हो जाता है। इसलिए इतिहास की उस शुद्ध

(१) यह काव्य ग्रंथ गुजराती भाषा में भी प्रकाशित हो चुका है। संवत् १४९२ सन् १४३६ ई० में इसकी एक हस्तलिखित प्रतिलिपि उदयपुर में महाराणा से मैंने प्राप्त की थी और उसका अनुवाद किया था। यह निश्चय है कि इसी ग्रंथ के आधार पर अबुल फजल ने अपने गुजरात के प्रथम इतिहास का ढाँचा तैयार किया था और उसमें राज वंशों की सूची दी थी। इसके बाद अनहिलवाड़ा के पुस्तकालय से संस्कृत में लिखी गयी पुस्तक की एक प्रतिलिपि मुझे मिल गयी, उसका भी मैंने जैन यति की सहायता से अनुवाद कर लिया। मेरे इन दोनों अनुवादों में मुझको कोई अन्तर नहीं मिला। दोनों भली प्रकार मिलान करने के पश्चात् मैंने रायल एशियाटिक सोसाइटी को भेंट कर दिया।

(२) शीलगुण सूरि को मूल लेखक ने सैलग सूरि लिखा है, वह कुमारपाल चरित का रचयिता नहीं था। वह जैन आचार्य था। उसने वनराज को अपने संरक्षण में रखा था। कर्नल टॉड को कुमारपाल चरित्र की जो प्रति मिली थी, वह सैलग सूरि की लिखी हुई नहीं थी। जिन मण्डन गणि की लिखी हुई कुमारपाल प्रबंधक नामक पुस्तक की रचना संवत् १४९२ है। उसी के आधार पर ऋषभदास कवि ने संवत् १६७० में गुजराती भाषा में कुमारपाल रास की रचना की थी। —अनुवादक

सामग्री को बड़ी सावधानी के साथ अलग करने की आवश्यकता होती है। यह कार्य आसान नहीं है। कल्पित कहानियों आख्यायिकाओं और घटनाओं तथा अतिशयोक्तियों में छिपा हुआ इतिहास महत्व रखता है, लेकिन उसी दशा में जब उसको परिष्कृत आकार प्रकार में निकालने और छटनी करने का कार्य निष्पक्ष भाव से किया जाय।

अनहिलवाड़ा का राजवंश

प्रथम—चाउडा, चावडा अथवा सौरवंश

राजा का नाम	राज्याधिकार प्राप्त करने का समय		शासन काल	विशेष विवरण
	सम्वत्	सन्		
बसराज	८०२	७४६	५०	इतिहास के अनुसार उसने ५० वर्ष राज्य किया और साठ वर्ष की आयु तक जीवित रहा।
युगराज (जोगराज)	८५२	७९६	३५	× × ×
खीमराज	८८७	८३१	२५	प्रथम अरब यात्री २१७ अल-हिजरी, ८५१ ईसवी,
भ्यारजी (बीरजी)	९१२	८५६	२९	दूसरा अलहिजरी २५४ सन् ८६८ ईसवी,
बीरसिंह (वैरिसिंह)	९४१	८८५	२५	
रत्नादित्य	९६६	९१९	१५	
सामन्त	९८१	९२५	७	सम्वत् ९८८ सन् ९३२ ई० तक राज्य किया।
			१९६	

दूसरा—सोलङ्की वंश

राजा का नाम	सम्वत्	सन्	शासन काल	विशेष विवरण
मूलराज	(१) ९८८	९३२	५६	सिद्धपुर के स्मारक का निर्माण आरम्भ किया।
चाउण्ड (चामुण्ड)	१०४४	९८८	१३	अबुल फजल के अनुसार, हिजरी ४१६ सं० १०६४ में महमूद से पराजित हुआ।

(१) इन राजवंशों की तालिका के साथ जो सन् और सम्वत् दिये गये [illegible] वे सही नहीं हैं, उनमें गलतियाँ हैं, जैसा कि अन्य इतिहासों से पता चलता है। इसके लिए रासमाला रॉलिंसन भाग १, अध्याय ४ देखना चाहिए।

बल्लिराव (बलमीसेन)	१०५७	१००१	१॥	महमूद ने एक पुराने राजा को गद्दी पर बिठाया था, कदाचित वह यही वल्लभी था।
दुर्लभ (नाहरराव)	१०५७	१००१	११॥	धार के राजा भोज के पिता मुञ्ज का समकालीन जिससे वह भीमदेव को राज्य सौंपने के पश्चात् मिला था।
भीमदेव	१०६६	१०१३	४२	मुसलमान शक्तियों का सामना करने के लिए १०४४ ईसवी मे हिन्दू राजाओं का संगठन किया।
कर्ण	११११	१०५५	२६	पहाड़ी जातियों मे कोलियों और भीलों को वश ■ किया।
सिद्धराज जयसिंह	१०४०	१०८४	४६	
कुमारपाल	११८६	११३३	३३	
सोनोपाल, अजय पाल अथवा जयपाल	१२२२	११६६	३	कन्नौज के जयसिंह का समकालीन था।
भोला भीमदेव	१२२५	११६६	३	दिल्ली के पृथ्वीराज का विरोधी।
बाल्ला मूलदेव अथवा बाल मूलदेव	१२२८	११७२	२१	सं० १२६३ ईसवी तक उसने शासन किया।
			२६२	

तीसरा—बाघेलवंश, जिसको शिला-लेखों मे चालुक्य लिखा गया है

बासलदेव	१२४६	११६३	१५	
भीमदेव	१२६४	१२०८	४२	आबू के शिलालेख
अर्जुनदेव	११०६	१२५०	२३	सोमनाथ के लेख
सारङ्गदेव	१३२६	१२७३	२१	
गेहला कर्णदेव	१,५०	१२६४	३	सं० १३५४ सन् १२६८ ई० में आसीर, फरिश्ता के अनुसार एक वर्ष पहले समाप्त हो गया था।
			१०४	

आरम्भ के दोनों वंशों की तालिकायें कुमारपाल चरित्र के आधार पर दी गयी हैं। उसमे कुमारपाल तक ही विवरण मिलते हैं। इस वंश के बाकी नाम और तीसरी तालिका दूसरे आधारों से प्राप्त की गयी है। पहली उसी शाखा के इन दिनों मेवाड़ मे बसे हुए, सोलंकी सरदारों के भाट से प्राप्त होने वाली वंशावली है और

दूसरी भूगोल तथा इतिहास के संग्रहीत ग्रंथों में दी गयी वंशावली है। वह पश्चिमी लोगों की बोली में है और एक जैन संत से प्राप्त हुई है। (१)

इन राजवंशों के समय की जाँच मैंने उन अपने शिला लेखों में कर ली है, जिनको बीस वर्षों के अनुसंधान काल में एकत्रित किया था। पूरी जानकारी प्राप्त होने पर इन राजवंशों का समय निर्धारित किया गया है। यों तो अनेक ग्रंथों में एक दूसरे के प्रतिकूल समय के आँकड़े मिलते हैं। परन्तु उनमें सही क्या हैं, इसको भली प्रकार समझने में मैंने अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग किया है। इस पर भी इन तिथियों और तारीखों में भ्रम और मतभेद हो सकता है। उस अवस्था में उनका संशोधन भविष्य में बराबर होता रहेगा।

इस विषय में हम यह कहना अनुचित नहीं समझते कि अबुलफजल ने हमारे देशवासी आलोचना करने वालों की तरह बिना समझे बूझे यह नहीं लिख दिया कि हिन्दुओं के पास इतिहास नाम की कोई सामग्री नहीं है। अबुल फजल ने गुजरात के राजाओं का संक्षिप्त इतिहास आरम्भ करते हुए लिखा है—

'हिन्दुओं की पुस्तकों में लिखा है कि विक्रमाजीत के सम्वत् ८०२ अथ हिजरी सन् १५४ (२) में बसराज प्रथम राजा हुआ और उसने गुजरात के राज्य की स्थापना की।

अबुल फजल ने कुछ ऐसे विवरण भी दिये हैं जो कुछ अंशों में 'चरित्र' से प्रतिकूल जाते हैं। लेकिन यह सही है कि उसकी पुस्तक का आधार भी वही है।

यदि सम्वत् ८०२ सन् ७४६ ईसवी में अनहिलवाड़ा की स्थापना से आरम्भ करके सम्वत् १३५४ सन् १२९८ ईसवी में अलाउद्दीन के द्वारा होने वाले विध्वंस काल तक राजाओं की एक तालिका प्राप्त हो जाती है, जो शालमन, खलीफा हार्ट (३) और

(१) इस ग्रन्थ में अनहिलवाड़ा के समस्त राजवंशों की तालिका उनके समय के क्रम के अनुसार, पश्चिमी बनास के निवास और भाग एवम् अनेक दूसरी बातों के साथ साथ मनोरंजन की सामग्री का अच्छा विवरण दिया गया है।

इन तालिकाओं में जो समय लिखा गया है वह 'रासमाला' से प्रतिकूल है।

(२) यहाँ पर अबुल फजल ने जो राजवंशों के सम्बन्ध में समय लिखा है वह सही नहीं है। कहीं-कहीं पर हिजरी सम्वत् और सन् में भी बड़ा अन्तर हो गया है यह अन्तर थोड़ा-बहुत तो कहीं-कहीं रह जाता है लेकिन पचीस-पचीस वर्ष का अन्तर समझ में नहीं आता। इसलिए हम अनहिलवाड़ा की स्थापना और राजवंशों के विवरण देने में हिन्दुओं की तिथियों का ही अनुसरण करेंगे।

(३) बगदाद का खलीफा, ७८६—८०६ ईसवी।

सैक्सन हैप्टार्क्स (१) से लेकर प्लाण्टाजेनेट जान (२) तक पूर्व देशीय राजाओ के समकालीन हुए हैं तो क्या ऐसी दशा में भी यह कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तान में हिन्दुओ के पास इतिहास नामकी कोई चीज नही है।

इसके सम्बन्ध में यदि यह कहा जाय कि इतिहास घटनाओ के क्रम के वर्णन को ही नही कहते तो क्या सम्वत् १२२० में एक जैन सत ने कुमारपाल द्वारा बल्हरा का राज्य प्राप्त करने के कारणो को खोज के साथ लिखना मुनासिब नहीं समझा। केवल इसीलिए कोई यह कहने का अधिकारी है कि उसके द्वारा जिन घटनाओ का वर्णन किया गया है, उनका सम्बन्ध इतिहास के साथ नही है? सैक्सन, (३) अलस्टर (४) और फ्रास के उस समय के इतिहासो को देखने से इस तरह के सदेहो का अपने आप निराकरण हो जाता है। इसलिये इस प्रकार की निराधार बातो को हम यही पर छोड देते हैं।

मैं यह मुनासिब समझता हूँ कि मुझे इस प्रकार की व्यर्थ की बातों में न पडकर जैसलमेर और अनहिलवाडा के जैन ग्रथ-भण्डारों और राजस्थान के राजाओ तथा नरेशों के उनके सग्रहालयो का अध्ययन कर लेना चाहिये। उन्हीं का आधार लेकर अनहिलवाडा का इतिहास नीचे लिखा गया है।

गुजरात में वढियार नाम का एक स्थान है, उसकी राजधानी पञ्चासर है। वहाँ पर एक दिन जगल मे घूमते हुए सालिग सूरि (शील गुण) आचार्य ने कपडे में लपटे हुये एक शिशु को पाया, वह एक पेड मे लटका हुआ था उसके पास ही एक स्त्री बैठी थी, वह उसकी माता थी। प्रश्न करने क बाद उस स्त्री ने उत्तर देते हुए कहा कि

---

(१) सात एगलो सैक्सन राजा, जिनके अधिकार के समय इगलैण्ड सात भागों म विभाजित था।

(२) जैसा कि इतिहासो से प्रकट है।

(३) सैक्सन प्राचीन ट्यूटानिक जाति का नाम है। टालमी ने सबसे पहले इस जाति क लोगो का वर्णन किया है और उसने जर्मनी के उत्तरी भाग मे इनका निवास-स्थान लिखा है। ये लोग बडे शूरवीर माने जाते हैं। सास का अर्थ एक छोटा चाकू होता है। इस प्रकार के अस्त्र रखने के कारण इन लोगो का नाम सैक्सन पडा कुछ लोगो का यह भी कहना है कि सैक्सन उन लोगो को कहते हैं, जो किसी एक स्थान पर रहा करते हैं, ये लोग मूर्तिपूजक होते हैं और धर्म की उन बातो पर विश्वास करते हैं, जिसमें मूर्तिपूजा होती है। शालमैन से पराजित होने पर इन लोगो ने ईसाई धर्म ग्रहण किया था। इनके द्वारा इगलैण्ड का बहुत विकास हुआ।

(४) अलसटर आयरलैण्ड के एक परगने का नाम है।

मैं गुजरात के राजा की विधवा हूँ किसी आक्रमणकारी ने उसके स्वामी को मार कर राजधानी का विध्वंस कर दिया था।

उस स्त्री ने यह भी बताया कि जब उसकी राजधानी म नर-संहार हो रहा था तो वह किसी तरह निकल आयी। वह गर्भवती थी। जगल में उसके बालक उत्पन्न हुआ। अपनी यह कहानी कह कर वह स्त्री चुप हो गयी।

आचाय ने उस शिशु को वनराज का नाम दिया। उसका अर्थ वनराज होता है, अर्थात् वन का राजा (१) जब वह शिशु बड़ा हुआ तो उसने मावला के प्रसिद्ध डाकू सूरपाल (२) के साथ जाकर राज्य के कर का खजाना लूट लिया। वह खजाना कल्याण जा रहा था।

उस खजाने को अपने अधिकार में करके वनराज ने एक सेना का सगठन किया और अपने राज्य की स्थापना की। उसने एक नगर बसाया। उस नगर का स्थान उसने एक अहीर की सहायता से निश्चय किया था, उसका नाम अनहिल था। इस प्रकार उसी के नाम पर इस नगर का नाम अनहिलपुर अथवा अनहिल नगर (३) पड़ा। इसका समर्थन कई तरीकों से होता है।

यहाँ पर यह लिख देना आवश्यक मालूम होता है कि राजवंश के समय और तारीखों के सम्बन्ध म प्रकीर्ण संग्रह और भाट लोगों मे किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। प्रकीर्ण संग्रह म लिखा है कि वनराज सौराष्ट्र के राजा जयराज चावडा का बेटा था और वह उसके मरने के बाद पैदा हुआ था। प्रायद्वीप के पश्चिमी भाग में देव बन्दर, पहाड और सोमनाथ जयराज के प्रधान नगर थे। समुद्री हमलों और विशेषकर बगाल क जहाजों की लूट के समय समुद्र मे ज्वार आया और देव बन्दर उसमे डूब गया।

इस दुर्घटना मे वनराज की माता सुन्दररूपा के सिवा और कोई नहीं बचा, सभी का अन्त हो गया। सुन्दररूपा (४)को जल देवता वरुण ने इस आने वाली विपद के

(१) कुमार पाल प्रबन्ध नामक पुस्तक मे लिखा है कि कपड़े की झोली म जिस वृक्ष की शाखा पर अपने शिशु को उस स्त्री ने लटका रखा था, वह वण का पेड था। इसीलिए आचाय न उसका नाम वण राज अथवा वनराज रखा था।

(२) सूरपाल वनराज अथवा वनराज का मामा था। इस प्रकार का उल्लेख कई पुस्तकों म पाया जाता है।

(३) नअर शब्द नगर का ही अर्थ रखता है। उसका मतलब होता है, वह शहर अथवा नगर, जो परकोटे वाला होता है।

(४) कुछ इतिहास-अन्वेषकों का कहना है कि वनराज अथवा वनराज की माता का नाम अपना अथवा छत्रादेवी था और माडरा क ब्राह्मणों ने उसकी रक्षा की थी।

सम्बन्ध में पहले से ही सावधान कर दिया था। वसराज के जन्म और वश के सम्बन्ध में भाटो के द्वारा पता चलता है कि उनके पिता जसराज और उसकी जाति का सर्वनाश किसी विदेशी के आक्रमण से हुआ। उस बालक ने जीवन रक्षा करने वाले जैन सन्त के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और जैन सम्प्रदाय को प्रोत्साहन देने के साथ साथ उसे स्वीकार भी कर लिया।

देवबन्दर में और भी कोई दुघटना हो सकती है। लेकिन यहाँ पर मैं भाटो के द्वारा उत्पन्न होने वाली जन क्षति का अधिक मानता हूँ कि इस अनहिलवाडा (१) का विध्वस और विनाश किसी विदेशी आक्रमणकारी के द्वारा हुआ।

मैं किसी दूसरे स्थान पर लिख चुका हूँ कि भारत मे वह एक ऐसा समय था जब समस्त हिन्दू राज्यो के विरुद्ध एक तूफान आया था, उसमें उनके विरोध में क्रान्तियाँ हुई था, उनके राज्य छीने गये थे और नये नये वशो तथा जातियों के जन्म हुए थे। चौहानों के इतिहास म हमे पढने को मिलता है कि सिन्ध की तरफ से किसी शत्रु ने आकर अजमेर पर आक्रमण किया था और वहाँ के राजा माणिकपाल अथवा माणिकराय को मार डाला था। यही समय था, जब बप्पा रावल ने—जिसको बल्ला भी कहा जाता है और जिसके पूर्वज बल्लभी से भागे थे—चित्तौर पर आक्रमण करके अधिकार मे किया और कालाभोरी की रक्षा के लिए किसी विदेशी शत्रु के साथ युद्ध किया। इन्ही दिनो में तोमर वशी राजाओ ने इन्द्रप्रस्थ अथवा दिल्ली की फिर से स्थापना की थी। भोज चरित्र मे लिखा है कि परमार राजा भोज को किसी उत्तर देशीय शत्रु ने धार से निकाल दिया था और वह भागकर चन्द्रावती पहुँचा था, वहाँ उसको शरण मिली थी।

इसी प्रकार उन दिनो में चालुक्य अथवा सोलङ्की राजाओ को भी गगा के किनारे सारा भद्र स निकाल दिया गया था, अतएव व वहाँ स जाकर कल्याण में बसे थे। यदु भाटिया को पाञ्चालिका म सतलज के किनारे सुल्तानपुर से निकाला गया था और उनको भारत के रेगिस्तानी भूमि मे जाकर बसना पड़ा था। वह आतक यहाँ तक बढ़ा कि गोलकुण्डा तक उसका विध्वस और सर्वनाश काम करता रहा। उस आतक को कई पुस्तको म उत्तर जादूगर गजलो बध (२) का नाम कह कर उसका वर्णन किया गया है।

---

(१) यह हो सकता है कि अनहिलवाडा के प्रथम राजवश का परिचायक चावडा शब्द और शब्द से बिगडकर बना हो। इसलिए कि च और श—दोना ही एक-दूसरे के स्थान पर काम करते हैं। मराठा लोग च को स बोलत हैं। सम्भव है देव और सोमनाथ के सौर राजाओ ने अपने राष्ट्र को सौराष्ट्र कहा हो।

(२) कजली बन।

ये सब घटनायें उस समय की हैं जब इस्लामी सेना ने पहले पहल हिन्दुस्तान में प्रवेश किया था और उसके साथ बहुत बड़ी संख्या में इण्डोसीथिक लोग इस देश में आये थे। वे सभी सूर्य, अश्व और तलवार की पूजा करते थे और किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय को स्वीकार करने में परहेज नहीं करते थे। इसका अर्थ यह होता है कि मुल्तान से आते हुए काठी लोगों ने इसी मौके पर कच्छ के मैदान को पार किया था और वे सौराष्ट्र देश में आकर बस गये। वहाँ पर उन लोगों का प्रभाव यहाँ तक फैल गया कि उस प्रदेश का नाम काठियावाड़ प्रचलित होकर सौराष्ट्र दब गया।

हिन्दुस्तान की इन परिस्थितियों के सम्बन्ध में किसी का कोई विरोध क्यों न हो, लेकिन सिकन्दर के आक्रमण से पहले और पश्चात् जो दुघटनायें घटीं और उनके जो दुष्परिणाम निकले, उनसे इन्कार नहीं किया जा सकता।

इस प्रदेश के रहने वालों के लिए सिंधु नदी भले ही अटक (१) साबित हुई हो, लेकिन उसके बाहर से जो लुटेरे और आक्रमणकारी इस देश में आये, उनके लिए वह नदी अटक अर्थात् बाधक नहीं बनी। यही कारण है कि इस छोटे से प्रायद्वीप में आज उत्तर की अनेक जातियाँ पायी जाती हैं।

यह लिखा जा चुका है कि वनराज ने अनहिलवाड़ा राज्य की स्थापना की थी। इसकी प्रतिष्ठा अत्यन्त वैभव के साथ आरम्भ हुई। इसके एक लेखक ने इस नगर को अपने नेत्रों से देखकर उसकी अच्छाइयों का वर्णन किया है। अथवा उसके वर्णन का और कोई आधार है इसके विषय में हम अधिक नहीं लिख सकते। यह जरूर है कि इस प्रकार के किसी भी प्रदेश में नया नगर बसाना साधारण कार्य नहीं है फिर भी उसके लेखक ने इस नगर की जिस शोभा और सम्पन्न अवस्था का बयान किया है वह किसी एक ही राजा के राज्य काल में सम्पन्न हो सकी हो यह सम्भव नहीं मालूम होता।

किसी भी अवस्था में यदि आचार्य का कहना सही मान लिया जावे तो हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि पराजित चावड़ा राजा ने केवल अपनी राजधानी देव पट्टण से लाकर अनहिलपुर में कायम की थी और उस अवस्था में यह लिखना अनुचित नहीं होगा कि जो बस्ती मिट चुकी थी, उसके समर्थ निवासी बड़ी से बड़ी संख्या में इस नयी राजधानी में आकर बस गये थे। इसके साथ साथ यह भी सम्भव हो सकता है कि वनराज ने जिस नगर की उन्नति की वह पहले से मौजूद रहा हो

(१) अटक का मतलब है अड़चन रुकावट अथवा बाधा। सिंधु नदी को यह नाम उस समय दिया गया, जब हिन्दू जाति से लोग अपने ही धर्म और विचार के कारण बाकी संसार से अलग हो गये। परन्तु मनु ने लिखा है कि मध्य एशिया में हिन्दू धर्म की स्थापना हुई थी।

और उसने उसको विकसित किया हो।

इस प्रकार अनहिलवाडा के सम्बन्ध में अनुमान लगाना कदाचित निराधार नहीं हो सकता क्योंकि इसका समर्थन अनेक अंशों में मेवाड के इतिहास से होता है। उसमें यह बयान किया गया है कि गहलोत वंश का संस्थापक बप्पा—जिसके पूर्वज बहुत पहले वलभी के राजा रह चुके थे—चित्तौड में भली प्रकार अपनी आबादी कर लेने के पश्चात् एक सेना लेकर अपने भतीजे चावडा राजा को अपने पूर्वजों के राज्य में फिर से शासक बनाने के लिए गया था। इससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि देवपट्टण के चावडा वलभी राज्य की अधीनता में थे। मेवाड के इतिहास में इस घटना का समय सम्वत् ७६६ सन् ७४० ईसवी लिखा गया है।

प्रकीर्ण संग्रह में कुछ आगे लिखा हुआ है—अनहिलपुर बारह कोस (१) और पन्द्रह मील के घेरे में बसा हुआ है। उसमें बहुत से मंदिर और पाठशालायें हैं। उस नगर में चौरासी चौक और चौरासी बाजार हैं। इस नगर में सोने और चाँदी के सिक्कों की टकसालें हैं। यहाँ पर विभिन्न जाति के लोग रहते हैं और उसके अलग-अलग मुहल्ले हैं। यहाँ पर अनेक प्रकार के व्यवसायी रहते हैं। हाथी दाँत, रेशम, लाल, हीरे, मोती आदि के यहाँ पर अलग-अलग चौक हैं। यहाँ पर सर्राफा और दूसरे व्यवसायियों का एक बड़ा बाजार है। सुगन्धित चीजों, अंगरागों, अत्तारों, दस्तकारों, सुनारों और दूसरे व्यापारियों की यहाँ पर दूकानें हैं। इस नगर में मल्लाहों, चारणों और भाटों के भी निवास स्थान हैं। इस नगर में अठारह जातियों के लोग रहते हैं। वे सभी प्रकार सम्पन्न हैं। यहाँ के सभी लोग सुखी हैं। नगर में राजमहल है, राजा का शस्त्रागार है। विशाल हाथी शाला है, घुड़साल और रथागार आदि के लिए बड़ी बड़ी यहाँ पर इमारतें बनी हुई हैं। विभिन्न प्रकार के व्यापारों के लिए अलग अलग मण्डियाँ हैं। आयात निर्यात की व्यवस्था है और बिक्री की चीजों पर चुंगी ली जाती है। मसालों फलों, औषधियों, कपूर, धातु और देशी तथा विदेशी प्रत्येक कीमती चीज पर कर लिया जाता है। यहाँ पर संसार की सभी चीजों का व्यापार होता है। चुंगी की एक दिन की आमदनी एक लाख टंक (२) होती है। इस नगर की

(१) एक कोस की दूरी का अनुमान गाय के रंभाने से लगाते हैं। अर्थात् उसकी आवाज शान्त वातावरण में सवा मील तक सुनी जा सकती है।

(२) यहाँ पर ताँबे का सिक्का लेन देन के समय काम आता है। उसकी कीमत आमतौर पर एक रुपया अथवा बीस टंक मानी जाती है। इस तरह से अनहिलवाडा की चुंगी में रोजाना की आमदनी पाँच हजार रुपये थी। अर्थात् अठारह लाख रुपये वार्षिक, जो दो लाख पच्चीस हजार पौंड के बराबर होती है। इसका मूल्य यदि आज के हिसाब से समझा जाय तो दस लाख पाउंड होता है। यदि इस आमदनी

तारीफ यह है कि पीने के लिए पानी माँगने पर दूध मिलता है। यहाँ पर बहुत से जैनियों के मन्दिर हैं और एक झील के किनारे सहस्त्रलिंग महादेव का विशाल मन्दिर बना हुआ है। इस नगर की आबादी चम्पा, पुन्नाग, खजूर, जम्बूवदन और आम के बहुत से पेड़ों के बीच में पायी जाती है। यहाँ पर विभिन्न प्रकार की बेलें हैं और झरनों से अमृत के समान स्वच्छ पानी निकलता है। यहाँ पर वेदों की शिक्षाओं पर व्याख्यान होते हैं। इस नगर में बोहरे (१) लोग बहुत हैं। वे बीरगाँव में भी अधिक पाये जाते हैं। यहाँ पर जैन साधुओं, कुशल व्यापारियों और संस्कृत की पाठशालाओं की अच्छी संख्या है। अनहिलवाड़ा में रहने वालों की उसी प्रकार संख्या है, जिस प्रकार समुद्र में जल की बूँदें। जिस प्रकार समुद्र के पानी की नाप तोल नहीं हो सकती, उसी प्रकार यहाँ के आदमियों की गिनती नहीं की जा सकती। (२) सेना अगणित है और घण्टा धारण करने वाले हाथियों की बहुत बड़ी संख्या है। मालिग सूरि ने वनराज के मस्तक पर राजतिलक किया। वनराज ने पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया, वह उसी धर्म का मानने वाला है। यह सब कार्य संवत् ८०२ में हुआ। वनराज ने पचास वर्ष तक राज्य किया और वह साठ वर्ष की अवस्था तक जिन्दा रहा। (३)

से राज्य के चौरासी बन्दरगाहों पर वसूल होने वाले कर का जोड़ दिया जाय तो यहाँ की आमदनी के सम्बन्ध में अरब के मान्त्रियों ने जो लिखा है, वह सही मालूम होता है।

(१) कारीगरों और किसानों को कर्ज देने वाले बोहरे कहलाते हैं। वे भारत में सर्वत्र पाये जाते हैं। इसके लिए वे लिखित प्रमाण ले लेते हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था प्राचीन काल में भी थी।

(२) अनहिलवाड़ा की घनी आबादी के कारण इतिहासकार ने उसकी उपमा समुद्र के साथ दी है। वहाँ की घनी आबादी का यह हाल था कि एक दिन एक स्त्री का पति किसी प्रकार खो गया। उस स्त्री ने राजा के पास आकर अपने दुख के लिए प्रार्थना की। राजा की तरफ से नगर में ढिंढोरा पिटवाया गया कि जो आदमी राणा नाम का काना हो, वह बड़े चबूतरे अर्थात् धायपाठ पर आ जाय। इस पर नौ सौ निन्यानवे राणा नाम के काने पुरुष वहाँ पर आकर एकत्रित हुए। वह दुखी स्त्री उस बाजार के चारों ओर घूम कर लौट आयी और उसका अपना पति नहीं मिला। उसके बाद दूसरी बार फिर ढिंढोरा पीटा गया, तब उसका पति उसे मिला।

(३) रत्नमाला ग्रन्थ के अनुसार वनराज पच्चास वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बैठा था और साठ वर्ष की आयु तक जीवित रहा था। उसकी पूरी आयु एक सौ नौ वर्ष, दो माह इक्कीस दिन की थी, जब उसकी मृत्यु हुई। आईन ए अकबरी में वनराज का ७४६ ई० में गद्दी पर बैठना और ८०६ ई० तक राज्य करना

इस विवरण के बाद उसके लेखक ने चावडा राजाओं की वंशावली दी है और आरम्भ से लेकर अंत तक उस वंशावली के सम्बन्ध में किसी प्रकार की आलोचना नहीं की गयी। उसका वर्णन कुमारपाल तक किया गया है और उसी के लिए इस काव्य ग्रंथ की रचना की गयी है। यहाँ पर दूसरे समकालीन लेखकों के आधार पर उनका उल्लेख करना आवश्यक हो गया है, जो इस प्रकार है—

अनहिलवाला के संस्थापक के बाद योगराज संवत् ८५२ सन् ७९६ ईसवी में सिंहासन पर बैठा और उसने पैंतीस वर्ष राज्य किया।

खीमराज अथवा क्षेमराज संवत् ८८७ सन् ८३१ ईसवी में सिंहासन पर बैठा और पच्चीस वर्ष तक राज्य करने के बाद सम्वत् ९१२ सन् ८५६ ईसवी में उसकी मृत्यु हो गयी। इसी के शासन काल में सबसे पहला अरब यात्री अनहिलवाड़ा राज्य में हिजरी सन् २३७ और उसके अनुसार ८५१ ईसवी में आया था और दूसरा सत्रह वर्ष के बाद हिजरी सन २५४ और उसके अनुसार ८६८ ईसवी में उसके उत्तराधिकारी के समय में आया था।

बीरजी अथवा बीरसिंह सम्वत् ९१२ सन् ८५६ ईसवी में सिंहासन पर बैठा और २९ वर्ष राज्य करके सम्वत् ९४१ सन् ८८५ ईसवी में मर गया।

अरब से आने वाले यात्रियों ने उन राजाओं के भी नाम नहीं दिये, जो उन दिनों शासन करते थे। ऐसी दशा में उन यात्रियों के बयानों से हमको यहाँ पर किसी प्रकार की सहायता नहीं मिलती। अतएव अनहिलवाड़ा के शासकों के इतिहास में जो वर्णन किया गया है, हमें उसी का आधार लेना पड़ रहा है।

हिन्दुस्तान में सबसे अधिक प्रसिद्ध बल्हरा राजा हुआ [redacted]। दूसरे राजा यद्यपि अपने-अपने राज्यों के स्वतन्त्र स्वामी हैं। लेकिन वे सभी बल्हरा राजा के विशेषाधिकार करते हैं। जब कभी उसकी तरफ से राजदूत इन लोगों के यहाँ आता है तो उसके सम्मान के लिए इन लोगों को सभी प्रकार की व्यवस्था करनी पड़ती है। अरब वालों की परम्परा के अनुसार ये राजा भी मूल्यवान भेंटें प्रदान करते हैं। उसके यहाँ बहुत बड़ी संख्या में घोड़े, और हाथी रहते हैं और उसके अधिकार में एक विशाल खजाना है। इसके यहाँ पर तातारी चाँदी के वे सिक्के भी मौजूद हैं, जो तातारी द्रम्म के नाम से मशहूर हैं और वे तौल में अरब द्रम्म से आधा द्रम्म अधिक होते हैं। इन सिक्कों पर राजा की मूर्ति [redacted] ठप्पा लगा होता है और उसके पहले के राजा की मृत्यु के पश्चात् वर्तमान शासक के राज्यकाल का सम्वत् लिखा रहता है।

लिखा है। लेकिन डाक्टर भगवान लाल इन्द्र जी ने बनराज का शासनकाल ७६५ ई० से ७८० ई० तक माना है।

अरब लोगो की तरह ये लोग मोहम्मद के सन् से वर्षों का हिसाब नही जोडते, बल्कि अपने राजाओ के शासन काल के वर्षों की गणना करते हैं। इनमें से कितने ही राजा अधिक समय तक जीवित रहे हैं और उन लोगो ने पचास वर्षों से अधिक समय तक शासन किया है। यहाँ के लोगो का कहना है कि इनके दीर्घ जीवन और राज्य काल का सबब अरब लोगो के प्रति इनकी सहानुभूति है। सचमुच, अरब लोगो के प्रति इस प्रकार सहृदयता का भाव रखने वाले दूसरे कोई राजा नही हुए। इनकी प्रजा की मित्रता भी हमारे प्रति उसी प्रकार की है।

बल्हरा का प्रयोग किसी एक व्यक्ति के लिये नही है। बल्कि दूसरे तथा अवटको की तरह, जो प्रत्येक राजा के नाम के साथ प्रयोग किया जाता है। जो क्षेत्र इस राजा के अधिकार मे हैं, वह कम कम अर्थात् कोकरण नामक प्रांत के पास से आरम्भ होकर थल भाग से चीन तक जा पहुँचा है। इसका राज्य अनेक ऐसे राज्यो से घिरा हुआ है, जो इसके साथ शत्रुता रखते हैं। लेकिन इस राजा ने कभी उनके विरुद्ध कोई बात नही सोची और न उन पर कभी आक्रमण किया।

उन राजाओ में एक हरज अर्थात् हप का राजा है। उसके अधिकार मे बहुत बडी सेना है। और भारत के सभी राजाओ से अधिक वह अश्वारोही सेना भी रखता है। इस राजा को मोहम्मद के मजहब से बहुत घृणा है। उसका राज्य एक अन्तरीप पर है वहाँ पर ऊंटो और अन्य पशुओ की अधिकता है। वहाँ के रहने वाले खानो से चाँदी निकालते हैं और उसी को लेकर यात्रा करते हैं। उनका कहना है कि उनके प्राय द्वीप मे चाँदी की बहुत सी खानें हैं। इस राज्य की सीमा राहमी नामक राजा के राज्य से मिली हुई है जो हरज के राजा और बल्हरो से शत्रुता रखता है।

बल और राज्य की प्राचीनता के कारण इस राजा का कोई अधिक महत्व नही है। लेकिन उसकी सेना बल्हरा राजा से भी अधिक है। इस प्रदेश मे लोग ऐसे सूती कपडे तैयार करते हैं कि जो अन्यत्र किसी देश मे देखने को नही मिलते।

इस प्रदेश मे कौडियाँ चलती हैं व छोटे सिक्को के स्थान पर काम आती हैं। इसके साथ साथ, यहाँ पर सोना, चाँदी लकडी, आबनूस और काला चमडा बहुत अधिक पाया जाता है। इस चमडे से घोडो की काठियाँ बनती हैं और वहाँ की लकडी मकान बनाने के काम में आती हैं।

यहाँ पर कुछ विवेचना करने की आवश्यकता है। हमारे सामने बल्हरा एक शब्द है। इसका अर्थ है बल्ला का राय। उसकी प्राचीन राजधानी बलभीपुर थी। दूसरा शब्द है चाँदी के तातारी सिक्के जो द्रम्म कहलाते हैं। इसका एक सिक्का मेरे पास भी है। उसमें एक तरफ राजा की मूर्ति है और उसकी पीठ पर कुछ जैनी अक्षर हैं व साफ नहीं हैं। तीसरी विवेचना इन राजाओं के दीर्घ शासन-काल की है।

जिन यात्रियों ने इन राजाओं के शासन काल का उल्लेख किया है, वे तीसरे और चौथे राजा के समय में पट्टण आये थे और उन लोगों ने इन राजाओं के राज्य-काल के लिए दोष शब्द का प्रयोग किया है जो हमको भ्रम में डाल देता है। लेकिन उन यात्रियों की दूसरी बातें भी सही नहीं हैं, इसलिए उनके उल्लेखों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

यह तो साफ़ जाहिर है कि वे यात्री गुजरात की भाषा नहीं जानते थे, ऐसी हालत में वनराज के पचास वर्षों और उसके बाद शासन करने वालों के तीस वर्षों की गणना उन लोगों ने लम्बे शासन काल में की, ऐसा मालूम होता है। यह भी हो सकता है कि उन दिनों में देवपट्टण से राजधानी का परिवर्तन हुआ था, इसलिये उसके पहले के राजाओं के शासन काल पर ऐसा कहा गया हो। इतिहासकार सन्त सालिग महरवाला में वनराज के राज्य भिषेक के पश्चात् कभी भी गया नहीं था।

चौथी विवेचना इन यात्रियों के भूगोल-सम्बन्धी ज्ञान की है। उन लोगों ने बिना कुछ सोचे समझे और बिना किसी प्रयास के आसानी के साथ लिख दिया कि इन स्थानों की दशा इतनी भ्रामक है, जिससे उनके सम्बन्ध में सही रूप में कुछ लिखा नहीं जा सकता और न उसका सही अनुमान ही हो सकता है।' इसको ज्ञान का अभाव भी कहा जा सकता है और खोज न करने के सम्बन्ध में यह एक अकर्मण्यता भी है। यदि सभी अन्वेषक यही कहकर और लिखकर टाल दें तो उसका क्या परिणाम होगा? प्रश्न यह है कि जो कुछ उन यात्रियों ने लिखकर छोड़ दिया है, क्या वह बाद में आने वाले यात्रियों के लिए गलत नहीं है? उन यात्रियों के सामने जो मुश्किल थी, वह ऐसी नहीं थी कि उसके सम्बन्ध में ऐसा लिखकर उससे छुटकारा प्राप्त किया जाय। यह सभी जानते हैं कि अरबी और फारसी भाषा में साधारण बिन्दुओं और नुक्तों के इधर उधर (१) हो जाने से भयानक अन्तर हो जाता है। उन स्थानों का भौगोलिक चित्रण कष्ट पूर्ण है, लेकिन परिश्रम और प्रयास से वह हल भी किया जा सकता है।

बल्हर राज्य की सीमा कोंकण से चीन के किनारे तक जो लिखी गयी है, वह पूरे तौरपर सही होती, यदि 'रिलेशन्स' नामक पुस्तक आगामी राजवंशी राजाओं के समय में लिखी जाती। उसके लिए उपयुक्त समय वह था, जब कि सिद्धराज के अठारहों राज्यों के उत्तराधिकारी कुमारपाल ने हिमालय पहाड़ को जीतकर पाञ्चालिका की पुरानी राजधानी सालपुरा में विजय का झण्डा फहराया था।

---

(१) हिन्दुस्तान में ऐसे लोग भी रहते हैं, जो हमेशा नग्न रहा करते हैं। उनके नाम में जो बिन्दु का प्रयोग होता, है उसको रखने और हटा देने से मतलब कुछ का-का कुछ हो जाता है।

उस समय राज्य की जो सीमा बतायी गयी है, उसके सम्बन्ध में हमको पूरा असन्तोष है। इसलिए कि उन दिनों मे कोकरण में सोलंकी लोगों का शासन न था, उसके समकालीन लोगों के इतिहास से उनके स्वतन्त्र पड़ोसी राज्यों का पता चलता है। (१)

बल्हर के राजा का सबसे बड़ा शत्रु हुरज का राजा और राहुमी का राजा था। उन दोनों के वंश ऊँचे नही थे और उसको उन दोनों के साथ लड़ना पड़ा था। उन दोनों राजाओं के सम्बन्ध में समझा जा सकता है कि वे चीन थे। बल्कि उनके अनुवादक ने यह लिखकर हमारे लिये और अधिक गुंजाइश पैदा कर दी है कि 'गोरज अथवा हुरज इस प्रायद्वीप में कुमारी अंतरीप और चीन के बीच में कहीं पर होना चाहिये।'

गुजरात शब्द का मूल गूजर है और गूजर इस देश की एक शूद्र भी जाति मानी जाती है, गूजर लोग भारत के आदिवासी लोगों में से हैं। हमें यह कहीं पर मालूम नहीं हुआ कि प्राचीनकाल मे कभी गूजर जाति ने किसी राज्य की स्थापना की थी, यह तो साफ जाहिर है कि उन यात्रियों को इस बात की जानकारी नहीं हो सकी कि गुजरात उन दिनों मे बल्हर राज्य का एक प्रमुख भाग माना जाता था। मेरा विश्वास है कि हुरज का राजा गोलकुण्डा का राजा हुए है, जो अजमेर के चौहानों की बड़ी शाखाओं में किसी का वंशज था। उसके लगातार युद्ध बल्हर लोगों के साथ हुए थे। इन युद्धों का कारण यह था कि उसकी घनिष्ठता निम्नवंशी राहुमी लोगों के साथ थी, ऐसा मालूम पड़ता है।

तेलिंगाना का राय परमार था, उसने एक बार चक्रवर्ती राजा की उपाधि धारण की थी। उसके राज्य मे बढ़िया और कीमती सूती कपड़े बुने जाते थे उससे इस अनुमान का स्पष्टीकरण होता है। उस राज्य के कपड़े मलमल और बुरहानपुर का लाल कपड़ा रोम तक बिकने के लिये जाता था। उन दिनों मे कपड़े का व्यवसाय माना जाता था। यात्रियों के वर्णन के अनुसार घड़ों और कौड़ियों का प्रचलन उस समय भी था और आजकल भी है। इस प्रदेश मे समुद्री तट पर खजूर की गुठलियों का प्रयोग काफी मात्रा में आज तक होता है।

काशबिन राज्य—जिसके भीतर से लेकर बाहर तक जंगल और पहाड़ है—कच्छभुज होना चाहिये। हम इस बात की कल्पना करने का काफी आधार मिलता है कि छोटी और साधारण राजधानी हिन्नुज शत्रिज (२) अथवा शत्रुञ्जय पालीताना का

(१) हिन्दुस्तान के राजनीतिक भूगोल के सम्बन्ध मे हमको यात्रियों का अज्ञान बहुत खल रहा है। उनकी भूलें तो इस प्रकार की भी हैं, जैसे उन्होंने कन्नौज को गौजर (गुजरात) के राज्य मे एक प्रसिद्ध नगर दिखाया है।

(२) जैसा कि पहले भी लिखा गया है, स अक्षर का उच्चारण इस प्रान्त में

छोटा सा राज्य था और वह आज तक मशहूर है। नेहल वरेह नामक नगर की भौगोलिक परिस्थिति का बयान करने के बाद—जो नासिरुद्दीन और उलूगबेग की सूची के अनुसार, १०२° ३० देशान्तर और २२° उत्तर अक्षांश पर है। इसलिये कालीकट कादीन अथवा बीजापुर में से कोई नहीं हो सकता। व्याख्या करने वाले ने उसके बाद लिखा है कि काली मिर्च के व्यापार की सुविधा के लिए उसने बल्हरा का अनुवाद कालीकट किया है। ऐसी हालत में यह कैसे सम्भव है कि कालीकट जाने के पहले वह गुजरात के किसी स्थान पर कुछ समय रहा हो।

उस यात्री ने पुर्तगाल के लेखक जान डी बराम का उल्लेख किया है, उसने इस देश के ग्रन्थों को देखकर लिखा है कि 'भारत के सभी राजाओं को सम्राट अर्थात् महा-राजाधिराज के अधिकार हासिल थे।' और आगे के विवरण पढ़ने के बाद यह मालूम हो सकेगा कि अनहिलवाड़ा के बल्हरों और कोंकण के राजाओं से—जिनकी राजधानी कल्याण में थी—आपसी घनिष्ठ सम्बन्ध थे और आखिर के उनके राज्य एक ही शक्ति वाली साम्राज्य की अधीनता में हो गये थे।

इस प्रकार की घटनायें इन यात्रियों के समय की नहीं हैं, यहाँ पर एक बात बड़े आश्चर्य की है और कदाचित् वह कालीकट के नाम की रचना का वास्तविक कारण है। मजबूत ऊँची दीवारों से घिरा हुआ अनहिलवाड़ा का नगर कालीकोट अथवा काली का दुर्ग कहलाता था और आज तक वह अपने इसी नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा मालूम होता है कि इसी तथ्य के आधार पर यात्रियों ने बल्हरा राजाओं का काली मिर्च की व्यवस्था करने के लिए भारतीय प्रायद्वीप में जाना विश्वसनीय मान लिया था, ऐसा अनुमान होता है।

अरब वालों के साथ इन लेखकों की सहानुभूति और सहृदयता थी, इसलिये उन लोगों ने बल्हरा की जो प्रशंसा की है वह राजाओं से साथ सम्पर्क स्थापित करती है। इसलिये कि इनमें का आखीरी राजा चेरामन पेरूमल मुसलमान हो गया था और उसकी जिन्दगी के अन्तिम दिन मक्का में बीते थे।

अधिक तरह होता है, सालिमसिंह को हालिम हिंग बोला जाता है, उसी के अनुसार सालिम मिश्री हीग बन जाती है। स को ह बोलने की यहाँ पर एक पुरानी प्रथा है।

नवाँ प्रकरण

राज्य, राजा और उनके कार्य

अनहिलवाड़ा का इतिहास कल्याण के सोलंकी नरेश—उन दिनों की घटनायें—मुस्लिम लेखकों की भूलें—चालुक्यों के राज्य पर चौहानों का उत्तराधिकार—वघेलों का राज्य—राजा कुमारपाल के कार्य—अनहिलवाड़ा का विस्तार और वैभव—बौद्ध धर्म और कुमारपाल—कुमारपाल और इस्लाम धर्म।

अब हम मध्यकालीन राजाओं के सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखेंगे और अरब के यात्रियों के अनहिलवाड़ा में आने के दिनों में जो राजा राज्य करते थे और वनराज के समय से लेकर उसके अन्तिम वंशज सामंतराज तक जो राजा हुये, उन सबके सम्बन्ध में मिली हुई सामग्री देने की चेष्टा करूँगा जिन्होंने अनहिलवाड़ा में एक सौ इकतीस वर्षों तक राज्य किया और चावड़ों का पद च्युत कर दिया था। वे सभी राजा दक्षिण की राजधानी कल्याण के समकालीन शासकों में आते हैं उन सबके सम्बन्ध में जो भी विवरण, सही तरीकों से मुझे प्राप्त हो सका है, उसको मैंने यहाँ पर देने की कोशिश की है।

इस प्रकार के विवरण देने के लिए मुझे सोलंकियों की वंशावली के पन्ने उलटने पड़ेंगे। उनकी प्राप्ति मुझको इस वंश के जुम्मेदार प्रतिनिधि रूप नगर के शासक से जो अब के मेवाड़ में जागीरदार है—हुई थी। अरू नामक भाट उसका अपना भाट था और उसके पास अनहिलवाड़ा की किताब अब भी मौजूद है, उस पुस्तक में उन सभी राजाओं के पूर्वजों के वर्णन विस्तार में लिखे हुए हैं। (१) यहाँ पर हमने जो कुछ इन वंशों और राजाओं के सम्बन्ध में लिखा है, उसका आधार केवल भाट है और कोई दूसरा आधार न मिलने पर हमने उसी का सहारा लिया है। उस भाट ने अपने वर्णन में राजाओं का जन्म आबू के अग्निकुण्ड से स्वीकार नहीं है। उसका कहना है—

---

(१) उन राजाओं के गोत्रों को हमने उन्हीं की बोली में यहाँ पर लिखा है उनको बदलना अथवा सही उच्चारण करके लिखना आवश्यक नहीं मालूम होता। सम्भव जो लोग उस बोली से परिचित हों, उनको ये गोत्र प्रिय न मालूम हों।

मदवाणी शाखा अथवा माध्यनिन्दनी शाखा, भारद्वाज गोत्र, गढ़लोकोत्र खार निकास, सरस्वती नदी, साम्वेद, कपिल मानदेव, मदिमान ऋषेश्वर तीन प्रवर जनेऊ, सूरोपान का छत्ते गऊपालूपास, गया निकस, केवञ्ज देवी, मैपालपुत्र, यह मही पाल—जिसको यहाँ पर मैपालपुत्र लिखा गया है—नारायण के युद्ध में अपनी अद्भुत वीरता दिखाने के कारण सोलंकियों के पनेतों में गोद लिया था। वह राजा वीरदेव

"जब ब्रह्मा ने सृष्टि रचना का कार्य खतम कर लिया तो वह पवित्र गङ्गा नदी के सोरों घाट पर आया और पवित्र दूध को अपनी अञ्जलि में लेकर उसने चुलुक बनाकर सजीवन मन्त्र का पाठ किया। उसी समय मनुष्य उत्पन्न हुआ, वह ब्रह्म चौलुक (१) के नाम से मशहूर हुआ। स्थान के कारण वही सोलकी कहा गया। वहीं पर उसने अपनी राजधानी कायम की, उसको सोरो कहा जाता है। इस नाम के कारण ही यहाँ पर गङ्गा का नाम सोरों भद्र हुआ। त्रेता और द्वापर—स्वर्ण और रजत युगों में उन लोगों ने यहाँ पर शासन किया।"

अब इस पर हमें स्वयं विचार कर लेना चाहिये। भूगोल के विद्यार्थियों को इसके पढ़ने से एक प्राचीन राजधानी के प्रारम्भिक जीवन का पता तो चल ही जाता है। वह दिल्ली के अन्तिम चौहान सम्राट के समय तक बनी रही और आज भी एक धार्मिक तीर्थ स्थान के नाम से प्रसिद्ध है।

इस शाखा के गोत्र से हमें इस बात का भी पता चलता है कि उसका आरम्भ उत्तरी भारत अर्थात् लोकोट स है और जो पाञ्चालिका अर्थात् पंजाब का एक पुराना नगर था। उसको छोड़ने पर इन लोगों ने गङ्गा के किनारे पर सोरो को आबाद किया।

का तीसरा लड़का था। उसका साम्भर के चौहान राजा की लड़की ब्याही थी और वह अपनी ननसाल के विरुद्ध इस्लामी युद्ध में मारा गया था। यहाँ के प्रत्येक वंश का इतिहास इसी प्रकार की घटनाओं से भरा हुआ है। अजमेर के माणिकराय का पुत्र भी मुसलमानों के पहले आक्रमण में मारा गया था, वह चौहानों का भाग्य होता था। यहाँ पर पुत्र का मतलब किशोर अवस्था से है।

(१) महाभारत के अनुसार द्रुपद राजा पर नाराज होकर अपने अपमान का बदला लेने के लिए द्रोणाचार्य ने चुल्लू में जल भरकर सङ्कल्प किया और चौलुक्य नामक एक शूर-वीर उत्पन्न किया। उस चौलुक्य की भविष्य में प्रसिद्धि हुई।

चौलुक्य वंश के लिए लेखों और दान-पत्रों में चौलुकिक, चौलिक, चालुकिक, चुलुक्य और चौलुक्य आदि नामों के प्रयोग किये गये हैं।

यह जाहिर है कि च का उच्चारण स होने से सोलकी शब्द का प्रचार हुआ। यहाँ पर स्थान के कारण सोलकी नाम पड़ने का कोई कारण समझ में नहीं आता।

अनेक स्थानों के वाक्यों को पढ़ने से पता चलता है कि उन दिनों में शालिक्य शब्द भी प्रचलित था। वह सोलकी से अधिक मिलता जुलता है।

हिस्ट्री आफ मीडीवेल हिन्दू इण्डिया, पृ० ८२

दक्षिण के चालुक्य राजा विमला दित्य के दान पत्र के अनुसार, इस वंश के क्रम में ब्रह्मा, चन्द्र और अयोध्या के ५९ राजाओं का बयान है। उनमें उदयन भी शामिल है। इसी वंश का विजयादित्य राजा त्रिलोचन से युद्ध करता हुआ मारा गया।

हिन्दू ग्रन्थों में लिखे हुए इस कालातीत युग के सम्बन्ध में अधिक ध्यान न देकर भाट के द्वारा मिले हुए विवरण पर हम अधिक विश्वास करते हैं। विक्रम की सातवीं शताब्दी में दो भाई राज और बीज गङ्गा को त्याग कर गुजरात में आ गये। उनमें राज ने पाटन के चावड़ा राजा की लड़की से विवाह कर लिया। उसकी सन्तान भविष्य में सिंहासन पर बैठी और वनराज से कर्ण तक सिकन्दर सूबी के समय निकाले जाने के समय पाँच सौ बावन वर्ष तक राज्य करती रही। टोडा और सोलंकियों के भाट से हमको इतनी ही सामग्री मिल सकी है। इसके आगे हमको चरित्र का आश्रय लेना पड़ता है।

राजा वीरदेव चावड़ा वंशी था और वह कान्यकुब्ज अथवा कन्नौज का राजा था। वह अपनी राजधानी कल्याण कटक से गुजरात में चला आया। उसने यहाँ पर आक्रमण किया और विजय करने के बाद उसने यहाँ के राजा को मार डाला। इसके पश्चात् उसने अपनी सेना का एक बड़ा भाग यहाँ पर छोड़ दिया और वह कल्याण लौट गया। (१)

वीरराय के एक लड़की थी। उसका नाम था मिनल देवी। वह अजमेर के चौहान वंशीय राजा को ब्याही गयी थी। उसकी पन्द्रहवीं पीढ़ी में कुमारपाल हुआ। उसके नाम पर यह ग्रन्थ लिखा गया, जो कुमारपाल चरित्र के नाम से मशहूर हुआ।

वीरराय के एक लड़का पैदा हुआ उसका नाम चन्द्रादित्य था। उसका लड़का सोमादित्य और उसका छोटा भाई भोमादित्य हुआ। उसके तीन लड़के थे, उर अथवा अर, धीतक और अभिराम। उर सोमेश्वर (सोमनाथ) की यात्रा करने के लिए पाटन गया और वहाँ पर उसने राजा सामन्त की लड़की लीलादेवी के साथ अपना विवाह कर लिया।

वह राजकुमारी गर्भवती हुई। लेकिन प्रसव काल में उसकी मृत्यु हो गयी। लेकिन उसके पेट को काटकर बच्चा निकाल लिया गया। उससे जो बालक पैदा हुआ, ज्योतिषियों के अनुसार उसका जन्म मूल नक्षत्र में होने के कारण मूलराज रखा गया।

राजा सामन्त चावड़ा ने पुत्रहीन होने के कारण अपने जीवन काल में ही मूल राज को राज्य का अधिकारी बना दिया। लेकिन बाद में उसको अपनी भूल मालूम

---

(१) सोलंकी भाट के वर्णन में कल्याण के राजाओं में इन्द्र दमन नामक राजा का नाम आता है। भाट का कहना है कि इसी राजा ने जगन्नाथ के मन्दिर का निर्माण कराया था और पुरी नामक नगर बसाया था। यह नगर उसी के नाम पर इन्द्र पुरी कहलाता है। उसकी पहली बात तो सही हो सकती है। उसने मन्दिर की मरम्मत तो करायी होगी, लेकिन उसने जगन्नाथ का मन्दिर नहीं बनवाया होगा।

हुई और उसने मूलराज को दिये हुए राज्याधिकार को वापस लेने का निर्णय किया। लेकिन इसके बाद ही उसने भांजे ने उसे मार डाला। इस स्थल पर भाट वर्णन करता है—जामाता, साँप, सिंह, शराब, मूर्ख, माछा और राजा इन सातों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिये।

बल्हरों के इतिहास के सम्बन्ध में आगे लिखने के पहले चूंकि चावड़ा का राज्य चालुक्यों अथवा सोलंकिया के अधिकार में आ गया था। इसलिये इन दोनों वंशों के समकालीन राजाओं की तालिका यहाँ पर दे देना आवश्यक हो गया है।

कल्याण के चालुक्य राजा	अनहिलवाड़ा के चावड़ा राजा
१ वीर जी	१ वनराज (७४६ ई० से ८६६ ई० तक)
२ करण	२ योगराज
३ चन्द्रादित्य	३ क्षेमराज
४ सोमादित्य	४ वीर जी
५ भानदित्य	५ वीर सिंह
	६ रत्नादित्य



६३२ भीमक अभिराम	७ सामन्त

उर ने सामन्त की लड़की लीलादेवी के साथ ब्याह किया था। उससे मूलराज उत्पन्न हुआ। उससे अनहिलवाड़ा के दूसरे राजवंश का आरम्भ हुआ।

इन दोनों के आरम्भ में समानता है, लेकिन कुछ अन्तर भी जाहिर होता है। भाटों के इतिहास के अनुसार राज और बीज नामक दो चालुक्य भाई सातवीं शताब्दी में सारा को छोड़कर चले आये। चरित्र नामक ग्रन्थ का आरम्भ कन्नौज के राजा भीरराय से होता है, उसने गुजरात पर आक्रमण करके वहाँ के राजा को मार डाला और लौटकर कन्नौज न जाकर वह मलाबार के समीप कल्याण चला गया।

यहाँ पर यह प्रश्न पैदा होता है कि यह विजेता वही है, जिसने पहले समुद्री लूट के अपराध के कारण चावड़ों को उनकी पुरानी राजधानी देवपट्टण और सोमनाथ से निकाल दिया था? इसका समय और भाटों के द्वारा बताया गया सातवीं शताब्दी का समय एक दूसरे से मेल रखता है। दोनों घटनाओं का समय साफ तौर पर एक ही मालूम होता है। इस अनुमान का समर्थन पट्टण के संस्थापक वनराज के उस विवरण से भी होता है, जिसमें उसके विषय में लुटेरों के साथ मिलकर कल्याण को जानेवाली मालगुजारी के खजाने के लूट जाने की बात कही गयी है। मैकेंजी संग्रह का एक शिला लेख, जिसका अनुवाद कालब्रुक ने किया है और जिसका अभी तक कोई उपयोग नहीं किया गया है, मेरे अनुमानों को समर्थन करने और हाथ के लिखे हुए वर्णन की सचाई को सही मानने में सहायता करता है।

इस शिलालेख के अनुसार इस राजवंश की स्थापना एक हजार वर्षों से भी पहले हो चुकी थी। क्योंकि यह शिलालेख चौथे राजा सोमादित्य के समय का है। उसमें उसका वंश चालुक्य और राजधानी कल्याण लिखी गयी है। वह लेख इस प्रकार है—

"सोमेश्वर पर सदा अनुग्रह करें इत्यादि इत्यादि राज-कुल में विशिष्ट, चालुक्यवंश भूषण इत्यादि, जो कल्याण नगर में राज्य करता है, इत्यादि ।"

यदि और कोई दूसरा प्रमाण न भी मिला होता और यही एक शिलालेख होता तो भी सभी लेखों का समर्थन हो जाता। इसलिए कि उन सब में यही एक शिला लेख ऐसा है। जो मेरे अनुसंधान में पूरे तौर पर सहायक हो रहा है।

प्राचीन काल में कल्याण एक व्यापारिक और राजनीतिक नगर था। एरि-अन ने पेरीप्लस में कई बार इसका उल्लेख किया है। उसके द्वारा हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि दूसरी शताब्दी में यह बल्हरों की अधीनता में रहा था और इसके विस्तार का वर्णन दूसरी पुस्तकों में पढ़ने को मिलता है।

इन घटनाओं की तरफ कुछ मुसलमान लेखकों का ध्यान गया था। लेकिन किन्हीं भी कारणों से उन्होंने जो कुछ भी लिखा वह स्पष्ट नहीं हो सका। कुछ उलझनें पैदा हुईं और उनके फलस्वरूप सही आंकड़े सामने नहीं आ सके। स्वयं अबुल फजल अंधकार में बना रहा और उसने कन्नौज के राज्य का विस्तार समुद्र के किनारे तक किया। मसूदी (१) ने इन प्रदेशों का विवरण दसवीं शताब्दी में लिखा है। वह बोरोह नामक राज्य की बात करते हुये उसका उल्लेख कन्नौज के राज्य के नाम से करता है। उसकी इस गलती के कारण यह मालूम होता है कि वह कल्याण के राजा और राय के नाम को नहीं जान सका, क्योंकि वह सोरो से कन्नौज के राज्य में चला गया था। ऐसा जाहिर होता है कि पहला राज्य, दूसरे से श्रेष्ठ होने का दावा करता था और वह कदाचित बाद में राजधानी बन गया था।

यहाँ पर एक बात और मालूम होती है। वह यह कि फारसी अथवा अरबी लिपि में सोरा के शीन के नीचे एक नुक्ता लगाने से वह 'बोरो' हो जाता है। अरब यात्रियों का कहना है कि जब वे हिंदुस्तान में आये थे, उस समय यहाँ पर चार बड़े साम्राज्य थे। वे यात्री बल्हरों का चौथी श्रेणी का सम्राट होना स्वीकार करते हैं और उनकी शक्तियों का वर्णन करते हुए उनकी सेना की संख्या पाँच लाख की मानी है।

---

(१) इसका नाम अबुलहसन अली मसऊदी थी वह समय ३०२ हिजरी का था और वह प्रसिद्ध इतिहास लेखक भूगोल लेखक और एक अच्छे यात्री के रूप में मशहूर है। वह बगदाद में पैदा हुआ था। उसकी दो पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं।

अबुल फजल ने उस समय के कन्नौज की शक्तियों का जो वर्णन किया है, वह भी सच्चाई से बहुत दूर है। इसलिये कि गंगा से समुद्र के किनारे तक के वर्णन में अजमेर चित्तौर और धार जैसे शक्तिशाली राज कन्नौज तथा अनहिलवाड़ा के मध्य में आ जाते हैं। उनके युद्धों और विवाहों के उल्लेख भी दिये गये हैं।

अब हम यहां चालुक्यों के नवीन राजवंश का विवरण देते हैं।

मूलराज अनहिलवाड़ा के सिंहासन पर सम्वत् ९८८, सन् ९३२ ई० में बैठा। (१) चावड़ा वंश के संस्थापक की तरह उसका शासनकाल भी बहुत लम्बा था। अर्थात् छप्पन वर्ष का था। यदि हम प्रथम वर्णित 'प्रकीर्ण संग्रह' को सही मानें तो इसमें दो वर्ष और भी बढ़ जाते हैं। उसने अपनी सेना को तैयार किया और फिर वह पश्चिम की तरफ रवाना हुआ। सिंधु की घाटी में जाकर वहां के एक राजपूत राजा से उसने युद्ध किया। उसने रुद्रमाला नामक मन्दिर के बनवाने का कार्य आरम्भ किया। उसका वर्णन पहले हम कर चुके हैं।

चाउण्ड अथवा चामुण्ड राय को अबुल फजल ने भूल से जामुण्ड लिखा है। वह सम्वत् १०४४ सन् ९८८ ईसवी के सिंहासन पर बैठा। उसने सिर्फ तेरह वर्ष राज्य किया। उसके शासन का अन्त न केवल उसके लिए बल्कि समूचे हिन्दुस्तान के लिये एक दुखद घटना का कारण बन गया। सम्वत् १०६४ सन् १००८ ईसवी मुसलिम इतिहासकारों के अनुसार ४१६ हिजरी सन् १०२५ ईसवी में गजनी के बादशाह महमूद ने अनहिलवाड़ा पर आक्रमण किया था। उसने यहां की चार दीवारों को विध्वंस करके मन्दिरों के पत्थरों से नगर के चारों ओर की खाई को पाट दिया था। छै महीने तक लगातार पाटण में विश्राम करने के पश्चात् विजेता ने पुराने शासकों के एक वंशज को सिंहासन पर बिठाया। उसका जङ्गली सा नाम दाबिशलीम था, वह देव और सोमनाथ के राजा का लड़का कहा जाता है। वह असल में चावड़ा वंशी था।

शिलालेखों के अनुसार, जो मुझको मिले हैं, इन लोगों की वंशगत सम्पत्ति अनहिलवाड़ा में बारहवीं और चौदहवीं शताब्दी तक मौजूद थी। फरिश्ता के अनुसार इस राजा को मारताज, मारधज अथवा मोरध्वज के नाम से पुकारा जाता था। इसका सही नाम, जो इतिहास में लिखा गया है वल्लिराय अथवा वल्लभसेन हो सकता है, वह चामुण्ड के बाद गद्दी पर बैठा था। इसके आधार पर उसका शासनकाल केवल छै मास का ही बताया गया है। यह अनधिकारी दाबिशलीम के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता।

---

(१) मूलराज सम्वत् ९८८ में नहीं, बल्कि ९९८ में सिंहासन पर बैठा था। यहां पर मूल लेखक ने दस वर्ष की भूल की है। लेखक ने 'कुमार पाल राम' के आधार पर यह समय लिखा है। उसमें भी सम्वत् लिखा हुआ है।

मोरताज की पदवी का अर्थ दोनों भाषाओं में एक सा है। हिंदू और फारसी की भाषा में उसका मतलब प्रधान, मुख्य ताज अथवा मुकुट है। मुझे मालूम होता है कि यह चौरताज का रूपान्तर है। उसका अर्थ होता है, चावड़ों में प्रमुख फारसी के सम्बन्ध में पहले ही बताया गया कि सिर्फ एक नुक्ते के हेर फेर से शब्द का मतलब कुछ का कुछ हो जाता है।

महमूद के द्वारा अनहिलवाड़ा पर जो विपदायें आयी, सामनाथ और दूसरे मंदिरों पर जो अमानुषिक अत्याचार किये गये, उनके फलस्वरूप, गजनी लौटकर जाते समय महमूद की सेनाओं पर जङ्गल में जिस प्रकार की मुसीबतें आयी, उनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिये फरिश्ता और अबुल फजल के लेखों को पढ़ना चाहिये।

दुर्लभ अथवा नाहर राव—सम्वत् १०५७ सन् १००१ ईसवी में वह सिंहासन पर बैठा और उसने साढ़े ग्यारह वर्ष शासन किया। इसके पश्चात् उसका मन शासन की तरफ से हट गया और वह आत्मा के उद्धार के सम्बन्ध में सोचने लगा। सांसारिक जीवन के प्रति वह लगातार उदासीन होता गया और अन्त में अपने बेटे को राज्याधिकार देकर वह गया चला गया। राजपूतों में इस प्रकार की प्रथा पुरानी रही है और आज भी उसका अस्तित्व कायम है।

राजा दुर्लभ, धार के प्रसिद्ध राजा भोज के पिता मुञ्जराज का समकालीन था और भोज चरित्र से भी पता चलता है कि गया जाते हुये राजा दुर्लभ ने मुञ्ज से भेंट की थी और उसने उसको फिर से राज्य का अधिकार अपने हाथ में लेने का परामर्श दिया लेकिन उसके बेटे ने इसका विरोध किया।

भीमदेव—जिसका नाम उसके समकालीन राजाओं में मशहूर है—सम्वत् १०६६ सन् १०१३ ईसवी में गद्दी पर आसीन हुआ। (१) उसने बयालीस वर्ष शासन किया और गौरव प्राप्त किया। उन दिनों में मुसलमानों ने कई बार उत्तरी भारत पर आक्रमण किये थे। महमूद की चौथी पीढ़ी में मौदूद इसी के समय में हुआ था और उन्हीं दिनों में हिन्दुओं ने उसके विरुद्ध बगावत की थी। इसलिये कि वह हिंदुओं पर अत्याचार कर रहा था।

अजमेर के मशहूर चौहान राजा वीसलदेव ने हिन्दुओं के इस सङ्गठन का नेतृत्व किया था, यह बात सम्वत् ११०० सन् १०४४ ईसवी की है। धर्म और स्वाधीनता की रक्षा के लिये हिन्दुओं ने संगठित होकर और अपने साथ अन्य राजाओं को लेकर बीसलदेव को अपना नेता चुना था, उसके लिये अनहिलवाड़ा के राजा को भी आमन्त्रित

(१) रासमाला के अनुसार, भीमदेव सम्वत् १०७६ सन् १०२० ईसवी में सिंहासन पर बैठा था।

किया गया था। लेकिन अजमेर और अनहिलवाड़ा के राज परिवारों में बहुत दिनों से शत्रुता चली आ रही थी, इसलिये भीमदेव ने इस निमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया था और अस्वीकृति के कारण ही इन राज्यों में युद्ध का श्रीगणेश हुआ था। उसका वर्णन चन्द कवि ने अपनी पुस्तक के पृष्ठों मे किया है और विष भरी उन घटनाओं पर उसने अच्छे विवरण दिये हैं।

बीसलदेव ने अपनी शक्तिशाली सेना के द्वारा लगातार विजय प्राप्त की और सारा पंजाब उसने शत्रुओं से खाली करा लिया। इस विजय का ही यह नतीजा था, जो दिल्ली के प्रसिद्ध स्तम्भ पर लिखा गया कि विन्ध्य से हिमाचल तक सम्पूर्ण स्थान म्लेच्छों से खाली करा लिये गये और उनमे अब एक भी मुसलमान नहीं है। ऐसी हालत में यह देश फिर एक बार इन म्लेच्छों से स्वतन्त्र हो गया।

चन्द कवि ने लिखा है—जब गजनी से आने वालों ने कर अदा करने का ही आदेश नहीं दिया, बल्कि उसके साथ-साथ वफादारी की शपथ लेने का भी आदेश दिया गया तो शाकम्भरी के राजा ने अपने सामन्तों के नाम फरमान जारी किये। ठट्ठ और मुल्तान के सरदारों के साथ मन्डोर और भटनेर की सेनायें भी आयीं। अन्तर्वेद की (गंगा और जमुना के बीच के प्रदेश) की राजपूत जातियों के सरदार और सामन्त आकर उसके झण्डे के नीचे एकत्रित हुये इस प्रकार सभी राजपूत आये। लेकिन चालुक्य नहीं आया। उसको अपनी तलवार का गर्व था। किसी के सहयोग की उसको जरूरत नहीं थी।

मारवाड़ मे सोभत नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं का मुकाबिला हुआ। उस युद्ध में सोलंकी की पराजय हुई। वह जालोर चला गया। यह स्थान दोनों तरफ के राज्यों के बीच का सीमा स्थल था। उसको इस स्थान से भी भागना पड़ा और विजेता ने प्रायद्वीप के मध्यभाग गिरनार तक उसका पीछा किया।

चालुक्य मे फिर से उत्साह पैदा हुआ। उसने अपना राजदूत चौहान के पास भेजा और पूछा कि इस प्रकार आक्रमण का कारण क्या है। उसने अपने राजदूत के द्वारा यह भी कहला भेजा—मैं तुमसे किसी बात मे कम नहीं हूँ। तुमको कर मे देने के लिये मेरे पास तलवार है। यदि तुम युद्ध मे विजयी होना तो कर के स्थान पर हमारी तलवार के टुकड़े एकत्रित करके ले जाना।

चौहान बीसलदेव उस समय अपने राज्य में लौट जाने की तैयारी कर रहा था। उसने चालुक्य के सदेश पर उसके सभी बैन्दियों को छोड़ दिया और लूट का माल भी वापस कर दिया। इसके बाद चौहान ने युद्ध करने के लिये अपनी सेना को चक्रव्यूह में सजाया और आक्रमण करके दो हजार मान्त्रियों का सहार किया। चालुक्य

राय ने स्वय सेना का नेतृत्व करके उसके व्यूह को तोड दिया। दोनों तरफ से काफी रक्तपात हुआ, रात हो जाने पर युद्ध बन्द हो गया। दूसरे दिन सन्धि हो गयी। चालुक्य ने वीसलदेव के साथ अपनी लडकी का ब्याह कर दिया और यह निश्चय हो गया कि युद्ध के स्थल पर चौहान के नाम का एक नगर बसाया जाय। यही हुआ और जो नगर बसाया गया, उसका नाम बीपुलपुर रखा गया, जो इतिहास की घटना का प्रमाण देता है।

इस अवसर के वर्णन में भाट ने अनहिलवाडा के राजा को बालुक राय के नाम से सम्बोधन किया है, लेकिन हमीर रासो में—जिसमें रणथम्भोर के इसी चौहान वश के राव हमीर के पराक्रम का वर्णन है—भाट ने लिखा है कि वीसलदेव राजा भीम के लडके करण को कैद करके ले गया था। राजा भीम के दो रानियाँ थी, बीकल देवी और उदयामती। पहली रानी के लडके का नाम क्षेमराज था और दूसरी रानी के लडके का नाम करण था। अपने बडे भाई के होते हुए भी वह सम्वत् ११११ सन् १०५५ ईसवी मे। पिता के सिहासन पर बैठा। और अन्य राजपूत राजाओं के मुकाबिले में अच्छी ख्याति प्राप्त की।

करण ने अनेक कार्य करके अपनी बहादुरी का परिचय दिया। लेकिन कोलों और भीलो का दमन करके उसने अधिक गौरव प्राप्त किया। वहाँ पर आसा भील एक प्रसिद्ध धनुर्धारी था और उसके साथ एक लाख सैनिक बाण चलाने वाले थे। कर्ण ने उसके साथ युद्ध किया और उसको जान से मार डाला।

करण ने पुराने नगर के स्थान पर नया नगर बसाया और अपने नाम पर करण वती नगरी उसका नाम रखा। यह सब कहाँ तक सही है, उसके लिये हम कुछ नही कह सकते। 'चरित्र' मे लिखा हुआ है, उसने सात डड्डो (डकारो) को अर्थात् जिनके नाम का पहला अक्षर ड होता है, उनको निकालकर बाहर किया था। वे इस प्रकार हैं—डन्ड, डाँड, डोम, (डूम गाने बजाने वाले) डाकण, डर, डम्भ (ठग) और डूम (निराशा), इन सातो को उसने निकाल दिया था।

रेवताचल पर बावन विहारो का एक मन्दिर था, उसने उसके करीब नेमिनाथ का एक मन्दिर बनवाया। उसकी बडी ख्याति हुई। वह मन्दिर उसी के नाम पर करण विहार के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कर्नाटक के राजा अरिकेसर की लडकी मीनल देवी के साथ उसने विवाह किया। उसके सिद्धराज नामक लडका पैदा हुआ। कहा जाता है कि कर्नाटक की राजकुमारी मीनल देवी जब अनहिलवाडा पहुँची तो करण किसी कारण उससे बहुत अप्रसन्न हो गया (१) और उसने उसके साथ विवाह करने से ही इन्कार कर दिया। लेकिन करण की माता ने उसके विरोध को अच्छा नही समझा

(१) कहा जाता है कि कर्नाटक के राजा की पुत्री मीनलदेवी बहुत कुरूप थी, इसलिये करण ने उसके साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया था।

और अपने बेटे को उसने बहुत समझाया तो माता का आग्रह मानने और वधू को आत्महत्या से बचाने के लिये अन्त में उसने विवाह कर लिया। लेकिन अनेक वर्षों तक उसके दाम्पत्य जीवन का व्यवहार नहीं किया। लेकिन अन्त में नवविवाहिता पत्नी की विजय हुई और उसने अपने पति को प्रेम के बन्धन में बाँध लिया।

करण ने उन्तीस वर्ष तक राज्य किया। उसके पश्चात् उसका लड़का—सिद्धराज जयसिंह—सम्वत् ११४० सन् १०८४ ईसवी (१) में सिंहासन पर बैठा। अठारह राज्यों पर उसका शासन था। इनके अधिकार उत्तराधिकार में और कुछ विजय के द्वारा मिल थे। 'चरित्र में उसके बल-पौरुष की प्रशंसा की गयी है, वह सही है। इन सभी राज्यों और समकालीन राजाओं का वर्णन अन्यत्र किया गया है। यहाँ पर हम जो सामग्री पा रहे हैं, उसी को लेकर आगे चलते हैं।

अब हमको कुमारपाल के राज्य का वर्णन करना है। उसके सम्बन्ध में कुछ विवरण ऊपर लिखे गये हैं। उसके आगे का वर्णन नीचे की पंक्तियों में किया जाता है।

अठारह राज्यों के स्वामी सिद्धराज के कोई संतान नहीं थी। इस दशा में उसके राज्य का सारा वैभव उसके लिये बेकार हो गया था। अपनी इस परिस्थिति के कारण वह बहुत चिन्तित रहा करता था। बहुत सोच-विचार कर उसने प्रसिद्ध ब्राह्मणों, ज्योतिषियों और भविष्य वक्ताओं को बुलाकर एकत्रित किया। उन लोगों के आने पर उसने बड़ी नम्रता के साथ कहा कि अगर मुझे संतान की प्राप्ति हो सके तो मैं उसके बदले में बड़ी-से-बड़ी सम्पत्ति देने के लिये तैयार हूँ।

उसकी इस बात को सुनकर एक साधु ने कहा—देवस्थली (२) के सरदार का लड़का तुम्हारा उत्तराधिकारी होगा, यही ईश्वर का विधान है। इसके विरुद्ध कुछ नहीं हो सकता।

उसकी बात को सुनकर राजा को बहुत क्रोध आया और उसने अपनी एक सेना भेजकर देथली अथवा देवस्थली पर आक्रमण कर दिया। वहाँ का चौहान सरदार मारा गया और उसका बेटा कुमारपाल किसी प्रकार उस नर संहार से बच कर निकल गया।

---

(१) सिद्धराज का शासनकाल १०९४ ई० से ११४३ ई० तक रहा। रासमल।

(२) राजा करण के सौतेले भाई क्षेमराज के पौत्र और देव प्रसाद के लड़के त्रिभुवनपाल के तीन लड़के और दो लड़कियाँ थीं। पौत्रों के नाम महीपाल, कीर्तिपाल और कुमारपाल थे। प्रेमलदेवी और देवलदेवी लड़कियों के नाम थे। प्रेमलदेवी का विवाह सिद्धराज के प्रधान सेनापति कानदेव के साथ हुआ था।

मन्त्र का ऐसा प्रभाव हुआ कि मृतक जीवित होकर बोल उठा और उसने यह भविष्य-वाणी की कि पाँच वर्षों में कुमारपाल गुजरात का राजा हो जायगा।

यहाँ से फिर वह योगी के वेश में ही कान्तिपुर गया और वहाँ से उज्जैन जाकर कालिका देवी के मंदिर में उसने शरण ली। वहाँ पर एक साँप ने उसको गुजरात का राजा कहकर सम्बोधन किया। इसके बाद कुमारपाल ने चित्तौड़ की यात्रा की और वहाँ से वह कन्नौज, बनारस अथवा काशी, राजगढ़ और सम्भू इत्यादि स्थानों में घूमता-फिरता रहा। ये सभी स्थान बौद्ध-धर्म में प्रसिद्ध माने जाते हैं। इनमें अन्तिम नगर चीन के राज्य में है। उसने जगडू नाम के एक सम्पत्तिशाली सेठ का वर्णन किया है। उसने सम्वत् ११७२ के अकाल में उस देश के राजा की सहायता कई करोड़ रुपये देकर की थी। जिन लोगों ने इस सेठ का फायदा उठाया, उनमें सिन्ध का हमीर भी था।

कुमारपाल इस प्रकार घूमता-फिरता रहा। लेकिन सम्वत् ११८६ सन् ११३३ ईसवी (१) में सिद्धराज के अन्तिम समय तक किसी बड़ी घटना का वर्णन नहीं मिलता। कहा जाता है कि सिद्धराज ने कृष्णदेव और कामदेव (२) नामक मन्त्रियों को बुलाकर और अपनी गर्दन में हाथ लगाकर यह शपथ दिलाने की कोशिश की कि वे कुमारपाल को इस राज्य का कभी राजा न होने देंगे।

इसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। स्वर्गीय राजा का एक सम्बन्धी—जो कि सोलंकी राजपूत था—सिंहासन पर बिठाया गया। परन्तु बहुत थोड़े समय में वह अत्यन्त मूर्ख साबित हुआ। इसलिए उसको सिंहासन से उतार दिया गया।

कुमारपाल उन दिनों में तिब्बत के पहाड़ों पर था। समाचार पाकर वह पाटण चला आया। वहाँ पर उसने सभी वर्ग के लोगों को स्वर्गीय राजा की खड़ाऊँओं को पूजते देखा। उसके प्रति लोगों के सम्मान को भी उसने समझा। बड़े दरबार के मन्त्री जब राज्य के उत्तराधिकारी का निर्णय करने में सफलता प्राप्त न कर सके तो उन लोगों ने वही उपाय किये जिनके द्वारा डेरियस को फारस का राज्य प्राप्त हुआ था। लेकिन राजपूत सरदारों ने उत्तराधिकारी को खोजने में एक हाथी (३) का

(१) यहाँ पर सम्वत ११९९ सन् ११४३ ईसवी होना चाहिए।

(२) इसका शुद्ध नाम कन्हड़देव है।

(३) हाथी द्वारा इस प्रकार के निर्णय का आधार क्या था, इस पर कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्भव है, इस योजना में कुमारपाल के बहनोई का हाथ रहा हो। हाथी बुद्धिमान तो होता ही है, उसको गन्नों के लोभ से गलियों में घुमाकर उसके द्वारा इस प्रकार का कोई निर्णय करा लेना उस युग के वातावरण की देन हो सकती है। कुमारपाल रास में हथिनी के द्वारा अभिषेक कराने की बात लिखी है। डेरियस को

कुमारपाल अपने बहनोई (१) कृष्णदेव के यहाँ चला गया और वहाँ छिपकर उसने अपने प्राणों की रक्षा की। कृष्णदेव पाटण का निवासी था। वह जयसिंह का मन्त्री था। इसलिये अधिक समय तक वहाँ पर छिपकर रहने की आशा न थी। अतएव वह एक कुम्हार के यहाँ चला गया। और कुछ समय के पश्चात् वह उस स्थान से भी निकलकर पाटण के साधुओं और भिखारियों के साथ घूमता रहा और अन्त में वह अपने जन्म स्थान देथली में पहुँच गया। वहीं पर वह रहने लगा।

कहा जाता है कि कुमारपाल एक बार पकड़े जाने से बाल बाल बच गया। इसलिये कि उसको एक कुम्हार ने अपनी ईंटों में छिपा लिया था। अब उसने उज्जैन में जाकर अपने भाग्य की परीक्षा लेने का विचार किया और रवाना होकर वह खम्भात बन्दर पर पहुँच गया। वह बहुत थका था और भूख के कारण व्याकुल हो रहा था। थकान के कारण वह एक पेड़ के नीचे सो गया। उसी मौके पर प्रसिद्ध हेमाचार्य अपने शिष्यों के साथ जङ्गल को पार करते हुये वहाँ से निकले। उन्होंने कुमारपाल को सोता देखकर जगाया और यह देखकर कि वह कोई साधारण पुरुष नहीं है, उसको अपनी जैनियों की शिष्य मण्डली में शामिल कर लिया। इसके बाद आचार्य ने उसकी जन्म कुंडली तैयार की। उससे उसके भविष्य के गौरव का पता चला।

सिद्धराज के गुप्तचर अभी तक उसका पता लगा रहे थे। उन गुप्तचरों को कुमारपाल का पता मिल गया। उस दशा में कुमारपाल एक योगी के वेश में भड़ौच चला गया। खम्भात के एक व्यापारी ने—जो पक्षियों की बोली जानता था—इस समय उसका साथ दिया।

कुमारपाल उस व्यापारी के साथ नगर में पहुँचा। वहाँ पर एक मन्दिर था। उसके एक कलश पर बैठे हुए शकुन पक्षी ने अपनी वाणी में दो बातें कहीं। व्यापारी ने उन दोनों बातों को सुना। उसने उन दोनों का अर्थ समझा कि हिन्दू और तुर्क—दोनों के राज्यों पर कुमारपाल का अधिकार होगा।

एक बार फिर कुमारपाल का पता लोगों को मिल गया इसलिए वह छिपकर कुलू नगर चला गया। वहाँ पर एक योगी से उसकी मुलाकात हुई। उस योगी ने उसको दीक्षा दी, जिससे उसके भाग्य का उदय हो। लेकिन उस योगी के दीक्षा मन्त्र की सिद्धि उसी दशा में हो सकती थी जब किसी शव पर बैठकर उस मन्त्र का जाप किया जाय।

कुमारपाल ने योगी के आदेश का पालन किया और जप करने के बाद उस

(१) यह स्थान कर्ण ने अपने चाचा के लड़के के देव प्रसाद को जागीर में दिया था।

कुमारपाल अपने बहनोई (१) कृष्णदेव के यहाँ चला गया और वहाँ छिपकर उसने अपने प्राणों की रक्षा की। कृष्णदेव पाटण का निवासी था। वह जयसिंह का मन्त्री था। इसलिये अधिक समय तक वहाँ पर छिपकर रहने की आशा न थी। अतएव वह एक कुम्हार के यहाँ चला गया। और कुछ समय के पश्चात् वह उस स्थान से भी निकलकर पाटण के साधुओं और भिखारियों के साथ घूमता रहा और अन्त में वह अपने जन्म स्थान देथली में पहुँच गया। वहीं पर वह रहने लगा।

कहा जाता है कि कुमारपाल एक बार पकड़े जाने से बाल बाल बच गया। इसलिये कि उसको एक कुम्हार ने अपनी ईंटों में छिपा लिया था। अब उसने उज्जैन में जाकर अपने भाग्य की परीक्षा लेने का विचार किया और रवाना होकर वह खम्भात बन्दर पर पहुँच गया। वह बहुत थका था और भूख के कारण व्याकुल हो रहा था। थकान के कारण वह एक पेड़ के नीचे सो गया। उसी मौके पर प्रसिद्ध हेमाचार्य अपने शिष्यों के साथ जङ्गल को पार करते हुये वहाँ से निकले। उन्होंने कुमारपाल को सोता देखकर जगाया और यह देखकर कि वह कोई साधारण पुरुष नहीं है, उसको अपनी जैनियों की शिष्य मण्डली में शामिल कर लिया। इसके बाद आचार्य ने उसकी जन्म कुण्डली तैयार की। उससे उसके भविष्य के गौरव का पता चला।

सिद्धराज के गुप्तचर अभी तक उसका पता लगा रहे थे। उन गुप्तचरों को कुमारपाल का पता मिल गया। उस दशा में कुमारपाल एक योगी के वेश में भड़ौच चला गया। खम्भात के एक व्यापारी ने—जो पक्षियों की बोली जानता था—इस समय उसका साथ दिया।

कुमारपाल उस व्यापारी के साथ नगर में पहुँचा। वहाँ पर एक मन्दिर था। उसके एक कलश पर बैठे हुए शकुन पक्षी ने अपनी वाणी में दो बातें कहीं। व्यापारी ने उन दोनों बातों को सुना। उसने उन दोनों का अर्थ समझा कि हिन्दू और तुर्क—दोनों के राज्यों पर कुमारपाल का अधिकार होगा।

एक बार फिर कुमारपाल का पता लोगों को मिल गया इसलिए वह छिपकर कुलू नगर चला गया। वहाँ पर एक योगी से उसकी मुलाकात हुई। उस योगी ने उसको दीक्षा दी, जिससे उसके भाग्य का उदय हो। लेकिन उस योगी के दीक्षा मन्त्र की सिद्धि उसी दशा में हो सकती थी जब किसी शव पर बैठकर उस मन्त्र का जाप किया जाय।

कुमारपाल ने योगी के आदेश का पालन किया और जप करने के बाद उस

---

(१) यह स्थान कर्ण ने अपने काका के लड़के कदेव प्रसाद को जागीर में

मन्त्र का ऐसा प्रभाव हुआ कि मृतक जीवित होकर बोल उठा और उसने यह भविष्य-वाणी की कि पाँच वर्षों में कुमारपाल गुजरात का राजा हो जायगा।

यहाँ से फिर वह योगी के वेश में ही कान्तिपुर गया और वहाँ से उज्जैन जाकर कालिका देवी के मंदिर में उसने शरण ली। वहाँ पर एक साँप ने उसको गुजरात का राजा कहकर सम्बोधन किया। इसके बाद कुमारपाल ने चित्तौड़ की यात्रा की और वहाँ से वह कन्नौज, बनारस अथवा काशी, राजगढ़ और सम्भू इत्यादि स्थानों में घूमता-फिरता रहा। ये सभी स्थान बौद्ध-धर्म में प्रसिद्ध माने जाते हैं। इनमें अंतिम नगर चीन के राज्य में है। उसने जगडू नाम के एक सम्पत्तिशाली सेठ का वर्णन किया है। उसने सम्वत् ११७२ के अकाल में उस देश के राजा की सहायता कई करोड़ रुपये देकर की थी। जिन लोगों ने इस सेठ का फायदा उठाया, उनमें सिंध का हमीर भी था।

कुमारपाल इस प्रकार घूमता-फिरता रहा। लेकिन सम्वत् ११८६ सन् ११३३ ईसवी (१) में सिद्धराज के अन्तिम समय तक किसी बड़ी घटना का वर्णन नहीं मिलता। कहा जाता है कि सिद्धराज ने कृष्णदेव और कामदेव (२) नामक मन्त्रियों को बुलाकर और अपनी गर्दन में हाथ लगाकर यह शपथ दिलाने की कोशिश की कि वे कुमारपाल को इस राज्य का कभी राजा न होने देंगे।

इसके बाद ही उसकी मृत्यु हो गयी। स्वर्गीय राजा का एक सम्बन्धी—जो कि सोलंकी राजपूत था—सिंहासन पर बिठाया गया। परन्तु बहुत थोड़े समय में वह अत्यन्त मूर्ख साबित हुआ। इसलिए उसको सिंहासन से उतार दिया गया।

कुमारपाल उन दिनों में तिब्बत के पहाड़ों पर था। समाचार पाकर वह पाटण चला आया। वहाँ पर उसने सभी वर्ग के लोगों को स्वर्गीय राजा की खड़ाऊँओं को पूजते देखा। उसके प्रति लोगों के सम्मान को भी उसने समझा। बड़े दरबार के मन्त्री जब राज्य के उत्तराधिकारी का निर्णय करने में सफलता प्राप्त न कर सके तो उन लोगों ने वही उपाय किये जिनके द्वारा डेरियस को फारस का राज्य प्राप्त हुआ था। लेकिन राजपूत सरदारों ने उत्तराधिकारी को खोजने में एक हाथी (३) का

(१) यहाँ पर सम्वत ११९९ सन् ११४३ ईसवी होना चाहिए।

(२) इसका शुद्ध नाम कन्हडदेव है।

(३) हाथी द्वारा इस प्रकार के निर्णय का आधार क्या था, इस पर कुछ नहीं कहा जा सकता। सम्भव है, इस योजना में कुमारपाल के बहनोई का हाथ रहा हो। हाथी बुद्धिमान तो होता ही है, उसको गन्ना के लोभ से गलियों में घुमाकर उसके द्वारा इस प्रकार का कोई निर्णय करा लेना उस युग के वातावरण की देन हो सकती है। कुमारपाल रास में हथिनी के द्वारा अभिषेक कराने की बात लिखी है। डेरियस को

प्रयोग किया। उसकी सूँड में एक पानी का घड़ा पकड़ा दिया गया और यह स्वीकार कर लिया गया कि हाथी गणेश का प्रतीक है। इसलिये वह उस पानी को जिस पर उँडेल देगा उसी को उत्तराधिकारी मान लिया जायगा।

जब उस हाथी ने घूमते हुए उस घड़े को एक योगी पर उँडेल दिया तो सभी लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। लेकिन वही योगी उसके बाद मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष ४ सम्वत् ११८६ को सिंहासन पर बिठाया गया।(१)

यह योगी कोई दूसरा नहीं, बल्कि कुमारपाल था। जब सिद्धराज का सम्बन्धी सिंहासन पर बिठाया गया था, उस समय एकत्रित सरदारों ने प्रश्न करके उससे पूछा था—जयसिंह के अठारह राज्यों पर किस प्रकार आप शासन करेंगे ?

इसका उत्तर देते हुए उसने कहा था—आप लोगों के परामर्श और सहयोग के अनुसार।

जब कुमारपाल सिंहासन पर बैठा तो उससे भी प्रश्न करके पूछा गया—आप इन अठारह राज्यों पर कैसे शासन करेंगे ? और किस प्रकार उनकी स्वाधीनता की रक्षा करेंगे ?

इस प्रश्न को सुनते ही कुमारपाल सिंहासन पर उठकर खड़ा हो गया और उसने म्यान से तलवार निकालकर अपने दाहिने हाथ में ले ली। सरदारों के प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने अपने दाहिने हाथ को ऊँचा करके कहा—स्वाधीनता की रक्षा और राज्य की हिफाजत तलवार के बल पर की जाती है। जिसको तलवार का बल नहीं होता, वह न तो स्वाधीनता की रक्षा कर सकता है और न राज्य की हिफाजत कर सकता है।

कुमारपाल के इन जोरदार शब्दों को सुनते ही सभा-भवन जय जयकार से गूँज उठा और सैकड़ा-सहस्रों मुखों से निकल पड़ा यही हमारा सच्चा राजा है।

राज्य के मन्त्रियों और सरदारों ने सिंहासन पर कुमारपाल को बिठाकर अत्यन्त संतोष प्राप्त किया और सभी लोगों ने हृदय से खुशियाँ मनायीं।

इसके बाद राज्याभिषेक का वर्णन किया गया है। उसको यहाँ पर लिखने की आवश्यकता नहीं है। चरित्र में सारे श्लोक कुमारपाल के भ्रमण और राज्याभिषेक का वर्णन करते हैं।

फारस का राजा बनाने में भी इसी प्रकार की योजना का प्रयोग किया गया था। कहा जाता है कि घोड़ी उसके डेरे के पास बाँध दी गयी थी और वह घोड़ी उसके पास तक गयी थी।

(१) राज्य वंशावली में लिखा है कि कुमारपाल मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष ११ सम्वत् ११६६ विक्रमी को सिंहासन पर बैठा। रासमाला

इस राजा के सम्बन्ध मे अधिक विवरण लिखने के पहले उसके पूर्ववर्ती राजा सिद्धराज जयसिंह के सम्बन्ध म कुछ आवश्यक प्रकाश डालना है, उससे द्वारा यह जाहिर हो सकेगा कि उसको इतना अधिक गौरव मिलने का कारण क्या था और कवियों के द्वारा उसके यश का गान क्यों गाया गया।

चन्दबरदाई ने कन्नौज के राजा के खिलाफ उसकी उन लड़ाइयों का वर्णन किया है, जब उसने अपनी तलवार को गङ्गा में फेंक दिया था। उसने उसकी विश्व-विजय को रोकने के लिए मेवाड़ और अजमेर के राजाओ में होने वाली संधि का भी उल्लेख किया है। इन घटनाओ के सम्बन्ध में शिला लेखों के द्वारा सच्ची और सही बातें मालूम होती हैं, जो अब उन नगरो के खण्डहरो में पाये जाते हैं, जिनके नाम भी अब गायब हो चुके हैं। उसने अर्णोराज की लड़की से विवाह किया। वह चित्तौर के राजा के अधीन सात सौ ग्रामो का शासक था। यह सामंत मेवाड़ की पूर्वी सीमा के पठार पर था और उसकी राजधानी मीनल अथवा मेनाल थी। उसके खण्डहरो में मुझे महत्वपूर्ण शिला लेख मिला है।

चन्द्रावती के परमारों से सम्बन्ध रखने वाला एक दूसरा शिलालेख भी प्राप्त हुआ है, उससे प्रकट होता है कि अर्णोराज कुमारपाल का समकालीन था। उसमें यह भी लिखा है कि कि कुमारपाल और अर्णोदेव में युद्ध हुआ। उसमें लक्ष्मणपाल ने युद्धक्षेत्र में अमर पद प्राप्त किया।

'चरित्र' के संस्कृत संस्करण में लिखा है कि सिद्धराज और धार के परमार राजाओं में युद्ध हुआ। यह युद्ध कई वर्ष तक चलता रहा। लेकिन अन्त में उसने धार पर अधिकार कर लिया और वहाँ के राजा नीरवर्मा अथवा नरवर्मा को कैद कर लिया। उदयादित्य के लड़के के समय का निर्णय मैं उस समय के शिला लेखों और हस्तलिखित ग्रंथों के आधार पर कर चुका हूँ। फिर भी उन पाठकों के लिए, जो कुछ और जानना चाहते हैं, मैं इतना ही कहूँगा कि 'चरित्र' के इस उल्लेख से हमारी लिखी हुई कई बातों के प्रमाण मिलते हैं।

प्रसिद्ध जगदेव परमार—जिसका जीवन चरित्र एक छोटी-सी पुस्तक में वर्णन किया गया है—बारह वर्ष तक सिद्धराज की नौकरी में पाटण में रहा था। उदयादित्य के लड़के यशोवर्मा के दो बेटे थे, बाघेलीरानी से रणधवल और पाटण की सोलंकी से जगदेव था। बड़ा लड़का धार का राजा हुआ और उसकी मृत्यु के पश्चात् सिद्धराज की सहायता से जगदेव उसका उत्तराधिकारी बनाया गया।

जगदेव के निर्णय के साथ-साथ यह भी लिखा है कि सिद्धराज ने कच्छ के

फूलजी जाडेचा की लड़की से विवाह किया था। वह लाखा फूलाणी के नाम से प्रसिद्ध है। (१)

विक्रम की बारवीं शताब्दी के आखीर में वह अजमेर का राजा बना हुआ था और उसके बहादुर घोडों के कारण उसका नाम राज्यों के इतिहासों में भी प्रसिद्ध हुआ है।

जैसलमेर के इतिहास में लिखा हुआ है कि वहाँ के राजा लांजा विजयराव के साथ सिद्धराज की लड़की का ब्याह हुआ था। लेकिन इस विवाह के सम्बन्ध में कहीं पर सन् और सम्वत् का उल्लेख नहीं है। फिर भी उसका अनुमान लगाया जा सकता है। राजा लांजा का पितामह दुसाज अथवा दूसाजी सम्वत् ११०० में लोद्रवा (२) के सिंहासन पर बैठा था और विजयराय के पौत्र जेसल ने सम्वत् १२१२ में जैसलमेर बसाया था। इस प्रकार विजयराय के शासन काल का अनुमान होता है। साथ ही इसके द्वारा उस समय को निर्धारित करने के लिए एक ठोस आधार हमको मिल जाता है।

भाटी राजपूतों के इतिहास में लिखा गया है कि इस राजकुमार की माँ ने सिद्धराज की पुत्री से उसका विवाह होने के सबब से उत्तर के मुसलमानों के विरुद्ध पाटण की रक्षा करने के लिए अपने बेटे को आदेश दिया था। (३) इस प्रकार उस समय की और भी कितनी ही घटनाओं की खोज की जा सकती है। लेकिन 'चरित्र' के आधार पर ऊपर जो वर्णन किया है, वह इन वंशावलियों को प्रमाणित करने के लिए काफी है।

कुमारपाल ने जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सम्वत् ११८६ सन् ११३३ ईसवी में शासन का कार्य आरम्भ किया। उसका सबसे पहला काम यह हुआ कि जिन्होंने विपत्ति के दिनों में उसकी सहायता की थी, उन सबको उसने एकत्रित किया। हेमाचार्य भड़ौच में एकान्तवास करता था उसको वहाँ से बुलाया गया और उसको गुरु का पद देकर सम्मानित किया गया। जैन युवक को जो बौद्धदर्शन और उसकी भाषा का अध्ययन कर रहा था—प्रमुख मन्त्री का पद दिया गया कृष्णदेव को—जिसने

(१) लाखा फूलाणी मूलराज का समकालीन था। उसका समय ८८० ईसवी से ९७९ ईसवी तक माना गया है।

(२) यह नगर अब बिल्कुल उजड़ गया है। पहले यह जैसलमेर के आरण्य राजाओं की राजधानी था। इसके सम्बन्ध में अनुसंधान करना मेरे लिये आवश्यक है।

(३) सही बात यह है कि सिद्धराज की स्त्री ने अपने जामाता को यह आदेश दिया था। इसीलिए विवाह में आये हुए राजाओं ने विजयराय को 'उत्तर भड किवाड भाटी' का पद दिया गया था। जैसलमेर का इतिहास पृ० ४०।

उसके इधर-उधर भागने के दिनों मे, उसको सबसे पहले शरण दी थी—मन्त्री बनाया। और सैनिक विभाग के बहत्तर सामन्तों का अधिकारी भी उसको बना दिया। उनके अतिरिक्त शेष सामन्त भी उसके नियन्त्रण मे दे दिये गये।

इसके बाद 'चरित्र' में अन्य राजाओ के साथ, कुमारपाल की वशावली और अनहिलवाडा के अधीन अठारह राज्यो का वर्णन भी भली प्रकार किया गया है। कुमारपाल सिद्धराज के वश का नहीं था। बल्कि अजमेर के चौहान राजाओ से उसकी उत्पत्ति थी।

गुजरात मे देथली नामक ग्राम में त्रिभुवनपाल रहता था। वह बारह ग्रामो का मालिक था। उसका विवाह काश्मीर की एक लडकी के साथ हुआ था। उससे तीन लडके और दो लडकियाँ हुई। लडको के नाम कुमारपाल, महीपाल और कीर्तिपाल तथा लडकियो के नाम प्रेमलदेवी और देवलदेवी थे। उसका वश छत्तीस राजपूत वशो में सबसे श्रेष्ठ माना जाता था। उन सभी जातियो की एक तालिका भी दी हुई है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि चालुक्य वशी राजा के सिंहासन पर चौहान वशी राजपूत सिंहासन पर बैठा। हम यहाँ पर उसके सम्बन्ध मे कुछ विचार करना चाहते हैं। राजपूत राजाओं के सम्बन्ध में छानबीन करने के बाद दो बातों का पता चलता है—एक चुनाव के सबध में और दूसरा दत्तक प्रथा के सम्बन्ध में। चुनाव की प्रथा का प्रयोग हमेशा नही होता। हमेशा उसकी जरूरत भी नही पडती। इन राज्यो के प्रमुख आधार उनके सामत होते हैं। हमें न जाने कितने उदाहरण ऐसे मिले हैं कि राज्य के उत्तराधिकारी मे व्यक्तिगत दोष होने के कारण उस वश की अन्य शाखाओं में से किसी का चुनाव कर लिया जाता है और सामतो की इच्छानुसार, राजा उसी को गोद मे लेकर उत्तराधिकारी बना लेता है।

इस प्रकार की परिस्थिति उत्पन्न होने पर मुझे कोई ऐसा उदाहरण याद नही आता, जिसमे किसी अन्य वश का राजा सिंहासन पर बिठाया गया हो और उसके वशगत गौरव को किसी प्रकार का आघात न पहुँचा हो। यद्यपि कुमारपाल ने सिद्धराज्य की पगडी नही बाँधी थी, जो कि गोद लिये जाने का प्रमाण है, फिर भी चालुक्य हो जाने के कारण उसका यह कर्त्तव्य हो गया था कि वह इसे बिल्कुल भूल जावे कि राजा सिद्धराज के सिवा उसका पिता और कोई था। यही कारण है कि सोलंकियों के भाट ने वशावली मे चालुक्य के सिवा उसको और कुछ नही बनाया।

इन सभी वशो में चालुक्य वश प्रधान माना गया है। कुमारपाल, जिसके गुरु हेमाचार्य हैं, इस वश के गौरव कहे गये हैं। यह भी लिखा गया है कि ये दोनों मानव जाति के सूर्य और चन्द्रमा हैं।

यहाँ पर नीचे उन अठारह प्रदेशों के राज्यों के नामों का उल्लेख किया गया है, जो उस समय अन्हरा साम्राज्य की अधीनता में थे। इन सब राज्यों के मिल जाने से इतना विस्तृत क्षेत्र हो जाता है कि यदि उनके सम्बन्ध में शिलालेखों के द्वारा पुष्टि न होती तो हम 'चरित्र' के लेखक पर विश्वास न करते और उसके उल्लेखों को अतिशयोक्ति में समझकर टाल देते। एक बड़े विस्मय की बात तो यह है कि बारहवीं शताब्दी में लिखे गये इस प्रकार के बयानों का, आठवीं शताब्दी के अरब-यात्रियों के द्वारा किये गये उस वर्णन के साथ पूर्ण सामञ्जस्य है जिसमें लिखा है कि यह साम्राज्य भारत के प्रायद्वीप से लेकर हिमालय पहाड़ के नीचे तक फैला हुआ था। उसके राज्य के नाम इस प्रकार थे—

१—गुजरात २—कर्नाटक ३—मालवा ४—मरुदेश ५—सूरत अथवा सौराष्ट्र ६—सिन्धु ७—कोंकण ८—सेवलक अथवा शैवलक ९—राष्ट्र देश १०—मसबर ११—लगदेश १२—सकुलदेश १३—कच्छ देश १४—जालधर १५—मेवाड़ १६—दीपक देश १७—ऊँच १८—अम्बेर १९—केर देश २०—भीराक।

इनके सिवा चौदह और राज्य थे, जिनकी सीमा में कभी कोई जीव मारा नहीं जाता था।

इसके बाद उसकी राज्य-व्यवस्था का वर्णन किया गया है। ऊपर जितने सबों के नाम लिखे गये हैं, यदि उनको सही मान लिया जाय कि उन सभी राज्यों में उसकी सत्ता थी तो भी उसकी जो सेना लिखी गयी है, उस पर विश्वास नहीं होता। उसकी सैनिक शक्ति का वर्णन करते हुये लिखा गया है कि ग्यारह सौ हाथी, पचास हजार युद्ध सम्बन्धी रथ, आठ लाख पैदल सैनिक और ग्यारह लाख घोड़े थे। यह संख्या जरक्सीस (१) की उस सेना से भी अधिक हो जाती है जिसको उसने ग्रीस पर आक्रमण किया था।

कुमारपाल के सोलह रानियाँ, बहत्तर सामन्त और अन्य सेनाधिकारी थे। उसने अनहिलवाड़ा को बारह विभागों में बाँट दिया था, प्रत्येक विभाग का एक न्यायाधीश था। खार जाति के लोगों को उसने अपने राज्य से निकाल दिया था। उसने अपने बहनोई शाकम्भरी के राजा पूरणपाल के साथ युद्ध किया था और उसको कैद करवा लिया था। इसके साथ साथ उसने उसके राज्य को बहुत बड़ी क्षति पहुँचायी थी।

सूरत के राजा समरेश के विरुद्ध भी उसने आक्रमण किया था, उसके फल

---

(१) जरक्सीस फारस के बादशाह डेरियस प्रथम का लड़का था। उसे एक विशाल सेना लेकर ४८० वर्ष ईसा से पूर्व ग्रीस पर आक्रमण किया था।

स्वरूप समरेश ने कुमारपाल की अधीनता स्वीकार कर ली थी। (१) सम्वत् १२११ सन् ११५५ ईसवी में कुमारपाल ने मन्दिर पर (२) सोने का कलश चढ़ाया और विदेशी लोगों से कर वसूल करके पवित्र पर्वत गिरनार के ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनवाने का खर्च पूरा किया।

कहा जाता है कि सिंध के रास्ते से होने वाले मुसलमानों के हमलों का मुकाबिला किया। 'चरित्र' में कुमारपाल को जैनधर्म का स्तम्भ लिखा गया है। इस धर्म में जीव की हिंसा का कठोरता के साथ विरोध किया गया है और अहिंसा को प्रधानता दी गयी है। इसलिए वह धर्म नहीं माना गया। ऐसी अवस्था में जैन-धर्म के अनुयायी और समर्थन को राज्य का प्रधान अधिकारी बनाना तो और भी अनुचित तथा असगत है।

बरसात के दिनों मे जब कुमारपाल शाकम्भरी के युद्ध से लौटा तो उसके दिल में यह विचार उत्पन्न हुआ कि इस युद्ध मे अगणित लोगों का (३) वध किया गया है। इसलिए उसने इसको अपना एक अपराध समझा और उसके सम्बन्ध मे उसने हेमाचार्य के साथ परामर्श किया उनके निर्णय के अनुसार कुमारपाल ने युद्ध के लिए स्वयं आक्रमण न करने की प्रतिज्ञा की। लोगों की धारणा है कि इस सिद्धान्त अर्थात् अहिंसा धर्म की रक्षा के लिए उसने कन्नौज के राजा जयसिंह के पास एक पत्र भेजा था, उसमें अनुरोध करते हुए कुमारपाल का चित्र भी अङ्कित किया गया था। उस पत्र के द्वारा कन्नौज के राज्य मे पशु वध बन्द करने के लिए माँग की गयी थी, इस पत्र के साथ दो लाख सोने के सिक्के और दो हजार अच्छे घोड़े भेजे गये थे। इसलिए वहाँ के राठौर राजा ने कुमारपाल की प्रार्थना को स्वीकार कर

---

(१) यह कदाचित सरम था, उसका उपनाम मेरूमल था और वह प्रमार वंशी था। रेनाडाट के अनुसार वह मुसलमान होकर अन्तिम दिनों में मक्का में रहा था।

(२) इसको केवल मन्दिर लिखा गया है, कौन-सा मन्दिर, इसका विवेचन उसमें कुछ भी नहीं है। हमारे अनुमान से यह मन्दिर सोमनाथ पत्तन का अथवा सूर्य नारायण का मन्दिर होगा। सम्वत् १२११ में कुमारपाल ने बाहड़पुर में त्रिभुवन टाल बिहार पर कुमारपाल प्रबन्ध के अनुसार सोने का कलश चढ़ाया था।

(३) सन १८२० ईसवी में जब मैं मारवाड़ में था तो वहाँ के विपद् ग्रस्त और असन्तुष्ट सैनिकों ने शिकायत की कि हम लोग भूखों मर रहे हैं और वहाँ के जैन मन्त्री अपने कुत्तों को कीमती खाना खिलाते हैं। यह दुरवस्था सेना की ही नहीं थी, बल्कि साधारण जनता और भी अधिक कष्टों का सामना कर रही थी। इसी प्रकार की अवस्था के कारण इन राज्यों का पतन हुआ था। आश्चर्य की बात तो यह है कि राज्यों के ऊंचे पदाधिकारी लगभग सर्वत्र जैन धर्म के लोग थे।

लिया। यद्यपि उसका पालन करना एक राजा के लिए अधिक समय तक सम्भव नहीं था।

जीवों का वध रोकने और अहिंसा धर्म का पालन करने के सम्बन्ध में जैन धर्म का पूरा प्रभाव न केवल राजा कुमारपाल पर पड़ा, बल्कि उनके अधीनस्थ सभी राजा इस सिद्धान्त को मानने के लिए विवश किये गये। इसका परिणाम अच्छा नहीं निकला। कुमारपाल की बढ़ती हुई शक्तियाँ निर्बल पड़ने लगीं और उसके शत्रुओं ने उसकी इस सनक का लाभ उठाया।

सोलंकियों की वंशावली में साफ साफ लिखा है कि रक्तपात को रोकने और जैन मत के अहिंसा धर्म का पालन करने के कारण ही पाटण राज्य का गौरवशाली सिंहासन उलट गया। 'चरित्र' में लिखा है कि गजनी के खान ने कुमारपाल पर आक्रमण किया। उस समय कुमारपाल के गुरु हेमाचार्य ने उसको युद्ध करने से रोक दिया। उस हेमाचार्य ने कुमारपाल को विश्वास दिलाया कि मैं अपने मन्त्र के बल से सोते [illegible] आक्रमणकारी खान को जहाँ चाहूँ, वहाँ बुलवा सकता हूँ।

हेमाचार्य की इन बातों का कुमारपाल पर बहुत प्रभाव पड़ा। जैन गुरु हेमाचार्य ने अपने मन्त्रों का प्रयोग किया। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उसके मन्त्रों के बल से आक्रमणकारी खान खिंचता हुआ चला आया, लेकिन 'चरित्र' के लेखों के अनुसार हमें यह मान लेना पड़ता है कि वह आक्रमणकारी खान चालुक्य राजा कुमारपाल के महल में आया, वह जैसे भी आया हो, वह आया और उसका परिणाम यह हुआ कि खान के साथ कुमारपाल की गाढ़ी मैत्री हो गयी। (१)

---

(१) कुमारपाल रास में इस आक्रमण का वर्णन भारत की पुरानी कविताओं में किया गया है। उसका साराश इस प्रकार है। गजनी के मुगल बादशाह ने अपनी विशाल और शक्तिशाली सेना लेकर आक्रमण किया। उससे इस राज्य के समस्त स्त्री और पुरुष चिन्ताकुल हो उठे। बहुत से लोग वहाँ से भाग जाने की बात सोचने लगे और बहुतेरे घबराहट में कोई निर्णय न कर सके। राज्य के लोग मुस्लिम सेना से हटकर उदयन मन्त्री के पास गये। उसने सबको धीरज दिया और वह स्वयं हेमाचार्य के पास पहुँचा। तब आचार्य ने चक्रेश्वरी देवी का आह्वान किया। तब गुरु के वचन के अनुसार देवी तैयार होकर मुगल के दल में गयी। वह सो रहा था। देवी उसको पकड़कर कुमारपाल के महल में ले आयी। आक्रमणकारी खान उस समय बड़ी घबराहट में था। उसको देखकर कुमारपाल ने कहा—मैं कुमार वंशी राजा हूँ। शरण में आये हुए पर मैं हमला नहीं करता। यह कहकर राजा ने उसका आदर किया। दोनों में मित्रता हो गयी। खान फौज के साथ वापस चला गया।

यहाँ पर हम 'चरित्र' के उल्लेखो के विरुद्ध कोई भी आलोचना नहीं करना चाहते। लेकिन प्रश्न यह है कि जो अत्याचारी हमारे राज्य का विध्वंस करने के लिए अपनी सेना के साथ आया, उसके साथ हमारी मित्रता का क्या मूल्य है। कुमारपाल ने इस मौके पर खान के साथ जो व्यवहार किया और उससे मित्रता जोडी, इसके द्वारा कुमारपाल और उसके राज्य का गौरव कितना बढा अथवा घटा, इसका निर्णय पाठक स्वयं करेंगे। हिन्दुओं के इतिहासो में प्राय हमको एक बडा दोष यह मिलता है कि उनके लिखनेवाले, व्यक्तियो के नामो का उल्लेख न करके केवल उनके पदों और उपनामो का प्रयोग करते हैं। हिन्दुओ के पुराने इतिहासों में हमें लगातार यह त्रुटि मिलती है। मुसलमानों के इतिहासो म कुमारपाल के शासन काल मे गजनी से आये हुए लोगों के किसी आक्रमण का कोई विवरण नही मिलता। ऐसी दशा में इस आक्रमणकारी के सम्बन्ध मे इतना ही कहा जा सकता है कि वह निर्वासित शाहजादा जलालुद्दीन के सिवा और कोई नहीं था। उसके सिन्ध पर और उमर कोट के राजा पर होने वाले हमला के उल्लेख हिन्दू और मुसलमान—दोनो इतिहासकारों ने किये हैं।

इस स्थल के उल्लेख भिन्न भिन्न रूप म मिलते हैं। किसी भी लेख को सही और गलत कह देना आसान नही होता। ऐसी परिस्थिति में अनुमान और समझ से ही काम लेना पडता है और जो समझ में आता है, उसी को सही मान लेना पडता है।

जो भी हो, आक्रमणकारी खान को मन्त्र के बल से पकडवा कर बुला लेने वाली बात समझ में नही आती। इस प्रकार की लिखी हुई बातें कुछ कल्पनाओं के रूप म हैं। मालूम यह होता है कि गजनो से आये हुए खान ने पट्टण राज्य पर अधिकार कर लिया था। लेकिन यदि हमारा यह अनुमान भी सही न हो और हम हिन्दू इतिहास को ही सही मान लें तो भी हम यह कहने के अधिकारी हैं कि उस आक्रमणकारी खान के साथ मित्रता करने का परिणाम अधिक दूषित साबित हुआ।

हिन्दू इतिहास के अनुसार ही क्या यह बात साबित नही होती कि उस मित्रता के पश्चात् कुमारपाल इस्लाम धर्म के सिद्धान्तो पर विश्वास करने लगा और उसका गुरु हेमाचार्य भी इस्लाम से प्रभावित हुआ। कहा जाता है कि वह आचार्य भी इस्लाम की दीक्षा लेकर और मुसलमान होकर ही मरता, यदि उसके शासन काल के तेंतीसवें वर्ष मे विष दिये जाने के कारण उसकी मृत्यु न हो गयी होती।

आचार्य की इस मृत्यु के सम्बन्ध में जो उल्लेख मिलता है, वह स्वयं आश्चर्यजनक है। इसका अपराध राज्य के उत्तराधिकारी अजयपाल को लगाया जाता है। इसके समर्थकों का कहना है कि जब राजा को मालूम हो गया कि आचार्य को विष

दिया गया है तो उसने विष को उतारने के लिए अपने भण्डार से एक दवा मगायी। लेकिन अजयपाल ने उस औषधि को गायब कर दिया।

वास्तव में हेमाचार्य की मृत्यु एक वर्ष पहले हो चुकी थी और विष देने की घटना इसलिए गढ़ी गयी कि जिससे जैन मत के इस आचार्य के अपना धर्म त्यागने और मुस्लिम धर्म के प्रति आकर्षित होने की बात लोगों में प्रकट न हो।

इस घटना के गढे जाने के कई आधार और प्रमाण मिलते हैं। यदि उनको छोड़ दिया जाय और उनके सम्बन्ध में कोई प्रकाश न डाला जाय तो भी इस बात को कैसे छिपाया जाय, जो जनश्रुति के द्वारा सबको प्रकट है कि मरने के समय हेमाचार्य के मुख से अल्लाह अल्लाह के सिवा और कोई शब्द नहीं निकला।

जैन मतावलम्बी हेमाचाय के धर्म परिवर्तन का एक सबसे बड़ा और प्रधान प्रमाण यह है कि मरने के बाद उसके शव को मुस्लिम प्रथा के अनुसार दफनाया गया था। (१)

इस प्रसिद्ध व्यक्ति हेमाचार्य के जीवन का अन्त सम्वत् १२२१ मे हुआ। उसका जन्म सम्वद् ११४५ में हुआ था। उसके जीवन के सम्बन्ध में और कोई विशेष घटना न तो पढने को मिलती है और न जनश्रुति के आधार पर जानने को मिलती है।

'चरित्र' के आधार पर हम इस राजा का चरित्र यहीं पर समाप्त करते हैं। सम्वत् १२२२ सन ११६६ ईसवी (२) म कुमारपाल प्रेत हो गया। उसक उत्तराधिकारी अजयपाल ने उसको विष दिया था उससे उसकी मृत्यु हो गयी।

इस राजा के शासन काल के सम्बन्ध में जो विवरण हमको प्राप्त हो सके हैं, उनका उल्लेख नीचे किया गया है। जो सामग्री इस प्रकार मिल सकी है, उसको 'चरित्र में वर्णित तथ्यों के साथ मिलान भी कर लिया गया है।

---

(१) जयसिंह सूरि द्वारा लिखित कुमारपाल चरित में लिखा गया है कि हेमाचाय का अग्निदाह सस्कार किया गया था और उस अग्निदाह मे चन्दन, और कपूर आदि अच्छे पदार्थों का प्रयोग किया गया था उसकी भस्म पवित्र मानी गयी और इसलिए राजा ने स्वय अपने माथे पर उस भस्म का तिलक लगाया। उसके बाद हेमाचाय को नमस्कार किया। राजा क ऐसा करने पर साम तो और दूसरे लोगो ने भी ऐसा ही किया। भस्म खत्म हो जाने पर लाग वहाँ की मिट्टी खोद ले गये जिससे उस स्थान की जमीन घुटने तक गहरी हो गयी। यह गढडा पाटण मे हेमरवाडा के नाम से मशहूर है।

(२) मूल लखक ने सम्वत् और समय लिखने म अधिकाश स्थानो पर भूल की है। यहाँ पर भी कुमारपाल चरित्र मे कुमारपाल की मृत्यु का समय सम्वत् १२३० लिखा है।

इसी राजा के शासनकाल में मशहूर अरब निवासी भूगोल का विद्वान अल इदरिसी बल्हरा राज्य में आया था, उसने कितनी ही बातों का वर्णन किया है और उसके उल्लेखों का जिक्र बेयर साहब तथा द आँनविले ने अपने ग्रंथो मे किया है। द आनविले लिखता है—

"बल्हरा का जिक्र इदरिसी मे आया है। यह स्थान हिन्दुस्तान में है, जिसको हम लोग गुजरात के नाम से जानते हैं। इस भूगोल वेत्ता के अनुसार हिंदुस्तान के समस्त दूसरे राज्यो मे इस नगर का गौरव रहा है। यहाँ के राजा का भारत के दूसरे राजाओं में बहुत अधिक सम्मान होता था। उसको बल्हरा की पदवी प्राप्त थी, उसका अर्थ सर्वश्रेष्ठ राजा होता है। इस प्रसिद्ध राजा का निवास स्थान इसी नगर में था। टॉलिमी ने बालेकूरों के बादशाही नगर के रूप 'हिप्पोकूरा' नाम लिखा है और वह इसकी परिस्थिति 'लारिस' के करीब एक हिन्दुस्तानी प्रान्त में मानता है। उसको वह अबीरा का नाम देता है। मैं पहले ही इसको गुजरात कह चुका हूँ। बालेकूर और बल्हरा पदवी की बराबरी एवम् प्रदेश की एकता को देखते हुए मुझे विश्वास है कि इनका सम्बन्ध इसी राजा के साथ है।"

इस विद्वान ने उपरोक्त वर्णन करके जो परिणाम निकाला है, वह इस प्रकार है—हिन्दुस्तान मे एक प्रसिद्ध राज्य है, उसकी जानकारी हमको दूसरी शताब्दी के आरम्भ से ही हो जाती है और उसका विवरण बारहवीं शताब्दी मे आने वाले अरब यात्री के द्वारा लिखी गयी पुस्तक से मिलता है। यहाँ पर वह १५ वीं शताब्दी भी लिख सकता था। वह अपने वक्तव्य को समाप्त करते हुए लिखता है—"इदरिसी से हमको मालूम हुआ है कि बल्हरा बुद्ध का भक्त था।"

उपरोक्त वर्णन के आधार पर ही द आनविले ने इस मशहूर नगर की परिस्थितियों का पता लगाने की कोशिश की है। पूर्वीय भूगोल वेत्ताओ के स्वयं विवरण ऐसे हैं कि जिनसे बल्हरा की परिस्थितियो का सही पता लगाना बहुत कठिन है। इब्न सईद ने तीन बार समुद्र के रास्ते से खम्भात बन्दर की यात्रा की थी। उसका कहना है कि इसका अस्तित्व मैदानो मे है।

नूबिअन भूगोल वेत्ता के उल्लेखो से 'चरित्र' मे वर्णित अनहिलवाड़ा के वैभव, वहाँ के शासकों की शक्ति और अन्याय विवरणो की पूर्णरूप से पुष्टि हो जाती है और जब इदरिसी कहता है कि यह प्रदेश हिन्दुस्तान के राज्यों म सबसे बड़ी इसी की राजधानी थी तो हमको इस उल्लेख पर बिल्कुल सन्देह नहीं होता कि इस नगर का विस्तार पन्द्रह मील की परिधि म था और कुमारपाल ने इस राज्य को बारह भागो में विभाजित करने की आवश्यकता को अनुभव किया।

इदरिसी ने इस राजा के वैभव के सम्बन्ध म अपना अनुमान लिखकर समर्थन

किया है। उसने लिखा है—"हिन्दुस्तान के अन्य सभी राजा उसके गौरव को मानते हैं।"

इसके सम्बन्ध में हमारे पास और भी अच्छे उदाहरण हैं, जिनसे उसके गौरव की पुष्टि होती है। उसकी सैनिक शक्ति की तरह उसके अधिकृत राज्यों के विस्तार पर भी हम सन्देह करते हैं और सत्य को जानने की चेष्टा करते, परन्तु इसके सम्बन्ध में ऐसे प्रमाण मिल रहे हैं, जो प्रबल और निर्विवाद हैं, जिनके कारण सन्देह नहीं पैदा होता। इन प्रमाणों में सबसे अधिक विश्वासनीय दो शिला लेख हैं। उनमें एक चित्तौर के मन्दिर में सुरक्षित है और दूसरा पाटण में है। उसकी मेवाड़ की विजय, पंजाब में सालपुर नगर और हिमालय की बाहरी श्रेणी शीवलक पहाड़ तक उसके वैभव के ऐसे प्रमाण शिला लेखों से प्राप्त हैं, जो किसी प्रकार काटे नहीं जा सकते और न उन पर सन्देह होने का कोई कारण पैदा होता है।

जालंधर, ऊँछ और सिंधु को जीत लेना तो और भी सरल था। इन तरीके से अरब के भूगोल शास्त्री अबुल फिदा के उल्लेखों का समर्थन होता है। और उनको सही मानकर वेबर साहब ने अपने वर्णन में सम्मिलित किया है।

'चरित्र' के इन अंशों के साथ लारिस और ऐरिआक देशों की अनेक बातों के विवाद जो बहुत दिनों से चले आ रहे थे, वे भी शान्त हो जाते हैं। टालेमी ने इनका पड़ोसी देश लिखा है। उसके अनुसार, यह देश सायरास्ट्रीन अथवा सोरा के प्रायद्वीप का एक प्रधान भाग था। चरित्र में अनहिलवाड़ा के अधीन अठारह राज्यों में लार प्रदेश का भी वर्णन मिलता है और उसमें यह भी लिखा गया है कि लार जाति के लोगों को किसी अपराध के कारण कुमारपाल ने अपने राज्य से बाहर कर दिया था।

इब्न सईद ने उसके राज्य की समस्या को हल करते हुए लिखा है कि "मैंने उन अधिकारियों से मुलाकात की है, जो सोमनाथ के प्रसिद्ध मन्दिर का अस्तित्व लार प्रदेश में मानते हैं।"

किसी भी सूरत में यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि यह जाति टालेमी के समय में इतनी शक्तिशाली और गौरवपूर्ण थी कि उसके नाम से एक देश का नाम मशहूर हो गया था और बारहवीं शताब्दी तक उस जाति में इतनी शक्ति मौजूद थी कि अनहिलवाड़ा को अपना बदला लेने के लिये शक्तियों का संगठन करना पड़ा था।

उस जाति के कुछ लोग अब भी इस देश के वंशजों में पाये जाते हैं, मरुभूमि में जो जातियाँ बसती हैं, उनकी चौरासी जातियों में से यह भी एक है और जो जैन मतावलम्बी है। मिस्र देश के प्रसिद्ध भूगोल शास्त्री के लारिस और हमारे लार प्रदेश के निवासियों के सम्बन्ध में इतना विवरण मिलता है।

लारिस के पड़ोसी प्रदेश के सम्बन्ध में जिसका नाम उसने एरिआक लिखा है—हम पहले ही लिख चुके हैं और अगर विल्फर्ड ने नगर के स्थान पर एरिया को

राजधानी की इस विवेचना को पूरे तौर पर मान लिया होता तो वह पुरातत्व के प्रसिद्ध अन्वेषकों में गिना जाता। नगर और एरिआक के विवरण एक शिला लेख के कारण सामने आये, जो बम्बई के करीब थाना अथवा ठाणा के खण्डहरों की खोदाई में प्राप्त हुआ था और वह संयोग से जनरल करनाक को मिल गया था।

इन लेखों से जो ऐतिहासिक सामग्री मिलती है, उससे एक नवीन तथ्य की यह जानकारी होती है कि इनके अनुसंधान में जो सफलता, विलफोर्ड को प्राप्त हुई है, वह किसी दूसरे को नहीं। इस प्रकार जो सामग्री प्राप्त हुई है, उस पर प्रकाश डालने के लिये मुझे जो अवसर मिला है, उसके लिये मैं अपने-आपको सौभाग्यशाली मानता हूँ। इसलिये कि इनकी सहायता से जो विषय मेरे सामने था, वह स्पष्ट हो जाता है।

इन ताम्रपत्रों में भूमिदान के विवरण मिलते हैं, जो शक सम्वत् ६३६ और १०७४ विक्रमीय सन् १०१८ ईसवी में किये गये थे। इन ताम्रपत्रों में भी भूमिदान करने वाले की वंश परम्परा के उल्लेख मिलते हैं। पाँचवें पत्र में लिखा है कि कपर्दिन् सिलार वंश का प्रधान था। उसका उल्लेख अनहिलवाड़ा के राजाओं के अधीनस्थ छत्तीस जातियों में राजतिलक विशेषण के साथ हुआ है। कदाचित् यह सिलार लार ही है, जिसके साथ सि और सु उपसर्ग श्रेष्ठता के लिये लगाये गये हैं। इसलिये कि टालेमी है और एरिअन के समय भी लारिस और एरिआक के पड़ोसी प्रदेश उसी राजा की अधीनता में थे। इसलिये इसको स्वीकार करने में हमको कोई आपत्ति नहीं है।

ऊपर वैश्यों की जो चौरासी जातियाँ लिखी गयी हैं, वे इस प्रकार हैं—

श्री श्रीमाल, श्रीमाल, ओसवाल, बघेरवाल, डिण्डु, पुष्करवाल, मेड़तवाल, हरसारा, सूरवाल, पल्लीवाल, भम्बू, खण्डेलवाल, दाहलवाल, कडरवाल, देसवाल, गूजरवाल, सोहड़वाल, अग्रवाल, जायसवाल, मानतवाल, कजोटीवाल, कोरतवाल, छेहनवाल, सानी, सोजतवाल, नागर, माद, जल्हरा, लार, कपाल, खेड़ता बरारी, दसोरा, मामरवाल, नागद्रा, करबरा, बटेवड़ा, मेवाड़ा, नरसिंहपुरा, सेतरवाल, पद्मवाल, ह्नेरवाल, सरखेड़ा, बैस, स्तुमी, कम्बोवाल, जीरणवाल, बघेलवाल, ओरच्छिनवाल, बामनवाल, श्रीगुरू, ठाकरवाल, बलमीपाल, तिवोरा, तिलोता, अतवर्गी, लाडीसाख, बदनोरा, खीचा, गसोरा, बहाबहर, जेमो, पदमोरा, महरिया, धाकड़वाल, मनगोरा, गोलवाल, मोहोरवाल, चीतोड़ा, काकलिया, भाडेजा, अन्दोरा, साचोरा, भगरवाल, मदनहला, ब्रामीणया, वगड़िया, डिण्डोरिया, बोरवाल, सोरबिया, ओरवाल, नफ़ाग और नागोरा।

इन चौरासी नामों में एक नाम कम है।

आठवें पद्य में लिखा है कि बाद मे उसका पौत्र गोमनी का अधिकारी हुआ। कदाचित् उसने सम्भात के मशहूर नगर और बन्दरगाह पर अधिकार कर लिया था, उसका प्राचीन नाम गजनी अथवा गजनी था और जो खारिस एव एरिग्राक के बीच में मौजूद था और इन दोनो के सम्बन्धों को जोडने का काम करता था।

सोलहवे पद्य में उपभोक्ता का नाम अरिकेसर पढ़ने को मिलता है। उसका अर्थ शत्रुओ के लिए केशरी अर्थात् शेर के समान होता है। यदि इसको अपने दश अरिया का सिंह कहा जाय तो अधिक उपयोगी होगा।

उसका मौलिक नाम देवराजा आगे के वाक्य में आया है। उसका अर्थ यह है कि 'अरिकेसर देवराज सिलार वश का राजा तगर पुरे कोंकरण प्रदेश पर शासन करता है। उसमें नगर और ग्राम मिलाकर सब चौदह सौ हैं।'

इनमे से बम्बई से मिला हुआ तन्न अथवा थाणा भी था। एरिअन के परिप्लस नामक पुस्तक में से विल्फोड ने लिखा है—

'तगर में एक विस्तृत प्रान्त की राजधानी थी, जो एरिआक कहलाता था। इस प्रदेश में औरंगाबाद और कोंकरण इत्यादि भी शामिल थे।

यहाँ पर शिला लेख के शब्दों को ज्यों-का त्यों लिखा गया है। दमार्क (दम्मन) कल्याण, सालसिट जिसमे तन्न अथवा थाणा था और बम्बई आदि एरिअन तथा इब्न सईद के अनुसार, लारिकेह अथवा लार के राजा के अधिकार में था।

इसी निष्कर्ष पर मैं चरित्र और दूसरे प्रमाणों के आधार पर पहुँचा था। विल्फोड ने एरिअन के और भी उदाहरण दिये हैं। उसका कहना है—'ग्रीक लोगो को कल्याण और दूसरे बन्दरगाहो पर उतरने के लिये इजाजत नहीं दी जाती थी।' लेकिन पहले ऐसा नही था। वे लोग स्वतन्त्रापूर्वक दक्षिण में आते-जाते थे और कल्याण तथा बम्बई में अपना माल जहाजों पर लाद सकते थे। आगे चलकर उसने फिर लिखा है कि बरगाजा अर्थात भड़ौंच ही एक ऐसा बन्दरगाह था, जहाँ पर वे लारकेह अथवा लार के राजा सन्देनेश अथवा से देनेश के आदेश से व्यापार करने के लिये आ जा सकते थे। जो कोई उसके आदेश को भग करता था, उसको पकड़कर और कैद करके भड़ौंच भेज दिया जाता था।

ऐसा मालूम होता है कि यह हालत रोमन दूतो के प्रभाव से पैदा हुई थी, जैसा कि विल्फोड ने लिखा है कि मिश्र विजय करने के बाद उन लोगों ने हिन्दुस्तान के व्यापारिक क्षेत्र पर अधिकार जमा लिया था और दूसरे देश के व्यापारियो के लिये लाल सागर का रास्ता बन्द कर दिया था।

विल्फोड का कहना है कि ग्रीक लोगो ने दक्षिण में आसानी के साथ सफलता प्राप्त करने के लिए सालसिठ में बलपूर्वक एक बस्ती को आबाद कराने का प्रयास

किया था। जिसमें उनके बैक्ट्रिया के आदर्शों का असर भी काम कर रहा था। जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि मेनाण्डर और अपोलोडोटस सोरो के 'राज्य' में जबरदस्ती प्रवेश कर रहे थे तो हमको विल्फोर्ड का अनुमान असत्य नहीं मालूम होता। उसने कल्याण के दक्षिण में बन्दरगाहों पर जहाजों की रोक के लिए प्लिनी, एरियन और टालेमी के प्रमाण दिये हैं और यह स्वीकार किया है कि ग्रीक लोगों के लिए वहाँ पर उतरने की इजाजत नहीं थी।

इन विभिन्न प्रकार के प्रमाणों को देखने के बाद जो चीजें हमारे सामने आती हैं, उनसे और स्थानीय जन श्रुतियों से यही साबित होता है कि जहाजी विद्रोहों के कारण ही देव बन्दर के ग्रोर एवम् चावडा राजा को 'सारिक देश' से निकाला गया था। अब प्रश्न यह होता है कि निकाला किसने था?

मिस्री-ग्रीक और रोमन लोगों ने भारतीय व्यापार पर अधिकार कायम किया था। लेकिन इन सभी को नील नदी और लाल सागर से—जहाँ पर इस्लामी झण्डा फहरा रहा था—सन् ७४६ ईसवी में वनराज के द्वारा अनहिलवाडा की फिर से स्थापना होने के बाद बाहर निकाल दिया गया था। इसलिये यह दुर्घटना जल के अधिकारी वरुण देवता के द्वारा न होकर हारू के जहाजी बेड़े के द्वारा हुई थी, ऐसा मालूम होता है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कुमारपाल बौद्ध धर्म का संरक्षक था। इसका समर्थन चरित्र के वर्णन से भी होता है और अल इदरिसी में भी लिखा है कि जैन और बौद्ध मत लगभग एक ही हैं।

इन दोनों मतों में कोई अन्तर नहीं मालूम होता। सिवा इसके कि एक मत ने जिन बातों को मान्यता दी है, दूसरे ने उन्हीं को लेकर उनका परिष्कार किया है। इस विवेचना पर किसी प्रकार का संदेह करने की आवश्यकता नहीं है।

मैं अनहिलवाडा के पतन का अन्त वहाँ के धर्म, व्यापार और जहाजी सम्बन्धों के साथ करना चाहता हूँ। इसलिए कुमारपाल के सम्बन्ध के सभी विवरण यह कहकर खतम कर रहा हूँ कि मुस्लिम इतिहासकारों ने शहाबुद्दीन के सिवा और किसी के आक्रमण का वर्णन नहीं किया। शहाबुद्दीन की घटना कुमारपाल तथा उसके गुरु हेमाचार्य के धर्म त्याग की घटना के बीस वर्ष पश्चात घटी थी।

मेरे गुरु भी उन्हीं प्रसिद्ध जैन आचार्य के आध्यात्मिक शिष्य हैं और मेरे अनहिलवाडा के अनुसंधानों में मेरी सहायता कर रहे हैं। इन्होंने भी जनश्रुति के सत्य को मंजूर किया है। परन्तु धर्म परिवर्तन के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट बात नहीं कही। ऐसी दशा में हम इस परिणाम को निकालने के लिए विवश होते हैं कि इन दोनों ने अपना धर्म-परिवर्तन इच्छा पूर्वक नहीं किया था। बल्कि 'बलपूर्वक' उनसे करवा गया था। इसलिए हम कुमारपाल के वर्णन को यह समझकर समाप्त करते हैं कि वह अपने समय का सबसे बड़ा राजा था और उस धर्म का, जिसको छोड़कर उसने इस्लाम-

धर्म स्वीकार किया था, पहले प्रबल पोषक था और बाद में भयानक रूप से उसका विरोधी हो गया था।

अजयपाल, सम्वत् १२२२ सन् ११६६ ईसवी में सिंहासन पर बैठा। (१) जैसलमेर के इतिहास में उसका वर्णन करते हुए लिखा गया है कि सम्वत् १२१५ में धार के राजा यशोवर्धन के बेटे रतधवल (२) की बहन से वैवाहिक सम्बन्ध में वह जैसलमेर के राजकुमार का विरोधी था।

राजा भोज के महत्वपूर्ण समय का निश्चय करने वाले शिला-लेख से सोलंकी और भाटी वंशों के इतिहास की समकालीनता जाहिर होती है। किसी भी तरीके से यह साबित नहीं होता कि अजयपाल, कुमारपाल का उत्तराधिकारी होने के साथ-साथ बेटा भी था। (३) सोलंकियों की वंशावली में उसका नाम छोनीपाल लिखा है और उसके समकालीन शिला लेखों में भी यही नाम पढ़ने को मिलता है। जैसलमेर के इतिहास में यह भी लिखा है कि वह तीसरे राजवंश अर्थात् बघेला वंश का संस्थापक था। उसमें यह भी लिखा है कि ज्योतिषियों ने पहले से ही कुमारपाल से कह दिया था कि उसके मूल नक्षत्र में लड़का पैदा होगा और वही लड़का अपने पिता की हत्या करेगा।

ज्योतिषियों की इस बात से भयभीत होकर उस बालक के पैदा होने पर बघेश्वरी माता के सामने उसका बलिदान कर दिया गया। लेकिन बाघेश्वरी माता ने उसकी रक्षा की और अपना दूध पिलाकर उसका पालन किया। इसीलिये उस बालक का वंश बाघेला (४) के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अपने पिता की तरह वह बालक भी इस्लाम-धर्म में आ गया था। यही कारण था कि उसके शासन काल में सबसे

---

(१) प्रबन्ध चिन्तामणि में लिखा है कि अजयपाल सम्वत् १२३० विक्रमी सन् ११७४ ईसवी में सिंहासन पर बैठा।

(२) उसी ग्रन्थ में लिखा है कि परमार के तीन लड़कियाँ थी और पाटन के अजयपाल के सिवा चित्तौर का युवराज भी वहाँ पर प्रतिद्वन्दी के रूप में मौजूद था। भाटी के प्रति पक्षपात करते हुए भी एक कथानक में युवराज की श्रेष्ठता स्वीकार की गयी है। उपाख्यान में दोनों के झगड़े का वर्णन किया गया है जो इस प्रकार पैदा हुआ था कि भाटी ने राजकुमार के प्याले में पानी पी लिया था। इस इतिहास में चार समकालीन राजवंशों का वर्णन किया गया है।

(३) हिन्दुओं के एक ग्रन्थ में लिखा गया है कि अजयपाल स्वर्गीय राजा कुमारपाल के भाई महीपाल का बेटा था।

(४) बाघेल खण्ड का राजा इसी वंश का है। गुजरात में इस जाति के अनेक छोटे छोटे राज्य हैं जैसे लूणावाड़ा, माणसा, पीथापुर, गोधरा, डभोई इत्यादि।

पहला कार्य यह हुआ कि राज्य के समस्त मन्दिरों को —चाहे वे आस्तिकों के हों अथवा नास्तिकों के, जैनियों के हों अथवा ब्राह्मणों के—विध्वंस कर दिया गया।

कहा जाता है कि उस विध्वंस और विनाश में किसी प्रकार तारींगो की पहाड़ी पर एक मन्दिर बच गया। वह धूगर की लकड़ी का बना हुआ था। (१) यह भी कहा जाता है कि इस लकड़ी में आग नहीं लगती।

अजयपाल अपने शासन काल में पिता के वध, धर्म के त्याग और मन्दिर के विध्वंस के बाद अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहा। अत्यन्त क्रोध मे आ जाने के कारण उसने हेमाचार्य के उत्तराधिकारी के नेत्र निकलवा लिए। (२) इसके बाद की घटना है कि वह कहीं जा रहा था, रास्ते में घोड़े पर से गिर गया और वह घोड़ा उसको रास्ते में बहुत दूर तक घसीटता हुआ ले गया। इस दशा में उसकी मृत्यु हो गयी।

अबुलफजल ने लिखा है कि कुमारपाल ने इंतीस वर्ष राज्य किया और अजयपाल ने आठ वर्ष। लेकिन चरित्र में इन दोनों का शासन काल मिलाकर तीस वर्ष लिखा है। उसमें अजयपाल को दो वर्ष से भी कम बताया जाता है। (३)

अतीतकाल के इतिहास का यहाँ पर जो वर्णन किया जा रहा था और लिखा जा रहा था 'चरित्र' में वर्णित घटनाओं के आधार के साथ साथ अन्य प्रकार की एतिहासिक प्राप्त सामग्री, जनश्रुतियों, लोकोक्तियों, शिला लेखों, ताम्रपत्रों, दानपत्रों और दूसरे ग्रंथों के उल्लेखों की सहायता पर। जिसका अब अन्त हो रहा है। इसके सम्बन्ध में मूल इतिहास सालिग सूरि आचार्य का लिखा हुआ है और उसने उसको अड़तालीस हजार श्लोकों में लिखा है। उसी का गुजराती अनुवाद तेरह हजार श्लोकों में किया गया है।

---

(१) कहा जाता है कि यह मन्दिर नौ मंजिल का है और अब तक मौजूद है।

(२) प्रबंध चिन्तामणि में लिखा है कि उसने एक सौ निबन्धों के रचयिता रामचन्द्र नामक जैन विद्वान को जलते हुए तवे पर बिठाकर मरवा डाला था।

(३) कुमारपाल के शासन के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार के लेख पाये जाते हैं। लेकिन 'चरित्र' में लिखा है कि कुमारपाल ने तीस वर्ष तक शासन किया। इन तीस वर्षों में कोई दूसरा शामिल नहीं है।

दसवाँ प्रकरण

शासन, वैभव, युद्ध और विजय

'अनहिलवाड़ा के कुछ ऐतिहासिक दृश्य—भीमदेव और उसका चरित्र—अनहिलवाड़ा और अजमेर का युद्ध—भीमदेव और पृथ्वीराज का युद्ध—पृथ्वीराज के द्वारा गुजरात की विजय—अनहिलवाड़ा का गौरव—मुसलमानों का आक्रमण—बल्हरा की सत्ता का खात्मा—गुजरात पर दाव जाति का अधिकार—ऐतिहासिक लेख और उनके परिणाम।

भीमदेव सम्वत् ११६६ में सिंहासन पर बैठा। (१) उस समय के इतिहासों में उसके नाम के पहले भोला शब्द का प्रयोग किया गया है। उसका अर्थ होता है सीधा, बुद्धू और अयोग्य। एक ही नाम के जब कई राजा होते हैं तो उनके नाम के साथ दूसरा, तीसरा, चौथा आदि कुछ लिखा जाता है और ऐसा करना किसी भी इतिहासकार के लिये आवश्यक हो जाता है। ऐसा सभी देशों के इतिहासों में देखा जाता है।

भीमदेव के सम्बन्ध में जो कुछ जानकारी प्राप्त हुई है, वह हमको चौहानों के इतिहासों से ही मिली है। हमारी धारणा कुछ और है। यदि वह भोला था तो बल्हरा के राज्य सिंहासन पर बैठने वाले राजाओं में क्रमश: वह तीसरा राजा था, जो भोला अथवा अयोग्य था। लेकिन यह बात समझ में नहीं आती। क्योंकि अगर यह बात सही होती तो इस शक्तिशाली राज्य को खोखला बना देने के लिए उसकी आयोग्यता काफी थी। उसके पूर्वज सुलेमान की तरह समर्थ तथा योग्य ही क्यों न हुए हों। लेकिन उस राज्यों में उसके समय कोई कमजोरी नहीं आयी।

इस हालत मे मालूम यह होता है कि लेखक ने किसी दूसरे शब्द को भूल से भोला शब्द लिख दिया है, चन्दबरदाई ने उसको बाल का राय और चालुक्य वीर लिखा है। यह नहीं कहा जा सकता कि चन्द कवि ने किसी भोले और आयोग्य राजा को झूठे विशेषण देकर एक असंगत चित्रण किया है। मैं तो समझता हूँ कि कवि ने उसके लिए जिस प्रकार के शब्द का प्रयोग किया है, वह एक स्वाभिमानी राजपूत राजा के लिए उपयुक्त ही है।

ऐसा मालूम होता है, कि भीम ने अपने पूर्ववर्ती राजाओं की कमजोरियों को भुला दिया और एक बहादुर योद्धा के रूप में सिद्धराज के अपराधों का दण्ड स्वीकार

(१) रास माला भाग १ में ११६६ के स्थान पर ११०६ सम्वत् लिखा है।

करने के लिए अपने आपको तैयार कर लिया। शाकम्भरी के चौहान राजा सोमेश्वर के साथ युद्ध करके उसको मार डालने और अन्त में उसके बेटे राजपूत होलेएडो (१) पृथ्वीराज से संग्राम करने की घटनाओं का चन्द कवि ने अपने काव्य में अत्यन्त रोचक वर्णन किया है। अगर यही पागलपन, भोलापन अथवा मूर्खता का लक्षण कहलाता है तब तो कहना पड़ेगा कि यह पागलपन तो बहुत ऊँचे दर्जे का था। इसके सम्बन्ध में चन्द कवि ने अपने ग्रंथों में जो कुछ लिखा है, उसको उधृत करना यहाँ पर आवश्यक नहीं मालूम होता, मैं इसे और भी आवश्यक इसलिये नहीं समझता कि मैं चन्द कवि के इस ग्रंथ की ऐतिहासिक सामग्री का लेकर एक अच्छी पुस्तक अपने पाठकों को देना चाहता हूँ। फिर भी कवि की दी हुई सामग्री में से इतना यहाँ पर लिखना मैं जरूरी समझता हूँ कि मेरा अभिप्राय प्राचीन राजपूतों के रहन-सहन और रीति-रिवाजों पर प्रकाश डालना ही नहीं है। बल्कि मैं उस समय के इतिहास और उसकी उन घटनाओं को खोजकर सब के सामने लाना चाहता हूँ कि जिससे राजपूतों के प्राचीनकाल का इतिहास सही रूप में सब के सामने आ सके। उस समय के इतिहास की सामग्री जहाँ पर दी गयी है, वहाँ पर वह परिष्कृत रूप में नहीं है। उस सामग्री के साथ अति शयोक्ति और कल्पनाओं की अवाञ्छनीय चीजें भी आ गयी हैं, उनका परिष्कार करना मैं अपना कार्य समझता हूँ।

इस युद्ध के वर्णन से चौहान के शत्रु के गुणों का वर्णन करने का ही अवसर नहीं मिलता बल्कि उसके राज्य के विभिन्न धर्मों, अभावों, साधनों एवम् कलहरा के झण्डे के नीचे एकत्रित होने वाली विभिन्न प्रकार की टोलियों पर प्रकाश डालने का अवसर भी प्राप्त होता है।

गुर्जर धरा में भोला भीम भुजंग (२) शासन करता था। उसके पास घोड़ों, हाथियों और रथों की बहुत बड़ी सेना थी, उसकी तलवार का पानी समुद्र के जल (३) की तरह चमकदार और गम्भीर था। उसके काका सारंग देव की बराबरी करने वाला कोई नहीं था। वह देखने में देवता के समान था। उसके लड़के प्रताप आदि सातों

(१) रोलेएडो आठवीं शताब्दी में फ्रांस में प्रसिद्ध राजा शार्लमैन का सामन्त और भतीजा था, वह अत्यन्त उदार, शूरवीर और स्वामिभक्त था। उसके यशस्वी कार्यों का वर्णन योरप की प्रसिद्ध पुस्तक 'साँग ऑफ रोलाल्डो' में किया गया है। स्पेन विजय के लिये जब शार्लमैन ने आक्रमण किया था, उस समय रोलेएडो उसके साथ था। वापस लौटने के समय सोरेमनो के आक्रमण करने पर वह मारा गया।

(२) भुजग, भुजंग, सांप के पर्यायवाची नाम हैं।

(३) तलवार का पानी ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार हीरे का पानी, लोहे का पानी आदि।

भाई सिंह के समान थे। उनके मुखमण्डल पर राजपूतों का तेज था। वे शक्तिशाली होने के साथ-साथ बुद्धिमान भी थे। अपनी शक्तियों पर वे गर्व करते थे और निर्भीकतापूर्वक वे तूफानों के साथ भी टकराने के लिये प्रत्येक समय तैयार रहते थे।

उन सरदारों का स्वामी जब शत्रु से लड़ने का आदेश देता था तो वे युद्ध स्थल पर जाकर इस प्रकार शत्रु पर आक्रमण करते थे, जिस प्रकार पृथ्वी पर बिजली गिरती है। आग के समान प्रचण्ड, राणाओं के स्वामी शक्तिशाली झाला राणा को मारने वाले वही थे।-सारङ्गदेव स्वर्गलोक चला गया और प्रताप उसका उत्तराधिकारी बना। उसके अधिकार में पाँच सौ शूरवीर थे। उनमें से प्रत्येक अपने आपको युद्ध का नेता समझता था। उन वीरों के साथ वे सब भाई अपने राजा की प्रत्येक सेवा के लिये वे कल्पवृक्ष के समान थे। वे अपने राजा के परम भक्त थे और उसके सम्मान के लिये प्रत्येक त्याग और बलिदान के लिये हमेशा तैयार रहते थे।

इस कथा में आगे चलकर पहाड़ी और जंगली जातियों के द्वारा गुजरात के युद्ध क्षेत्र में हुए एक भीषण युद्ध का वर्णन किया गया है। उसमें लिखा गया है कि उन जातियों के साथ युद्ध करने के लिए स्वयं बल्हरा को आगे आना पड़ा।

युद्ध आरम्भ होने के बाद थोड़े ही समय में आक्रमणकारी पहाड़ी और जंगली जातियों के लोगों को मारकर भगा दिया गया और वे लोग वहाँ से भागकर अपने पहाड़ी और जगली घरों में चले गये।

राजा और सामन्त लोग जंगल में शिकार खेलते हुए अपना मन बहलाव करने लगे। उसी मौके पर एक बड़ी दुघटना हो गयी, जिसका वर्णन करना यहाँ पर हमारे लिए बहुत आवश्यक हो गया है। यह घटना अपनी रक्षा के लिए राजा के अत्यन्त प्रिय हाथी को मार देने के सबब से हुई। उससे अप्रसन्न होकर राजा ने प्रताप आदि भाइयों को देश छोड़कर बाहर चले जाने का आदेश दे दिया। वे लोग वहाँ से अजमेर चले गये और वहाँ के चौहान राजा ने उनके पहुँचने पर उनका हार्दिक स्वागत किया।

चौहान राजा ने उनको एक जागीर का पट्टा लिख दिया और प्रत्येक भाई को एक-एक राजसी पोशाक देकर एक एक सौ अश्वारोही सैनिक उनके अधिकार में दे दिये। चौहान राजा के यहाँ उनका सम्मान बढ़ा और वे वहाँ के बड़े सामन्तो में माने जाने लगे। इससे उनके सम्मान में और भी वृद्धि हुई।

इन्हीं दिनो की बात है। सुमेरु पर्वत के समान विशाल सोमेश का बेटा सामन्तो के बीच मे बैठा हुआ प्राचीन काल का इतिहास सुन रहा था। प्रताप का आत्मा जागर्रत हो उठा। उस ऐतिहासिक कथा को सुनते-सुनते उसकी भुजायें फड़फड़ाने लगी और उसका दाहिना हाथ मूछो पर पहुँच गया।

अपने से बड़ों के सामने मूछों को उमेठना और उन पर हाथ रखना राजपूतो में एक अक्षम्य अपराध माना जाता है। चौहान राजा के भाई और पृथ्वीराज के काका

कन्हराय ने प्रताप के इस दृश्य को देख लिया। पृथ्वीराज की छोटी अवस्था के कारण कन्हराय उसके राज्य की सेनाओं का संचालन करता था। फरिश्ता (१) ने भी खाण्डेराय के नाम से गजनी के सुल्तान के साथ उसके भीषण युद्ध और विजय का वर्णन करके उसको गौरव प्रदान किया है।

कन्ह काका ने प्रताप की इस हरकत को देखा। वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और तुरन्त झपट कर उसने प्रताप को जमीन पर गिरा दिया। इस दृश्य को देखते ही प्रताप के भाई उसकी रक्षा करने के लिये क्षण भर में तैयार हो गये और उन्होंने अपनी तलवारें निकाल लीं। दरबार में गड़बड़ी मच गयी। नवयुवक राजा तो किसी प्रकार बच गया। परन्तु उस सभा में रक्तपात के कारण सम्पूर्ण स्थल रक्तमय हो उठा। वे सब भाई वहाँ पर मारे गये और अपनी बहादुरी के कारण वे भाट की प्रशंसा के पात्र हो गये।

भाट ने इस घटना का वर्णन बड़ी ओजीली कविताओं में किया है। इसके सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन कुछ परिस्थितियों के आधार पर यह संदेह होता है कि भाट ने इन भाइयों को कदाचित् किसी अवसर पर उकसाने का काम किया था। लेकिन इसके सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते।

चालुक्य वंश ! तू धन्य है और तेरे वे वंशज धन्य हैं, जिन्होंने दूसरे के राज्य में भी स्वाभिमान की रक्षा की। सन्ध्या के समय महादेव ने अपनी मुण्ड माला को धारण किया। (२) योगिनियों (३) ने अपने खप्पर भली प्रकार भर लिये। चौहान शूरवीर खून में डूबे हुये पड़े थे, यमराज की तरह कन्ह उनके पास खड़ा था और इस परिणाम को [illegible] देख रहा था।

प्राचीन काल में राजपूत इस प्रकार के थे और वे आज भी ऐसे ही हैं, जो एक तिनके के लिये भी वे लड़कर अपने प्राण दे देते हैं। इस अवस्था में उनको भोला कहना कदाचित् उपयुक्त हो सकता है। लेकिन उनके इस भोलेपन के चन्द कवि ने राजपूतों का स्वाभिमान माना है और अपने सम्मान के नाम पर मरने वाले राजपूतों की उसने शक्ति-भर प्रशंसा की है। उसका ग्रंथ इसी प्रकार की प्रशंसाओं से भरा हुआ है। कन्ह भीम के समान है। वह रावण के समान भी है। कन्ह ने बड़े से बड़े शक्तिशालियों के नथनों में नाथ पहनायी थी। (४)

---

(१) प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार।

(२) युद्ध के देवता की माला नरमुण्डों की अर्थात् आदमियों के सिरों की होती है।

(३) वह राक्षसी जो युद्ध के क्षेत्र में चक्कर लगाया करती है।

(४) रासो में लिखा है कि झगड़ा समाप्त होने पर सामन्त लोग कन्ह क

इस घटना के फलस्वरूप, अनहिलवाड़ा और अजमेर के बीच युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों तरफ के लोग मारे गये और मुसलमानों को आक्रमण करने का रास्ता खुल गया। देश निकाले का दण्ड भुला दिया गया और जिसके कारण वह दण्ड दिया गया था, उस अपराध को भी क्षमा कर दिया गया। चालुक्य वंश के सम्मान पर संकट आ गया था। प्रताप और उसके भाइयों की मृत्यु का कथानक सुनने के बाद अनहिलवाड़ा के रक्त में प्रतिहिंसा का भाव जागरित हो उठा था। जब चालुक्य भीम और उसके सूरवीरों ने सारङ्गदेव के बेटों का हाल मालूम किया तो उनके क्रोध की आग भड़क उठी।

चालुक्य वंशीय लोगों की हत्या को अपराध मानकर चौहानों के पास युद्ध करने के लिए पत्र भेजा गया। उसके उत्तर में लिखा हुआ मिला—सोमेश्वर तुमसे युद्ध क्षेत्र में भेंट करेगा।

युद्ध का कारण क्या था, इस पर ऊपर लिखा जा चुका है। उसके बाद उन पुस्तकों में दोनों ओर से युद्ध की तैयारियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। उस वर्णन से हमको उन वंशों और जातियों के नाम एवम् उनके प्रमुख लोगों के परिचय मिलते हैं, जो दोनों तरफ के झण्डों के नीचे युद्ध करने के लिए एकत्रित हुए थे।

गुर्जर प्रदेश में चालुक्य भीम राज्य करता है। वह पाण्डव भीम के समान है। उसकी कीर्ति और राजनीति का वर्णन नहीं किया जा सकता। लेकिन साँभर का सोमेश्वर उसके दिल में काँटे की तरह चुभ रहा था और इसे वह रात दिन सोचा करता था।

इसके बाद उसके सामन्तों के नाम एकत्रित होने के लिये सूचना निकाली गयी। सभी आकर दरबार में एकत्रित हुए और अपने अपने विचारों का प्रदर्शन किया।

झालापति रायसिंहदेव ने चालुक्यों के राजा से कहा—यदि आप इस दुर्घटना से बहुत क्रोधित हैं तो राज्य की सम्पूर्ण सेना एकत्रित करिये, जिससे हम लोग तेज आँधी के समान शत्रु पर टूट पड़ें, जिस प्रकार भील वाहन के दल को तोड़ लेते हैं, उसी प्रकार हम लोग सम्भरी का (१) लूट लेंगे।

इसके बाद चन्द्र, काठी, नीरन्द, महाबली रानिंग राजभान, देवपति (२)

समझा बुझाकर घर ले गये। पृथ्वीराज को इस दुर्घटना से असीम दुख हुआ। चन्द को जब मालूम हुआ कि पृथ्वीराज बहुत नाराज हो गया है तो वह दरबार में नहीं गया।

(१) यहाँ पर साभर को सम्भरी लिखा गया है, कदाचित उसका अपमान करने के लिये।

(२) इस उपाधि से प्राचीन देव कन्नौज सोमनाथ के राजाओं की पहचान होती है।

योद्धा धवलाङ्ग, धवलरा, सुरतान और जिसके शरीर पर अगणित जख्म थे, उस जूनागढ़ तातार (१) के साथ मकवाणा सरदार सारङ्ग भी दरबार में बोले और अपने विचारों को प्रकट किया।

इसके पश्चात् सामन्तों के बीच में चालुक्य राजा ने भाषण देते हुए कहा— पुरानी शत्रुता मेरे दिल में सुई की तरह चुभ रही है। साँभर मेरे सामने क्या हस्ती रखता है। लेकिन जब तक मैं उसके राजा का सिर कटवा न लूँगा, उस समय तक मुझको शान्ति नहीं मिलेगी। क्या सोवत का युद्ध जीतने से ही उनको युद्ध का बहादुर मान लिया गया है? जब तक मैं उसके साथ युद्ध न कर लूँगा, मुझको चैन नहीं मिल सकती।

इसके बाद राणिङ्गराव, चूड़ा समामाल, श्याम, नरेश (२) शम्भू और काठी के योद्धा धानुग ने जो गम्भीर स्वभाव का था, शरीर से सुन्दर (३) था और जो युद्ध में खुलकर अपने राजा की सहायता करता था—उस घटना के सम्बन्ध में वक्तव्य दिये। क्रोध के कारण आग के समान जलता हुआ वीरसिंह चौहान भी वहाँ पर मौजूद था। उस समय उसके क्रोध का ठिकाना न था। सभी लोगों ने अंत में शपथ ली और प्रतिज्ञा की कि हम लोग ऐसा युद्ध करेंगे, जैसा संसार में कभी न हुआ होगा।

इस युद्ध के सम्बन्ध में जो विवरण ऊपर लिखे गये हैं, वे उपर्युक्त पोथियों के दूसरे भाग के आधार पर हैं। उस भाग में इस वर्णन के बाद सेना के प्रस्थान करने का वर्णन किया गया है—"सेना जितनी ही आगे बढ़ती जाती है, उतनी ही वह उमड़ते हुए सावन के बादलों की भाँति पर्वताकार होती जाती है।"

सेना के शूरवीर योद्धा आगे की तरफ बढ़ते हुए कहते हैं—"हमारे साथ युद्ध करने वाले हैं कहाँ?"

जिस प्रकार रामचन्द्र की सेना ने लङ्का पर आक्रमण किया था, उसी प्रकार चालुक्य की सेना चौहान पर आक्रमण करने के लिए लगातार आगे बढ़ रही थी।

---

(१) इससे इस राज्य में मुसलमानों के प्रभाव का आभास होता है कि प्रायद्वीप के मध्य भाग में जो महत्वपूर्ण गढ़ था, वह उनके हाथ में था। लेकिन अन्यत्र कहीं इसका प्रमाण नहीं मिलता।

(२) इस वर्णन को पढ़कर क्या हम इस बात का अनुमान कर सकते हैं कि उसकी सेना में सीरिया के सैनिक थे? इसलिए कि श्याम सीरिया के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यह समय क्रुसेडस का समय था और शहाबुद्दीन ने फरंगो (फिरङ्गियों) को अपनी सेना में भरती किया था।

(३) यह काठी लोगों की सुन्दरता का एक अच्छा नमूना है। ये लोग सिकन्दर के पुराने शत्रु थे और अपनी पड़ोसी जातियों की अपेक्षा अधिक गोरे ही नहीं थे, बल्कि नीली आँखों के कारण वे उत्तर देशीय पूर्णरूप से मालूम होते थे।

उनकी गणना करना एक असाधारण कार्य था, अमरसिंह (१) सेवड़ा के लिये क्या कहना था ! उसके मुखमण्डल पर राजभक्ति और युद्ध शक्ति चमक रही थी।

उत्साह बढ़ाने वाले छन्दों, गानों और भेंट बारैठ के सम्बन्ध में क्या कहा जाय ! वेदों के सम्बन्ध में विद्वान और पारंगत सोमाधर (२) ब्राह्मण की कोई समता करने वाला नहीं था और चारण भी सुन्दरता में प्रसिद्ध और बेजोड़ था। ये चारों मन्त्री भीम के साथ थे।

चोहान राजा के सम्बन्ध में अधिक कुछ न कहकर हम युद्ध के विषय में प्रकाश डालना चाहते हैं। यह युद्ध सोमेश्वर के लिए खतरनाक सिद्ध हुआ। इस दुष्परिणाम के उत्तरदायित्व से बचाने के लिए चन्द कवि ने पक्षपात करते हुए लिखा है पृथ्वीराज उस समय नगर में नहीं था और उसकी अनुपस्थिति के कारण इस प्रकार की घटना हुई।

"अजयसिंह का लड़का (३) उत्तरी महान के समान है, फिर भी यदि पृथ्वीराज वहाँ पर होता तो वह हमारी जमीन पर कदम नहीं रखता। एक सच्चे राजपूत की भाँति उसने शत्रु की प्रशंसा की है।

"जब चालुक्य ने प्रस्थान किया तो दिल्ली के निवासी अपने घरों में घबराये। बसन्त ऋतु के बहुरंगीन फूलों के समान साम्भर का झण्डा आगे की तरफ बढ़ा।

रणक्षेत्र म युद्ध करने वाले शूरवीरों में सोमेश सबसे श्रेष्ठ था। युद्ध छै घड़ी तक चलता रहा। उसके पश्चात् पचास बहादुर सामन्तों के साथ सोमेश मारा गया। उस पोथी के अनुसार, उसने अमरत्व प्राप्त किया। सोमेश ने सोमेश को उठा लिया। (४) साम्भर का राजा युद्ध में मारा गया और चालुक्य को उसके आदमी पालकी में उठाकर ले गये।

---

(१) सेवड़ा लोग जैन पुरोहित होते हैं, यहाँ पर अमरसिंह का नाम पढ़कर प्रसिद्ध कोषकार का भ्रम नहीं करना चाहिये। यद्यपि यह भी बल्हरा राजाओं के दरबार में रहा था। ये लोग तान्त्रिक और ऐंद्रजालिक हुआ करते थे। जहाँगीर बादशाह ने अप्रसन्न होकर उनको एक बार निकाल दिया था।

—तुजके जहाँगीरी के अंगरेजी अनुवाद के अनुसार।

(२) अनहिलवाड़ा के राजा के यहाँ एक ब्राह्मण मन्त्री था। इसलिए यह जानकर और पढ़कर किसी भी अवस्था में यह अनुमान नहीं करना चाहिये कि यह ब्राह्मण शैव था।

(३) अर्थात् अंतिम राजा अजयसिंह का पुत्र, उसका अर्थ होता है, जिसको जीता न जा सके।

(४) यहाँ पर एक सोमेश का अर्थ है शिव। वह सोम यानी चन्द्रमा को धारण करता है।

यह युद्ध बड़ा भयानक हुआ। युद्ध के लिए जितने शूरमा आये थे, वे सभी मारे गये और उनमे से कोई भी नहीं बचा। योगी लोग जीवन भर तप करने के बाद जिस अमर पद को प्राप्त होते हैं वह मरने के बाद सोमेश्वर को कुछ क्षणो में ही प्राप्त हुआ। संसार ने धन्य धन्य कहकर प्रशंसा की और देवताओ ने शोक प्रकट किया। (१)

इस युद्ध के कारण अनहिलवाड़ा के गौरव में कोई कमजोरी नहीं आयी। वह गुजरात के सत्रह हजार ग्रामों और प्रायद्वीप का स्वामी था, उसके राज्य की सीमा पर झालावाड़, काठियावाड़, देव और अन्य प्रदेशों का उल्लेख किया गया है। चालुक्य की यह विजय अन्त में सर्वनाश का कारण हो गयी। पृथ्वीराज ने—जो दिल्ली का प्रथम और अन्तिम सम्राट हुआ—अपने पिता की शत्रुता का बदला लेने के लिए प्रतिज्ञा की।

रासो का इकतालीसवां वर्णन इस प्रकार आरम्भ होता है—"नरेश के दिल में भीम ताजे जख्म के समान दर्द पैदा करता रहता है। उसको [illegible] आग जला रही है, जिसे शत्रु के रक्त से ही बुझाया जा सकता है।"

अपने दुख को प्रकट करते हुए वह कहता है—"मेरे पिता की शत्रुता मेरे सिर पर है। जब मैं पानी पीता हूं तो मुझे उस पानी में अपने ही रक्त का जायका आता है। मेरा शत्रु शक्तिशाली है।"

वह फिर कहता है—"फिर भी, एक दिन वह आने वाला है, जब मैं अपने पिता को इस भीम के पेट से निकाल लूगा।"

इसके बाद उस विशाल पोथी में चौहान की चौसठ हजार सेना और उसके सरदारो का वर्णन अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढङ्ग से किया गया है। यह समाचार चालुक्य के पास भी पहुँचा। उसमें हतोत्साह का भाव नहीं पैदा हुआ। उसने युद्ध करने का निश्चय किया। सेना में एकत्रित होने वाले समान्तों की नामावली का प्रसंग हम यहाँ पर संक्षेप में लिखने का प्रयास करेंगे और चन्दबरदाई की अपने शत्रु के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णन करने के सम्बन्ध में फिर एक प्रशंसा करेंगे।

"जयसिंह का बेटा क्रोधित हुआ। आवेश में आने के कारण उसके शारीरिक अंग फड़कने लगे। उसके नेत्रों में आग की ज्वाला का अनुभव होने लगा युद्ध के लिये तैयार होने को उसने अपनी सेना को आदेश दिया। उसने अपने सम्पूर्ण राज्य में युद्ध में शामिल होने के लिये निमन्त्रण भेजा।

उसके अधीनस्थ राजाओं ने आज्ञा का पालन किया। धनुषबाणों से तैयार होकर दो हजार खान आ गये। तीन हजार अश्वारोही सैनिकों के साथ चोबदार कवच धारण किये हुए कच्छ का बल्ल आया। एक हजार योद्धाओं को लेकर सोरठ

---

(१) उनको भय हुआ कि बैकुण्ठ में जाकर उनकी आजादी छीन लेगा।

(१) का अधिकारी और बलवानी मुचाहदि का प्रसिद्ध अनुगामी कछराइच आने भी आया, उसको ,अपने तरकश से एक बाण के लिये दूसरा बाण नहीं निकालना पड़ता था।

इसी समय झालावाड़ का झाला नरेन्द्र आया, जिसके प्रस्थान करने पर सूर्य का प्रकाश धुंधला पड़ जाया करता था। काबा सरदार (२) मकवाना उपस्थित हुआ, जिसके नाम पर देश के देश खाली हो जाते थे। तदुपरान्त बाघेला का बाघी नरेन्द्र आया, जिसके शत्रुओं को कहीं पर शरण नहीं मिलती थी। इन सबके अतिरिक्त और भी बहुत से सामन्त आकर एकत्रित हुए, जिनकी गणना करने में पुस्तक के लेखक चन्द कवि ने अपने आपको असमर्थ स्वीकार किया है।

इस प्रकार चालुक्य की सेना थी, जो उसके राज्य के प्रत्येक भाग से आकर यहाँ पर एकत्रित हुई थी। इस विशाल सेना को एकत्रित देखकर देहली के गुप्तचरों ने अपने स्वामी को खबर दी और विवरण सुनाते हुए उन लोगों ने दिल्ली में कहा—लहराते हुए समुद्र की भाँति चालुक्य की सेना चली आ रही है। उसकी सेना में लाखों पैदल और हजारों हाथियों के चलने से समुद्र की मर्यादा नष्ट हो गयी है।'

यहाँ पर चौहान की सेना का मैं विवरण नहीं देना चाहता। कन्हराय उसका प्रधान सेनापति था और वह अपनी पराजय का बदला लेना चाहता था। पिछले दिनों में उसने शहाबुद्दीन को परास्त किया था। उसी प्रकार अब भी उसको अपनी विजय का विश्वास था। उसके सिर पर राजचिह्न, चँवर (३) और छत्र मौजूद था।

हरौल का नेतृत्व पृथ्वीराज स्वयं कर रहा था। निडरराय बीच में था। और पीछे की तरफ की बागडोर परमार के हाथ में थी। इस प्रकार पृथ्वीराज ने अपनी सेना को युद्ध के लिए तैयार किया था।

राजपूतों के युद्ध के समय की एक परिपाटी का यहाँ पर उल्लेख करना आवश्यक मालूम होता है। जब दोनों ओर की सेनायें आमने-सामने हुईं तो दोनों ओर से दूत प्राचीन परिपाटी के अनुसार विरोध प्रदर्शन करने के लिए उनके राजाओं के पास

---

(१) वर्तमान सूरत अथवा सौराष्ट्र का एक छोटा प्रान्त।

(२) गुजरात में रहने वाली एक जाति, जिसका व्यवसाय चोरी करना है, वे लोग अब भी वहाँ पर पाये जाते हैं। श्रीकृष्ण के स्वर्ग चले जाने के बाद जब अर्जुन यादव स्त्रियों के साथ द्वारका से लौट रहा था, तब इन्हीं काबा लोगों ने उसको लूट लिया था।

(३) गाय की पूँछ के बालों का बना हुआ चँवर और छत्र, ये राजचिह्न युद्ध म प्रायः राजा और प्रमुख सेनापति पर नहीं लगाये जाते कि जिससे शत्रु उन पर आक्रमण न कर सके और वे सुरक्षित रहें।

भेजे गये। युद्ध की तरह के महत्वपूर्ण अवसरों पर यह कार्य भाटो के द्वारा पूरा कराया जाता था। इसलिए युवक सम्राट ने चन्द कवि को ही बल्हेरा के पास भेजा। और उससे कहा—"हे चन्द तुम चालुक्य के पास जाकर कहो कि मैं शत्रुता का बदला लेने आया हूँ। मुझसे दो भेंटे स्वीकार करो, एक लाल पगड़ी और दूसरी कांचली अर्थात् अंगिया। इन दोनों में से उसे जो अच्छी लगे, वह उसको स्वीकार कर ले। उससे यह भी कह गे कि यह संसार सपने के समान है। हम दोनों में से एक को निश्चित रूप से मरना है।

चन्द ने शत्रु सेना में जाकर दूत के पवित्र कार्य को भली प्रकार पालन करते हुए अपनी ओर से भी अनेक जोशीली बातें कहीं। चालुक्य ने अपनी प्रतिष्ठा के अनुसार उनका उत्तर देते हुए कहा— "मैं भीम हूँ और भीम के समान मैं युद्ध करूंगा। जो पिता की गति हुई है। वही बेटे की भी होगी।"

इसके पश्चात् चालुक्य ने भी जगदेव नामक भाट को पृथ्वीराज के पास भेजा। उसने वहाँ पर जाकर क्या कहा, इसका उल्लेख कवि ने नही किया है। उसने उस पर प्रकाश डालते हुए उसे विष भरा हुआ बताया है। चन्द कवि ने अपने राजा की तरफ से बोलते हुए चालुक्य दूत की असभ्य भाषा पर कटाक्ष किया और अधिक न कहकर उसको वहीं पर समाप्त कर दिया। चन्दने इतना ही कहा—"गलबल-गलबल गुजराती बोलकर तुम क्या बेकार की बात कर रहे हो।"

उसकी इस बात का यह मतलब निकलता है कि दोनों तरफ की बोली और भाषा में उन दिनों में भी उतना ही अन्तर था, जितना अन्तर आजकल है।

दोनों ओर की सेनाओं के आमने सामने होते ही कवि का जोश उमड पडा। वह कहता है—"चन्द के लिए धर्म क्षेत्र सामने था, सुरलोक का रास्ता यात्रियो से भर गया था और अमर पद प्राप्त कर लिया गया था।"

दोनों तरफ से बहुत समय तक घमासान युद्ध होता रहा। युवक चौहान के आक्रमण करने से शत्रु के बहुत से लोग मारे गये। उनके नाम और पराक्रम का उल्लेख किया गया है।

"एक पहर (१) तक दोनों तरफ के वीरों की तलवारें जोर के साथ चलती रही। कवचा के टुकड़े टुकड़े हो गये। लोगो के मारे जाने से इतना अधिक रक्त प्रवाहित होकर सरस्वती (२) नदी में पहुँचा कि उसमें बाढ़ आ गयी। योगिनियों ने युद्ध क्षेत्र में अपने खप्पर भर लिये। और पलचरों (३) की अभिलाषा पूरी हुई।

(१) दिन का चौथाई भाग।

(२) अनहिलवाड़ा में बहने वाली नदी।

(३) इस शब्द का अर्थ कुछ स्पष्ट नहीं है।

"पृथ्वीराज ने शत्रु को देखा और उसने घोड़े की बागडोर को खींच कर उसे आगे बढ़ाया। पृथ्वी भय के मारे कांप उठी। संसार की सरंक्षिकायें चारों दिशायें अपने-अपने स्थानों से भाग गयीं। देवताओं को कपकपी आ गयी। पृथ्वीराज का हाथ स्वर्ग तक ऊँचा उठा हुआ था और जब उसका धनुष खिचकर गोलाकार हो जाता था तो फिर उससे शत्रु को बचाने वाला कोई न था? शिव की समाधि टूट गयी और जब चौहान और चालुक्य में युद्ध आरम्भ हुआ तो शिव के हाथ से माला गिर पड़ी। प्रत्येक योद्धा की तलवार बिजली के समान चमक रही थी। दोनों तरफ से तलवारों की मार हो रही थी। चालुक्य के सामने पहुँचकर पृथ्वीराज ने कहा—'भीम' तेरा अन्तिम समय आ गया है, सम्भल जा। भीम ने कहा—'मैं तुझे सोमेश्वर के पास भेजता हूँ।' पृथा ने झपटकर आक्रमण किया और उसकी तलवार भीम के गले पर उसके जनेऊ के पास पड़ी। गिरते समय चालुक्य ने भी पृथ्वीराज के मस्तक पर तलवार का वार किया। देवताओं ने जयघोष की आवाज निकाली और अफसराओं के विमान युद्ध क्षेत्र के ऊपर मँडराने लगे। चालुक्य के गिरते ही उसकी सेना के पैर उखड़ गये।"

भाट ने भीम के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है—वह देवताओं के विमान पर बैठकर शिवपुर को चला गया। यह विजय पृथ्वीराज को बहुत महंगी पड़ी। पन्द्रह सौ घोड़े और पन्द्रह सौ प्रसिद्ध शूरमा युद्ध में मारे गये। इसके सिवा जो लोग जख्मी होकर युद्ध की भूमि में कराह रहे थे, उनकी संख्या भी पाँच सौ से कम नहीं थी।

इस युद्ध का वर्णन करते हुए कवि की लेखनी ने जो चमत्कार दिखाया है, उसको यहाँ पर देना आवश्यक तो नहीं मालूम होता, लेकिन कवि ने उपमाओं की जिस छटा का रंगीन चित्र खींचा है, उसको यहाँ पर उपस्थित करना अनुचित भी न होगा।

पृथ्वीराज ने युद्ध में विजय पायी। यद्यपि शूर-वीरों के शरीर खून से डूबे हुए थे, फिर भी उसने विजय का शंख बजाया। पिता की शत्रुता का बदला ले चुकने के पश्चात् उसका क्रोध शान्त हो गया था। उसके सभी योद्धा आपस में युद्ध की बातें कर रहे थे। योद्धाओं का यश ही पृथ्वीराज का धन है। वे उस रात को युद्ध क्षेत्र में ही घायलों की देख रेख करते रहे। उनकी वह रात बहुत लम्बी हो गयी। वे प्रात-काल की प्रतीक्षा कर रहे थे। रात समाप्त हुई। कमल प्रातः होते ही खिल उठा। रात को जो भौंरा उसमें आसक्त रहा था, वह प्रात होते ही उड़ गया। आकाश के तारे फीके पड़ गये और रात की कालिमा समाप्त हो गयी। चन्द्रमा अपने आप विलीन हो गया। स्तुति करने के लिए देवताओं के द्वार खुल गये थे। रात के पक्षी अर्थात् राजा की आँखें फिर बन्द होने लगी थीं। देवालयों में शंख बज रहे थे और सूर्य-देवता की यात्रा आरम्भ हो गयी थी।"

इस चमत्कारपूर्ण वर्णन के पश्चात् कवि का ध्यान उन लोगों की तरफ जाता है जो चारों ओर मरे हुए पड़े थे और जो अब संसार की गति-विधि से अपना सम्बंध तोड़ चुके थे। उनके सम्बन्ध में वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

"इस पृथ्वी पर न जाने कितने योद्धा उत्पन्न होते हैं और हुए हैं, जो तलवारों के घावों का स्वागत करते हैं। चन्द ने स्वयं अनेक बार उन जख्मों का स्वागत किया है। यह संसार एक स्वप्न की तरह है। इसमें जो कुछ है वह एक दिन नष्ट हो जाता है। सांसारिक सुखों के भोग की अभिलाषा करना मूर्खता है। मृत्यु एक क्षणिक के समान है। लेकिन युद्ध के द्वारा जीवन का अमरत्व प्राप्त करना ही वीरों का सबसे बड़ा धन है। तलवार की धार से ही अमरत्व प्राप्त होता है।"

"सुरलोक वीरों का स्वर्ग है, वह सुखों से भरा हुआ है। मुसलमानों की जन्नत है और संसार के सभी शूरमा इस स्वर्गलोक का जीवन प्राप्त करने के लिए युद्ध करना अपना कर्तव्य और धर्म समझते हैं।"

"दिल्ली और अजमेर के चौहान राजा ने अपनी विजय की कामना पूरी की। उसने पिता का बदला लिया और चालुक्य के चौरासी बन्दरगाहों पर अधिकार कर लिया। उसने कच्छरा नामक राजकुमार को सिंहासन पर बिठाया और उसको इनमें से दस बन्दरगाह दे दिये। उसका वह उसे दिल्ली ले गया।'

यह कच्छरा कौन था, इसका मैं पता नहीं लगा सका। उसके लिये मैंने कोशिश की, लेकिन उसमें मुझको सफलता नहीं मिली। इस नाम से उसकी एक शाखा का अनुमान लगाया जा सकता है, जिसके अधिकार में कच्छ का करद राज्य था।

चौहानों के इतिहास में गुजरात पर होने वाले इस आक्रमण का सम्वत् १२२४ लिखा हुआ है। लेकिन सोलंकियों के भाटों ने भोला भीम के मरने का सम्वत् १२२८ लिखा है। यह अन्तर कोई बड़ा महत्व नहीं रखता। इस प्रकार उस समय का सम्वत् निर्धारित करने के लिए जो आधार मिल जाता है, उसका समर्थन हाँसी के शिला लेख से भी होता है।

यह एक ऐसा समय था, जब इस देश में प्रायः सभी हिन्दू राज्य नष्ट हो रहे थे। यहाँ पर मैंने जिस शिला-लेख का उल्लेख किया है। उसको मैं हाँसी राज्य में स्थित पृथ्वीराज के टूटे फूटे महल से लाया था। उसके बाद तुरन्त उसको मैंने मार्क्विस हेस्टिंग्स के द्वारा कलकत्ता की एशियाटिक सोसाइटी में पहुँचाने के लिए भेज दिया था। उसके सम्बन्ध में फिर आज तक हमें कोई समाचार नहीं मिला।

यह शिला लेख केवल इसीलिए विशेषता नहीं रखता कि इसके द्वारा अन्तिम हिन्दू सम्राट के समय का पता मालूम होता है, बल्कि इसके द्वारा उसके दूसरे सम-

कालीन राजवंशों के समय का निर्णय करने में भी सहायता मिलती है। उन राज्यों में अनहिलवाड़ा के साथ हुए युद्ध का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है। एक और बात है, वह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। वह है आम्बेर के राजाओं का समय निर्धारित करना।

राव पिटजूण (प्रद्युम्न) उन दिनों में अम्बेर का अथवा आमेर का राजा था और वह चौहान के सामन्तों में प्रधान माना जाता था। उसका नाम हांसी के शिलालेख में भी हम्मीर के साथ आया है। जिस युद्ध में पृथ्वीराज का पिता सोमेश्वर मारा गया था, उस वर्णन में भी राव पज्जूण का नाम आया है और उसके समय का संक्षेप में कुछ वर्णन भी किया गया है।

उस वर्णन में आया है कि उसने किस बहादुरी और बुद्धिमानी के साथ युद्ध के मृत्यु-स्थल पर खोई हुई सम्राट की कलगी को खोजकर प्राप्त कर लिया था। भाट ने उसकी इस सफलता के लिए और कलगी को फिर से प्राप्त करने का बड़ा अच्छा वर्णन किया है। (१) हम इसको मारवेश्वर अथवा मारक के स्वामी के द्वारा सफल आक्रमण मान लेते हैं।

बालमूलदेव सम्वत् १२२८ सन् ११७३ ईसवी (२) में सिंहासन पर बैठा। इस वंश के सम्बन्ध में एक आश्चर्य की बात यह है कि आरम्भ से अन्त तक उसके सभी राजा एक ही नाम के हुये। इस वंश ने अनहिलवाड़ा पर इक्कीस वर्ष अर्थात् सम्वत् १२४६, सन् ११६३ ईसवी तक राज्य किया। राजपूतों के इतिहास में इस समय का विशेष महत्व है। इसी वर्ष दिल्ली और कन्नौज के राज प्रासादों पर इस्लाम का झण्डा लगा था इसी वर्ष पराक्रमी योद्धा पृथ्वीराज कग्गर (३) के समीप युद्ध करते हुए मारा गया और कन्नौज का सम्राट युद्ध से भागकर तथा गंगा में आकर डूब गया था।

---

(१) रासो में यह वर्णन पज्जूण छोंगा के नाम से किया गया है। लेकिन कथा वस्तु में कुछ और है। चालुक्य राव माला भीम ने राणिङ्ग के बेटा महाबली मकवाणा के सिर पर छोगा अर्थात् तुर्रा बंधवाकर सेनापति बनाया और सोनिगरो की राजधानी, कदाचित जालौर पर आक्रमण करने के लिये भेजा। उस समय पृथ्वीराज ने कुशवाहा (कछवाहा) सामन्त पज्जूण को सेनापति नियुक्त किया और मकवाणा के साथ युद्ध करने के लिये भेजा। उस युद्ध में पज्जूण के बेटे मलयसी ने मकवाणा के सिर का छोगा अपने कब्जे में करके पिता को लाकर भेंट किया।

(२) मूलराज दूसरा अथवा बालमूलराज १२३४ विक्रमी, सन् ११७७ ईसवी में गद्दी पर बैठा। उसने केवल दो वर्ष राज्य किया।

(३) घग्घर।

इस प्रकार यद्यपि अनहिलवाडा के सभी प्रमुख राजाओं का अंत हो गया था। लेकिन बालमूल देव तक यह दुरवस्था नहीं आई थी। और उसका उत्तराधिकारी वीसल देव बाघेला (१) हुआ। उसका शासन-काल सम्वत् १२४६ सन् ११६३ ईसवी से आरम्भ हुआ था। उसको बाघेला वंश का पहला राजा क्यों कहा जाता है, इसका कारण मैं मालूम नहीं कर सका। इसलिये कि नाम बदलने के सम्बन्ध में जो कथानक मिलता है, वह कुमारपाल के बेटे के साथ सम्बन्ध रखता है, उससे यह जाहिर होता है कि सबसे पहले मूलदेव ही इस नाम से हुआ था।

यह परिस्थिति कोई अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। इसलिये कि वीसलदेव के बाद के शिला लेखों में भी इस वंश का पुराना नाम चालुक्य अथवा सोलंकी आया है। इस राजा ने पन्द्रह वर्षों तक शासन किया। परन्तु हमको इसके सम्बन्ध में एक भी उल्लेख योग्य घटना नहीं मिलती।

भीमदेव सम्वत् १२६४, सन् १२०८ ईसवी (२) में सिंहासन पर बैठा। उसने बयालीस वर्ष शासन किया। राज्यारोहण के बीस वर्ष पश्चात् उसके मन्त्रियों ने चित्तौर के मंदिरों का निर्माण कराया, इससे यह प्रमाणित होता है कि जिन इस्लामी सेनाओं ने दिल्ली, कन्नौज और चित्तौर के राज्यों को मिटाया था वे अनहिलवाडा को किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुँचा सकीं। जो शिला लेख आबू में प्राप्त हुए, उन सबमें लिखा है कि वह सार्वभौम शासक था। पृथ्वीराज ने जिनको कुछ समय के लिये स्वतन्त्र करा दिया था। आबू और चन्द्रावती के परमार राजा भी फिर उसकी अधीनता में आ गये थे। इससे अनुमान किया जा सकता है कि बल्हरों की ताकत न तो दक्षिण में कम हुई थी और न पश्चिम में।

वनमी के शिला-लेख से—जिसमें अर्जुनदेव के गुणों का उल्लेख किया है—यह बात साफ-साफ जाहिर हो जाती है कि खार प्रदेश ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण सौराष्ट्र पर

---

(१) बाल मूलराज के पश्चात् वीसलदेव का गद्दी पर बैठना गुजरात के इतिहास से साबित नहीं होता। पता नहीं टाड साहब ने कैसे इसको लिखा है। एक पट्टे में लिखा है कि बाल मूलराज ने सम्वत् १२३२ वि० की फागुन शु० १२ से १२३४ वि० की चैत्र शु० १४ तक दो वर्ष एक मास राज्य किया। उसके बाद उसके भाई भीमदेव रमोला भीम ने राज्य किया।

(२) बाहड़मेर के करीब किराडू के वि० सं० १२३५ सन् ११७६ ईसवी के लेख में जाहिर है कि वह भीमदेव के राज्यकाल में लिखा गया था। इसी तरह डा० बुह्लर द्वारा प्रकाशित ग्यारह लेखों में से नवाँ ताम्र लेख सम्वत् १२६५ का है। इसके बाद १२६८ सम्वत् का लेख त्रिभुवनपाल के समय का है। इससे साबित है कि भीमदेव ने सम्वत् १२३५ सन् ११७६ ईसवी से सं० १२६८ सन् १२४१ ४२ तक राज्य किया।

उसका शासन था। यह बात जरूर है कि अरब के मल्लाहों को समुद्र के किनारे आबाद हो जाने के आदेश प्राप्त हो चुके थे। अनहिलवाड़ा के गौरव का यह एक बड़ा प्रमाण है। यदि आबू और तरंगी के पहाड़ों पर चन्द्रावती नगरी में एवम् समुद्र के किनारे एक साथ निर्मित मन्दिरों की उन्नति का प्रमाण न भी माना जाय तो भी यह कहा जा सकता है कि यह राज्य उन दिनों श्रेष्ठता की पराकाष्ठा पर यद्यपि नहीं था, परन्तु यह कहाँ किसी प्रकार निर्बल भी नहीं हुआ था।

इसको दूसरी तरह यों कहा जा सकता है कि यह इतिहास और लोक कथाओं में प्रसिद्ध महान राजा कर्ण और सिद्धराज के पश्चात् दोनों वालों (१) के शासनकाल में कुछ कमजोरी भी आयी थी तो भी क्या इस देश का आर्थिक वैभव अपनी पूरी उन्नति पर नहीं था? एक शताब्दी के बाद विदेशी हमलों में बहुत कुछ नष्ट भ्रष्ट हो जाने पर भी वह इतना सम्पन्न बना रहा था कि इन मन्दिरों में से प्रत्येक की श्रेष्ठता के लिये करोड़ों की सम्पत्ति श्रेष्ठियों के कोष में से दी गयी थी। तब क्या यह नहीं कहा जा सकता कि यहाँ के श्रेष्ठी लक्ष्मी के वैभव में राजाओं से आगे थे।

भीमदेव और उसके सामन्त धारावर्ष ने मिलकर मुसलमानों के हमलों का मुकाबिला किया था और बादशाह कुतुबुद्दीन को युद्ध में परास्त किया था। (२)

इस युद्ध में कुतुबुद्दीन घायल हुआ था। यही नहीं, बल्कि उसके बाद आने वाले आक्रमणकारी भी अनहिलवाड़ा पर उस समय तक विजयी नहीं हो सके जब तक आधी शताब्दी के पश्चात् क्रूर अलशाह (३) का शासन चारों तरफ कायम नहीं हो गया। इन समस्त बातों की प्रामाणिकता अनेक प्राचीन ग्रन्थों से प्रमाणित है।

अर्जुन देव (४) सम्वत् १०३६ सन् १२५० ईसवी में सिंहासन पर बैठा। उसने तईस वर्ष तक शासन किया। वह अपने पिता की नीति का अनुयायी था। उसने बाहरी हमलों से अपने राज्य की रक्षा की लेकिन उसके साथ साथ वह उन मुसलमानों के साथ मित्रता भी कायम करता रहा, जो तेजी के साथ उसके राज्य की तरफ चारों ओर से बढ़ते आ रहे थे। फिर भी चालुक्य चक्रवर्ती, चालुक्य सार्वभौम और

---

(१) बाल मूलराज, भोला भीम और कर्ण गेला।

(२) यह युद्ध ई० सन् ११६७ में हुआ था।

(३) अलाउद्दीन खिलजी।

(४) टाड साहब का तिथियों और तारीखों के साथ-साथ राजाओं के क्रम में भी भूलें हैं। बीसलदेव बाघेला वि० स० १३०२ में त्रिभुवनपाल के बाद गद्दी पर बैठा था। उसने बाल मूलराज को उत्तराधिकारी बना दिया और बीसलदेव के उत्तराधिकारी अर्जुनदेव को भीमदेव के बाद गद्दी पर बिठा दिया। इस प्रकार की अनेक भूलें हैं। [अनुवादक]

सदा विजयी आदि उसकी पदवियों से जाहिर होता है कि उसकी शक्ति में कोई कम-जोरी नहीं आयी थी।

यह शिला-लेख एक आज्ञा पत्र है, जो उसके जल-सेनापति हरमज निवासी नूरुद्दीन फीरोज के नाम—जो सोमनाथ के निकटवर्ती बिलाकुल बंदर का मालिक था और उसके अधिकार में देवबंदर एवं द्वीप के स्वामी दूसरे चावड़ा सरदारों के नाम लिखा गया था। उसमें उनको व्यापारी सामान के कर की देखभाल करते रहने के लिए आदेश दिये गये थे।

यह कर सोमनाथ में स्थापित सूर्य मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये दे दिया गया था चावड़ा लोग अब तक सूर्य के भक्त थे। इस उल्लेख से चार प्रमुख बातें जाहिर होती हैं। पहली यह कि सोमनाथ अथवा चन्द्रमा के स्वामी का मन्दिर सोरों द्वारा बनवाया हुआ विशाल सूर्य मन्दिर है। उसी के कारण इस प्राय द्वीप का नाम सौराष्ट्र पड़ा है। उसको बैक्ट्रिया के ग्रीक राजा सायराष्ट्रीन कहा जाता था।

दूसरी बात यह है कि देवद्वीप और पवित्र नगर सोमनाथ के चावड़ा राजा अधीन होते हुए भी दीर्घकाल तक अपनी इस प्राचीन राजधानी पर अधिकार किये थे और वहाँ से निकलने के बाद उन्होंने ७४६ ईसवी में अनहिलवाड़ा बसाया था।

तीसरी बात यह है कि वलभी के अधिकारी बालरायों का अपना सम्वत चलता था जो विक्रम सम्वत ३७५ अथवा ३१६ ईसवी से आरम्भ हुआ था।

चौथी बात यह थी कि हुरमज बन्दर का स्थान अरबी अमीर १२५० ईसवी में अनहिलवाड़ा के एक जहाजी बेड़े का नायक था।

सारङ्गदेव सम्वत् १३२६ सन् १२७३ ईसवी में गद्दी पर बैठा। उसके शासन के दिन कठिनाइयों से भरे रहे और उसका इक्कीस वर्ष का शासन बहुत लम्बा हो गया था। लेकिन अब वह समय तेजी के साथ समीप आ रहा था, जब कि अनहिल-वाड़ा की अहंकार से भरी हुई गर्दन झुकने को थी।

गैला कर्णदेव सम्वत् १३५० सन् १२९४ ईसवी में शासक हुआ। उन दिनों में हिन्दू राज्यों में और विशेषकर राजपूत राजाओं के यहाँ कुछ ऐसे परिवर्तन हो रहे थे कि उनमें अपनी रक्षा के लिए उनको सुलेमान की तरह बुद्धिमानी से, काम लेने की आवश्यकता थी। इसी प्रकार के दिनों में अनहिलवाड़ा के सिंहासन पर एक अयोग्य राजपूत बैठा।

गैला का यही अर्थ होता है। गोहिल नहीं, जैसा कि अबुलफजल ने उसका अर्थ लगाया है। वनराज की गद्दी पर इस वंश का कोई भी राजा नहीं बैठा। निर्दय अला-उद्दीन—जिसको सम्बोधन करने के लिये हिंदुओं के पास 'खूनी' अथवा 'रक्त का प्यासा' के सिवा और कोई शब्द नहीं था और जो हिन्दुस्तान के प्रत्येक राजपूत वंश में अनहिल-वाड़ा आया था और अन्य राज्यों की तरह उसने इसको भी पराजित किया था।

अनहिलवाडा की स्थापना के बाद पाँच सौ बावन वर्षों का बरहूरी की अटूट सत्ता गैलाकरण के साथ साथ समाप्त हो गयी। राजधानी मे और उसके आस पास वाघेलावश के छोटे-छोटे सरदार अपनी जागीरों पर कायम रहे। परन्तु उनको आक्रमणकारी मुस्लिम की अधीनता मजूर करनी पडी थी। कालीकट की स्वाभिमानी दीवारें गिराकर मिट्टी मे मिला दी गयी।

इस घटना के कितने ही वर्षों के बाद अनहिलवाडा के बचे हुए राज्य पर सहारन के रूप म एक नये वश का अधिकार हुआ, जो प्राचीन किन्तु अब टाक जाति का था। लेकिन इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेने के कारण सहारन ने मुजफ्फर नाम प्रसिद्ध करके अपने नाम और जाति को छिपा लिया था। उसका लडका (१) मशहूर अहमदशाह था, जो राजाओ की परम्परा कायम करना चाहता था। इसलिए उसने गुजरात की राजधानी सरस्वती के तट से हटा कर साबरमती के तट पर स्थापित की।

प्राचीन राजधानी चन्द्रावती के लाये हुए कीमती सामानो से जब अहमदाबाद का निर्माण हो गया तो लोग अनहिलवाडा को भूल गये। और जब अहमदशाही एवम् उनके बाद वाल अधिक गौरवशाली तैमूर वश के सुल्तान भी भुला दिये गय और उनका अधिकार गायकवाड राजाओ के हाथो मे चला गया तो उसके बाद अहमदाबाद की बारी आयी और उस नगर की भी उपेक्षा की गयी।

दामा जी ने अपनी विजय की आकांक्षा से एक नया नगर बसाया अथवा यो कहा जाय कि वनराज के नगर के चारो ओर एक परकोटा तैयार कराया, जो अब अनहिलवाडा पट्टण के *नाम से नही, बल्कि वह पट्टन के नाम से प्रसिद्ध हुआ।*

यहाँ पर जो वर्णन किया जा रहा है कुछ लोगों के लिये एक साधारण इतिहास और राजाओं के शासन तथा उनकी मृत्यु की घटनाओ के सिवा और कुछ नही है। परन्तु जो लोग इतिहास की इन भीतरी और गम्भीर परिस्थितियो पर दूर तक विचार करेंगे, उनको मनुष्य जाति के बहुत छिपे हुए पहलू इस प्रकार के पन्नों में देखने को मिलेंगे। उनके भीतर सभी कुछ देखने को मिलेगा। उनमें जीवन का उत्थान और पतन होगा, निर्माण और विनाश होगा एव जीवन और मरण भी होगा। उनम सब-कुछ होगा। उनम वह सभी देखने को मिलेगा, जो साधारण नेत्रों से *कभी देखने को नही मिलता और न यह समझने को मिलता है कि बडी से बडी शक्तियों* का निर्माण और विनाश कैसे हुआ करता है। लेकिन यह सब उसी दशा में इन पृष्ठों, उनकी पंक्तियों और उनके विवरण से भरे हुए उल्लेखों को समझने को मिलेगा जब बडी गम्भीरता के साथ तन्मय होकर उन पर विचार किया जायगा। वास्तव में इसी का नाम इतिहास है और इसी को इतिहास दर्शन कहा जाता है।

---

(१) असल में अहमदशाह मुजफ्फर का पौत्र था।

इतिहास में क्या नही मिलता। मनुष्य जाति का सामाजिक और धार्मिक जीवन, पुरानी रीतियाँ, प्राचीन परम्परायें और उनके अच्छे-बुरे परिणाम, राजनीति की चालें, शासन के दृश्य, व्यापार के विकास, पुरानी जातियों के विस्तार, उनका एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, शिक्षा और सभ्यता के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की कलायें और जीवन के भिन्न भिन्न मार्गों पर मनुष्य जीवन के अद्भुत एवम् अनोखे चमत्कार ?

इस प्रकार का सजीव चित्रण और वर्णन इतिहास ही मे मिलता है। किसी दूसरे के साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती। यह सब सही है। लेकिन इसके साथ साथ यह भी सही है कि जीवन के इन सजीव दृश्यों को देखने और समझने के लिए अन्तरता की अभिलाषा होनी चाहिए। उसके अभाव मे इतिहास दर्शन का कोई महत्व काम नहीं करता।

एक बात है। इन प्रदेशो मे उस प्रकार की सामग्री का जरा भी अभाव नही है, जो एक एतिहासिक शोधक एवम् अन्वेषक के लिए आकर्षण का काम करती है। चाहे उसके मौलिक आधार प्रभावशाली हो अथवा न हो। उस देश की सामग्री के मुकाबिले में—जहाँ पर हमने जन्म लिया है अथवा इस देश के अन्य प्रदेशो की समता में—कुछ अन्तर हो सकता है, विशेषता अपनी-अपनी होती है और परिस्थितियाँ भी अपनी अपनी होती हैं। किसी भी अवस्था में यहाँ के अनुसधान में जो दिलचस्पी पैदा होती है, वह साधारण नहीं है।

शिला लेखों के आधार पर चरित्रों और इतिहास की तारीखों का निश्चित करना, भाटों की कविताओं से जीत, तुरुष्क अथवा तक्षक, बल्ल, अर्मस्य, हूण काठी तथा अन्य विदेशी जातियों के उत्तरी एशिया से चलकर इन प्रदेशों में बसने के क्रम और सिलसिले का खोजना, विभिन्न प्रकार के जीवन की परम्पराओं पर विचार करना, जिनको वे लोग अपने पूर्वजों से लेकर यहाँ पर आये और यहाँ के लोगों को हटाकर आबाद हो गये, उनके रहन सहन और यहाँ के लोगों के साथ उनके घुल मिल जाने से जो परिवर्तन दोनों तरफ के लोगों मे हुए, उनके सम्बन्ध मे अनुमान लगाना एवम् इस प्रकार का भी शोध कार्य उसके साथ साथ करना कि उनकी प्राचीन आदतें, रूढ़ियाँ और परिस्थितियाँ अब कितनी बाकी रह गयी हैं और उनको खोकर उन्होंने बदले में क्या प्राप्त किया है, ये सभी ऐसे विषय हैं, जो किसी भी विचार शील व्यक्ति के लिए कम महत्व के नहीं हैं।

मैं तो सभी प्रकार की बातों को सोच-समझकर यह कहने के लिए तैयार हूँ कि इस सौर प्रायद्वीप में ऐतिहासिक शोध के कार्य के लिए जो सुविधायें प्राप्त हैं, वे सम्पूर्ण भारत के किसी भी अन्य भाग में प्राप्त सुविधाओं से बढ़कर और उपयोगी हैं।"

यही वह भूमि है, जहाँ पर बौद्ध मत का श्रीगणेश हुआ था, यही वह भूमि है, जहाँ पर विभिन्न प्रकार के मतों और सम्प्रदायों ने जन्म लिया था, यही वह भूमि है, जहाँ पर किसी एक विचारधारा को मजबूती के साथ पनपने और स्वस्थ होने के अवसर नहीं प्राप्त हुये, कच्छ की खाड़ी से सिंध के डेल्टा तक फैला हुआ सूर्य-पूजक सोरों का प्रान्त एरिया और बैक्ट्रीयाना के अग्नि पूजकों के लिये सिंध नदी के द्वारा यद्यपि विभाजित था, लेकिन बौद्ध लोगों के लिये उसमें कोई रुकावट नहीं पड़ी। उनकी अनुश्रुतियों से प्रमाणित होता है कि इस्लाम के आने के बहुत पहले ही उनके महा-मिक्षु पश्चिम की यात्रा करने के लिये इस नदी को पार किया करते थे।

जरदुश्त और सासानियों की भूमि एरिया में बौद्ध मत के लिये आय और आयपष शब्दों के अर्थ का अनुमान हम उसी प्रकार लगा सकते हैं जिस प्रकार हम मत के अर्थ और अभिप्राय का। उनके ईश्वरत्व प्राप्त धार्मिक आचार्यों में से इस तेईसवें आचार्य का समय ६५० वर्ष ईसा से पहले का था, उन दिनों में पश्चिमी एशिया से आने वालों के बड़े गिरोह हिन्दुस्तान में चले आ रहे थे।

जैनियों के पहाड़ों पर मिलने वाले शिला-लेखों और सिक्कों के अक्षरों एवम् चिह्नों में हिन्दू अक्षरों तथा चिह्नों की समता नहीं है। वे कदाचित् चाल्डियन (१) अक्षरों और चिह्नों का साफ-सुथरा रूप है। ये या तो सीधे यूफ्राटीस से लिये गये होंगे अथवा एरिया होकर आये होंगे। हमारे इस अनुमान का कुछ लोग विरोध कर सकते हैं। लेकिन मैंने कुछ आधारों पर ही इस प्रकार की कल्पना की है, मैं आशा करता हूँ कि इन पहाड़ों के प्राचीन खण्डहरों और शिला-लेखों के आधार पर अन्वेषण करने से कुछ और भी जानकारी प्राप्त हो सके।

गृह निर्माण कला के सम्बन्ध में बौद्ध और जैन मन्दिरों से अब तक जो सामग्री प्राप्त हो सकी है उसके आधार पर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि इनके मौलिक सिद्धान्तों को यदि वे लोग अपने धर्म के साथ पश्चिमी एशिया से नहीं लाये थे तो भी उन्होंने यहाँ आकर जो ग्रहण किया है, उसका निर्माण एक ऐसे रूप में हो गया है कि उसकी अपनी एक स्वतन्त्र शैली बन गयी है। ऐसा होना अत्यन्त स्वाभाविक है और वे संसार के अन्य स्मारकों में भी कुछ इसी रूप रेखा में मिले हैं।

आठवीं शताब्दी में हिन्दुस्तान के 'टायर' के द्वारा बाहर से मगाये हुये सामान के विवरण को देखकर यही कहा जा सकता है कि पुराने समय से चालू व्यापार के कारण इस प्रकार की परिस्थितियाँ स्वाभाविक और सम्भव होती हैं।

मेरे यह कहने पर कि बरिया ऐतिहासिक घटनाओं, सिक्कों और शिला लेखों से इतनी अधिक सामग्री प्राप्त हो जाती है कि उसके द्वारा अनहिलवाड़ा और उसके

(१) अत्यन्त प्राचीनलिपि, जिसमें लैटिन अक्षरों का प्रादुर्भाव बताया जाता है।

अधीन राज्यों का क्रमबद्ध इतिहास लिखा जा सकता है तो उस दशा में प्रश्न पैदा होता है कि मैंने स्वयं उसके लिए प्रयास क्यों नहीं किया ?

इसका उत्तर सीधा और संक्षेप में यही हो सकता है कि मुझे इन दिनों में अपने स्वास्थ्य पर बल और भरोसा नहीं रहा। उस दशा में मेरे लिए जो सम्भव था, उसी को मैंने पूरा करने का प्रयत्न किया है, अपनी खोजों के आधार पर मैंने जो सामग्री एकत्रित की है, उससे इतिहास लेखकों को सहायता मिल सकेगी, यही समझ सोच कर मैंने सन्तोष अनुभव किया है। इसके साथ-साथ हमने यहाँ पर टूटी हुई कड़ियों को जोड़ने की चेष्टा की है, जो पश्चिमी भारत के बल्हरा राजाओं के इतिहास को ईसवी सन् के साथ जोड़ने का काम करते हैं।

गुजर राष्ट्र (भाषा गुजरात और सौराष्ट्र) (गूजरा और सोरो का प्रदेश) के संयुक्त क्षेत्रों में ही बल्हरा का राज्य है। आवश्यकताओं के अनुसार, इसी क्षेत्र में विभिन्न स्थानों पर उसकी राजधानियों की स्थापना होती रही है। हम अपनी खोजों में तीन बार राजधानी के स्थान परिवर्तन की सामग्री प्राप्त कर सके हैं। मेवाड़ के इतिहास के अनुसार—राजवंश के परिवर्तन में—प्रथम राजवंश का संस्थापक उनका पूर्वज सूर्यवंशी चावड़ा कनकसेन (१) था। उसकी राजधानी उत्तर प्रदेश में लोकोट थी। ढाक अथवा भृगुपट्टन में वे रहा करते थे। वहाँ से उन्होंने वलभी की स्थापना की, जिसके सम्बन्ध में शिला लेख मिल जाने से यह प्रमाणित हो चुका है कि इस नगर की स्थापना के बाद उसका अपना सम्वत् जारी हुआ। वह ३१६ ईसवी से आरम्भ हुआ था।

पाँचवीं शताब्दी में पार्थियनी, जेट, हूणों और काठियों अथवा इन समस्त जातियों के मिले हुए समूह के आक्रमण से जब यह नगर—जहाँ पर जैनियों के चौरासी मन्दिरों के घण्टे बजा करते थे—नष्ट हो गया था, तब इस शाखा के लोग पूर्व की तरफ चले गये और अन्त में चित्तौर में जाकर उस पर अधिकार कर लिया। उन दिनों में इस प्रदेश की राजधानी सोमनाथ पट्टण में—जिसका सारिक भी कहा जाता था—थी। आठवीं शताब्दी के मध्यकालीन दिनों में इसके नष्ट होने पर अनहिलवाड़ा में राजधानी स्थापित की गयी और वहाँ के उल्लेखों के अनुसार, यह नगर चौदहवीं शताब्दी अर्थात् बाल-का राय की पदवी के अन्त होने के समय तक राजधानी बना रहा।

अन्यान्य लेखकों के मतों के अनुसार, इन राजाओं की योग्यता और महानता प्रमाणित होती है जो शिला लेख और सिक्के प्राप्त हुए हैं, वे भी इसका समर्थन करते

(१) इस राजा का आक्रमण दूसरी शताब्दी में हुआ था, अगर इससे पहले होता तो इसको विल्सन के इतिहास राजतरंगिणी का कनिष्क माना जा सकता था।

हैं। इन सिक्कों पर बौद्ध अक्षर पाये जाते हैं। इसलिये कि बौद्ध धर्म के साथ बन्हरों का घनिष्ट और अटूट सम्बन्ध था।

इन राजाओं की व्यावसायिक योग्यता के सम्बन्ध में हम सबसे पहले पैरिपलुस के आभारी हैं, जिसका कर्त्ता इन्हीं के राज्य में बरौच में रहता था। यह नगर तब भी चौरासी बन्दरगाहों में से एक था, जबकि अनहिलवाड़ा में राजधानी कायम हो चुकी थी। टालमी ने भी बालेकूरो के राज्य का वर्णन किया है। यद्यपि हिप्पोकुरा (१) को हम समझ नहीं पाये उसे वह राजधानी का नाम बताता है। यह एक ऐसा नाम है, जिस पर हमको बाइजांटिअम से भी अधिक विस्मय मालूम होता है। उसको उसने वलभी के स्थान पर रखा है। एरिअन से हमको लारिक निवासियों के समुद्री डाके डालने की आदतों का ज्ञान होता है। सचमुच वे इसी कारण सिद्धराज के समय में राज्य से बाहर निकाले गये थे।

एरियन के समय दूसरी शताब्दी से आठवीं शताब्दी में अनहिलवाड़ा स संस्थापक के समय तक और दसवीं शताब्दी में दूसरे राजवंश के अन्तिम राजा के शासनकाल तक राज्य की भी भीतरी हालत कुछ भी रही हो, परन्तु उसके द्वारा बयान की गयी व्यापारिक दशा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया था। इसमें कोई सदेह नहीं।

ग्रीस के प्रतिनिधि द्वारा दूसरी शताब्दी में वर्णित सामग्री आठवीं और बारहवीं शताब्दी में भी यहाँ की प्रसिद्ध मण्डी के चौरासी बाजारों में भरी रहती थी।

कच्छ और खम्भात की खाड़ियों के बन्दरगाहों से बराबर की दूरी पर सरस्वती के किनारे उसकी राजधानी होने के कारण अफ्रीका, मिस्र और अरब के सभी सामान और व्यापारिक माल उसके किनारे पर आकर ठहरते थे। उसका प्रधान बन्दरगाह गजना अथवा खम्भात सौ मील से अधिक दूरी पर नहीं था और माँडवी भी इससे कुछ ही अधिक फासिले पर था। यदि एण्टवर्प (२) में आसपास के सभी देशों से जहाजों के द्वारा आने जाने वाले व्यापारिक माल को ढोने के लिये दस हजार गाड़ियाँ चलती थीं। ऐसी दशा में अठारह राज्यों की राजधानी बने हुए भारत के टायर को सभी प्रकार का सम्मान प्राप्त था। वहाँ पर एशिया के प्रत्येक बन्दरगाह से जहाजों के द्वारा धन आया करता था। उसका सूखे मार्ग से होने वाला व्यापार तातारी पहाड़ों तक फैला हुआ था।

---

(१) कोल्हापुर और नासिक, यही दो ऐसे स्थान हैं, जिनमें से किसी एक का इसके साथ सम्पर्क हो सकता है।

(२) बेल्जियम का बन्दरगाह।

इस प्रकार के सभी तथ्य आठवीं, दसवीं और बारहवीं शताब्दी में अरब के यात्रियों को आश्चर्य चकित कर देते थे। अब हम नीचे की पंक्तियों में वरिगाजा और लाल सागर के बीच में होने वाले व्यापारिक पदार्थों और 'चरित्र' में वर्णित पदार्थों की तुलना करेंगे। हीरे और मोतियों के बाद उसने ओजिनी कदाचित् (उज्जयिनी) से भेजी जाने वाली मैलो घास के रंग की मलमलों का अधिक वर्णन किया है।

यह अनहिलवाडा के सालू (१) हैं। जो लाल कपडे और रेशम पर तैयार होते हैं। इनका बाजार ही अलग था। अफ्रीका से आने वाला हाथी दाँत पट्टरण मे आयात का एक प्रमुख माल था। इससे मालूम होता है कि स्त्रियों मे हाथी दाँत की चूड़ियों (२) के पहनने का शौक उस समय भी उतना ही व्यापक रूप मे फैला हुआ था, जितना कि आजकल है।

शराब भी बाहर से आने वाली चीजों मे से थी। इस सभी बातों से जाहिर होता है कि उन दिनों का राजपूत भी शराब के प्याले का उतना ही शौकीन था, जितना कि वह आज है। एरिअन के विद्वान अनुवादक ने प्रश्न किया है कि यह ताड की शराब अथवा ताडी होती थी ?

हमारा कहना है—दोनो नहीं। इसलिये कि ताल का सुगंधित रस तो उनके घरों में ही बहुत था। वे लोग शुद्ध अंगूर को शराब मंगवाते थे। उस शराब के गीत सुलेमान और हाफिज ने बड़े शौक के साथ गाये हैं।

सत धातु उन दिनों अनहिलवाडा में पाया जाता था लेकिन विदेशी भूरे रंग के टीन की अपेक्षा देशी टीन तो उसके पास ही प्राप्त किया जा सकता था। क्योंकि मेवाड़ मे जवन की खानों से पता चलता है कि उनमे खुदाई का काम बहुत पहले से होता आ रहा था और यहाँ की पहाड़ियों में शीशा, ताँबा, टीन और सुरमें बहुतायत से मिलते थे।

एरिअन ने कीमती सुगन्धित अनेक चीजों और अगरागो का वर्णन किया है। 'चरित्र में लिखा है कि अनहिलवाडा मे ऐसे पदार्थों के बिकने का एक अलग बाजार लगता था। जटामासी अथवा बालछल, पीपल, लोबान और गोमेदक (३) के विषय

(१) एक प्रकार की ओढ़नी।

(२) इन चूड़ियों से प्राय स्त्रियाँ हाथ के गट्टे से कोहनी तक का हिस्सा भर लेती हैं। मैंने किसी दूसरे स्थान पर पत्थर की दो मूर्तियों का उल्लेख किया है, जो *सिनाई पर्वत के प्राचीन गिरजाघर के द्वार पर बनी हुई हैं।* यह स्थान टैन और गैरोनी के जक्शन के पास है। वे मूर्तियाँ पूरे तौर पर एशियाई पहनावे की मालूम होती हैं और वे कदाचित् पश्चिमी गॉथ लोगों के समय की हैं।

(३) गोमेदक पत्थर का प्रचलन पूर्वी देशों मे अधिक है और इसका प्रयोग अधिकतर ताबीजों में किया जाता है।

थे। मेवाड़ के पुराने राजाओं का पद 'रावल' था। उसके बाद जब तेरहवीं शताब्दी में मरुदेश की राजधानी मण्डोर पर विजय प्राप्त की तो उसके बाद उन्होंने राणा का पद धारण किया।

दूसरी शताब्दी में एरियन के वर्णन को लेकर, सालसागर के बन्दरगाहों और बल्हरों की राजधानी की व्यापारिक तुलना करना यहाँ पर आवश्यक नहीं है। और इससे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है कि राजधानी अनहिलवाड़ा में थी अथवा गुरोई प्रायद्वीप के सपुने किनारे पर लार प्रदेश के देवाट्टन में थी। इसलिये कि राजवंश एक ही था। गुजरात में बल्हरा नामक नहरवाला राजधानी में राज्य करने वाले शासक के विभिन्न वैभवों का विस्तार में अरब यात्रियों ने वर्णन किया है। उसके ठीक होने में कोई सन्देह नहीं है। लेकिन हम स्पष्ट करना चाहते हैं कि इस व्यवसाय के केन्द्र की स्थापना, इस राज्य के संस्थापक ने नहीं की थी। बल्कि उसकी परिस्थितियाँ इस बात का प्रमाण देती हैं कि यह व्यापार बहुत प्राचीनकाल से चला आ रहा था और जब उसके प्रतिकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं, उस समय भी उसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं आया था। उसके आस पास के बाजार तरक्की पर पहुँच गये थे, लेकिन उनसे उसको कोई खतरा नहीं पहुँचा था।

इसके सम्बन्ध में मसूदी का एक प्रसिद्ध लेख यहाँ पर मैं देना चाहता हूँ। वह दसवीं शताब्दी में अनहिलवाड़ा आया था। यह उस समय की बात है, जब यह राज्य चावड़ा लोगों से चालुक्यों के अधिकार में आ गया था। मसूदी ने भी अपने पूर्ववर्ती लेखकों के द्वारा वर्णित बालक रायों के गौरव और अनहिलवाड़ा की तरक्की का समर्थन किया है। उसने इस उत्थान का कारण बताया है हिन्दुओं का सद्भाव और मुसलमानों का मेल मिलाप। उसने वहाँ का वर्णन करते हुये लिखा है

"मुसलमानों का सम्मान की दृष्टि से लोग देखते थे। उनकी मसजिदें शहर में बनी हुई थीं, जिनमें दिन में पाँच बार नमाज पढ़ी जाती थी और वे लोग अपनी प्रार्थनाओं में बल्हरों की खुशहाली के लिये ईश्वर की दुआ माँगते थे।"

इस उल्लेख में मूलराज के अन्तिम दिनों के शासन के प्रति इशारा किया गया है, जो दसवीं शताब्दी के मध्य से अन्त के छत्तीस वर्षों का समय था। इसके कुछ ही वर्षों के बाद महमूद ने अपनी शक्तिशाली सेना के साथ आकर इस प्रदेश को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था। उसके आक्रमण से वहाँ का भयानक रूप में विनाश हुआ था वर्णन करना और समझा सकना कठिन है। वहाँ के नगरों को लूटकर और उजाड़ कर वहाँ का सम्पूर्ण धन और वैभव महमूद अपने साथ गजनी ले गया था। (१) उससे गजनी

(१) यदु अथवा यादव राजपूतों का कहना है कि इस नगर को उनके पूर्वज राजा गज ने बसाया था।

का गौरव बढ़ गया था। लेकिन इसके बाद फिर अनहिलवाड़ा फोनिक्स (पौराणिक) पक्षी की (१) तरह अपने बचे हुये अवशेषों में फिर वह एक अच्छे गौरव को प्राप्त हुआ।

बारहवीं शताब्दी में जब सिद्धराज के शासन काल के अन्त और उसके उत्तराधिकारी कुमारपाल के राज्यकाल के आरम्भ में अलइदरिसी यहाँ पर आया तो उसको वैभव और अपरिमित सम्पत्ति का भली प्रकार अनुभव हुआ। इसके सम्बन्ध में उसके पूर्ववर्ती लोगों ने आठवीं, नवीं और दसवीं शताब्दी में इसका अनुभव किया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वहाँ की इस समृद्धि का मूल साधन केवल व्यापार और व्यवसाय था, उसके आधार पर विभिन्न प्रकार के थे और वे इतने मजबूत थे कि महमूद जैसे आक्रमणकारी लोगों के द्वारा होने वाला विध्वंस और विनाश में भी वह इस योग्य बाकी रहा कि वह फिर से समुन्नत हो सका। इसके सम्बन्ध में अलइदरिसी की कुछ महत्वपूर्ण पंक्तियाँ आवश्यक समझकर नीचे दी जाती हैं

"राज्य का अधिकार प्राप्त करने की प्रथा परम्परागत नियमों के अनुसार प्रचलित है। उस राजा के वैभव को देखकर सभी लोग उसको बल्हरा (वलभी का राजा) कहने लगे हैं। उसका यह नाम उसके राज्य-वैभव के अर्थ का समर्थन है। वह अनेक राजाओं का राजा है। नहरीरा नगर में व्यापार करने के लिये अधिक संख्या में मुसलमान आते हैं।

उसके बाद उसने लिखा है कि पूर्वकालीन लेखों के अनुसार बुद्ध की ही पूजा उस समय की प्रधान पूजा थी। जनसाधारण पर बौद्ध धर्म का प्रभाव था और उस धर्म ने अहिंसा को प्रधानता दी थी। इस धर्म के अनुयायी और समर्थक होने के बाद सभी लोग अत्यन्त सहनशील हो गये थे।

इस सहनशीलता का इतना ही प्रभाव नहीं पड़ा था कि व्यापारी मुसलमानों ने वहाँ की राजधानी में प्रवेश किया था। बल्कि उसके परिणाम स्वरूप, प्रायद्वीप के मध्य में जूनागढ़ का किला एक मुसलमान जागीरदार के अधिकार में चला गया था और जहाजी बेड़े की कमान एक हरमज निवासी के अधिकार में थी। इसके बाद उस सहनशीलता के और भी दुष्परिणाम सामने आये, जो भविष्य के लिये अत्यन्त खतरनाक साबित हुए, उनके वर्णन किये जा चुके हैं।

---

(१) लोगों का कहना है कि यह पक्षी लगभग तेरह हजार वर्ष तक जीवित रहता है और फिर अपने घोंसले में ही अपने आप मर जाता है। इसके बाद उसी घोंसले में एक नया उसी जाति का पक्षी पैदा हो जाता है।

ऊपर जो विवरण दिया गया है उससे एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष हम यहाँ पर निकालने के लिये विवश हो गये हैं। वह निष्कर्ष यह है कि पश्चिमी भारत के राजपूत राजाओं और अरब, मिस्र एवम् लाल सागर के किनारे के बीच ईसा से बहुत पहले विस्तृत रूप में व्यापार के सम्बन्ध कायम हो चुके थे और ईसा की दूसरी शताब्दी में मलहरा के चौरासी बन्दरगाहों में बसने वाले चोर और रोमन आकृतियों की धारणाओं के अनुसार हम बिना किसी संकोच के इस पर विश्वास कर सकते हैं कि रोमन लोग जितना धन प्रतिवर्ष अपनी पूँजी के रूप में भारत को देते थे और टॉलमियों (१) के राज्य काल में एक सौ पच्चीस भारतीय जहाजों के बेड़े एक बार में (म्यूस) (हरमस) और (बेरीनीस) के बन्दरगाहों पर पड़े रहते थे। ये वही बन्दरगाह थे, जहाँ से मिस्र, सीरिया और रोम के प्रधान नगरों में भी भारत की व्यापारिक चीजें पहुँचती थीं।

---

(१) मिस्र का राजवंश ईसवी पू० ३२५ से ४० ईसवी तक।

ग्यारहवाँ प्रकरण

अनहिलवाड़ा के अन्तिम दिन

अनहिलवाड़ा की इमारतें और उनके टूटे हुए भाग—गृह निर्माण के नमूने—अच्छे मेहराब—अनहिलवाड़ा की श्री और सम्पत्ति का पलायन—अहमदाबाद और पाटन का निर्माण—नवीन नगर के निर्माण में प्राचीन कारीगरों के हृदय—शिला लेखों और हिन्दू ग्रंथों की मुसलमानों से रक्षा—जैनियों की सम्पत्ति और उनके ग्रंथ।

धार्मिक प्रथा के विवरण पर विश्वास न करने वाले मनुष्य जब बल्हरों की राजधानी में पहुँचेंगे तो उनको अतीत के इस विशाल नगर में, जहाँ पर प्रसिद्ध चौरासी बाजार थे, यह देखने को मिलेगा कि वहाँ पर कितनी आसानी के साथ इतनी बड़ी राजधानियाँ कायम की गयी थीं और फिर उनको नष्ट करके छोड़ दिया गया था।

दर्शक इस राजधानी में पहुँचकर वहाँ के राजाओं के विशाल प्रासादों और उनकी रक्षा के लिए घेरने वाले परकोटे की ऊँची ऊँची दीवारों के गिरे हुए भागों को देखेंगे। दूसरी इमारतों की दीवारों की बेबिलोनिया (१) की दीवारों की तरह यह हालत है कि एक पत्थर पर दूसरा पत्थर भी नहीं रह गया।

पूर्व के देशों में जब विध्वंस और विनाश आरम्भ होता है तो वहाँ पर धार्मिक स्थानों, मन्दिरों, शिवालयों और जल के स्थानों को छोड़कर कुछ नहीं रह जाता।

वहाँ पहुँचने पर नगर के प्रधान द्वार के करीब नीचे बने हुए काली के मन्दिर में देखने पर जो चीज सबसे पहले दिखायी देती है, वह कालीकोट अथवा अन्तरंग नगर का टूटा हुआ खण्डहर है। उसमें दो मजबूत बुर्जें अभी तक बनी हुई हैं। वे काली की छतरियाँ कही जाती हैं। इन छतरियों पर से उस परकोटे पर नजर डाली जा सकती है जो एक चतुर्भुज के रूप में लगभग पाँच मील की जमीन में फैला हुआ है। उसके बाहर चारों तरफ और विशेषकर पूर्व तथा दक्षिण में छोटे छोटे नगर बसे हुए थे। उनकी रक्षा के लिये बाहरी परकोटा बना हुआ था।

अनहिलवाड़ा पर राज्य करने वाले तीनों राजवंशों के अब केवल तीन स्मारक ही बाकी रह गये हैं। लेकिन 'चरित्र' और अनुश्रुतियों के आधार पर इस राज्य के

(१) एशिया के प्रसिद्ध बेबिलोनिया साम्राज्य का युफ्रेटीस नदी पर बसा हुआ नगर। सिकन्दर की मृत्यु इसी नगर में हुई थी। उसके बाद यह नगर नष्ट हो गया। इसके खण्डहरों की खुदाई बहुत दिनों तक चलती रही।

अतीत कालीन गौरव के काफी प्रमाण मिलते हैं। उनमें एक तो काली की छतरियाँ हैं, दूसरे सिद्धराज के प्राचीन प्रासादों के अवशेष भाग हैं, तीसरे चौरासी बाजारों में से एक घी की प्रसिद्ध मण्डी के खण्डहर हैं, जो छतरियों के लगभग चार मील के फासिले पर हैं। वे अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण, अनहिलवाड़ा के खण्डहर हैं। जो काली कोट द्वार से चार मील अथवा तीन मील के फासिले पर हैं।

इस खोज का कार्य समाप्त कर लेने के बाद उस चिंता का अन्त हो जाता है, जो कई वर्षों से बनी हुई थी। यहाँ पर बनराज के पहले नगर की घनी आबादी थी, जैसा कि यहाँ के लोग अब भी मानते हैं और उस पर विश्वास करते हैं। लेकिन वह नगर आगे चलकर अतीत काल की अन्य चीजों के साथ माना जायगा।

कालीकोट को विध्वंस करने में तुर्कों ने जो कुछ भी किया, उससे भी अधिक उसके विनाश का उत्तरदायित्व दामाजी गायकवाड़ पर है। लेकिन इसमें सन्देह भी हो सकता है। क्योंकि यह सभी जानते हैं कि खून के प्यासे अलाउद्दीन ने दीवारों को तोड़कर ही संतोष नहीं किया था। बल्कि मन्दिरों का अधिकांश कीमती भाग प्रयोग में लाकर महल खड़े किये गये और अपनी जीत के स्मारक के रूप में उन स्थानों पर हल चलवाये गये, जहाँ पर कीमती मन्दिर खड़े थे।

अब वहाँ पर सब वीरान हो चुका है और रेत में दिखायी पड़ने वाला पीलू ही बस्ती की स्मृतियों के रूप में रह गया है। कालीकोट आस-पास के स्थानों से बहुत ऊँचा बनाया गया था। आजकल जिसे सिद्धराज के महल का खण्डहर कहा जाता है वह एक तालाब के बीच में खड़ा हुआ है और उस तालाब की गहराई अब बहुत मामूली रह गयी है। यहाँ पर एक विस्तृत जलाशय का टूटा फूटा भाग भी देखने को मिलता है। जिसकी सामग्री से नवीन पट्टण में एक नयी बावड़ी बनवायी गयी है। उसके एक साथ दूसरी छोटी बावड़ी भी है, वह स्याही का कुण्ड कहलाती है। लोगों का कहना है कि हेमाचार्य के शिष्य अपने लेखों को लिखते समय इसमें कमल को डुबोया करते थे।

काली की छतरियों से लगभग डेढ़ सौ गज के फासिले पर एक विशाल दरवाजे की मेहराब का ढाँचा मौजूद है। उसको देख कर इस बात का अनुमान किया जा सकता है कि अनहिलवाड़ा का नगर कैसा रहा होगा और उस समय की गृह निर्माण कला कितनी तरक्की पर पहुँच चुकी थी। मैंने सारसेनिक कही जाने वाली मेहराबों के जितने नमूने देखे हैं, उनमें इनको मैं सबसे अच्छा समझता हूँ। ऐसी दशा में हम अगर यह प्रमाणित कर सकें कि इनको बनाने वाले हिन्दू थे तो हमको अल्‌हम्ब्रा की मेहराबों का पता चल जायगा जिनकी यारप में प्रसिद्धता है।

वास्तव में यह दरवाजा यदि वनराज के द्वारा ७४६ ईसवी में बनवाये गये परकोटे का ही एक हिस्सा है तो यह मेवाड़ा राज्य में हारूँ के द्वारा बनवाये हुए प्रसिद्ध

अलहम्ब्रा प्रासाद के निर्माण-काल के समीप का बना हुआ होना चाहिए। मैं पहले ही इस बात को स्वीकार कर चुका हूँ कि यद्यपि चावड़ा राजा ने इन्ही दिनो मे अपने वंश के राज्य की स्थापना की थी, लेकिन यह बिल्कुल असम्भव है कि इस नगर का विस्तार और गौरव उसी के समय मे हो गया था।

हम इस बात का अनुमान लगा सकते हैं कि जब बसराज को उसके कुटुम्ब वालो के लूट की आदतो के कारण देवबन्दर से निकाल दिया गया था तो वह वहाँ से चलकर किसी दूसरी राजधानी मे आकर बसा अथवा किसी पुराने राजवंश का वह उत्तराधिकारी हो गया।

हम यह मानते हैं कि बगदाद के खलीफों को—जिन्होंने स्थल की एक लम्बी विजय प्राप्त करने के साथ साथ समुद्री साम्राज्य काफी दूर तक अपने अधिकार में कर लिया था—भारत के साथ व्यापारिक सम्बन्धो के कारण बहुत बड़ी समृद्धि प्राप्त हुई थी और वे जिस प्रदेश को जीतकर अधिकार मे कर लेते थे, वहाँ की कला, कारीगरी और उसके विज्ञान पर भी हावी हो जाते थे।

मैंने किसी दूसरे स्थान पर यह लिखा है कि आठवीं शताब्दी में ही इस्लाम का विस्तार सिंध और एब्रो (१) तक हो चुका था। लेकिन अरब के लोगो ने इस प्रकार का मेहराब काटना और बनाना सीखा कहाँ से, यह एक प्रश्न पैदा होता है। स्पेन मे विसिगोथ (२) से नही और न प्राचीन ग्रीक और पारसी इमारतो से, न रेगिस्तान में टेडमोर (३) से, न पर्सीपोलिस (४) से, न हरू से, न हालिब से। तो क्या उन्होंने स्वयं इसका आविष्कार किया था और समस्त योरप मे उसका प्रचार कर दिया अथवा उन्होंने हिन्दू शिल्पियों से इसका ज्ञान प्राप्त किया ?

एक बात निश्चित है, जिसका मुझे पूरा विश्वास है और वह यह है कि इस मेहराब को बनाने वाला कारीगर हिंदू था और उसकी कला मे हिन्दुओं की बहुत सी बातो का प्रदर्शन है। यदि अरब के लोगों का इसके साथ कोई सम्बन्ध है भी तो वह नगण्य है लेकिन एक सम्भावना पर इस तरह का विश्वास कर लेना उचित होगा ? हम जानते हैं कि मुसलमानो ने पाटण पर कभी राज्य नही किया। जब टॉक जाति

---

(१) स्पेन की ३४० मील लम्बी नदी।

(२) जमनट्यू टॉनिक जाति जो अब नही पायी जाती।

(३) इसका ग्रीक नाम पामीरा है। यह नगर सीरिया के रेगिस्तान के बीच म बसा हुआ है। वहाँ पर एक सूर्य मंदिर भी है।

(४) पारसी साम्राज्य की पुरानी राजधानी, जो आधुनिक सीराज के करीब थी। इस नगर को थाया नाम की वेश्या के कहने से सिकन्दर ने नष्ट करवा दिया था।

ने गुजरात पर अधिकार किया था तो उसने वहाँ की राजधानी को तुरंत ही वहाँ से हटा दिया था।

इसके सिवा, यह भी सम्भव नहीं हो सकता कि जब अलाउद्दीन ने एक बार इसके मन्दिरों और उनकी इमारतों को गिरवा दिया था तो फिर किसी दूसरे बादशाह ने हिन्दुओं के रहने के लिये इसका निर्माण फिर से कराया हो। यहाँ का जो निर्माण मौजूद है, वह अलाउद्दीन से पहले गोरी वंश के समय का है और इस प्रकार वह बहुत पुराना है। उसके बाद उसमें कुछ नये निर्माण कराये गये और धीरे धीरे बेल-बूटे और फूल-पत्तियों की सजावट की गयी। इस तरह मुसलमानों के समय तक यहाँ के निर्माण में बहुत सी नयी नयी चीजें आ गयी हों, यह असम्भव नहीं है। लेकिन इसमें कितना सही है, यह नहीं कहा जा सकता।

अरब वालों ने अथवा उनके अनुगामियों ने सभी धार्मिक इमारतों को गिरवाकर नष्ट कर दिया अथवा इसलाम के इबादतखाने के रूप में बदल दिया। ऐसी सूरत में यह समझने का मौका ही नहीं रह गया कि इन वर्तमान इमारतों में कितना काम हिन्दुओं का है। मेरा तो ख्याल है कि यदि कोई अन्वेषक पुरानी दिल्ली जावे और कुछ महीने वहाँ पर रहकर वह विभिन्न राजवंशों के समय में बनी हुई टूटी फूटी इमारतों के खण्डहरों को समझने की कोशिश करे तो उन इमारतों के गुम्बजों को देखकर वह इनकी कला को इतिहास के पन्नों की अपेक्षा अधिक समझ सकेगा। पुस्तकों के पृष्ठों में ऐसे स्थानों के जो विवरण दिये जाते हैं, वे पाठकों के मनोभावों पर उतना प्रभाव नहीं डाल सकते, जितना कि उन स्थानों के प्रत्यक्ष दृश्य।

मेरा ख्याल है कि इनके मेहराब अथवा तोरण आज भी जिस आकार प्रकार में मिलते हैं वे हिन्दुओं के द्वारा बनाये गये हैं। उनकी बनावट हिन्दुओं की मनोवृत्ति का परिचय देती है। इस प्रकार के जितने भी स्थान और उनके निर्माण देखे हैं, उनके आधार पर मैं इसी नतीजे पर पहुँचता हूँ। उनके सभी मेहराबों और तोरणों का निर्माण मैंने कुछ इसी प्रकार का पाया है। उनकी बनावट सारसेनिक निर्माण कला के साथ बहुत कुछ मिलती-जुलती है। ज्योतिष के सम्बन्ध में उनकी ऊँची उड़ान, बीजगणित और गम्भीर आध्यात्मिक उलझनों को सुलझाने में हिन्दुओं के अनुसंधान एक से पाये जाते हैं, उनमें परस्पर किसी प्रकार का विवाद नहीं रहता।

अनहिलवाड़ा के तोरणों की निर्माण कला को मालवा और गायकवाड़ के साथ मिलान करने के पहले हमारे सामने यह प्रश्न पैदा होता है कि जिस प्रकार संहार और विनाश किया गया था, उसमें यह बच कैसे गया। हिन्दुओं के मयूर और व्यूह रचना के समान परकोटेदार उनकी इमारतें उस समय के विनाश और विध्वंस में सुरक्षित बच गयीं इसका कोई दूसरा कारण समझ में नहीं आता। सिवा इसके कि इनके सौन्दर्य और आकर्षण के कारण विध्वंस करने वालों के हाथ नहीं उठ सके।

मैंने पहले ही लिखा है कि इनमें से आज जो कुछ देखने को मिलता है; उसमें ईंटों के सिवा और कुछ नहीं है। इन ईंटों के साथ जिस चूने का प्रयोग किया गया था, वह भी गायब हो गया है। इन ईंटों को उनके भी स्थानों पर कायम रहने में उनके निकटवर्ती चौकोर खम्भों से बड़ी सहायता मिली है। ऐसा मालूम होता है कि इन ईंटों को इस रूप में बनाये रखने की एक बड़ी जुम्मेदारी इन स्तम्भों को सौंपी गयी है और ये ईमानदार स्तम्भ उसका निभा रहे हैं।

इन स्तम्भों की बनावट में सादगी और उनकी निर्माण कला बहुत कुछ तोरण की सी है। उनका ऊपरी भाग हिन्दुओं की निर्माण-कला का स्पष्ट परिचय देता है। उनके शिरोभाग जंजीरों के गजरों द्वारा सुन्दर मालूम होते हैं। उनके बीच के भागों में वजनी घण्ट मोटी जंजीर से लटके हुये हैं। कुछ उसी प्रकार जैसे बाड़ोली के स्तम्भों में हैं। ये घंटे जैनियों के स्तम्भों के सरीखों को याद दिलाते हैं। तोरण के पास दोनों ओर कमल हैं।

यहाँ पर यह भी स्पष्ट करना आवश्यक मालूम होता है कि अहमदाबाद की बहुत-सी मसजिदों में भी इसी प्रकार की बनावट है। इससे साफ जाहिर होता है कि चन्द्रावली और अनहिलवाड़ा की इमारतों के कीमती और कलापूर्ण भाग अहमदाबाद पहुँचे थे और उनके द्वारा वहाँ की मसजिदों को सजाया गया।

कोशिश करने पर भी मैं इस बात को नहीं जान सका कि यहाँ के लोग तोरण से दक्षिण की तरफ तीन मील के खण्डहरों को जो नाम अन्हरवारा क्या मानते हैं। यह जरूर है कि अरब के जहाजों के नाम पर बने हुये अथवा नगर की सामग्री के चौक की खोज अधिक उपयोगी होती। लेकिन घी की मण्डी को देखकर मुझे इस बात का सन्तोष हो गया और चरित्र के इस उल्लेख का समर्थन हो गया कि यहाँ पर हर चीज के व्यापार के लिए मण्डियाँ अलग-अलग हैं।

मेरी समझ में एक बात और नहीं आयी। यह नगर जब बसाया गया था, उस समय सरस्वती नदी के किनारे नहीं था। लेकिन अब वह कुछ ही फासिले पर है। लेकिन मैं इतना जरूर कहूँगा कि उत्तर-पूर्व की तरफ इस नगर का विस्तार सरस्वती नदी तक था ही और वर्तमान पाटण का उससे भी अधिक भाग इसके अन्तर्गत था, जितना कि गायकवाड़ के लोग आज मन्जूर करते हैं।

इस धारणा के प्रति मेरा झुकाव कुछ तो नवीन नगर के परकोटे के भीतर के मन्दिरों को देखकर होता है और कुछ वहाँ के एक सरोवर के कारण, जो आज भी अच्छी दशा में है और जिसकी खोदाई का काम नगर के तीन मील के बाद असम्भव हो जाता है।

यहाँ पर अहमदाबाद की तरफ एक तालाब और है, वह इस तालाब से भी अच्छा है और अपनी विशालता तथा सुन्दरता के कारण मानसरोवर कहलाता है।

यह मानसरोवर अब सूखा पड़ा रहता है। इसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इसको एक ईंट बनाने वाले ने बनवाया था, इसके बनकर तैयार हो जाने पर उस ईंट बनाने वाले में और उसकी स्त्री में झगड़ा हो गया। उसकी स्त्री ने शाप दे दिया, नतीजा यह हुआ कि इस तालाब में जितना पानी आया था, वह धीरे धीरे निकल गया, जिन पाठकों ने मेरे लिखे हुए राजस्थान के इतिहास को पढ़ा है उनको महाराष्ट्र के एक इसी तरह के तालाब का स्मरण आवेगा, उसका निर्माण भी कुछ इसी प्रकार हुआ था। उसे भी किसी ओड ने ही बनवाया था।

ओड अथवा ओट ईंट बनाने वालों की जाति होती है, ठीक उसी प्रकार, जैसे कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाने वाले को कहते हैं। लेकिन प्राचीन काल में इस नाम की एक शक्तिशाली जाति थी। उड़ीसा का राजा इसी जाति का था। वहाँ के शिला लेख भी कुछ उसी तरह के पाये जाते हैं, जैसे स्पष्ट अक्षरों में यहाँ के।

कालिका अथवा काली की छतरी के चबूतरे से ये स्थान बहुत साफ-साफ दिखायी देते हैं। यहाँ पर एक विस्तृत मैदान है, जिसमें वृक्ष हैं लेकिन वन नहीं है। उस चबूतरे से मैदान की तरफ देखने पर उसके महराव हुये वृक्ष दिखायी देते हैं। उसके दक्षिण की तरफ जो जंगल है, वह घना है। उसका दृश्य कुछ अपने ढंग का अनोखा है। उसके आगे आबू की छोटी-छोटी श्रेणियाँ हैं। उनकी काली चोटियाँ दूर से देखने में बड़ी भली मालूम होती हैं। कदाचित् अनहिलवाड़ा के निर्माण में इन्हीं पहाड़ियों की चीजें ली गयी थीं।

वर्तमान पट्टण का आधा परकोटा प्राचीन नगर से मिले हुए पदार्थों के द्वारा बनाया गया है और शेष आधा भाग, खण्डहरों के महलों, उनकी विभिन्न प्रकार की इमारतों, मंदिरों और जलाशयों से मिली हुई सामग्री के द्वारा बनाया गया है। यहाँ की इन समस्त चीजों का निरीक्षण करने के बाद मेरी धारणा बन गयी है कि यदि यहाँ के रहन सहन का अध्ययन करने के लिए मिलने वाले चित्रित और अंकित पत्थरों की खोज की जाय तो समय और परिश्रम बेकार नहीं जायगा। (१)

पत्थर के इन टुकड़ों से बनी हुई नींव पर खड़ी की गयी ईंटों की दीवार अन्दर की टोटी के समान अलग दिखाई देती है और वह इस बात का प्रमाण भी देती है कि गायकवाड़ में देव-पर्वत पर अग्निकुण्ड से उत्पन्न होने वाली जातियों में पवित्र

(१) मध्य भारत में एक हूण राजा के राज चिह्नों को खोजने के सम्बन्ध में मैं लिख चुका हूँ, यह अनुसंधान, मेंसरोड की दीवारों के परिश्रमपूर्ण अध्ययन के अनुसार किया गया है, जो हिन्दुओं की दूसरी इमारतों और नगरों की तरह मिटाये जाने के पश्चात् फिर से उनका निर्माण किया गया है और अधिक व्यय करके जीर्णोद्धार किया गया है।

देवरक्त का कोई अंश नहीं था। मैं यह लिखना भूल गया था कि कालिका छतरियाँ ईंटों की बनी हुई हैं, लेकिन मैंने यह नहीं देखा कि उनकी नींव पत्थर के टुकड़ों से तैयार की गयी है। लेकिन सम्भव यही मालूम होता है कि उनकी नींवों में पत्थर के टुकड़े भरे गये हैं। इसका कारण यह है कि यह सम्पूर्ण क्षेत्र बालुकामय है और बालू का अंश अधिक होने के कारण नींव और दीवार—दोनों ही आसानी से कमजोर पड़ जाती हैं। ऐसी दशा में यह आवश्यक हो गया है कि नींवें पत्थरों से ही भरकर मजबूत की जायें। अतएव यह निश्चित है कि उनकी नींवें पत्थरों से भरी गयी होंगी।

जिन नगरों की इमारतें ईंटों से बनी होती हैं, उनको देख-सुनकर उनके निर्माण का समय मालूम किया जा सकता है। इसके प्रमाण में आगरा शहर की इमारतों का उदाहरण दिया जा सकता है। ईंटों की बनी हुई दीवार दो सौ वर्ष के भीतर ही खुल जाती है और उसके बाद उसका बुढ़ापा आरम्भ हो जाता है। होता यह है कि ऐसी इमारतों की दीवारें टूटने लगती हैं और कुछ दिनों तक जर्जरित अवस्था में रहकर गिर जाती हैं। इसी तरह का आधार लेकर हिंदू लोग कहा करते हैं कि प्रकृति और कला—दोनों एक दूसरे की विरोधिनी हैं।

काली देव अथवा नाश करने वाली देवी के मन्दिर में उल्लेखनीय कोई बात नहीं है। उसकी शक्ति का परिचय देने के लिए कितनी ही प्राचीन प्रस्तर मूर्तियों के टुकड़े काली देवी के मंदिर के आस पास पड़े हुए देखने को मिलते हैं। इसके पास ही वह तालाब है, जो हेमाचार्य और उसके शिष्यों के कलम डुबोने के लिये ऊपर लिखा गया है।

यह बात नहीं है कि नवीन नगर में आकर्षण की कोई चीज नहीं है। यहाँ पर दो चीजें ऐसी हैं, जिनका विशेष रूप से सम्मान है। एक है, अनहिलवाडा के संस्थापक वसराज की मूर्ति और दूसरी है जैनियों का पोथी भण्डार। सफेद पत्थर से बनी हुई वह मूर्ति पार्श्वनाथ के मंदिर में रखी हुई है और लगभग साढ़े तीन फीट ऊँची है। एक दूसरी छोटी मूर्ति इसके दाहिने हाथ की तरफ रखी हुई है और वह वसराज के प्रधान मंत्री की कही जाती है। लेकिन यह अधिक सम्भव है कि वह उसके संरक्षक आचार्य की मूर्ति हो।

इन दोनों मूर्तियों के साथ एक एक शिला लेख लगा हुआ है, उनके उन दूसरी मूर्तियों के स्थान का पता चलता है जिनको मूर्तियों के तोड़ने वाले अलाउद्दीन ने नष्ट कर दिया था। उसका नाम भी इन पत्थरों पर खोदा हुआ है। 'महाराज श्री खूनी आलम मोहम्मद बादशाह—उसका पुत्र (अथवा उत्तराधिकारी) श्री आलम फीरोज जिनकी कृपा से कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा, बृहस्पतिवार इत्यादि।

'सा॰रा गच्छ के शील गुणसूरि पचासर के बन में मुहूर्त देखने गये। एक महुआ वृक्ष के नीचे लटकते हुए झूले में उन्होंने पेड़ की छाया में एक नवजात शिशु को

देगा, यह छाया स्थिर थी, इससे शील गुणसूरि को उस शिशु के महान भविष्य का भान हुआ। उसकी माता सहित वे उसको अपने साथ ले गये और अपने संरक्षण में उसका पालन-पोषण करने की अभिलाषा प्रकट की, उन्होंने ऐसा ही किया था। वन में जन्म होने के कारण उस बालक का नाम वनराज रखा गया और सम्वत् ८०२ में इसी ने अनहिलवाड़ा के परकोटे की दीवार चिनवायी तथा देवीचन्द्र सूरि आचार्य ने अल्लेश्वर (१) महादेव की प्रतिष्ठा सम्पन्न करायी।'

दूसरा लेख इस प्रकार है—'सम्वत् १३५२ (सन् १२९६ ईसवी) शुक्रवार, ६ वैशाख मास। वह, जिसका निवास पूर्व में है, जिसकी जाति मोर है, केसण का पुत्र नागेन्द्र जिससे पुत्र असोरा ने संसार में से धन का सार प्राप्त किया। जिसने श्रीमान महाराज वनराज के मन्दिर में कीर्तिलता को विकसित करने के निमित्त उसके पुत्र अरिसिंह ने आशा देवी की मूर्ति प्रतिष्ठित की, प्रतिष्ठा की विधि शीलगुण सूरि आचार्य के पुत्र देवी चन्द्र सूरि ने सम्पन्न करायी।

ये दोनों शिला लेख हो सकता है कि अनहिलवाड़ा के कायम होने के समय के हों अथवा उसके बाद लिखे गये हों। इनमें से एक पर अलाउद्दीन की मूर्ति और दूसरे में सम्वत् १३५२ सन् १२९६ का उल्लेख मिलता है जब उसने इस नगर का विध्वंस किया था, इस बात की सूचना देते हैं कि वे उसकी प्रशंसा में अथवा विध्वंसकारी के रूप में लिखे गये हैं।

पहले शिला लेख में नगर के संस्थापक के जन्म की कथा का लेख है, उसका समर्थन 'चरित्र' के उल्लेख से होता है। दूसरे से एक महत्वपूर्ण तथ्य की जानकारी होती है, वह यह कि उसमें देवत्व के गुण विद्यमान थे। ऐसी दशा में यही सम्भव मालूम होता है कि यह मूर्ति उसके पूर्वजों के नाम पर बने हुए मन्दिर से प्राप्त की गयी होगी, जो उस भीषण संहार के समय नष्ट कर दिया गया था, अथवा यह भी सम्भव है कि उन्होंने उसके मन्दिर को ही पार्श्वनाथ का मन्दिर बना दिया हो और इसी में इस पूर्व देशवासी भक्त ने अपनी संरक्षिका आशादेवी को एक आले में स्थापित कर दिया हो।

आसानी के साथ इस बात का निर्णय नहीं किया जा सकता कि मोर जाति का यह वंश किस वर्ण में था—दूसरे में अथवा तीसरे में, और न यही कहा जा सकता

(१) एक नया नाम, सम्भवतः 'आलय' अर्थात् निवास स्थान।

यह भी सम्भव है कि अलाउद्दीन को खुश करने के लिये उसकी यादगार स्थायी बनाये रखने के लिए अल्लेश्वर नाम रख लिया हो। अक्सर ऐसा देखा जाता है कि मन्दिर का निर्माता अपना अथवा जिसके लिये मन्दिर बनाया जाता है, उसके नाम के साथ ईश्वर शब्द जोड़कर उस मूर्ति को प्रसिद्ध किया जाता है।

है कि ये लोग राजपूत थे अथवा वैश्य थे। लेकिन आमतौर पर राजपूतों[redacted] के द्वारा प्राप्त की हुई सम्पत्ति के सिवा ये लोग राजपूतों की उस शाखा के हों, जिन्होंने जैन धर्म में आकर अहिंसा धर्म को स्वीकार कर लिया हो और युद्ध करने के स्थान पर व्यापारिक जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया हो।

परमारों और चौहानों—दोनों ही वंशों में मार अथवा मारी नाम के उपवंश का होना पाया जाता है। यह भी सही है कि आशा देवी चाहानों की आराध्य देवी रही है। अतएव यह हो सकता है कि यह धनी व्यक्ति इसी वंश का एक व्यापारी हो और जो अपने व्यापार के सम्बन्ध में पश्चिमी भारत की इस बड़ी मण्डी के साथ सम्बन्ध कायम करने आया हो।

पूर्व शब्द का अर्थ बहुत व्यापक होता है। परन्तु साधारण तौर पर यह शब्द उस प्रान्त के लिये प्रयोग किया जाता है, जिसको हम प्रमुख बंगाल कहते हैं और जिसका विस्तार बनारस तक है। कदाचित् यह व्यापारी उसी कालीकोट का निवासी है, जिसे अब कलकत्ता कहा जाता है।

महान आचार्य के इस राज शिष्य के सम्मान और सत्कार में आज तक वर्तमान पट्टण के निवासी जैनियों की ओर से किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। यद्यपि इस वंश के आदि और अन्तिम राजा पाट परमार और धारावर्ष के समय का भी इतना काल बीत चुका है कि इस सत्कार को अत्यन्त प्राचीन मानकर स्वीकार किया जाता; लेकिन फिर भी पार्श्वनाथ पर चढ़ी हुई केसर चावड़ा राजा को अब भी प्राप्त होती है। ग्यारह सौ वर्ष बीत जाने के बाद भी इस मामूली सी बात में हमें सौर वंशराज के जीवन की एक ऐसी व्याख्या मिलती है, जिसमें किसी प्रकार का विवाद नहीं है। इससे यह साबित होता है कि उसके पूर्वज किसी भी धर्म के मानने वाले रहे हों—चाहे वे बाल शिव के उपासक रहे हों अथवा सूर्य के पूजक रहे हों। परन्तु यह सही है कि वह बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था।

एक दूसरी बात यह भी है कि एक सार्वजनिक प्रथा के अनुसार नया नगर अपने नाम से न बसाने के कारण यह भी नतीजा निकाला जा सकता है कि इसका संस्थापक आदि काल में वह नहीं था।

यहाँ पर मैं यह लिख देना भी आवश्यक समझता हूँ कि नवपुर अथवा नवीन नगर में और भी बहुत से मन्दिर हैं। यह बात सही है कि उनमें उल्लेखनीय कोई विशेष बात नहीं है। दो मन्दिर रघुनाथ जी के नाम पर हैं और वे कुम्हारों तथा सुनारों के बनवाये हुए हैं। तीसरा मन्दिर महालक्ष्मी का है, जिसको बर जाति के वैश्यों ने त्रिपोलिया नामक दरवाजे के करीब बनवाया था। इसी जाति के आदमियों ने एक और भी मन्दिर बनवाया है, जो गोवर्धननाथ का मन्दिर कहलाता है और वह काफी प्रसिद्ध है।

गुजरी दरवाजे पर द्वार रक्षक हनुमान की मूर्ति है और एक दूसरे दरवाजे पर सिद्ध भिक्षुओं के आराध्य सिद्धनाथ महादेव की मूर्ति मौजूद है।

अब हम यहाँ पर दूसरी बातों का उल्लेख करना चाहते हैं। और वह उल्लेख है, पोथी भण्डार एवम् पुस्तकालय के सम्बन्ध में। उसकी स्थिति का उस समय तक कोई पता नहीं था, जब तक मैंने उसका निरीक्षण नहीं किया। उसके पश्चात् उसकी स्थिति का ज्ञान हुआ यह पोथी भण्डार नये नगर के उस भाग के तैखानों में है, जिसको वास्तव में अनहिलवाडा का नाम प्राप्त हुआ है। इसके कारण ही यह अलाउद्दीन की नजर से बचकर कायम रहा अन्यथा उसने इसको भी नष्ट कर डाला होता।

यह भण्डार कट्टर पथी लोगों की सम्पत्ति है। इस खरतर अथवा कट्टर का अर्थ है पुरानी विचार धारा के अनुयायी लोग। इन लोगों को यह नाम सिद्धराज के द्वारा प्रदान किया गया था। इन लोगों की संख्या विरोधियों की अपेक्षा अधिक है और वे सिन्धु से लेकर कन्याकुमारी तक ग्यारह सौ से अधिक पाये जाते हैं।

यह नगर सेठ और सरपच एवम् मुख्य न्यायाधीश तथा नगर पचायत के नियन्त्रण में है। इसकी देखभाल कुछ यती लोग करते हैं और वे यती हेमाचार्य के आध्यात्मिक शिष्य हैं।

इस तरफ की यात्रा करने के कुछ वर्ष पहले ही मुझको इस भण्डार की थोडी-बहुत जानकारी मेरे गुरु जी से हो चुकी थी। उसी समय मेरे मन में इसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए एक उत्सुकता पैदा हुई थी और मेरी ही तरह मेरे यती गुरु भी इसके प्रति उन्मुख थे। इसलिए वहाँ पर पहुँचने ही सबसे पहले मेरे गुरु भण्डार की पूजा करने क लिये गये। यद्यपि वे पूजा करने के अधिकारी थे लेकिन नगर-सेठ के आज्ञा पत्र को बिना दिखाये हुये कुछ नहीं हो सकता था।

इसके लिये पचायत बुलायी गयी, और उसके सामने मेरे यति ने अपने पत्र तथा हेमाचार्य के शिष्य होने का प्रमाण उपस्थित किया, उसको देखकर और सुनकर पचायत के अधिकारियों पर तुरन्त असर पडा और उन्होंने यति गुरु को तहखाने मे जाकर अत्यन्त पुराने भण्डार की पूजा करने का आदेश दे दिया।

वहाँ पर जो पुस्तकें हैं उनकी एक तालिका है, उसको देखकर कमरों में भरी हुई पुस्तकों का जो अनुमान मुझे बताया गया उसको प्रकट करने में मुझको अपने गुरु की ईमानदारी पर सन्देह पैदा होता है। वे ग्रथ सावधानी के साथ सन्दूको मे रखे हुए हैं, जो सगर की लकडी के बुरादे से भरे हुए हैं। यह बुरादा विभिन्न प्रकार के कीडों से ग्रथों की रक्षा करता है। पूजा करके और भण्डार को देखकर जब गुरु जी मेरे पास लौटकर आये तो उनकी प्रसन्नता पराकाष्ठा पर पहुँची हुई थी। लेकिन ग्रंथों की सख्या में और उनकी तालिका मे बहुत अन्तर था। दो ग्रन्थों की खोज में उनको चालीस सन्दूकों की तलाशी लेनी पड़ी। जिन ग्रंथों की खोज की गयी, उनके

नाम थे—'वत्सराज चरित्र' और 'शालिवाहन चरित्र' शालिवाहन ताक अथवा तक्षक सम्प्रदाय का नेता था। उसने उत्तर की तरफ से आकर भारत पर आक्रमण किया था और शक्तिशाली सम्राट विक्रम की गद्दी को पलटकर दक्षिण भारत में पहले से प्रचलित सम्वत् के स्थान पर शक सम्वत् चालू किया था।

तहखाने का स्थान तंग था और अधिक समय तक रहने पर दम घुटने लगता था। इसलिए यति को उन ग्रन्थों के खोजने का कार्य रोक देना पड़ा और वे तुरन्त वहाँ से लौटकर चले आये। अभी उनको बारह मील की यात्रा मेरे साथ और करनी थी। बरसात आरम्भ हो चुकी थी, मेरा स्वास्थ्य लगातार गिर रहा था। इसका परिणाम यह हुआ कि मेरी यात्रा लम्बी मालूम होने लगी। यदि मेरे पास रुकने का समय भी होता तो खोज के इस नवीन क्षेत्र में रुककर नियोजित करने के वास्ते लिखने वाले नहीं थे। इसलिये मैं यही आशा करता हूँ कि मेरी इस खोज से दूसरे लोगों के लिये केवल मार्ग तैयार हो सकेगा।

इसके सम्बन्ध में पूरी सावधानी और शिष्टाचार से काम लेने की आवश्यकता मैं अनुभव कर रहा था। खोज और अन्वेषण का कार्य बड़ी जुम्मेदारी का होता है। जिन्होंने इसको किया है, वही इसके उत्तरदायित्व को समझ सकते हैं।

जब अलाउद्दीन ने पट्टण पर आक्रमण किया, उस समय यह सम्भव नहीं था कि पुराने परकोटे के बाहर इन लोगों ने अपनी रक्षा के लिये किसी स्थान का निर्माण किया हो। इस बात को समझते हुये कि नगर के इस भाग का नाम आज भी अनहिलवाड़ा ही है, हमको यह विश्वास करने के लिये पर्याप्त आधार मिल जाता है कि वर्तमान नगर का यह हिस्सा पुरानी सीमाओं के भीतर था। कुछ थोड़ी-सी दूरी पर रहने वाले कट्टर पंथी सदस्यों को उस भण्डार से ग्रन्थ दिये जा सकते हैं लेकिन नियम के अनुसार वे ग्रन्थ को दस दिन से अधिक अपने पास नहीं रख सकते।

जब तक अनहिलवाडा के भण्डार में हमारी पहुँच न हो जावे, जहाँ पर ग्रन्थों का भण्डार है और वे महत्वपूर्ण ग्रन्थ मौजूद हैं, जिनकी आवश्यकता हमको अपने खोज के लिये है और इसके साथ-साथ उन ग्रन्थों और ग्रन्थों के संरक्षकों के साथ हमारा सम्पर्क न हो जाय, तब तक हम उस परिस्थिति में नहीं हैं कि जैनियों के सम्बन्ध में हम अधिकारी के रूप में कुछ कह सकें। हमें तो उन लोगों पर आश्चर्य के साथ दया आती है, जिनका कहना है कि हिन्दुओं के पास कोई ऐतिहासिक सामग्री नहीं है और इस प्रकार के विश्वास के कारण अन्वेषकों के मनोबल को निर्बल तथा नष्ट प्राय कर देने की चेष्टा की जाती है। मैं विश्वास पूर्वक यह कहना चाहता हूँ कि हिन्दुओं के इस प्रकार के गुप्त पोथी भण्डार एक नहीं, अनेक हैं और उनसे इस देश की प्राचीन ऐतिहासिक सामग्री निकालने और एकत्रित करने का कार्य साधारण नहीं है।

बरसात और बिगड़ते हुये स्वास्थ्य के कारण मुझको बड़ौदा में ठहराना पड़ा। वहाँ के रेजीडेएट की दया और प्रभाव से प्रेरित होकर गायकवाड़ के एक मन्त्री ने—जो स्वयं जैन थे—'वनराज चरित्र' की एक प्रतिलिपि के लिये पत्र लिख दिया था। उसके लिये स्वीकृति मिल गयी और मैं इस राजवंश के इतिहास का उद्धार करने के लिये—जिससे हमको विक्रम तथा वलभी के राजाओं तक का पुराना विवरण प्राप्त हो सकता था—अधीरता के साथ मैं प्रतीक्षा करने लगा।

उस मन्त्री के पत्र के अनुसार, 'वनराज चरित्र' की मुझको नकल मिल जानी चाहिए थी। लेकिन प्रतिलिपि कर्ताओं ने भूल से अथवा प्रार्थना पत्र की किसी असावधानी से 'वनराज चरित्र' के स्थान पर 'कुमारपाल चरित्र' की नकल कर दी। उसकी दो प्रतियाँ पहले से ही मेरे पास मौजूद थीं।

इस भूल का उस समय सुधार हो सकना सम्भव नहीं था। अन्वेषण के लिये भविष्य में ग्रन्थों की तालिका ही महत्वपूर्ण हो सकती है। लेकिन ऐतिहासिक रचनाओं, रासो, चरित्रों और माहात्म्य आदि के विषय में ऐसा नहीं है।

इस कार्य में लोगों को प्रोत्साहित करने के लिये मैं एक बात फिर कहना चाहता हूँ जो बार बार नहीं कही जा सकती, वह यह कि मैं जैसलमेर से कागज और ताड़पत्र की जितनी भी प्रतियाँ प्राप्त कर ली थीं, ताड़पत्र की प्रतियाँ तो तीन, पाँच और आठ शताब्दी तक की पुरानी हैं, जो रायल एसियाटिक सोसाइटी (१) पुस्तकालय की अलमारियों में अब तक अछूती पड़ी हुई हैं और उनका कोई भी उपयोग नहीं हो सका। इनमें सबसे पुरानी प्रतियाँ व्याकरण के विषय की हैं। हमारे बुद्धिमान मित्र समझते हैं कि वे इस विषय में अधिक जानते हैं।

लेकिन मेरे सामने बड़ी उलझन है। मैं कुछ निश्चय नहीं कर पाता। क्या इतनी पुरानी रचनाओं का परीक्षण करना इसलिये आवश्यक नहीं है कि उस परीक्षण के जिज्ञासुओं को यह मालूम होगा कि इन प्राचीन पुस्तकों में कोई नयी बात नहीं है?

इस विषय में पर्याप्त लिखा जा चुका है, इसलिये मैं अब इसे समाप्त करता हूँ।

---

(१) इनमें से हरिवंश की एक प्रति का अनुवाद पेरिस के एक पुरातत्ववित् कर रहे हैं। यदि वही विद्वान आबू माहात्म्य को भी अपने हाथ में ले लें तो धार्मिक क्रिया-कर्म-पद्धति के वर्णन से अपने पर मन बहलाने के लिये प्रकृति और मानव का मिला-जुला इतिहास भी काफी मात्रा में उनको मिल जायगा।

बारहवाँ प्रकरण

अन्वेषण के कार्य की कठिनाइयाँ

अहमदाबाद का निर्माण—गृह निर्माण-कला—हिंदू मुस्लिम शैलियाँ—बरसात की भीषण यात्रा—बड़ोदा का इतिहास—यात्रा की थकान और स्वास्थ्य की गिरावट—खोज के कार्य में मिलने वाली मुसीबतें—आदिवासी जातियाँ और उनके प्राचीन रहन सहन ।

जून का महीना था, बरसात जमकर चल रही थी और चारों तरफ ऐसे स्थान हो गये थे, जिनमें कच्ची मिट्टी के कारण कीचड हो गया था, घोड़ों की टापें उस कीचड में पूरी डूब जाती थी और उसी कीचड मे सबके साथ मुझे भी चलना पड रहा था । किसी अच्छे स्थान तक पहुँचने के लिये—जहां आराम मिल सकता था—डेढ़ सौ मील का रास्ता पार करना था ।

यहां के रेतीले मैदान में उल्लेखनीय कोई बात नही है । सिर्फ यही कहा जा सकता है कि यहां का विस्तृत मैदान सदा हरे खोयेनी के वृक्षों, एक तरह का जङ्गली पेड़ों से भरा हुआ था । यहा की वनस्पति के पेड़ो मे यही वृक्ष विशेषता रखते हैं ।

थाल का देश गुजरात के उस हिस्से का नाम है, जो बनास नदी और सौराष्ट्र के बीच में कायम है । वास्तव में यह मरुभूमि की दक्षिणी सीमा है । लेकिन यहाँ की रेतीली सतह के नीचे इतनी अच्छी मिट्टी है जो मक्का की फसल और घास के लिए बहुत उपयोगी मानी जाती है । इस मिट्टी में आलू की पैदावार अच्छी होती है ।

तीन लम्बी यात्राओं के बाद मैं अहमदाबाद पहुँचा । यह शहर अनहिलवाड़ा का प्रतिस्पर्द्धी नगर है । यहां आकर मैंने मुजफ्फर बली बादशाह के यहाँ पर मुकाम किया । अपने उस मुकाम से मैं बादशाह के वैभव का अनुमान वहाँ की मसजिदों और मदरसों (१) की इमारतों को देखकर कर सकता था । इन सभी इमारतों की गुम्बदें और मीनारें उन रास्तों पर बहुत ऊची-ऊची थी, जिनमे कभी कभी बड़ी भीड़ हो जाती होगी । लेकिन वे रास्ते आज सुनसान मालूम पड़ते हैं ।

---

(१) फरिश्ता में लिखा हुआ है कि गुजरात का बादशाह मुजफ्फरशाह द्वितीय विद्या के प्रचार का शौकीन था । उसने फारस, अरब और तुर्की के विद्वानों को बुलाकार गुजरात मे बसाया था और मदरसे कायम किये थे । उनके जरिए से लड़कों को तालीम दी जाती थी ।

अहमदाबाद, माण्डू और दूसरे नगरों में आक्रमणकारियों के द्वारा छोड़ी हुई सामग्री को देखकर ऐसा मालूम होता है कि आदिवासी जातियों के खण्डहरों में उनका जीवन उसी प्रकार क्षणभंगुर था, जैसे कीड़ों मकोड़ों का जीवन होता है और उनकी मृत्यु कभी किसी समय क्षण भर में हो जाती है। राजनीतिक विकास का कार्य क्रमश होना चाहिए और बड़े-बड़े राज्यों तथा राजधानियों का उत्थान एकाएक सम्भव नहीं होता। जो लोग इस नगर में गृह निर्माण कला के सम्बन्ध में विचार करने के समय उनको कुछ भी श्रेय नहीं देना चाहते, जिन्होंने इसका निर्माण किया है, उनको राजपूना के प्रति पक्षपात से भरे हुए मान लेना जरा भी असगत नही है। इसलिए कि हम उन अनमेल तत्वों के मिश्रण की ओर से अपनी आँखों को बद नहीं कर सकते, जो अत्यधिक सुन्दर इमारतों में खास कर स्तम्भों एवम् उनकी सजावट में प्रयोग किये गये हैं। यह जरूर है कि मुसलमानों के द्वारा उनका रूप और आकार प्रकार इतना अधिक बदल गया है कि उनको देखकर उनकी असलियत का अनुमान न कर सकें, फिर भी उनकी निर्माण कला में हिन्दुओं का शिल्प चिल्ला कर अपनी वास्तविकता को प्रकट कर रहा है।

यह बात किसी प्रकार छिपाई नहीं जा सकती कि अहमदाबाद की श्री वृद्धि के लिये चन्द्रावती और अनहिलवाड़ा को गिराकर विध्वस ही नहीं किया, बल्कि उसके निर्माण का काम भी हिन्दू शिल्पियों के द्वारा ही कराया गया है। इन समस्त असगत बातों के होते हुये भी हमको उस कौशल की प्रशसा तो करनी ही होगी, जिसके द्वारा हिन्दू स्तम्भो पर अरब शैली की इमारतें इस प्रकार खड़ी की गयी हैं कि उन स्तम्भों को अब पहचानना और कुछ कह सकना कठिन हो गया है। इन स्तम्भों के द्वारा जो मुस्लिम इमारतें—कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा—को सार्थक करके तैयार की गयी हैं, उनमे हिन्दू, मुस्लिम शिल्प कला का अन्तर बहुत साफ प्रकट होता है। यद्यपि इस अतर को मिटाने के लिये बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया गया है, फिर भी उसको रोका नहीं जा सका। किसी एक चीज को बदलकर जब दूसरी चीज बनायी जाती है तो यह असम्भव है कि उसकी असलियत को छिपाया जा सके। उसकी अनेक बातें, पूर्व रूप का परिचय देती हैं।

मेरी धारणा है कि गुरिशियन और गॉथिक शैलियों की तरह हिन्दू और इस्लामी—दोनों शैलियाँ अनेक प्रकार की भिन्नता रखती हैं, फिर भी दोनों के समर्थक और प्रशसक मिलेंगे और यदि उनके समर्थकों तथा प्रशसकों के अलग अलग मत लिये जाँय तो इस्लामी शैली के प्रशसक अधिक पाये जाँयगे।

गम्भीर कटावदार हिन्दू इमारतों को देखने से एक श्यामल चित्र की छाया का दृश्य सामने आता है और उसकी समता मेघों से घिरे हुये आकाश के साथ अधिक पायी जाती है। लेकिन गुम्बददार मसजिदें और अत्यधिक ऊची मीनारें उसी समय अपना

सुन्दर दृश्य उपस्थित करती हैं, जब प्रकृति शान्त होती है। लेकिन इसके विषय में अधिक लिखने और प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं मालूम होती।

खेड़ा—मुझको इसी स्थान पर रुककर विश्राम करना था। जब मैं सबके साथ इस तरफ बढ़ रहा था, उस समय वर्षा लगातार तेजी पर थी। मुझे प्रसन्नता है कि मैं घोड़े पर सवार होकर जल्दी के साथ यहाँ पर आ गया।

बरसात के दिनों में भारत में किसी यात्री का प्रमाण और उसका वर्णन पढ़ने मे चाहे जितना मनोरंजक मालूम हो, परन्तु उस यात्री के लिये जिस कठिनाई का सामना करना पड़ता है, उसे वही जानता है। एक चित्रकार के लिये तो इस देश में यह मौका बड़े काम का होता है। अपने खेमे में बैठकर वह कलापूर्ण सामग्री बहुत अधिक प्राप्त कर सकता है और फिर गुजरात जैसे प्रदेश मे।

यहाँ पर दिन में बड़ी परेशानी रहती है। मार्ग में भीगे हुये कपड़ों को सुखाने की कोशिश करनी पड़ती है। दिन में, जब एक तरफ बरसात का आक्रमण होता है और दूसरी तरफ सूरज अपना प्रभाव कायम रखना चाहता है, आकाश के नीचे मैदान में भोजन पकाना पड़ता है। उस समय ऊँट जुगाली करने में मग्न रहते हैं और घोड़े अपनी गरदन झुकाकर बरसाती फुहारे का सामना करते हैं। थोड़ी थोड़ी देर के बाद घोड़ों की गरदन के बालों से बरसात का गिरा हुआ पानी, निकलकर जमीन पर गिरता है। वर्षा से भीगे हुये आदमी काँपते हुये दिखायी देते हैं। लोग एक दूसरे से बातें करते हैं, इस पानी में 'हम लोगों का खाना कैसे पकेगा' लोग सोचने लगते हैं कि आज तो चना चबेना पर ही गुजर करना पड़ेगा। इसलिये कि लगातार गिरने वाली बूंदों के कारण मैदान में खाना पकाने का काम नहीं हो सकता।

बरसात के कारण सभी लोगों की कुछ इसी प्रकार की दशा हो रही है। जो अपने घरों मे रहकर बरसात के इस दृश्य को अनुभव करते हैं। वे नही समझ सकते कि जो लोग इन दिनों मे यात्रा पर हैं अथवा किसी काम से मैदानों और जङ्गलों में घूम रहे हैं, उनको किस कठिनाई का समना करना पड़ता है।

जिन लोगों को मैदानों मे रहकर खाना बनाना पड़ता है, वे आजकल की बरसात के दिनों मे धूप निकलने का रास्ता देखते रहते हैं और जब पानी का गिरना बन्द हो जाता है, कुछ धूप सी दिखायी देती है, तो लोग अपने कामों को छोड़कर निकल पड़ते हैं और तेजी के साथ निकली हुई धूप मे भोजन बनाने के कार्य में जुट जाते हैं। और किसी प्रकार बनाकर खा पी लेते हैं।

लेकिन कुछ ऐसे भी दिन आते हैं कि बरसात का पानी लगातार गिरता रहता है और उस दशा में मैदानों में भोजन बनाना असम्भव हो जाता है तो मुसलमान लोग कपड़े में लपेटा हुआ पहले दिन का बासी खाना खोलता है और तसल्ली के साथ खाने लगता है। लेकिन एक हिन्दू सिपाही के धर्म में बासी भोजन वा मार्ग का चलाऊ

हुआ भोजन करने की आज्ञा नहीं दी गयी है। इसलिये हिंदुओं को भुने हुये चने चबा-कर और पानी पीकर रह जाना पड़ता है। ये लोग ऐसे मौकों पर भुने हुये चने अपने साथ रखते हैं और पानी सब जगह मिल ही जाता है।

लेकिन रात में जब मौसिम बदला हुआ दिखायी देता है, उस समय वे लोग—जिन्होंने चने चबाकर दिन काटा था—प्रातः होते ही दो गुना भोजन बनाने की बात सोचते हैं। वे प्रतीक्षा करते हैं कि सवेरा हो जाय और हम भोजन बनाकर पेट भर खा लें।

इसी समय एकाएक आवाज आती है—आँधी आ गयी, आँधी आ गयी! एक साथ सभी लोग चिल्ला उठते हैं और बिना बिगुल बजाये हुये साथ के सभी लोग गिरते हुये पाल को रोकने के लिये दौड़ पड़ते हैं। उस समय सोते हुये जग पड़ने पर एक अजीब तरह का आनन्द आता है। उस आँधी में खेमे की भीगी हुई कनात आकर टकराती है और खलासी लोग जोर के साथ चिल्ला उठते हैं—उठो साहब, उठो साहब, डेरा गिरा जाता है।

इस प्रकार का चीत्कार सुनकर हम तेजी के साथ उठकर खड़े हो जाते हैं, नींद इस प्रकार भाग जाती है जैसे किसी शत्रु ने तेजी के साथ आक्रमण किया हो। उठकर हम अपने जूते ढूढ़ते हैं। उसी समय मालूम होता है कि पानी को रोकने के लिये घास का जो ढेर खड़ी की गयी थी वह वर्षा और आँधी के जोर से टूट गयी है और पानी के छोटे छोटे झरने बिस्तर के नीचे चारों तरफ से बहते हुये मालूम होते हैं। ऐसे मौकों का दृश्य कुछ अजीब सा हो जाता है।

ऐसे समय की एक बड़ी विशेषता यह होती है कि आँधी और पानी में जब खेमा गिरने लगता है तो अपने नौकर और सिपाही बड़ी तत्परता के साथ खेमा को रोकने और गिरने से बचाने की कोशिश करते हैं। वह खेमा जमीन पर गिरने नहीं पाता और टूटे हुए बाँसों के स्थान पर नये बाँसों को गाड़ कर उनमें खेमे की रस्सियाँ बाँध दी जाती हैं।

आँधी और पानी के इस दृश्य को देखकर साथ के लोग तरह-तरह की बातें करते हैं। उनके बिस्तर और कपड़े पानी से तर हो जाते हैं। कोई कपड़ा सूखा हुआ पास नहीं रह जाता। जिसको गीले कपड़े के स्थान पर पहनकर और टेबुल पर पैर फैलाकर रात काटी जाय।

अगर बिछौना घोड़े के बालों का बना हुआ है और बहुत भारी नहीं है तो उसमें कुछ आराम मिल जाता है। लेकिन दिन और रात में लगातार भीगने के कारण और कई कई दिनों तक धूप न मिलने की दशा में रोजाना प्रातःकाल शरीर के जोड़ों में गठिया का मोठा मोठा दर्द अनुभव होने लगता है।

इस प्रकार की थकान से भरी हुई रात और पीड़ा से भरे हुए दिन के बाद भी प्रेमी यात्री को बहुत सजग और सावधानी से काम लेना पड़ता है। यदि उसको कोई शिला लेख मिल जाता है अथवा प्राचीन मंदिर का पता चल जाता है तो समय का अभाव और बरसात के पानी की मुसीबत उसके अनुसंधान के मार्ग में बाधा उत्पन्न नहीं कर सकती।

बरसात के दिनों में यात्रा करते हुए इस प्रकार की जो घटनायें आती हैं, उनमें मन को तोड़ने और उल्लास देने की शक्तियाँ भी होती हैं। उनमें यदि परेशानी होती है तो अनेक मौकों पर विनोद की छाया भी रहती है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी रात में खेमे के बाहर खड़ा हुआ घोड़ा मालूम होता है उस समय कपड़े गीले होते हैं, खेमें के बाहर चारों तरफ कीचड़ ही कीचड़ भरा होता है। रात का मचा हुआ शोर व गुल कानों में भरा होता है। दड़बे में मुर्गियाँ भीगी हुई होती हैं। खेमें के बाहर घोड़ा पानी में भीगा हुआ खड़ा रहता है, इस प्रकार बरसात के दिनों में यात्रा के जो कष्ट होते हैं, वे कभी कभी बहुत भयानक मालूम पड़ते हैं।

इन सब कठिनाइयों का एक ही इलाज होता है—कूच करना, आगे के लिये प्रस्थान करना और नयी नयी घटनाओं तथा दृश्यों को देखकर मन को बदलना और पिछली घटनाओं को भुला देना। कुछ लोगों का कहना है—'सभी दुखों का अन्त मृत्यु है।' इस विश्वास का दूसरा पहलू भी है, जिसमें कहा जाता है—'भयानक से भयानक रात के बाद प्रातःकाल होता है और अंधकार का विनाश करने वाले सूर्य के प्रकाश के दर्शन होते हैं।'

हमारी जिन्दगी इन दोनों विश्वासों के बल पर चलती है। इसका एक पहलू अकेला कभी नहीं रहता। कठिनाइयाँ जिन्दगी के साथ होती हैं, उनके दृश्य बदलते रहते हैं और पुराने दृश्य के स्थान पर जब नयी घटनायें सामने आती हैं तो उनमें एक नये प्रकार का उल्लास मिलता है। जीवन के इन्हीं अङ्गों को लेकर संसार के दार्शनिकों ने बड़ी बड़ी खोजें की हैं। लेकिन हमारा जीवन अपने ही हिसाब से चलता रहा है।

खेड़ा में मुझको अपने पुराने मित्र और सहयोगी कर्नल लिंकन स्टेनहाप मिले। वे उस समय सम्राट की सत्रहवीं घुड़सवार सेना के नायक थे। जब वे भारत में पहले पहल आये तो उसी समय से उनके साथ हमारा पत्र व्यवहार चल रहा था। पिण्डारी युद्ध में मेरे अधीनस्थ एक अधिकारी एजेण्ट से सूचना पाने पर वे उज्जैन से अपने रिसाले को लेकर आगे की तरफ बढ़ गये और उन्होंने बड़ी वीरता के साथ ऐसा आक्रमण किया कि जिसकी याद इन लुटेरों को सदा आती रहेगी।

हम दोनों ही एक ही समय पर योरप जाने वाले थे। इसलिये निश्चय कर लिया था कि हम दोनों साथ साथ अपने देश को वापस जायेंगे और लिबानस निवासिनी प्रसिद्ध महिला से मिलकर उसको नमस्कार करेंगे। लेकिन पिछले छै महीनों के कठिन परिश्रम ने मेरे शरीर और मस्तिष्क को इतना थका दिया था कि मैं अपने सहयोगी के लिए भार स्वरूप ही साबित होता।

इस दशा में मैंने अपने उस विचार को समाप्त कर दिया। यद्यपि मुझको अपने उस मित्र के साथ स्थानीय खोज के पश्चात् हिन्दू, मिस्री और सीरियन धर्मों एवम् गृह निर्माण-कला सम्बन्धी बातों के विषय में असाधारण जानकारी प्राप्त होने की आशा थी। मैं अपने मित्र के यहाँ एक सप्ताह तक खेड़े में ठहरा और उसके आतिथ्य से बहुत कुछ विश्राम प्राप्त कर सका। अब मैं इस काबिल हो सका कि मैं आगे की यात्रा कर सकूं।

खेड़ा में भी अनुसंधान के लिये बहुत-कुछ कार्य था। वहाँ की दीवारों के गिरे हुये आकार-प्रकार इस बात का प्रमाण दे रहे थे कि यहाँ पर किसी समय कोई बड़ा नगर था। वहाँ पर कुछ ही दिन रहकर मैंने चाँदी के कुछ सिक्के प्राप्त किये। वे सिक्के मुझे वहाँ खण्डहरों में ही प्राप्त हुये। इन सिक्कों में किसी प्रकार का कोई लेख नहीं था। परन्तु अक्षरों के स्थान पर कुछ विचित्र निशान बने हुए थे।

मेरे मित्र कर्नल स्टेनहोप ने भी इसके सम्बन्ध में मेरी सहायता की और उसने दो अथवा तीन सिक्के अपनी तरफ से देकर मेरे पुराने सिक्कों की संख्या बढ़ायी।

इस तरह यदि शोध और अनुसंधान को प्रोत्साहन दिया जाय तो हिन्दुस्तान के सभी भागों में बहुत कुछ काम किया जा सकता है। लेकिन यहाँ पर एक बात मैं फिर लिख देना चाहता हूँ उसका उल्लेख पहले भी मैं कर चुका हूँ वह यह है कि सिक्कों, प्रत्येक तरह का प्राचीन सामग्री, प्राचीन शिला लेखों और हस्तलिखित ग्रन्थों के विषय में प्राचीन भारत की परिस्थितियों की छानबीन करने में अंगरेज किसी से पीछे नहीं रहे। इसके समर्थन में मैं कहना चाहता हूँ कि यदि स्वास्थ्य और काफी अवकाश मुझे मिलता तो जो कुछ मैंने अब तक किया है, उससे दस गुना काम मैंने कर डाला होता और यदि आवश्यक सुविधायें मिली होतीं तो उस दस गुने का भी दस गुना करके मैं दिखा देता।

माही नदी को पार करने में बहुत परिश्रम करना पड़ा। जितना ही रास्ता आगे की तरफ बढ़ते जाते थे, वह नदी उतनी ही दूर होती जाती थी। मेरे साथ जितने भी आदमी थे, उनको और साथ के सामान को पार ले जाने के लिए एक नाव मिली थी वह बहुत छोटी थी। और जो बहाव पार करना था, वह साधारण नहीं था। नदी समुद्र की तरफ बहुत तेजी के साथ प्रवाहित हो रही थी। घोड़ों को नाव पर चढ़ाना असम्भव हो रहा था, इसलिये उनको दूसरी तरफ ले जाने का एक ही तरीका

समझ में आया कि घोड़ो को ऊँचे घाट पर ले जाया जाय और उनको पानी में उतारने के समय जोर के साथ चाबुक मार दिये जाँय। ऐसा करना यद्यपि साधारण था। लेकिन एक बड़ी जुम्मेदारी से भरा हुआ था। परन्तु इसके सिवा और कोई साधन समझ में नही आया। कठिनाइयाँ और भी सामने थीं। मेरे साथ तीस घोड़ा को नदी के पार ले जाने के लिये तीस ही आदमियो की जरूरत थी। नदी को पार किये बिना रसद मिलने की सम्भावना नही थी और दिन समाप्त होने जा रहा था।

मैं कुछ समय तक इसी उधेड़बुन मे पड़ा रहा और आखीर मे अपने सवाजमे के अधिकारी बूढ़े रिसालदार के पास जाकर मैंने पूछा—"यदि इस प्रकार की नदी को पार करने मे अपनी सेना को रुका हुआ सिकन्दर देखता तो वह क्या करता ?"

मेरे प्रश्न को सुनते ही रिसालदार ने मेरी तरफ देखा और तीव्र स्वर में वह बोल उठा—"कपड़े उतारकर तैयार हो जाओ।"

पाँच मिनट भी पूरे बीतने नहीं पाये थे, बूढ़े रिसालदार ने अपने सभी कपड़ो की एक गठरी तैयार कर ली और उसे ले जाकर नाव पर रखा। इसके बाद उस बूढ़े ने अपनी घोड़ी नदी मे उतार दी और उसको तैराता हुआ वह नदी के पार निकल गया।

उसके पीछे दूसरे सवार अपने घोड़ों पर रवाना हुये। उनमे कुछ सवार तो अपने घोड़ो की पूँछ के सहारे थे और कुछ घोड़ों की गरदन के बालों को पकड़े थे। लेकिन किसी प्रकार वे सभी नदी के पार पहुँच गये। लेकिन इसके लिये हमारे बूढ़े रिसालदार ने प्रेरणा दी और उसका परिणाम यह हुआ कि मेरे साथ का सिपाही इसलिये नही रुक सका कि बूढ़े रिसालदार के ललकारने पर अगर मैं नदी मे नही कूदता तो साथ के सभी लोग मुझे क्या कहेंगे। इसलिये किसी सिपाही के सामने द्विविधा में पड़ने का कोई मौका ही नही था। क्योंकि कूच करने के समय किसी सिपाही का रुकना अपराध माना जाता है। स्किनर (१) के सिपाहियो के लिये तो दोहरा अपराध होता, इसलिये कि वे जानते थे कि उनसे क्या आशा की जाती है।

नदी की चौड़ाई दो सौ गज से कम न थी, गहराई बहुत अधिक थी, उस नदी का जल प्रति घंटा कम से-कम पाँच मील की गति से प्रवाहित हो रहा था। सकट साधारण नही था और साथ के सभी आदमियों तथा सिपाहियो का साहस टूट रहा

---

(१) कर्नल जेम्स (स्किनर) के नाम पर बनी हुई सेना। जेम्स का पिता स्काटिश और माता मिर्जापुर जिले की एक राजपूत महिला थी। निजाम की सेना के कर्नल पिरान की १८०५ ईसवी मे मृत्यु हो जाने पर उसके दो हजार घुड़सवारों का रिसाला अंग्रेजी सेना म मिल गया, उसका नेतृत्व जेम्स स्किनर को दे दिया गया। वह स्किनरहार्स के नाम से प्रसिद्ध हुआ। स्किनर को देशी सिपाही सिकन्दर साहब कहा करते थे।

था ऐसी दशा में बूढ़े रिसालदार ने अपने जिस साहस और पराक्रम का परिचय दिया, वह सर्वथा प्रशंसा के योग्य था। यदि हमारा वह रिसालदार अपने इस साहस से काम न लेता तो हम लोग किस परिणाम पर पहुँचते, इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। मैं तो इसके लिए उसी की तारीफ करता हूं, जिसके नदी में कूदते ही साथ के सभी सिपाहियों के शरीर में मानो बिजली दौड़ गयी और वे भी अपने अपने घोड़े लेकर नदी में कूद पड़े।

खेमे तक पहुँचते ही मुझसे कहा गया कि एक सईस नहीं है, तैरना न जानने के कारण उसने मेरे घोड़े को अपने सहायक को सौंप दिया था। शाम तक उसका पता न चलने पर उसकी नदी में खोज की गयी। लेकिन कोई परिणाम न निकला। नदी का जल बड़ी तेजी के साथ प्रवाहित हो रहा था। उसका पता न चलने पर साथ के लोगों ने बताया कि हम सब लोग जब नदी के पार आ गये थे, उस समय वह अकेला जल में उतरा था। लेकिन यह उसकी भूल थी।

मैं उस सईस के डूब जाने की घटना अर्से तक भूल नहीं सका। जब वह तैरना नहीं जानता था तो उसको नदी में नहीं उतरना था और जब हम लोग दूसरी तरफ पहुँच जाते तो नाव को भेजकर उसे भी पार करा लेते। लेकिन बूढ़े रिसालदार के उत्साह को देखकर वह भूल गया कि मैं तैरना नहीं जानता और वह नदी में कूद पड़ा। उसने नदी में उतर कर मर जाना उत्तम समझा, बजाय इसके कि वह नदी के उसी किनारे पर खड़ा रहता और सभी के उतर जाने पर वह कायरों में गिना जाता।

इस क्षेत्र में मही नदी बड़ी भयानक मानी जाती है और इसीलिए उसके सम्बन्ध में यह कहावत प्रसिद्ध हो गयी है—"उतरा मही हुआ सही।" लोगों का कहना है कि यह कहावत उन लुटेरी जातियों के सम्बन्ध में कही जाती है, जो इस नदी के किनारे किनारे उनके निवास से लेकर विन्ध्य की पहाड़ियों को पार करती हुई कच्छ की खाड़ी तक दस मील की दूरी में बसी हुई हैं।

इस नदी के किनारे अथवा करीब बसी हुई एक जाति का नाम माहीर है, वह आदिवासी गोंड जाति की शाखा है। एक दूसरी जाति मीणा के नाम से प्रसिद्ध है। परन्तु इन सभी जातियों के तर्ज और तरीके सभी कुछ एक-दूसरे से मिलते जुलते हैं। उनमें आपसों में सभी भेद भाव पाये जाते हैं जो ऊँचे कहलाने वाले ब्राह्मणों में होते हैं और जिन गलत तथा गन्दी आदतों के कारण वे अपने आपको ऊँचा मानते हैं। जिस प्रकार हिन्दुओं में ब्राह्मण अन्य जातियों को अपवित्र मानते हैं और स्पर्श हो जाने पर उनको प्रायश्चित करना पड़ता है। उसी प्रकार के विश्वास उन जातियों में भी पाये जाते हैं। वे संस्कृत पढ़ने तथा बोलने वाले ब्राह्मणों और तुर्कों दोनों को एक-सा अपने से भिन्न मानते हैं। इस प्रकार के विश्वास उनके पुराने हैं।

मिही अथवा मही नदी के बहुत-से नामो में से एक नाम पापाशिनी अथवा पाप की नदी भी है, दूसरा नाम कृष्ण भद्रा अथवा काली नदी है। इस अन्तिम नाम से ही वे सब नाम निकले हुए मालूम होते हैं।

उस गरीब सईस के डूब जाने की याद मुझे बार-बार आती रही। पहली रात मेरे लिए बड़ी भयानक हो गयी। मुझे सारी रात नीद नही आयी। वह बहुत अच्छा नौकर था और कितने ही वर्षों से वह मेरे साथ था।

बड़ोदा—जून यहाँ पहुँचने पर मुझे बहुत शान्ति और सुख मिला। यहाँ के रेजीडेण्ट मिस्टर विलियम्स की बन्धुत्व से भरी हुई उदारता ने इसको मेरे लिए अत्यन्त सुखमय स्थान बना दिया था। बरसात के कारण बम्बई जाने वाली सड़कें बन्द थी। मेरे निर्बल स्वास्थ्य को देखकर मेरे रेजीडेण्ट मित्र ने जो कुछ कहा, वह मेरे लिए अत्यन्त हितकर था। उन्होंने मुझे समझाया कि बरसात के इन दिनो म मुझे उन्ही के यहाँ विश्राम करना चाहिए।

बरसात के इन दिनो म मुझको जहाज पर जगह मिलने की आशा नही थी। इसलिए मैंने निश्चय किया कि इन दिनों का उपयोग सौराष्ट्र की तरफ जाने में किया जाय। मिस्टर विलियम्स ने भी मेरी इस योजना को स्वीकार कर लिया। मुझे बड़ी प्रसन्नता उस समय हुई, जब उन्होंने सौराष्ट्र की यात्रा में मेरे साथ चलने का इरादा प्रकट किया।

इस समय जो कार्य मेरे हाथ में था, उसको पूरा कर डालना मैंने मुनासिब समझा। कितने ही ग्रन्थों और शिलालेखों की प्रतिलिपियाँ करनी थी। और उनको लेकर राजपूत जाति के इतिहास में आवश्यकतानुसार सम्मिलित करना था। इस प्रकार जो कार्य इस समय आवश्यक था, उसको पूरा करने में मैं लग गया।

बड़ौदा यद्यपि बहुत पुराना नगर है। परन्तु अनुसधान के लिए वहाँ पर कोई काम नहीं है। यहाँ के तालाब मे मुझको एक शिलालेख मिला, जो प्राचीन जैनलिपि मे लिखा हुआ था। लेकिन वहाँ के किसी स्वामी जी ने उसके अक्षरो को मिटा दिया था।

बड़ोदा का प्राचीन नाम चन्दनावती है। उसको दोर जाति के राजपूत राजा चन्दन ने बसाया था। उपाख्यानों में इसका बहुत वर्णन किया गया है। उसकी रानी

मुलीग्री से दो लड़कियाँ पैदा हुईं, उनके नाम सोफ्री और नीला थे। (१) इनकी कथाओं को लिखकर मैं अपने पाठकों का समय नष्ट नहीं करना चाहता।

दूसरे प्राचीन नगरों की तरह इसका चन्दनावती नाम चन्दन की नगरी बदलकर वीरावती (वीरों की नगरी) हो गया। उसके बाद वटपद्र हो गया। इस परिवर्तन का कारण क्या था, उसको खोजने के लिये मैं व्यर्थ ही कवियों की कविताओं में अपना समय खराब नहीं करना चाहता। ऐसा मालूम होता है कि यह नगर बदलते बदलते अन्त में बड़ौदा हो गया है और कदाचित् यहाँ के स्वामी गायकवाड़ के राजा ने भी इसी नाम को मन्जूर कर लिया था।

---

(१) मूलकथा में राजा चन्दन और उसकी रानी मलयागिरि के राजकुमारों के नाम लिखे गये हैं और वे नाम हैं सायर तथा नीर।

बड़ौदा का पुराना नाम चन्दनावती और वीरावती नगरी से बदलकर कब 'वटपद्र' होकर फिर कब बड़ोदरा अथवा बड़ौदा हो गया, इसके सही उल्लेख नहीं मिलते।

आजकल प्रायः गुजरात के लोग इस नगर को बड़ोदरा कहते हैं। यह नाम संस्कृत के वटोदर शब्द से मिलता है। मालूम होता है कि इसका यह नाम उस समय पड़ा था, जब पहले यह एक छोटे-से गाँव के रूप था और उसके चारों तरफ विभिन्न प्रकार के पेड़ों के साथ-साथ वट-वृक्ष बहुत से थे। इसलिये वटों के बीच में बसा हुआ ग्राम वटोदर हुआ। इस नगर के आस-पास अब भी वट के पेड़ बहुत-से मौजूद हैं। बड़ोदरा के साथ-साथ इस नगर को वीरावती नगरी भी कहते हैं। पुस्तकों में वीर क्षेत्र इसका नाम आया है। इसके नामों से जाहिर है कि पहले यह एक छोटा सा ग्राम था। इसके नाम का उल्लेख प्रायः आठवीं शताब्दी से पाया जाता है। इसने धीरे धीरे उन्नति की और फिर एक दिन विशाल नगर बन गया।

तेरहवाँ प्रकरण

सौराष्ट्र : प्राचीन और नवीन

बड़ोदा की परिस्थिति—हूण जाति के लोग—खम्भात और उसकी प्राचीनता—धैनिया का पुस्तकालय—सौराष्ट्र का इतिहास—सौर जाति का प्रारम्भ—सीरियन और सौर लोग—सीथिक और सौराष्ट्र की अन्य जातियाँ—बौद्धमत का केन्द्र—पुतगाली लोगों के व्यवहार—गोतिलो की राजधानी भावनगर—राजा का बहुरंगी दरबार—लूटमार का व्यवसाय—ब्राह्मणों की बस्ती सीहोर—मेवाड़ की पुरानी राजधानी बलभी।

खम्भात—नवम्बर की ४ थी तारीख बरसात के दिन समाप्त हो गये थे और सड़कों पर चलाने वालों की संख्या बढ़ गयी थी। इसलिये हमने २६ अक्टूबर को अपने स्थान से प्रस्थान करके ओमेटा नामक ग्राम के पास पहुँच कर मही नदी को पार किया। मेरा इरादा नदी के मुहाने के पास गजना नामक ग्राम तक जाने का था। उस ग्राम का नाम अब वहाँ के लोग स्वयं नहीं जानते।

इस स्थान का वर्णन गहलोत राजाओं के इतिहास में आता है। जब वे सौर प्रायद्वीप में राज्य करते थे तो उन दिनों में इसकी बहुत प्रसिद्धि थी। परन्तु अब यहाँ पर उसके सम्बन्ध मे कुछ सुनने को नही मिलता। मुझे यह भी बताया गया कि इसके अतीत कालीन गौरव का अब कोई अंश किसी रूप मे नहीं रह गया।

फिर भी मैं कुछ जानने की चेष्टा करता रहा। बड़ी मुश्किल में मुझे इतना ही जानने को मिला कि गजना ग्राम में पहले किसी समय कोली वंश की एक शक्तिशाली जाति रहती थी। उनसे बाघेला राजपूतों की भीरेल शाखा के लोगों ने इस स्थान को छीन लिया था। यहाँ की जमीन उपजाऊ थी और उस भूमि में पानी की आवश्यकता बहुत कम रहती थी। वर्तमान खम्भात की नदी के ऊपर की तरफ कुछ मीलों की दूरी पर बसे हुए प्राचीन ग्राम का नाम गजना (१) था।

कहा जाता है कि यह नगर खम्भात के साथ आने के पहले एक बन्दरगाह था। यह विवरण मेवाड़ के इतिहास से पूरी तौर पर मिलता जुलता है। उसमे गजना को बालरायों की राजधानी बलभी से दूसरी श्रेणी का नगर माना गया है। ओमेटा के

(१) गजना नामक ग्राम खम्भात से बीस मील दूर देहवाण के करीब माना गया है।

सामने एक छोटे-से ग्राम में मुझे हूणों की कुछ झोपड़ियाँ मिलीं। ये झोपड़ियाँ प्राचीन हूणों के नाम को अब तक कायम किये हुये हैं। इन हूणों की जानकारी हिंदुओं के इतिहास से भली प्रकार होती है। बड़ौदा से छै मील पर निसावी नामक ग्राम में भी उन हूणों के दूसरे वंश वालों का निवास स्थान बताया जाता है।

इन हूणों के शरीर गठन और उनके रंग के द्वारा तातार कहे जाने वाले हूणों का कोई परिचय नहीं मिलता और न इनको देखकर उनके व्यक्तित्व का कुछ स्मरण होता है। इनमें और उन हूणों में बहुत अधिक परिवर्तन मालूम होता है। इस परिवर्तन का कारण कदाचित् जलवायु का प्रभाव है। फिर भी इसमें सदेह नहीं कि ये हूण उन्हीं आक्रमणकारियों की सन्तानें हैं जिन्होंने दूसरी और छठी शताब्दी में सिंध नदी के किनारे अपना साम्राज्य स्थापित किया था और जो राजपूतों के साथ इस प्रकार मिश्रित हो गये थे कि जेट, काठी और मध्य एशिया से आने वाली दूसरी जातियों के साथ-साथ उन्हें भी भारत के छत्तीस राज-वंशों में स्थान प्राप्त हो गया था उनके वंशज अब तक सूर्य के उपासक सोरा अथवा चावड़ा की जमीन पर बसे हुए हैं।

सचमुच ये लोग उन्हीं जातियों में से एक जाति के लोग हैं। इन विदेशी जातियों के लिए अगर हम जेट भारतीय अथवा शासी भारतीय शब्दों का प्रयोग करें तो ये लोग मूल से कहे जाने वाले इनके सीथिक नाम की अपेक्षा अधिक मौजूँ होंगे।

प्राचीन काम्बे—जिसको आज की देशी भाषा में खम्भायत कहा जाता है और जो अब उजड़ गया है—वर्तमान नगर से तीन मील के फासिले पर है। इसका नाम प्राचीनकाल में पापावती अथवा पाप की नगरी था। (१) इसका यह नाम उस स्थान के समीप होने के कारण रखा गया है, जहाँ पर मही नदी पापासिनी खाड़ी में जाकर गिरती है। यह खाड़ी भी अपनी भीषणता के कारण पापासिनी कहलाती है। कुछ दिनों के बाद इसका नाम बदल कर अमरावती अथवा अमर नगरी हो गया। यह नाम पहले की अपेक्षा अच्छा अवश्य था परन्तु अधिक दिनों तक वह नाम चल न सका। इसलिए यह नाम फिर कन्ला और बाघवती अथवा बाघों का निवास कहा जाने लगा। इसके बाद यह नाम बदलकर त्रिम्बावती अथवा ताम्र-नगरी हो गया। यह नाम इस प्रकार पड़ा कि इसका परकोटा ताँबे धातु से बनाया गया था। अन्तिम परिवर्तन इसके नाम का होकर उसको खम्भायत अथवा खम्भावती कहा गया। उसके सम्बन्ध में

(१) यहाँ के व्यापारी लोग अपने व्यवसाय के सम्बन्ध में बुरी तरह से झूठ बोलकर पापाचरण करते थे। इसलिए लोगों ने इसको पापावती अथवा पाप नगरी कहना आरम्भ कर दिया। कुछ लोगों का विश्वास है कि खम्भात में एक स्थान गोपनाथ कहलाता था। उसको दूसरी शताब्दी के ग्रीक लेखकों ने पापिके लिखा है।

कहा जाता है कि एक राजा ने खाड़ी का पानी आ जाने अथवा मट्टी की उपजाऊ मिट्टी बड़ी मात्रा में एकत्रित हो जाने के कारण उस प्राचीन नगर को रहने के योग्य नहीं समझा और वर्तमान नगर की स्थापना की।

उन्हीं दिनों मे राजा ने देवी को प्रसन्न करने के लिए समुद्र के किनारे पर एक स्तम्भ कायम किया और उसमें लिखा दिया कि प्राचीन नगर एवम् चौरासी ग्रामों की होने वाली आमदनी इस देवी के मन्दिर में खर्च की जायगी। उस स्तम्भ का आज कोई अवशेष बाकी नहीं है लेकिन उस समय जिस प्रकार उसकी स्थापना की गयी थी और निर्णय करके जो कुछ उस स्तम्भ में लिखा गया था, उसका समर्थन ११ वीं शताब्दी मे सिद्धराज के द्वारा स्थापित स्तम्भ और पार्श्वनाथ के जैन मन्दिर के अस्तित्व से होता है। ये सभी इमारतें अब मसजिद के रूप में दिखायी देती हैं। फिर भी उनके द्वारा इस नगर की शोभा है और उनके देखने से हिंदू मुस्लिम गृह निर्माण कला के मिश्रण का सहज ही अनुमान होता है।

जहाँ पहले प्राचीन नगर था, वहाँ पर अब घना जंगल दिखायी देता है और प्राचीन इमारतों में अब केवल वहाँ पर दो मन्दिर बताये जाते हैं एक है, पार्श्वनाथ का और दूसरा है, महादेव का।

आज के काम्बे नगर मे कुछ भी देखने योग्य नहीं है। अहमदाबाद के किसी प्रसिद्ध पुरुष का यह कथन है (१) जो अपने निवास-स्थान को बड़े अभिमान के साथ महल कहता है और वह स्थान दिल्ली के सफदरजंग के नमूने पर बना हुआ कहा जाता है।

उसका यह कहना सही नहीं है। क्योंकि जिसके साथ उसकी समता की जाती है, उससे यह बहुत भिन्न है। फिर भी मैं उसके लिये कुछ कहना नहीं चाहता। क्योंकि उसके विरुद्ध मेरे कुछ लिखने से उसके विश्वास को आघात पहुँचेगा और मेरा ऐसा लिखना अच्छा न मालूम होगा।

हेमाचार्य के समय से बहुत पहले ही और अब तक खम्भायत जैन ग्रंथों के अध्ययन का एक प्रसिद्ध केन्द्र रहा है और यहाँ पर नगर के भीतर जैन मंदिरों की संख्या पचास और साठ से कम नहीं हैं, बल्कि कुछ अधिक है। जिस प्रकार दूसरे स्थानों मे जैनियों की संख्या अधिक होने पर उनके ग्रंथों के भण्डार होते हैं, उसी प्रकार यहाँ

---

(१) निजाम राज्य के संस्थापक का दादा अब्दुल्ला खान फीरोज जंग बहादुर गुजरात का सूबेदार था। उसकी कब्र आज तक अहमदाबाद मे मौजूद है। स्वयं निजाम भी थोड़े दिनों तक अहमदाबाद का सूबेदार रहा था। खम्भात की गद्दी का संस्थापक मोमिन खान बहादुर और उसका बेटा मोमिन खान दूसरा भी गुजरात का सूबेदार था।

जाती है, खारी पानी ही दिखायी देता है। हमारे साथ के लोग इस नमकीन पानी को लूणा पानी अथवा खारी पानी कहते हैं। मेरे तरह के व्यक्ति को—जो सदा और निरन्तर विन्ध्याकुल रहता हो—बीस वर्ष की गैरहाजिरी के बाद भी समुद्र का यह वातावरण प्रसन्न न कर सका। बड़ी देर के बाद ज्वार की दशा बदलने पर पानी अपनी साधारण अवस्था में आ गया। लेकिन सन्ध्या काल का समय अत्यन्त सुन्दर और मनोहर हो गया था और हमारा बजरा आधी रात तक धीरे-धीरे पानी में झूलता रहा। इसके बाद फिर ज्वार आ गया। उसी समय लंगर डालने का आदेश सुनायी पड़ा।

इस नये दृश्य को देखकर मैं अवाक्-सा हो गया। मैं टकटकी लगाकर उस दृश्य को देखता रहा और विभिन्न प्रकार की बातें सोचता रहा। मेरे अन्तरतर में एक नवीन स्फूर्ति जागृत हुई। मेरी यात्रा के साथी कैप्टेन वोर अपना वायलिन ले आये और मैंने भी अपनी बाँसुरी उठा ली। तारा के प्रकाश का सहारा लेकर हम दोनों नाव पर चढ़ गये और खाड़ी के जल में लहरें लेने वाली तरंगों के साथ हम लोग अपने बाजों को बजाते हुये आनन्द लेते रहे। इस मधुर अवसर पर हम दोनों एक दूसरे की प्रशंसा भी करते थे।

प्रातःकाल की ठंडी हवा चलने लगी। अठारह घण्टे के बाद पीरम द्वीप और बारह मील की दूरी पर फैली हुई पहाड़ियाँ हमें दिखायी देने लगीं। हम गोगो पर उतरे और खाड़ी के किनारे-किनारे यात्रा करते रहे। इस मौके पर हम अपने उस सामान की प्रतीक्षा करते रहे, जो भारी होने के कारण पीछे रह गया था।

गोगो बन्दरगाह की हालत अब बहुत खराब हो गयी है। वह अब बन्दरगाह के स्थान पर मल्लाह के रहने का एक स्थान बन गया है। वे मल्लाह देखने सुनने और शारीरिक गठन में बहुत-कुछ अरब वालों की तरह लेकिन अनेक बातों में प्रतिकूल भी मालूम होते हैं। लेकिन वे हिन्दू हैं और नहरवाला के राजवंश के द्वारा वे सदा सुरक्षित रहे हैं।

नहरवाला नगर में उन मल्लाहों के नाम पर टोला बसा हुआ है। उनके द्वारा विदेशों की सम्पत्ति हमेशा आती है। फिर भी गोगो की अवस्था कुछ सन्तोषजनक नहीं मालूम होती। यहाँ की पुरानी दीवारें अपनी पहली शक्ति को खो चुकी हैं। एक दिन था, जब इन दीवारों ने समुद्र के भयानक जन्तुओं से यहाँ के लोगों की रक्षा की थी। इसका दक्षिणी भाग—जिधर बहुत सी विभिन्न ऊंचाई की छतरियाँ बनी हुई दिखायी देती हैं—लम्बाई में बारह सौ गज से किसी हालत में कम नहीं है। लेकिन वह पश्चिमी दीवार के बराबर नहीं है। इधर का यह भाग समुद्र की लहरों के कारण निर्बल पड़ गया है और उसके नीचे का भाग बहुत-कुछ टूट गया है।

किसी समय गोगो उन राजपूतों का निवास स्थान था, जो गोहिल राजपूत कहलाते थे। नगर के दक्षिण पश्चिमी कोने की तरफ एक छोटा-सा किला है। उसी में ये लोग रहा करते थे। यहाँ पर ऐसे स्थान बहुत थोड़े हैं, जो देखने के योग्य हैं और उनमें एक बावड़ी भी है। उसके सामने का हिस्सा पत्थर का बना हुआ है। इन पत्थरों के बड़े-बड़े टुकड़ों में लगातार पानी की लहरों की टक्करें लगने से गड्ढे बन गये हैं। उनको देखकर इस बावड़ी की प्राचीनता का अनुमान किया जा सकता है।

उन पत्थरों में एक शिला लेख भी मालूम होता है। उसमें जो लिखा था, वह बहुत-कुछ मिट गया है। उस शिला लेख के स्थान पर गुजराती में लिखा हुआ एक दूसरा शिला-लेख लगा दिया गया है। यह शिला लेख ढाई सौ वर्ष से पुराना नहीं मालूम होता।

इन नये शिलालेखों में राजवाड़ा के चार का उल्लेख है। उसमें लिखा हुआ है—जो कोई इस जलाशय को अपवित्र करेगा, उसके माता पिता गधा और गधी के रूप में जन्म लेंगे। इसके साथ-साथ हमको अरबी और फारसी के लेख भी दिखायी पड़े, उनमें से एक पत्थर पर जफर खाँ बिन वजीर उल् मुल्क (के राज्य में) शाह उल आजम शम्स उद्द् रिकउद्दीन, सुल्तान मुजफ्फर का नाम भी खुदा हुआ है। इस लेख की तारीख १० रजब ७७७ सन् १३७५ ईसवी उसमें लिखी हुई है।

अहमदाबाद के इतिहास की रूप रेखा तैयार करने वाले विद्वान के लिए यह स्मारक अत्यन्त उपयोगी और काम का साबित होगा। इससे पता चलेगा कि गोगो में उस वंश ने अपने रहने का निवास स्थान बनाया, जिसने भविष्य में बहुत बड़ी उन्नति की।

वजीर-उल मुल्क टाक अथवा तैटिक भारतीय जाति का एक राजा था, उसने अपना धर्म छोड़ दिया था। उसके इतिहास का वर्णन मैंने दूसरे स्थान पर किया है। उसके बेटे जफर खाँ को मण्डोर के राजपूत सरदार चूँडा ने चौदहवीं शताब्दी के अंत में नागौर से निकाल दिया था। मारवाड़ की वर्तमान राजधानी जोधपुर को बसाने वाले जोधा का चूड़ा पितामह था। जफर खाँ राजपूतों के बीच में अपना राज्य कायम करना चाहता था। लेकिन उसको सफलता नहीं मिली। जफर खाँ की यह असफलता चूड़ा के लिए वरदान साबित हुई। इसलिए कि उसको अगर वहाँ पर सफलता मिल भी जाती तो भी वह अधिक दिनों तक ठहर नहीं सकता था। इसके साथ साथ, नहर वाला की राजधानी में विरोध का कोई मौका नहीं पैदा हुआ। इस दशा में उसकी अभिलाषा की पूर्ति के लिए आसानी के साथ उसको एक अच्छा क्षेत्र मिल गया।

पत्थर के इस लेख के चौंसठ वर्षों के बाद वजीर उल मुल्क के पौत्र और जफर के बेटे अहमद ने साबरमती के किनारे अपने नाम पर नवीन राजधानी बसायी। हमको इसके सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं है कि अहमद के पूर्वजों ने इस व्यावसायिक

बन्दरगाह गागा को गोहिलों से किस प्रकार प्राप्त किया था, जिसको वे सम्वत् १२००- से अपने अधिकार मे किये थे और कन्नौज के राठौर राजपूतों के आक्रमण के कारण उनको मरुभूमि मे खेर घर छोड़ना पड़ा था। लेकिन इस विषय को हम गोहिल वश के साथ लिखने के लिए यहाँ पर छोड़े देते हैं। इसका कारण यह है कि इस वश का इस प्रदेश म अब भी राज्य मौजूद है और सोरा प्रायद्वीप का एक भाग गोहिल वाडा के नाम से आज भी प्रसिद्ध है।

अब हम उस प्रदेश में प्रवेश कर चुके हैं, जहाँ पर विभिन्नता और अनेक प्रकार की प्रतिकूलता है। मुझे अपना अगला कार्यक्रम इसी भाग मे होकर पूरा करना है। ऐसी दशा मे यह अत्यन्त आवश्यक है कि यहाँ के प्राचीन और वर्तमान इतिहास की खोज का काय आरम्भ किया जाय और यहाँ पर राज्य करने वाली जातियों का पता लगाया जाय।

सौराष्ट्र का अर्थ होता है सोरों का देश। सौर जाति प्राचीनकाल से सूर्य की पूजक रही है। उसके विकास का इतिहास अतीतकाल के अधकार म विलीन हो गया है। यह जाति एशिया की उन गेटिक भारतीय जातियों मे से एक है, ऐसा कहना और होना असगत और असम्भव नहीं होगा, जिनकी सख्या चारो तरफ बहुत पहले से पायी जाती है। इसके प्रमाण इतिहासो मे बहुत काफी पाये जाते हैं, क्योकि अब तक उस जाति के जो लोग बच-बचाये मिलते है, उनके रहन सहन और रीति रिवाजो से पूरे तौर पर इसका समथन होता है।

१ सूय के उपासको में जो लोग आज तक पाये जाते हैं, वे काठी, कामानी, और व्वालो के साथ बसे हुए देखे जाते हैं। उनका शारीरिक गठन, आकार-प्रकार, सूरत-शक्ल उन जातियो से बहुत कुछ मिल जुल गयी है जिनके बीच मे उनको शताब्दियो से रहने का मौका मिला है, लेकिन फिर भी यह साफ-साफ जाहिर होता है कि वे मौलिकरूप से भिन्न जाति की सतानें हैं।

सौर जाति के लोगो ने इस प्रायद्वीप में कब अधिकार किया, इसकी हमें कोई जानकारी नहीं है। लेकिन जस्टिन, स्ट्राबो, टालमी और दोनों एरियनो के आधार पर हम इस बात की खोज कर सकते हैं कि सौर जाति के आक्रमण का समय सिकन्दर महान का समकालीन था। सोरा के देश पर मीनाडर और अपालाडोटस् की विजय के सम्बन्ध मे विद्वान बेयर और स्ट्राबो के फ्रेंच अनुवादकों ने एक बड़े विवाद को उत्पन्न कर दिया है। वे सौर को फोनिक्स के साथ मिला हुआ देखकर हिन्द महासागर के सोरिया को मध्यसागर के सीरिया और फोनीशिया म बदल रहे हैं।

अपनी छिन्न भिन्न और बची-बचाई सेना को लेकर, जिसमें उन्होंने अपनी गेटिक भारतीय प्रजा को भी सम्मिलित कर लिया था, बेक्ट्रिया के राजाओं के वास्ते

एरिया और अराकोशिया में होकर सिन्धु घाटी के रास्ते से सौराष्ट्र में अन्य रेतीले मैदानों के जगलों और धनुओं के द्वारा अवरुद्ध सीरिया के सम्बे माग का अवलम्बन लेने की बनिस्बत अधिक आसान था। भारतीय सीरिया के लिये प्राचीन अधिकारी विद्वानों के द्वारा प्रयुक्त सोराष्ट्रिनो और सायराष्ट्रीनी शब्दों की अधिक छानबीन किये बिना ही सुगमता के साथ हमको सौराष्ट्र शब्द मिल जाता है और अगर हमको यहाँ के प्राचीन चाँदी के सिक्कों और चट्टानों पर खुदे हुए लेखों में प्रयोग किये गये विभिन्न लेकिन पूरा, लिपि के अक्षरों की पूरी जानकारी हो जाय, तो ऐसी दशा में हम कम से कम मुकुट धारण करने वाले राजाओं के नाम तो मालूम कर ही सकते हैं, जिनकी मूर्तियाँ सिक्कों में अग्निवदिया के दूसरी तरफ छपी हुई हैं और जिनके पास लगे हुए चित्र, एरिया के प्राचीन सूर्य और अग्निपूजक वासियों के साथ एकता और समता की घोषणा स्पष्ट रूप में कर रहे हैं। (१)

इस विषय में आग्रह करने की आवश्यकता नहीं है कि सौर जाति के लोग—जिनके वैभवशाली होने का प्रमाण प्राचीन लेखकों के द्वारा मिलता है—उसी वंश के हो सकते हैं, जिसको हेरोडोटस ने सौरामेटी लिखा है। यह जरूर है कि वही संस्कार उन्हीं नामों से, बिना किसी प्रकार के परिवर्तन के उन्हीं त्योहारों के दिनों में, उन्हीं देवताओं के लिए भारत के प्रायद्वीप सीरिया में भी सम्पन्न होते हैं, जो मध्य सागर के निकटवर्ती सीरिया में माने जाते हैं।

इस विषय पर मैंने दूसरे स्थान पर विस्तार के साथ लिखा है, इसलिये यहाँ पर इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि सीरिया में—जिसको बाल अथवा बेलसून कहा जाता है—वही सौरों के बालनाथ हैं और सोमनाथ का विशाल मंदिर सीरिया देशीय 'बालबक का ही दूसरा रूप है।

निम्न लोक अथवा चन्द्रमा के मण्डल का अधिष्ठाता होने के कारण सोमनाथ बाल का ही पर्यायवाची है। पूजा की सामग्री के साथ सूर्य इसरायलियों के प्रत्येक पहाड़ी पर खड़े स्तम्भों और प्रत्येक पेड़ के नीचे स्थापित पीतल के बैल को शामिल कर लीजिये तो वे हमारे लिङ्गम अथवा नन्दिकेश्वर हो जाते हैं, जिनकी विशेष रूप से महानता और पवित्रता मानी जाती है।

इसमें कोई दूसरी कमी नहीं रह जाती। केवल इतना ही अन्तर पड़ता है कि सीरियन लोगों ने पूजा के लिये दिन निश्चित कर रखा है और उस दिन वे लोग निश्चित रूप से पूजा करते हैं। यह दिन प्रत्येक महीने का पन्द्रहवाँ दिन माना जाता

(१) इस पुस्तक के लिखे जाने और लेखक की मृत्यु के बाद इस तरफ बहुत कुछ कार्य हो चुका है। उसके परिणाम लेखक की खोजों और अनुमान का समर्थन करते हैं।

है। यहाँ पर हमको सौरों और भारतीय दूसरी जातियों में एक और समानता मिलती है। अमावस का दिन चन्द्रमास के कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षों को एक, दूसरे से विभाजित करता है। जब सूर्य और उसका उपग्रह अतरिक्ष मे आमने-सामने होते हैं। एक अस्त होता है और दूसरे का उदय होता है तो साबीना की तरह हिन्दू भी अपनी टोपियाँ नवीन चाँद की तरफ फेंकते हैं और लोगों को दावतें देते हैं।

समानता की ये सभी बातें आयी कहाँ से ? यह एक प्रश्न पैदा होता है। हम भली प्रकार जानते हैं कि आकाश के ग्रह मण्डल की पूजा प्राकृत धर्म का आधार है। लेकिन यहाँ पर कुछ ऐसी विशेष बातें है, जो सम्पर्क के बिना एक, दूसरे में नहीं आ सकती। इन विषयों पर हम आगे के पृष्ठों मे समय और सामग्री के अनुसार विचार करेंगे।

प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों मे सौराष्ट्र को भारत का एक अग माना गया है। मनु ने इसका उल्लेख किया है। पुराणों में और दूसरे ग्रन्थों मे भी इसके सम्बन्ध मे विवरण पाये जाते हैं। लेकिन महाभारत में इसके वर्णन को विशेषता दी गयी है, इसलिये कि कृष्ण और दूसरे नेताओं के केवल पौरुष एवम् मृत्यु के दृश्य यहाँ पर सामने आये थे। इसलिये यद्यपि इन प्रमाणों के आधार पर हम इस प्राय द्वीप में सौर जाति के बसने का ठीक निर्णय नही कर सकते, परन्तु यह अनुमान लगाना असगत नही हो सकता कि इसका समय सिकन्दर महान से कई शताब्दी पहले का था और जाहिर तो यह होता है कि यह समय (साँल) (१) का समकालीन अथवा उससे एक शताब्दी पहले का हो सकता है। जब कि टायरो फोनिशियन उपनिवेश सभी क्षेत्रो में फैलते जा रहे थे।

अनहिलवाड़ा को स्थापना करने वाला वंश उस सौर जाति का था, जो समुद्र के किनारे पर बसी हुई थी और उन लोगों के कार्य समुद्र के किनारे जहाजों से सम्बन्ध रखते थे। इनमे से कुछ जातियों मे अनेक प्रकार की विचित्र परम्पराएं पायी जाती हैं। जो उनके धर्म से तो सम्बन्ध नही रखती लेकिन उनसे जाहिर होता है कि वे अरब और लाल सागर से सम्बन्ध रखते हैं। इनका वर्णन आवश्यकतानुसार आगे किया गया है। और इन शिला लेखों के उल्लेखों से इस सत्य का समर्थन है।

इन क्षेत्रो में जितने भी राजवंशो के नाम आये हैं, उनमे किसी दूसरे सौराष्ट्र का उल्लेख नही है। यह जरूर है कि अकबर के समय तक इस प्रायद्वीप का एक हिस्सा सोरठ कहलाता था। उसकी राजधानी जूनागढ थी और वह गहलोत (मेवाड के राणा लोगो की जाति के) राजाओं के अधिकार में थी। बादशाह के यहाँ उस जाति के लोग सेना मे काम करते थे, इसका वर्णन अबुलफजल ने किया है, यद्यपि उस समय को।

---

(१) (किश) का लडका (साँल) इजरायल के यहूदियों का पहला बादशाह था।

बीते हुये तीन ही शताब्दियाँ गुजरी हैं, लेकिन अब इस क्षेत्र में एक भी महलात नहीं रह गया।

यह प्रायद्वीप इन दिनों में बहुत सी छोटी-छोटी रियासतों में बटा हुआ है। यद्यपि काठी लोगों के अधिकार में इसका बहुत-थोड़ा सा हिस्सा है, परन्तु किसी परम्परा के अनुसार इस मेटिक भारतीय जाति के नाम पर इस पूरे प्रायद्वीप का नाम रखा गया है और इस प्रकार काठियावाड़ से सौराष्ट्र पराजित हो गया है। बीच के दिनों में काठी लोगों के उत्थान के पहले इस प्रदेश का एक ऐसा नाम था, जिससे हिन्दू भूगोल के विद्वान भली प्रकार परिचित थे। उसका नाम था, लार देश यह नाम लार जाति के नाम पर रखा गया था।

सौराष्ट्र अनहिलवाड़ा राज्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण हिस्सा है। हिन्दुस्तान में इस प्रकार का कोई दूसरा प्रदेश नहीं है, जिसकी समता सौराष्ट्र के साथ की जा सके। जगत अन्तरीप से खम्भात की खाड़ी तक इसकी चौड़ाई लगभग एक सौ पचास मील है और बनास तथा सरस्वती नदियाँ उसमें गिरती हैं। उस छोटे उत्तरी रण से चावड़ों की पुरानी राजधानी देवबन्दर तक का विस्तार भी करीब करीब इतना ही है। इसके चारों तरफ समुद्र है। उत्तर में दोनों खाड़िया के सिरे एक-दूसरे से मिल गये हैं और सिर्फ साठ अथवा सत्तर मील की पर्वत श्रेणी से—जिसको हिन्दू भूगोल के विद्वान पार्वती कहते हैं बहुत से झरने निकलकर इस क्षेत्र में आते हैं और दोनों समुद्र की तरफ प्रवाहित होते हैं। यही कारण है कि यहाँ की जमीन में कई तरह की मिट्टी पायी जाती है।

इन पहाड़ियों में सभी प्रकार का इमारती समान पाया जाता है। यहाँ की नदियों में मछलियों की संख्या बहुत अधिक है और उन नदियों के किनारे घने जङ्गल हैं। ऐसा मालूम होता है कि अनहिलवाड़ा के राजवंश के समाप्त होने के बाद यहाँ के लोग स्वतन्त्र हो गये और लूटमार का काम करने लगे। उन लोगों का यह क्रम उस समय तक चलता रहा, जब तक कि गायकवाड़ राजाओं ने इस प्रदेश के भागों पर अपना और अपने सामन्तों का अधिकार न कर लिया था।

यहाँ के मुख्य विभाग इस प्रकार हैं—खम्भात की खाड़ी पर गोहिलवाड़ा अथवा गोहिलों का क्षेत्र, उत्तर में झालावाड़ जहाँ पर झाला राजपूत बसते हैं, पश्चिमी में नवानगर जहाँ जाडचों की एक शाखा के जैन रहते हैं। पोरबन्दर में बालों का अधिकार है, जूनागढ़ में एक मुसलमान सरदार है। इनके अतिरिक्त कुछ और भी छोटे छोटे जिले हैं।

केन्द्र में काठी लोग रहते हैं और चावड़ों की प्राचीन राजधानी देवबन्दर पर तीन शताब्दियों से पुर्तगालियों का अधिकार है। उसका नाम उन लोगों ने बदलकर

(लुप्त) कर दिया है। प्रायद्वीप के इन भागों में उपरोक्त मूल जातियों के सिवा बहुत सी सौथिक जातियाँ भी पायी जाती हैं। जैसे, कामरी, जो अब जेठवा कहलाते हैं, कोमानी, मकवाणा, जो अपने आपको झाला राजपूतों में मानते हैं, जोतवार के जोत और दूसरी भी बहुत-सी मिश्रित जातियाँ हैं। जैसे मोरिया, काबा इत्यादि। इन सबके सम्बन्ध मे आवश्यकतानुसार आगे वर्णन किया गया है।

यही बात है कि जातियों की विभिन्नता के सम्बन्ध में चाहे वे देशी हो अथवा विदेशी—सौराष्ट्र के साथ हिन्दुस्तान के दूसरे किसी भी प्रदेश की तुलना नही की जा सकती। यहाँ पर नीली आँखों वाले और गोरे काठियों से लेकर—अब भी उतने ही आजाद हैं, जितने कि उनके पूर्वज मुलतान मे मैसीडोनिया वालो से लडने के समय आजाद थे—काले और तेज आँख वाले जगली भीलो तक सभी जातियों के लोग मिलते हैं। ऐतिहासिक शोधकर्ता के लिये उपयुक्त स्थान होने के साथ साथ यह प्रदेश एशिया के इस समुद्री कोने की तरफ मनुष्य को आकर्षित करने वाले सभी धर्मों के इतिहासो का केन्द्रीय स्थान है।

बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में दो बातो में एक निश्चित रूप से मजूर करनी पडती है। इसका या तो जन्म ही यहाँ पर हुआ था अथवा एशिया तक पहुँचने के लिये इस धर्म की जड आरम्भ मे यही पर कायम की गयी थी।

इस प्रश्न पर एक यह विवाद पैदा होता है कि यहाँ पर कृष्ण की उपासना प्राय उतने ही उत्साह और भक्ति के साथ की जाती है। लेकिन अगर हम परम्पराओ पर विचार करें तो यह मानना पडेगा कि यह उपासना बुद्ध की पूजा का एक अग है। पुरातत्व के अन्वेषको और शिल्प शास्त्रियो का अपने अनुसधानो के लिये यहाँ पर बहुत अच्छा अवसर है। इसलिये कि उन्हे यहाँ के लेखो की लिपियों को खोलकर पढना और मन्दिरों की रचना करने वाले मस्तिष्कों के आधार पर अनुमान करना होगा, जिनके द्वारा उनके सस्थापकों का धर्म स्थायी हो गया है।

किसी पहाडी की चोटी अथवा समुद्र के किनारे पर दिन के प्रकाश मे अथवा बरसात के बादलो के अधकार मे एक शिल्पी यहाँ के दृश्यो को देखकर प्रसन्न हो उठेगा। वह सामनाथ के मन्दिर और शिव के आचारो के साथ सयोजन कर सकता है अथवा राधा के प्रेमी के मन्दिर पर सौन्दर्य का चित्रण कर सकता है। वह पहाड पर शक्ति के उपासक के मन्दिर की तरफ जितना ही चढता जायगा, उतना ही गम्भीर से गम्भीर एवम् सूक्ष्म से सूक्ष्म वर्णन करने के भाव उसके सामने अपने आप आते जायेंगे।

यह दशा उस प्रदेश की है, जिसमे होकर मुझे जाना है और जहाँ की परिस्थितियो पर प्रकाश डालकर अपने पाठकों के सामने उनको प्रस्तुत करना है। इस क्षेत्र में अध्ययन की इतनी अधिक सामग्री है कि उनको लेकर कितने ही ग्रन्थ तैयार

किये जा सकते हैं। लेकिन मेरे लिये यह सम्भव नहीं है। इसका कारण यह है कि मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं उस सामग्री का पूरा उपयोग कर सकूँ। लेकिन समय के कारण और विशेषकर उसके अभाव के कारण मुझे जो काम करना चाहिये था, उसे कर नहीं पाऊँगा। तथा यहाँ मैं अपनी पूर्व जानकारी के आधार पर सौराष्ट्र प्रायद्वीप के बहुत-से महत्वपूर्ण विषयों में से कुछ पर प्रकाश डालने की चेष्टा करता हूँ।

अब हम गोगो बन्दर आ रहे हैं, जहाँ बारहवीं शताब्दी के अन्त में मारवाड़ से निकलकर जिस जाति लोगों ने शरण ली थी। उसका नाम इसी स्थान के नाम से एवम् प्राचीन नाम से कुछ साम्यीयता तथा भिन्नता प्रकट करते गोगरा गोहिल पड़ गया था। आजकल वहाँ पीरम टीबू बना हुआ है। वहीं पर गोगो से भी पहले गोहिल लोग आकर बसे थे। उस समय इस स्थान की परिस्थिति कुछ और थी। इसकी सीमा अधिक नहीं थी और अपने प्रदेश के साथ यह छोटा सा क्षेत्र जुड़ा हुआ था। गोगा बन्दर का यह एक मजबूत किला बना हुआ था। उसके इतिहास की कुछ ऐसी सामग्री हमको मिलती है, जो घनिष्ट और मनोरंजक होने के साथ साथ समकालीन है, उससे पीरम की प्रधानता का मजबूत प्रमाण मिलता है।

मेवाड़ के इतिहास में सन् ११०३ ईसवी में मल्ला के द्वारा उस देश पर जोरदार आक्रमण हुआ था, उस अवसर पर आक्रमणकारी के विरुद्ध युद्ध करने के लिये जो लोग एकत्रित हुए थे, उनमें पीरम के गोहिलों का भी नाम आया है। उस ग्रन्थ का अनुवाद करने के समय तक मुझको गोहिलों के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं थी और न अब तक कुछ है।

गोहिलों के इतिहास और उनके वर्णन में इन घटनाओं का बराबर उल्लेख किया गया है। उनकी बहादुरी ने उस जाति के गौरव को बढ़ाया है। जिस सरदार के शौर्य के कारण इस देश के इतिहास में गोहिलों का मस्तक ऊँचा हुआ है, उसका नाम अजैराज था। जब वह किसी यात्रा से लौट रहा था, उस समय चित्तौर के सम्मान के लिये उसने युद्ध किया था। उस युद्ध में वह अपने सैनिकों के साथ मारा गया था। वह अपनी वीरता के लिये पहले से ही रावल की पदवी प्राप्त कर चुका था। उसके उत्तराधिकारी आज तक इस पदवी के अधिकारी हैं और सभी रावल कहलाते हैं।

उस सरदार के वंशज ने, जो आज भी वर्तमान हैं मुझे बताया कि उसके किसी पूर्वज को चित्तौर के राणा की लड़की सूजन कुमारी के साथ विवाहित होने का गौरव प्राप्त हुआ था। लेकिन मल्ला के आक्रमण के अवसर पर उस नवविवाहिता पत्नी को सती होना पड़ा था। इस कथानक का सम्बन्ध एक दूसरे उपाख्यान के साथ आया है। यद्यपि यह विषय पीरम की प्राचीन नगरी के साथ सम्बन्ध रखता है, जो गोगो से आने वाली जाति का नाम है। इस जाति के अध पतन का वर्णन वारो डे गामा ने अपने अनुसंधानों में किया है।

सन् १५३२ ईसवी में जब हिन्दुस्तान मे पुर्तगाल का गवनर नन्हा-दे कान्ह ड्यू पर अधिकार करने की कोशिश में सफल नही हुआ तो उसने अपने एक कप्तान एंट ोनिओ दे मालदन्हा को लूटमार के लिये वहाँ पर अधिकार दे दिया था। उस कप्तान ने ड्यू से कुछ मीलों की दूरी पर सौराष्ट्र के दोनो किनारो पर बेरहमी के साथ लूटमार आरम्भ कर दी। गोगो और पट्टन (पाटण सामनाथ) को जला दिया गया और वहाँ की सारी सम्पत्ति लूटी गयी।

इसके पाँच वर्षो के बाद उन पुर्तगालियों ने गुजरात के बादशाह को धोखा देकर मार डाला। सन् १५४० इसवी में गोगा पर फिर से उन लोगो ने आक्रमण किया, आग लगाकर विध्वस और विनाश किया। वहाँ के रहने वाले, स्त्री पुरुष और बच्चो को काटमार कर फेंक दिया गया, पालतू पशुओ की बुरी तरह हत्या की गयी। आसपास के नगरों और गाँवो के जो लोग मिले, उनको मार डाला गया। चारों तरफ लूटमार और आग लगाने के भीषण अत्याचार चलते रहे। दूसरे धर्म-वालो के साथ ईसाइयो के जो युद्ध हुए थे, उनसे पहले की ये घटनायें हैं। इस प्रकार के अमानुषिक व्यवहार उन लोगो के थे, जो अपने-आपको उस महान धर्म का अनु-यायी होना घोषित करते हैं, जिस धर्म का सबसे पहला उपदेश यह था कि 'अपने पड़ोसी से प्रेम करो।'

'ला इल्लाह मोहम्मद रसूल ए अल्लाह' कहकर जिन लोगों ने कलमा पढ़ लिया अथवा अपनी जान बचाने के लिए जिसने मुह माँगी रकम दे दी तो ऐसे काफिरो की जान बख्शी गयी। आश्चर्य तो यह है कि इस प्रकार के अमानुषिक जुल्म धर्म के नाम पर किये गये और ऐसा करके ईश्वर को प्रसन्न करने पर विश्वास किया गया। इन अत्याचारो को रोकने और उनका बदला देने की शक्ति भारत मे न रह गयी थी, जिन लोगो ने दूसरे धर्मों को स्वीकार नहीं किया था वे कीड़ों-पतिगों की तरह मारे गये थे।

इन अत्याचारो के साथ-साथ कुछ मनुष्यो के अच्छे कार्यों की झलक भी मिलती है और उनकी उदारता ने मनुष्य जीवन के सम्मान की रक्षा की है। इस प्रकार के कठिन अवसर पर अलबुकर्क ने अपने एक वर्णन में लिखा है कि उस लूट मार और आगजनी के फलस्वरूप वहाँ के लोग भयानक मुसीबतो म आ गये थ और लोगों के जीवित रहने के लिए, जो बाकी रह गय थ, धन की जरूरत थी। उनकी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उसने वहाँ के लोगो के नाम एक घोषणा प्रकाशित की। उसमें बताया गया कि मूछ के एक बाल गिरवी करके धन दिया जाता है। जिसने यह घोषणा की उस पुर्तगाली को इस देश और प्रदेश के लोगो के विश्वास का पता था। वह जानता था कि ये लोग अपने मूछ के बाल का बड़ा सम्मान करते हैं और सबसे

बड़ी वे उसको प्रतिष्ठा मानते हैं। उसने अपनी उस घोषणा के द्वारा एक बहुत बड़ी उदारता का परिचय दिया था।

भावनगर—नवम्बर यहाँ पर गोहिला की राजधानी थी। यह नगर गोगो से उत्तर पश्चिम में आठ मील के फासिले पर एक छोटी-सी नदी पर बसा हुआ है। यह नदी कुछ मील आगे जाकर खाड़ी में मिल जाती है। गोगा से लेकर यहाँ तक की जमीन साफ और बराबर है। नगर के करीब जो जमीन है, वह कुछ ऊंची नीची है। उसके समीप पहुँचने पर आमो के बाग और ऊंची गुम्बददार छतरियाँ दिखायी देने लगती है।

जब हमने नगर मे प्रवेश किया तो हमको कोई आकर्षक दृश्य दिखायी नही पड़ा। बाजारो मे धनी व्यक्ति घूमते हुए जरूर नजर आये। चन्द कवि के अनुसार एस लोगो स किसी भी नगर को शोभा बढ़ती है। अगर मैं उस कवि की भावुक पंक्तियो का समर्थन करू, तब तो मुझे कहना पड़ेगा कि भावनगर एक सुन्दर नगर था।

भावनगर की स्थापना चार पीढ़ी पहले गोगा के सरदार भावसिंह न की थी और उसी क नाम पर इस नगर का नाम रखा गया था। वर्तमान ठाकुर का नाम विजयसिंह है। वह स्नेह और श्रद्धा के साथ मेरे स्वागत के लिए बहुत चलकर आया और अपनी राजधानी मे लिवा जाने के लिए उसने अनुरोध किया।

किसी भी राजपूत में मैं मैत्री के भावो को अनुभव करता हूँ। हिन्दूपति के दरबार से, जिसने इस ठाकुर क पूर्वजो का गौरव बढाया था, आने के कारण यहाँ पर सौहार्द और मैत्री पूर्ण व्यवहार प्राप्त करना स्वाभाविक था। इसक साथ साथ एक बात और थी, मेरे मित्र मिस्टर विलियम्स से मिलने का भी आनन्द मुझे प्राप्त हुआ।

घोड़ों पर बैठकर हम लोग कई मील साथ-साथ आये। इस छोटी सी यात्रा में हम लोगों की आपस मे जो बाते होती रही, वे बहुत सुखकर और स्नेहवर्द्धक थी। आगे जान पर नक्कारो और सनाओ के द्वारा मेरा अभिवादन हुआ। राजधानी म प्रवेश करने के पहले ही हम लोगों मे बहुत सी बातें हुई। खेरधल से उनके निकलने के सम्बन्ध में, उनके वंश और इतिहास के सम्बन्ध में, उनकी नीति और आमदनी के विषय म, शत्रुता और मित्रता क प्रश्नों पर हमने विस्तार में किन्तु स्पष्ट जानकारी प्राप्त की। इसके लिए मुझे अच्छा मौका भी मिला।

राजपूतो के साथ प्रारम्भ स ही मेरी घनिष्टता और सहानुभूति रही है। इसलिए उनक पूर्वजों के प्राचीन इतिहास को जानने की मेरी स्वाभाविक इच्छा थी। इसलिए दूसरी महत्वपूर्ण बातो की तरह मैंने इस विषय में भी निष्कर्ष निकाला कि

मीडाज (१) लोगों की तरह राजपूतों के नियम अटूट थे। ठाकुर की सवारी के आगे-आगे उसके पूर्वजों की परम्परा के स्थान पर अरबी बाज वालों की एक टुकड़ी, उसके यश का गाना गाती हुई चल रही थी। उस टुकड़ी की सजावट एक विचित्र ढंग से की गयी थी। लेकिन देखने में अच्छी लगती थी।

उसके दरबार में भी इसी प्रकार के मनोरञ्जक दृश्य थे। दिन के तीसरे पहर जब हम लोग महल में पहुँचे तो वहाँ पर एक अजीब तरह का समाज देखा जैसा पहले कभी नहीं देखा था। यहाँ पर अरबी और राजपूतों का सम्मेलन था और वहाँ की प्रत्येक बात में दोनों प्रकार की छाया देखने को मिलती थी। दीवान खाना सुन्दर-सुन्दर झाड़-फानूसों से सजा हुआ था, परन्तु उनके दुसखे लकड़ी के लट्ठों पर खड़े किये गये थे। उनको देखकर मालूम होता था कि वे किसी डाक-याड से लाये गये हैं। वहाँ पर बड़ी से बड़ी नावें रस्सों से इनमें बाँधी जाती होंगी।

उनकी छत में बहुत पास पास काँच के टुकड़े जड़े हुए थे और उनमें दीवारों पर बने हुए राजाओं के चित्र दिखाई दे रहे थे। उनकी स्मृति के साथ अङ्गरेजों के अटूट सम्पर्क थे। उनमें प्रमुख रूप से तीसरे जार्ज (२) और उनकी रानी थी। सम्राट के

(१) जब आर्य लोगों का एक बड़ा गिरोह तुर्किस्तान और ईरान की तरफ आया तो अधिकांश लोग हिमालय की तरफ चल गये और कुछ लोग छोटी-छोटी टुकड़ियाँ बनाकर पठार के पश्चिमी भागों में आबाद हो गये। घटना ईसा से दो हजार वर्ष पहले की है। कई शताब्दी तक ये लोग छोटे-छोटे राज्य बनाकर रहते रहे। अन्त में उनके दो समूहों ने छोटे छोटे गिरोहों का नेतृत्व आरम्भ किया। ये दोनों गिरोह मीडीज और पर्सियन्स के नाम से प्रसिद्ध हुई। मीडीज लोगों का अधिकार पश्चिमी ईरान के उत्तरी और मध्य भाग पर था। ईसा से नौ शताब्दी पहले इन लोगों का असीरिया के साथ संघर्ष हुआ। लेकिन छिन्न भिन्न टुकड़ों में बटे होने के कारण इन लोगों में अनुशासन और सङ्गठन की कमी थी। इसलिये इनको अधिक सफलता नहीं मिली। इसके बाद इन लोगों ने वर्तमान हमदान के स्थान पर अपनी राजधानी कायम की। यह स्थान घोड़ों की उत्तम नस्ल के लिये बहुत उपयोगी है। कुछ समय के बाद इनके पास घोड़ों, ऊटों और खच्चरों के रूप में एक बड़ी सम्पत्ति हो गयी। इन लोगों ने असीरिआइ साम्राज्य का आघात पहुँचाने में समर्थ हुए, युद्ध करते करते ये लोग बहुत मजबूत और लड़ाकू हो गये थे। हिस्ट्री आफ दी वर्ल्ड।

(२) जार्ज तीसरे का पूरा नाम जार्ज विलियम फ्रेडरिक था। इसका शासन काल १७६० ईसवी से १८२० ईसवी तक था। अङ्गरेज जाति में इसको अधिक सम्मान मिलने का कारण यह था कि वह शुद्ध अङ्गरेज था और अपने पूर्ववर्ती राजाओं की तरह जर्मन कुल में उत्पन्न नहीं हुआ था। जिनको इङ्गलैण्ड के लोग विदेशी समझते

इन चीज़ों की सहायता से सिंधिया ने एक बार अपने एक सरदार को डरा दिया था। वह सरदार कुछ ऐसा भयभीत हो गया कि उसको बीमारी का एक दौरा आरम्भ हो गया।

रासायनिक प्रयोगो से लोगों को तो विशेष विस्मय होता ही था। लेकिन चीजों और रङ्गों के परिवर्तन को देखकर यह कहना पड़ता था कि यह कौन-सा रहस्य है? इन सभी चीजों में सबसे अधिक आश्चर्य पैदा करने वाला कैमरा आब्स्क्यूरा (१) था, उससे बड़े से-बड़े आदमियों को भी मनोरञ्जन होता था और उससे उदयपुर के महाराणा को अन्तिम घड़ियों में भी कुछ आराम मिला था। वे मुझसे कहा करते थे—'आप मेरे मन की औषधि ले आये हैं।

मैं इन सब चीजों को दिखाने के लिये रोजाना कई घण्टे उनके पलङ्ग के पास बैठा करता था। ऐसे अवसरों पर उनके पलङ्ग के आस पास चारों तरफ घेरकर जनाने लोगों की स्त्रियाँ बैठा करती थीं। वे परदा नहीं करती थीं। मैं उन स्त्रियों के नाम और काम—दोनों से परिचित नहीं था। कुछ इतना ही समझता था कि वे राजा लोगों की चुनी हुई कुछ दासियाँ हैं।

इसके बाद ठाकुर के सबसे छोटे लड़के ने हमको अपने चीनी के खिलौने दिखाये। मैंने उनमें से एक-एक खिलौने को देखा और प्रत्येक खिलौने की मैंने प्रशंसा की। इस मौके पर मैंने अपने मेजमान को बहुत खुश पाया, उसके इस प्रकार के व्यवहार से मुझे कोई बाधा नहीं पहुँची।

विजयसिंह के दरबार से चलकर मैं उसके बन्दरगाह पर गया, उसकी उसने बड़ी प्रशंसा की थी। हिन्दुस्तान की मरुभूमि से भागकर आये हुये एक राजपूत सरदार का व्यापारी के रूप में जहाज का व्यवसायी बन जाना एक अद्भुत अनोखी बात है। वहाँ पर मैंने दो जहाज देखे। एक तो बर्फ की तरह सफेद रङ्ग का था, उसमें अठारह बन्दूकों के सूराख थे। दूसरा दो मस्तूलवाला जहाज था। छोटी-छोटी नावों, डोंगियों, दो मस्तूले जल वाहनों के सिवा सभी जहाज गोहिल सरदार के थे। उसने अपने सबसे

सीफियस की पत्नी ने यह घोषणा की थी कि वह जल की परियों से भी अधिक सुन्दर है। इस घोषणा से परियाँ नाराज हो गयीं। और उस झगड़े से समुद्र के देवता पोसीडान ने जल की परियों का पक्ष लेकर एक जल के राक्षस को सीफियस के राज्य में मनुष्यों का आहार करने के लिये भेज दिया। जब पर्सियस अपने आदमियों के साथ वहाँ पहुँचा तो कुमारी को बंधा हुआ देखा। दोनों में प्रेम उत्पन्न हुआ और उनका विवाह हो गया।

(१) अँधेरे कमरे में सफेद दीवाल के ऊपर पदार्थों का छाया चित्र फेंकने वाला एक यन्त्र।

बडे जहाज का इतिहास बडे अच्छे ढङ्ग के साथ बताना आरम्भ किया। जा मोजाम्बिक (१) से गुलामो का एक गिरोह ले जाते हुए पकडे जाने के कारण बम्बई की जहाजी अदालत के द्वारा खारिज कर दिया गया था। उसने बताया कि उसका उस व्यापार के साथ कोई सम्ब घ नही था। उसने एक व्यापारी को किराये पर दिया था और वह उस व्यापारी से केवल उसका किराया चाहता था। जहाजो के व्यापार के नियमो को न जानने के कारण वह कुछ भी कह सकता था और कर सकता था। उसकी अधिकाश आमदनी बन्दरगाह के कर से थी। यह आमदनी पहले सात लाख तक हो जाती थी, लेकिन जब से हमने पडोसी बन्दरगाहो और व्यापारिक मण्डियो, जैसे घोलारा आदि पर अधिकार कर लिया है, उसकी यह आमदनी आधी से भी कम रह गयी है।

जमीन के लगान से भी उसको लगभग इतनी आमदनी होती है और सब मिला कर सात लाख के करीब आमदनी हो जाती है। उसने मुझे बताया कि गोहिलवाड प्रदेश में भीतर और बाहर कुल आठ सौ ग्राम उसके अधिकार मे थे और वास्तव मे वे प्रायद्वीप के चौथाई भाग के मालिक थे। इसके सिवा कठियावाड, झालावाड और बाबरियावाड में जीतकर बहुत सी भूमि पर उसने अधिकार कर लिया था। लेकिन विजय का वह हौसला नहीं रह गया, हम व्यापक शान्ति के समय जो अधिकारी होता है, वह स्वामी माना जाता है।

अब यहाँ पर गोहिलवश के सम्बन्ध म कुछ लिखने की आवश्यकता है। यहाँ पर यह बताना बहुत आवश्यक हो गया है कि परिस्थितियों के बदलने पर दशा खराब आने पर और आर्थिक शक्तियाँ क्षीण हो जाने पर कोई राजपूत सरदार अपने वश और उसकी परम्पराओ को कभी भूल नहीं सकता। होता यह है कि भाट लोग इन सरदारो के यहाँ आकर उनके वशों के वैभव का स्मरण दिलाया करता है।

सत्य यह है कि कविता और व्यवसाय एक नहीं है। वे दो चीजें हैं और दोनो के माग विरोधी दिशाओं की तरफ जाते हैं। सरस्वती देवी की पूजा करने वाला समुद्र के बन्दरगाहो में रुई की गांठो की आराधना नही कर सकता। मैं यहाँ पर यह स्पष्ट बताना चाहता हूँ कि भावनगर के इतिहास लेखक, मुझको मिले हुए सभी लेखकों मे सबसे अधिक अनिश्चित मालूम हुए हैं।

गोहिल लोगों की पुरानी राजधानी खेरथल, बालोत्रा से दस मील की दूरी पर। है। वहाँ स राठौरो ने जिस सरदार को निकाला था। उसका नाम सेजक था। वही सबसे पहले भागकर सौराष्ट्र म आया था। यहाँ पर उसने विजय करके सेजकपुर नामक एक नगर बसाया। उसके लडके का नाम रण जी था, उसने एक नगर पर अधिकार कर लिया और उसका नाम उसने रणपुर रखा। उसके बेटे मोरवडा ने

(१) पूर्वीय अफ्रीका का एक पुर्तगाली बन्दरगाह।

भोमाज, घमारनी, उमराला, सोखरा और पुरानी बाली अथवा वलह से लकर अपने अधिकार मे कर लिये। वे सभी आजकल गोहिलवाड मे शामिल हैं।

उसने गोगो और पीरम का कोलियों से छीन लिये और पीरम मे उसने अपना निवास स्थान बनाया। वह एक मशहूर समुद्री डाकू हो गया था और अपनी व्यवसायिक आमदनी की शक्ति पर उसने पीरम को प्राप्त किया था। उसने सम्पत्ति स लदे हुए ये जहाजो को लूट लेने के बाद अपनी शक्तियाँ इतनी विशाल बना ली थी कि बादशाह (१) को उसके विरुद्ध सेना रवाना करनी पडी। मोरवडा ने, जो ऊचाई म पूरे छै फीट का था, बहादुरी के साथ उस सेना का सामना किया और तेजी क साथ उसने आक्रमण करके बादशाह के भतीजे को मार डाला।

उस युद्ध म पच्चीस हजार आदमी मारे गये। लेकिन उसने आत्म समर्पण नही किया। इस घटना के बाद उसके वश क लोगों को एक बार फिर अपने स्थानो से भागना पडा। मोरवडा का बडा बेटा डूगा किसी प्रकार गोगो मे बना रहा। लेकिन उसका भाई सोमसी-जी नांदोद चला गया। उसके वशज आज तक राजपीपला में शासन करते हैं।

डूगा के बीजलीजी और उसके कानजी तथा रामजी पैदा हुए। कानजी बादशाह की सेना के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया और उसका बेटा सारङ्ग कैद कर लिया गया। उसी मौके पर उसका एक स्वामिभक्त नौकर भी कैद हुआ और कैदखाने में वह भी पहुँच गया। उसने किसी प्रकार अपने स्वामी की जजीरें तोड डाली और उसको वहाँ से निकालकर चित्तौर पहुँच गया। वहाँ के राजा ने एक सेना देकर गोगा पर अधिकार करने के लिये भेजा, जहाँ पर पहले उसके काका कानजी का अधिकार था। लेकिन उसके अत्याचारों के कारण प्रजा उससे घृणा करती थी।

उसने उसको गद्दी से उतार दिया और पालीताना तथा आटी के चवालीस गाँवों का जिला उसकी जागीर मे शामिल कर दिया गया। सारङ्ग के लडके का नाम दयोदास था। एक बार फिर शाही सेना ने गोगो से गोहिलो का आधिपत्य खतम कर दिया और वे लोग वहाँ से भागकर खोखरा और उमराला चले गये। कदाचित् उनका शत्रु वजीरुल्लमुल्क ही था, जिसके जिला लख के सम्बन्ध म पहले लिख चुके हैं।

जैत नामक दयोदास का लडका था। उसके बेटे का नाम रामसिंह था। वह चित्तौर की लडाई म मारा गया था। उसकी पत्नी सूजन कुमारी सती हुई थी। उसके तीन लडके थे, सन्त, देव और वीर। देव के नाम से देवाना और वीर के नाम मे वीराना नाम की गोहिलो की दो नयी शाखायें आरम्भ हुईं। सन्त क तीन लडके

(१) उस बादशाह का नाम हिस्ट्री आफ गुजरात के अनुसार मोहम्मद तुगलक था।

आठ शताब्दियाँ बीत चुकी थीं। ब्राह्मणों के किसी भी प्रकार नैतिक अथवा अनैतिक व्यवहार करने पर गोहिलों पर पुराने संस्कारों का ऐसा प्रभाव था कि वे प्रदत्त जागीर पर अपना अधिकार करने का साहस नहीं करते थे। उन गोहिलों को विश्वास था कि दान में दी हुई जागीर को वापस लेने और ब्राह्मणों को अप्रसन्न करने से जो पाप होता है, उसके बदले में साठ हजार वर्ष तक नरक में रहकर वहाँ का दण्ड सहना पड़ेगा।

यहाँ पर आजकल गोहिल के युवराज भावसिंह का अधिकार है। उसकी अपने पिता से नहीं बनती। एशिया के राज्यों में प्रायः इस प्रकार की घटनायें सुनने, पढ़ने और देखने में आती हैं जिनमें पिता के साथ उनके लड़कों का विरोध रहता है। इसके रहस्य क्या हैं, इस पर यहाँ प्रकाश डालना हमारा उद्देश्य नहीं है। लेकिन एशिया के राजाओं में यह कोई नयी बात नहीं है।

बलभी—सौरों की भूमि की यात्रा करने में मेरे सामने एक प्रमुख आकर्षण यह भी था कि मुझे मेवाड़ के राणा लोगों की प्राचीन राजधानी का अनुसंधान करना था। वहाँ से इण्डोगेटिक आक्रमणकारियों ने उनको विक्रम की पहली शताब्दी में निकाल दिया था।

आजकल इसका नाम वाली अथवा वलेह है। परन्तु जब मैंने गोहिल राजा से इसके विषय में प्रश्न किया और उस राजा ने इसका प्राचीन नाम बलभीपुर बताया तो मुझको बहुत अधिक प्रसन्नता हुई। लेकिन इसके साथ साथ मुझे इस बात का दुख भी हुआ कि अतीत काल में जिस नगर का घेरा अठारह कोस में था और जहाँ तीन सौ साठ जैन मन्दिरों में घण्टे बजा करते थे वहाँ उसके गौरव का अब कोई निशान बाकी नहीं रह गया। यहाँ की नींव खोदने पर जो ईंटे निकलती हैं, उनमें प्रत्येक ईंट की लम्बाई दो फीट और तौल में आधा मन अथवा पैंतीस पौण्ड की होती है।

यहाँ पर गधरियों के कुछ सिक्के भी पाये जाते हैं, वे विचित्र तरह के हैं। ये खण्डहर पालीताना के मेरे मार्ग से उत्तर की तरफ पूरे दस कोस के फासिले पर हैं और गोहिल राजा ने जिसके राज्य में ये खण्डहर हैं, मुझे भली प्रकार विश्वास दिलाया कि वहाँ पर देखने के योग्य कोई स्थान नहीं है। ऐसी दशा में मैंने वहाँ जाने का विचार त्याग दिया।

बलभी सिद्धराज के समय तक प्राचीन सूर्यवंशी राजाओं के एक वंशज के अधिकार में रहा। उसके बाद ब्राह्मण जाति पर अत्याचार करने के कारण उसको निकाल दिया गया। इन ब्राह्मणों को सिद्धपुर में विशाल रुद्रमाला मन्दिर के निर्माण के बाद यह नगर उसने एक हजार ग्रामों के साथ धर्मार्थ दे दिया था।

यह जागीर इन ब्राह्मणों के अधिकार में उस समय तक रही जब तक कि उसमें आपसी झगड़े पैदा नहीं हुये। बाद में वे लोग आपस म लड़ने झगड़ने लगे और उस आपसी संघर्ष के कारण उनकी संख्या आधी से भी कम हो गयी। उन लड़ने वाले ब्राह्मणों में से एक ने गोहिल राजा को यह प्रलोभन दिया कि अगर राज्य की तरफ से उसकी सहायता की जायगी तो वह विरोधी ब्राह्मणों की भूमि राजा को दिला देगा। उस समय स तीन शताब्दियाँ बीत चुकी हैं वह जागीर गोहिलों के ही अधिकार में आज तक है।

पालीताना पहुँचने क समय तक एक और भी मौका मुझे ऐसा मिला, जब मैं बलभी के सम्बन्ध मे कुछ जानकारी की बातें प्राप्त कर सका। इस अवसर मे जो कुछ मुझे मिला, उसस मेरी उन सभी खोजों का समर्थन हो गया, जो मैंने बाली और मारवाड़ में साँडेरा के सन्यासियों स मालूम करक अपन पास एकत्रित किया था।

वे सभी उन लोगों के वंशज हैं, जिनको सम्वत् ३०० सन् २४४ ईसवी मे इसके विध्वंस के समय यहाँ स निकाल दिया गया। मुझे इन बातों की जानकारी जिन लोगों स हुई, वे सभी विद्वान जैन साधु थ और उन लोगों ने इस प्रकार के तथ्य और प्रमाण अपने ग्रंथो एवम् परम्परागत जनश्रुतियों क आधार पर अपने पास एकत्रित किये थे।

उपरोक्त दोनों ही सूचना क आधारों पर उन विद्वान साधुओं ने उदारता के साथ मुझसे बातें की और उन लोगों ने इसकी प्राचीनता, इसके विस्तार इसकी विशालता और उसके पुरान इतिहास पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला और उनकी बात-चीत से मैं एक अच्छी सामग्री का संकलन कर सका। उन लोगों ने उस समय की बहुत सी लाभपूर्ण बातें बतायी, जब यहाँ पर सूर्य वंशी राजा राज्य करते थे।

मेरी और उन साधुओं की बहुत सी बातें मिलती जुलती थीं। मेरी तरह वे लोग भी यही अनुमान करते थे कि सूर्य और सौर वंशों में समानता थी और उसी सौराष्ट्र क नाम पर सौराष्ट्र अथवा सौरद्वीप नाम पड़ा था। इन दोनों नामों के उत्पत्ति का आधार सूर्य की उपासना ही थी। मुझे यहाँ पर अनुसंधान के सम्बन्ध मे अनेक महत्वपूर्ण बातों की जानकारी हुई। मुझे यहाँ पर इस बात के अच्छे प्रमाण मिले कि बलभी का एक अपना सम्वत् प्रचलित हुआ था, जैसे मेवाड़ मे मेनाल का शिला लेख जो बलभी क सुन्दर दरवाजों की तरफ लोगों के मन को आकर्षित करता है और वहाँ के राजाओं के गौरव का प्रमाण देता है। वह यह भी सिद्ध करता है कि वे बलभी से निकलकर उस तरफ गये थे, इसलिये कि जो आक्रमणकारी उत्तर की तरफ से आये थे, वे यहाँ क गौरव को नष्ट करके सूर्यकुण्ड की पवित्रता और महानता को भ्रष्ट किया था।

अब तक जो प्राचीन पुस्तकें मिलती हैं और जनश्रुतियों के द्वारा जो जानकारी प्राप्त होती है, उन सबसे बल्ल जाति के साथ बलभी के राजाओं के सम्बन्ध और

सम्पर्क स्पष्ट रूप में सामने आते हैं। जानकारी के इन मार्गों से पता चलता है कि कनक्सेन – जो लव अथवा लोह का (अयोध्या के सूर्यवंशी राजा का बड़ा लड़का, जो पञ्चालिका अथवा वर्तमान पंजाब के लोह कोट में जाकर बसा था) वंशज था। वहाँ से वह इस प्रायद्वीप में आ गया था और उसने धेनुका को अपना निवास स्थान निश्चित् किया था। यह धेनुका प्राचीनकाल में मूङ्गी-पट्टण कहलाता था।

इसके बाद बाल क्षेत्र को विजय करके उसने बाल राजपूत की पदवी स्वीकार की थी। बाल क्षेत्र स्वामी बालका राय के नाम से प्रसिद्ध हुये। इसलिये कि बाहरा राजाओं के लिये प्रायः इस पद का प्रयोग किया गया है।

धानुक नामक स्थान अब भी एक बल्ल जातीय राजा के अधिकार में है और इस प्रायद्वीप में [illegible] बहुत मशहूर है। ये लोग अपने को राजपूत कहते हैं। लेकिन लोगों का कहना है कि इन लोगों का रक्त काठी जाति के लोगों से मिश्रित हो चुका है। काठी लोगों का कहना है कि उनका वंश भी बल्लों की ही एक शाखा है। जनश्रुतियाँ और भाट लोगों के विवरण भी इसी का समर्थन करते हैं। सभी प्रकार की खोजों से हम एक ही स्थान पर पहुँचते हैं और एक ही निर्णय हमारे सामने आता है, जिसका ऊपर लिखा जा चुका है।

बलभी से कुछ ही फासिलें पर यात्रियों के लिये एक तीर्थस्थान है, यह स्थान भीमनाथ के नाम से प्रसिद्ध है और महाभारत काव्य ग्रन्थ के साथ उसका सम्बन्ध है।

यहाँ पर एक पानी का झरना है। उसके जल की प्रशंसा प्राचीन काल से चली आ रही है। उस झरने के समीप एक शिव मन्दिर है। उस मन्दिर के दर्शनों के लिए भारत के प्रत्येक भाग से यात्री आया करते हैं। इस स्थान का सम्बन्ध पाण्डवों के बनवास से बताया जाता है। जनश्रुतियों का कहना है कि उस समय का विराट क्षेत्र यही प्रदेश है और इसकी राजधानी विराटगढ़ आधुनिक लेकिन प्रसिद्ध धोलका है। यह स्थान अब बालक्षेत्र में शामिल है जिसका वर्णन मेवाड़ के प्राचीन इतिहास में किया गया है। उस वर्णन में बताया गया है कि बलभी विराटगढ़ और गढ़-गजनी – ये तीन प्रधान नगर थे। अब वे लोग और देश से निकाल गये, तो वे यहीं पर आये और उन्होंने इन पर अधिकार कर लिया।

महाभारत में पाँच पाण्डवों के नाम आते हैं। उनमें एक का नाम भीम था और उसी भीम के नाम पर इस स्थान का नाम भीमनाथ पड़ा है और इस शिव मन्दिर की स्थापना में उसका विचार हुआ था और उसने इसकी स्थापना अपने द्वारे ... के कारण की थी। कहा जाता है कि वह अपने धनुर के द्वारा ... पूजन करता था।

एक बार की घटना है, जब विराट के जङ्गलो में कई दिन घूमने के बाद भी कोई शिव का मन्दिर न मिला और शिव की मूर्ति के दर्शन नहो हुये, उस समय थका हुआ अर्जुन मूर्छित होकर आगे चलने में असमर्थ हो गया तो उस समय भीम को वही पर वहीं पानी भरने का एक घडा दिखायी पडा। भीम ने उस घडे को ले जाकर झरने का पानी भरा और उस घडे को उसने आधा जमीन में गाड दिया और उस घडे के चारो तरफ उसके ऊपर से ले कर नीचे तक उन चीजों को एकत्रित कर दिया, जो अराधना के समय पत्र, पुष्प, बेल, आक और धतूरा आदि शिव पर चढाये जाते हैं। उसके बाद वह अपने भाई अर्जुन के पास दौडकर गया और प्रसन्न होकर उससे पूजा करने के लिये कहा। अर्जुन ने वहाँ पहुँचकर शिव को अर्चना को। इसके बाद उसके शरीर में शक्ति का सञ्चार हुआ। यह देखकर भीम अपनी सफलता पर खुश हुआ और उसने हँसकर अर्जुन से कहा—'तुमने तो एक घडे को शिव की मूर्ति मानकर पूजा की है।'

भीम की इस हँसी से अर्जुन को बहुत क्रोध उत्पन्न हुआ और दोनों भाइयो में संघर्ष पैदा हो गया। उस झगडे में भीम ने अर्जुन को विश्वास दिलाने के लिये उस घडे पर अपनी गदा मारी। उस गदा से घडे के टुकडे टुकडे हो गये और घडे के टूटते ही उससे फव्वारे की भाँति रक्त ऊपर की तरफ आने लगा। इस दृश्य को देखते ही अर्जुन को बडा आश्चर्य मालूम हुआ। उस घडे को तोडकर, जिसमें अर्जुन ने शिव की मूर्ति का आभास किया था, भीम को बडी आत्मग्लानि उत्पन्न हुई। वह अपने आपका बलिदान करने के लिये तैयार हो गया।

इस छोटी सी घटना का यह दृश्य देखकर बडे भाई के प्रति अर्जुन के हृदय में ममता जाग्रत हुई। उसने भीम को रोका और उसको समझाने की चेष्टा की। लेकिन अपने अपराध के कारण भीम ने अपनो बलि देने की जो प्रतिज्ञा की थी, उसको छोडने के लिये वह तैयार न हुआ।

इस समय शिवजी स्वयं एक ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुये और उससे वरदान माँगने के लिये कहा। भीम ने प्रार्थना की कि मैंने यह पाप किया है, इसलिये अपने इस अपराध की स्मृति सदा बनाये रखने के लिये मैं कुछ स्थायी काम करना चाहता हूँ। मैंने अपने जिस देवता का अपमान किया है, उसके नाम के आधार पर एक स्मारक का निर्माण करना चाहता हूँ और उस स्थान के नाम के साथ अपना नाम जोडना चाहता हूँ जिससे वह स्थान सदा के लिये एक तीर्थ बन जावे। इस प्रकार इस स्थान का नाम भीमनाथ पडा।

झरने के किनारे पर शिवलिंग का पूजन होता है। कहा जाता है कि कुछ समय के बाद यहाँ के प्रधान पुजारी ने शिवलिंग के स्थान पर मन्दिर बनवाने का निश्चय किया और इसके लिये जमीन में गडे हुये शिव के लिंग की गहराई जानने के लिये जमीन को

खोदा गया। तीस फीट जमीन खोदने के बाद भी शिव के लिंग की गहराई का कुछ पता न चला। इसलिये खोदने का काम जारी रखा गया। तब शिव जी स्वयं प्रकट हुये तो उन्होंने कहा—'विशाल वट के पेड़ के सिवा हमको कोई मंदिर नहीं चाहिए। उस पेड़ की मजबूत शाखायें स्तम्भों के समान हैं, इसकी पत्तियों की छाया सबसे अच्छा छत है, यह हमारे और हमारे भक्तों के लिये बहुत काफी है।'

शिवजी ने अपनी बात कह दी और उनके भक्त ने श्रद्धा के साथ सुन ली। उनके वट के वृक्ष के स्थान पर विशाल मंदिर ही बनना था। शिवजी के भक्तों की संख्या अपार है। उनकी श्रद्धा की सीमा नहीं है। शिवजी को अपनी प्रतिमा की रक्षा के लिये न तो किसी मन्दिर की आवश्यकता है और न किसी रक्षक की सहायता की। प्रतिमा की रक्षा के लिये उनमें स्वयं अपरिमित शक्ति है। शिवजी ने अपनी आवश्यकता स्पष्ट कर दी। लेकिन भक्तों को तो इसमें संतोष नहीं हो सकता कि जिसकी पूजा करने वाले के अगणित श्रद्धालु भक्त हों, उसका कोई मन्दिर न हो।

शिवजी ने वट वृक्ष को महत्व दिया, लेकिन उनके भक्तों ने अपने देवता की कीर्ति के अनुसार प्रसिद्ध मंदिर बनवाने का ही निश्चय किया और उस निश्चय के अनुसार, चारो तरफ से यहाँ पर आने वाले शिव के भक्त यात्रियों के लिये विशाल मन्दिर बन गया, जिसमें बहुत अधिक भवन बने हुये हैं। महन्त के अधिकार में अभी कुछ दिनों के पहले तक कच्छ और काठियावाड़ के एक सौ अच्छे घोड़ों के लिये अस्तबल था। लेकिन महन्त ने उन घोड़ों की संख्या घटा दी है और अधिकांश अपने घोड़ों को उसने भाटों और चारणों को दान में दे दिया।

कहा जाता है कि महन्त के घोड़ों को दान में दे देने का उद्देश्य यह था कि वह अपने खर्च को कम करना चाहता था। दूसरे तीर्थों की तरह यहाँ पर भी महन्त की तरफ से सदावर्त चला करता है और प्रत्येक आने वाले यात्रियों को बिना किसी प्रकार के जातीय भेद भाव के भली प्रकार भोजन दिया जाता है।

घूमने वाले काठी जाति के लोग इस मंदिर के प्रति बहुत अधिक श्रद्धा रखते हैं। एक समय था, जब इस देश में अशान्ति थी, एक न एक आक्रमणकारी यहाँ पर आकर लूटमार किया करता था, ऐसे लोगों का सामना करने के लिये यहाँ के लोग भी खेती के औजार बनाने के स्थान पर अपने अस्त्र शस्त्र तैयार किया करते थे और उन दिनों में यहाँ के लोग इस स्थान पर आकर अपने हथियारों को पत्थरों पर घिसकर तेज किया करते थे। यह वही स्थान है, जहाँ पर आजकल शिवजी का विशाल मंदिर बना हुआ है और भक्तों की एक बड़ी भीड़ यहाँ पर अपने देवता के दर्शन किया करती है। अब वे दिन नहीं रहे जब यहाँ के लोगों ने लूटमार को अपना व्यवसाय बना लिया था। इन दिनों में भी शिवजी का मन्दिर होने पर

और अपनी मुसीबतों तथा सफलताओं के लिये शिवजी की मनौती मानते थे। लूटमार करने वाले और डाका डालने वाले भी शिवजी के भक्त थे। वे भी अपनी सफलता के लिए—इसलिए कि लूटमार में अधिक सम्पत्ति उनको मिले, शिवजी की मिन्नत मानते थे और डाका अथवा लूट के माल में दसवाँ भाग शिवजी को प्रसन्न करने के लिए रिश्वत देते थे, अथवा यों कहा जाय कि वे अपने इष्ट देवता की चढौनी चढाते थे।

शिवजी पर लोगों की अगाध श्रद्धा थी। अगर किसी की घोडी गर्भवती न होने के कारण बच्चा नहीं देती थी तो उस घोडी का स्वामी शिवजी की मिन्नत मानता था और श्रद्धा के साथ कहता था—अगर मेरी घोडी गर्भवती होकर बच्चा देगी तो उसका पहला बच्चा—बछेडा अथवा बछेडी भगवान के नाम पर महन्त को अर्पण करूंगा।

अपनी किसी भी मुसीबत के समय इस प्रकार लोग मिन्नत मानते चले आ रहे हैं। लेकिन ये मिन्नतें कहाँ तक पूरी होतीं हैं, इस पर कुछ लिखना यहाँ पर हमारा उद्देश्य नहीं हैं, लोगो के श्रद्धा और विश्वास पर कुछ कहानियाँ प्रचलित हैं। कोई तरकारी बेचने वाली औरत थी। वह अपना सामान बैल पर लादकर इधर उधर घूमती और अपनी तरकारी बेचती थी। एक दिन उसका बैल खो गया, उस समय बहुत परेशान हुई, उसने मिन्नत मानी कि अगर मेरा खोया हुआ बैल मिल जायगा तो उस बैल की आधी कीमत अपने करीब की मसजिद में चढा दूंगी। उसका बैल मिल गया। लेकिन उसने अपनी बात पूरी नही की। कदाचित उसको यह भूल गयी कि मैंने ऐसी मिन्नत मानी थी।

कुछ दिनों के बाद उस औरत ने रोना शुरू कर दिया। उससे उसके पडोसी बहुत परेशान हुए। इस मौके पर उसी की तरह दूसरी तरकारी बेचने वाली औरत ने आकर उसके रोने का कारण पूछा तो उसने जवाब दिया—खो जाने के बाद मेरा बैल तो मिल गया, लेकिन उसके बिकने की नौबत आ गयी है।

उसकी इस बात को सुनकर दूसरी औरत ने कहा। बैल के बिकने की नौबत क्यों न आ जायगी। खुदा को धोखा देना अच्छा नहीं होता, मैं तो ऐसे कितने ही लोगों को जानती हूँ, जिन्होंने अपनी मुसीबत में इस तरह की मिन्नत मानी और जब उनकी मुसीबत कट गयी तो वे अपनी बातों को भूल गये और उसका नतीजा यह हुआ कि वे तबाही में आ गये। मैं तो इतना ही जानती हूँ कि धोखा देना खुदा को क्या, किसी को भी धोखा देना बुरा होता है। अगर तूने अपनी बात पूरी नहीं की तो बैल क्या तेरा सभी कुछ बिक जायगा।

भीमनाथ की यात्रा बड़ी सुखकर होती है। कहा जाता है कि यहाँ का नाम लेना बहुत काफी होता है। मनुष्य की श्रद्धा जो भीमनाथ पर होती है उसके लिये

एक सिद्ध मन्त्र के समान हो जाती है। उसकी सभी कामनायें पूरी होती हैं। यहाँ तक कि जब कोई आदमी शत्रु के द्वारा घेरे में आ जाता है तो उस समय वह अपनी इस श्रद्धा के कारण सकुशल लौटकर और बचकर अपने घर पर पहुँच जाता है। इसके प्रति श्रद्धा होने के कारण कोई भी आदमी बड़े से बड़े संकटों का सामना करता है। सोमनाथ के प्रति लोगों का ऐसा विश्वास है और इस प्रकार की एक जनश्रुति है।

सोमनाथ के कथानक का अन्त करते हुए हम इतना ही लिखना चाहते हैं कि यहीं पर बलभी का वह प्रसिद्ध सूर्य कुण्ड है, जिसको आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया था।

इस क्षेत्र के प्रत्येक स्थान पर ऐसे दृश्य मिलते हैं, जो विभिन्न प्रकार के चमत्कारों से भरे हुए हैं, उनमें आकर्षण है और उनका सम्पर्क तथा सम्बन्ध उन पौराणिक कथाओं के साथ है, जिनकी सामग्री से यहाँ का प्राचीन कालीन इतिहास लिखा जा सकता है।

चौदहवाँ प्रकरण

जैनियो का सम्प्रदाय

जैनियो के तीर्थ स्थान—जैन मत की उदारता और महानता—पहाड़ो पर जैनियो के मन्दिर—जैन मन्दिरों के निर्माता—उपासना के स्थान—अन्याय मन्दिर—आपसी मतभेदो के दुष्परिणाम—आदिनाथ का मन्दिर—आभूषणों की प्रथा—पर्वतो पर मन्दिरो की भरमार—हेगा पीर की मजार—मन्दिरों और पर्वतों की सम्पत्ति—पालीताना प्राचीन और नवीन।

पालीताना—१७ नवम्बर मेरा स्वास्थ्य इतना खराब था कि सीहोर और जैनियो के इस प्रसिद्ध तीर्थ स्थान को भली प्रकार मैं देख न सका। यह बात दूसरी है कि यहाँ पर देखने के योग्य कोई स्थान मुझे नही बताया गया था, फिर भी जहाँ तक मैं समझता हूँ, यह सम्भव नहीं है कि इस क्षेत्र की पन्द्रह-बीस मील भूमि मे मेरे जैसे अन्वेषक के लिए कोई सामग्री न मिल सके।

मुझमे और यहाँ के लोगों मे अन्तर है। जो लोग हमेशा यहाँ रहते हैं, उनकी नजरो मे यहाँ की आकर्षक चीज भी साधारण हो गयी है और जिसने पहली बार उसको देखा है, उसकी नजरों मे उसका महत्व बहुत कुछ होना स्वाभाविक है। एक और बात है मैं पुरातत्व सम्बन्धी अन्वेषण के लिए इन सुदूरवर्ती अपरिचित प्रदेशो और भू-भागो की यात्रा कर रहा हूँ। यहाँ पर अनुसन्धान के दृष्टिकोण से जो सामग्री मेरे लिए आकर्षक और काम की हो सकती है, वह यहाँ के लोगों के लिए साधारण हो सकती है। इसलिए मैं बहुत आसानी से इस बात पर विश्वास नहीं करता कि एक ऐतिहासिक अन्वेषक के लिए यहाँ पर कोई सामग्री काम की नही मिल सकती।

मैं तो अपनी यात्रा में प्रत्येक वस्तु का निरीक्षण करना चाहता हूँ। यह तो मेरे समझने की चीज है कि वह काम की है अथवा नही। काम की न होने पर भी मैं उससे क्या लाभ उठा सकता हूँ, यह तो समझना मेरा काम है।

यहाँ पहुँचने के साथ-साथ मुझे लोगो ने बताया था कि इस क्षेत्र मे कोई महत्वपूर्ण स्थान नही है। लेकिन जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, मैंने लोगो के बताने पर अधिक विश्वास नही किया। ऐसा करके मैंने अपने हक में अच्छा ही किया। यहाँ पर मेरे लिए सामग्री कम नही है। इस्लाम के मानने वाले यहाँ पर आये थे और उन लोगों ने यहाँ की मूर्तियो को तोड़ना अपना कर्तव्य समझा था। इस्लाम के अनुयायी

इसके लिए अकेले नहीं आये थे। उनके साथ विशाल सेनायें भी आयी थीं। इस्लाम के पक्षपातियों ने यहाँ पर जो कुछ काम किया, उसमें वे दस आज्ञायें विशेष महत्व रखती हैं, जिनके आदेश उनके धर्म में प्रत्येक इस्लामी को दिये जाते हैं। उन आज्ञाओं (१) के पालन में उन्होंने देर-अबेर नहीं की और मन्दिर तथा उनकी मूर्तियों को तोड़ने में जो कोई बाधक के रूप में सामने आया। उसको तलवार से काटकर टुकड़े टुकड़े कर डाला गया।

उन आक्रमणकारियों ने इतना ही नहीं किया, उन्होंने मूर्तियों के साथ-साथ मन्दिरों को भी तोड़ा और जिन मन्दिरों से उन्होंने घृणा की थी, उनकी कीमती चीजें उठाकर ले गये। इसके दो अर्थ होते हैं, वे मन्दिरों की मूर्तियों को तोड़ना भी चाहते थे और वहाँ की बहुमूल्य चीजें वे अपने यहाँ ले आना भी चाहते थे।

पालीताना पल्ली का निवास स्थान शत्रुञ्जय की पूर्व के तरफ की तलहटी में है। यह पर्वत आदिनाथ (जैनियों के चौबीस तीर्थङ्करों में से पहला) के नाम से प्रसिद्ध है और लगभग दो हजार फीट ऊंचा कहा जाता है। इसमें रास्ते में मोड़ बहुत हैं, यदि उनके अनुसार देखा जाय तो इसकी चढ़ाई दो और तीन मील के बीच में आती है। यह स्थान सचमुच बड़ा अच्छा है। यहाँ पर जो मैं अपने अनुसन्धान का कार्य करना चाहता था, उसमें यहाँ के साधुओं और सन्तों से मुझे सहायता मिली।

इन साधु सन्तों से मेरा परिचय मेरे यती के द्वारा हुआ। ये लोग भी इस मौके पर यहाँ की यात्रा करने के लिए आये थे और उन लोगों ने अपने धर्म तथा तीर्थ के विषय में बहुत सी बातें बतायी। उन्होंने यह भी बताया कि इस पर्वत के माहात्म्य का आधार क्या है और उसको इतना अधिक महत्व क्या मिला है। अपनी इन बातों को बताने के लिए उनके पास कुछ लिखी हुई सामग्री भी थी और कुछ उन्होंने पुरानी पोथियों को देखकर मुझे बताया।

यहाँ पर मैं यह भी प्रकट करना चाहता हूँ कि इन प्रदेशों की यात्रा पर आने के पहले मैंने अपने दल वालों से जो कुछ सुन रखा था, उसका मेरे ऊपर कोई प्रभाव नहीं था। मैंने जो कुछ सुना था अथवा जानकारी प्राप्त की थी, उस पर यकीन न करने का कारण यह था कि मैं एकपक्षीय बात पर विश्वास नहीं करता। मैं समझता था कि जो कुछ मुझे बताया गया है, इसमें संकुचित विचार धारा है, कुछ ईर्षा की भावना भी है और अपने पराये का भेद भाव भी है।

जिन लोगों ने मुझे अपनी तरफ से कुछ सही और कुछ गलत बता रखा था, मैं उनके लिए उनको अपराधी नहीं ठहराता। बहुत सम्भव यह है कि इस सत्य के

(१) मुस्लिम धर्म के अनुसार, परमात्मा की ये आज्ञायें जो उसने पैगम्बर मूसा को सिनाइ पर्वत पर दी थी, दो पत्थर के टुकड़ों पर लिखी हुई थीं।

सम्बन्ध म उनकी अपनी जानकारी न हो और उन्होंने सुनी सुनायी बातों पर विश्वास करके मुझको बताने की कोशिश की हो। इसलिए मैं यह उचित नहीं समझता कि उनको मैं अपराधी मान लू। मैं तो यहाँ पर इतना ही कहना चाहता हूँ कि अपने देश मे वहाँ के लोगों क द्वारा बहुत-सी बातो के सुनने और जानने के बाद भी मैं इन क्षेत्रो का अवलोकन करना चाहता था और जो भी सामग्री मुझे मिल सके, मैं उसके द्वारा अपने अनुसधान का कार्य पूरा करना चाहता था।

मैंने यहाँ के सभी प्रकार के लोगा स बातें की और विभिन्न प्रकार के मतो के अनुयायियों से बातचीत की, चाहे वे साधारण दर्जे के मनुष्य हो, अथवा अच्छे पढे-लिखे हों, मुझे खुशी है कि लोगों ने बडी उदारता के साथ मुझसे बातें कीं, बडी गम्भीरता के साथ मेरे प्रश्नो के उत्तरों को समझाने की कोशिश की और इस बात की भी चेष्टा की कि मेरे मन में कही पर भ्रम न उत्पन्न होने पावे।

मैंने यहाँ पर देखा कि प्रत्येक तीर्थ स्थान के माहात्म्य का अपना एक ग्रन्थ है। ऐसे ग्रन्थो को पढवा कर सुनने का मुझे अवसर मिला और मैं बिना किसी विरोधी भावना के इस बात को समझ सका कि इन माहात्म्य सम्बन्धी ग्रथो मे सत्य और तथ्य की अपेक्षा उनके भक्तों के द्वारा जोडे गये और शामिल किये गये कथानक अधिक हैं। मन्दिर के लिए भेंट, दक्षिणा, जीर्णोद्धार के लिए सहायता और भूमि के दान सम्बन्धी उल्लेख प्रायः शिलालेखो म पाये जाते हैं। लेकिन इन ग्रन्थो में बडे विस्तार के साथ जो कथानक पाये जाते हैं, वे सब भक्तो की श्रद्धा के अनुसार कथायें मात्र हैं।

माहात्म्य सम्बन्धी इन ग्रथों में जिस प्रकार की कथायें हैं, उनके उदाहरण में यहाँ पर कुछ लिखना आवश्यक होगा। आबू माहात्म्य में एक कथा है—शत्रुञ्जय माहात्म्य की रचना वलभी नगर के निवासी धनेश्वर सूरि आचार्य ने सम्वत् ४७७ सन् ४२१ ईसवी में की थी। उस समय जब सूयवशी राजा शिलादित्य ने आदिनाथ के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था।

धनेश्वर सूरि आचार्य के ग्रथ से हमको इतिहास सम्बन्धी तीन बातों का पता चलता है। पहली बात यह है कि यह पर्वत आदिनाथ को अर्पित है, जिसके मन्दिर का जीर्णोद्धार ४२१ ईसवी मे हुआ था। इससे मन्दिर के निर्माण का समय कई शताब्दी पहले का मालूम होता है। दूसरी बात यह है कि इस ग्रथ के लेखक क निवास-स्थान का पता चलता है कि वह वलभी का आचाय था और तीसरी बात जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण है, वह यह है कि यह राजा शिलादि य सूय वशी था।

इन सभी बातो से मेवाड के इतिहास की घटनाओ का समर्थन होता है। यह वही राजा था, जिसका वणन करते हुये उस इतिहास में लिखा गया है कि वह पश्चिमी एशिया के आक्रमणकारियों से वलभी की रक्षा करते हुये मारा गया था। मोहम्मद से

पहले जो आक्रमण हुए थे, उनमें यह दूसरा आक्रमण था। पेरिप्लस के अनुसार पहला आक्रमण दूसरी शताब्दी में हुआ था और कॉसमस (१) के अनुसार, तीसरा आक्रमण छठी शताब्दी में हुआ था, जब हूण लोग सिंध की घाटी में आकर आबाद हो गये थे। यही कारण है कि जेट, हूणों और काठी लोगों के अस्तित्व अब तक सौराष्ट्र में पाये जाते हैं।

मुझे एक प्रस्तर लेख मिला, उससे मुझे बड़ी सहायता मिली, मेरी खोज की जो चीजें स्पष्ट नहीं हो रही थी और इतिहास सम्बन्धी जो विवरण फीके मालूम हो रहे थे उनको समर्थन प्राप्त हुआ। उस पाषाण में लिखा था कि वलभी का स्वतन्त्र सम्वत् भी प्रचलित था वह इस माहात्म्य के लिखे जाने के समय से एक शताब्दी पहले जारी हुआ था।

शत्रुञ्जय जैनियों के पाँच तीर्थों में से एक है। इनमें तीन अर्थात् अबुद, शत्रुञ्जय और गिरनार एक दूसरे के करीब हैं। चौथा समेल अथवा सम्मेत, शिखर मगध अथवा वर्तमान बिहार की प्राचीन राजधानी में है। पाँचवाँ चन्द्रगिरि, जो देवकूट अथवा सहस्र शिखर भी कहलाता है, हिन्दूकोट अथवा पर्वत् पति पामीर के बर्फीले स्थानों में है, जिसका ग्रीस के लोग (काकेसस) और (पैरोपैमीसस) कहते हैं।

पहले बौद्ध लोगों के लिये सिन्ध में किसी प्रकार की रुकावट नहीं थी। उन्होंने लिखा है कि "जब आचार्य जैनादित्य सूरि (२) अपने दल के लोगों से मिलने के लिये सिन्ध के पश्चिम में जाया करते थे, उस समय वे अपनी चद्दर के सहारे नदी को पार कर लेते थे। एक दिन जल देवता वरुण ने जल से निकलने का कर माँगा तो आचार्य ने अपना अंगूठा काटकर भेंट में दे दिया। कहा जाता है कि वह चमत्कार पूर्ण चद्दर, विस्मय जनक लिपि में लिखी हुई पुस्तक (३) के साथ अब तक जैसलमेर में

(१) (कॉसमस) का समय १०४५ ११२६ ईसवी है। उसने बोहमोनियाँ नामक बोहेमियाँ का इतिहास लिखा था।

(२) प्रसिद्ध श्री जन दत्त सूरि का जन्म गुजरात के प्रान्त में धोलका में षष्ठी वाछिग के यहाँ वि० स० ११३२ सन् १०७६ में हुआ था। उनकी माता का नाम वाहड़न्दी था। इस विषय में यह दोहा प्रसिद्ध है।

सिन्ध देश में पञ्चनदी पर साधे पाँचों पीर
सोई ऊपर पुरुष तिराय एसे गुरु सधीर।

जिस सोई अथवा चद्दर का यहाँ पर वर्णन किया गया है पहले महोपाध्याय बुद्धिचन्द्र के उपासना घट में रखी हुई थी। लेकिन अब वह जैसलमेर के ज्ञान भण्डार में रख दी गयी है।

(३) यह अनोखी पुस्तक, जो अब मुद्राङ्कित बतायी जाती है एक जंजीर में

चिन्तामणि के मंदिर मे रखी हुई है और यही चद्दर जैनादित्य की गद्दी पर बैठने वाले प्रत्येक आचार्य के कधों पर डाली जाती है।

इस पर्वत के अनेक नाम हैं और वे चौबीस से कम नहीं बताये जाते। कहा जाता है कि इसके एक सौ आठ शिखर है इसको गिरनार पर्वत के साथ मिलाते हैं। जैनियो में इस विषय के विद्वान इस क्रम को आबू और तरिंगी अथवा तारिंगा तक गया हुआ बतलाते हैं और सीहोर, वल्ल तथा दूसरी पर्वत शृङ्खलाओ से, जिनमें कुछ बहुत ही नीची हैं, सम्बन्धित मानते हैं। नाम माला में एक अश इस प्रकार का है

प्राचीन काल मे सुखराज पालीताना में राज्य करता था। उसके छोटे भाई ने जादू के बल से अपनी सूरत को उसकी सूरत मे बदल दिया और उसके सिंहासन पर बैठकर राज्य करने लगा। उसका भाई सुखराज राज्य से च्युत होकर बारह वर्ष तक जङ्गलो में मारा-मारा फिरता रहा। इन दिनो में वह नदी का जल रोजाना श्री सिद्ध-नाथ जी की प्रतिमा पर चढाता रहा। उसकी इस भक्ति से प्रसन्न होकर देवता ने उसको अनधिकारी भाई पर विजयी कराया। वह फिर अपनी गद्दी पर बैठा और देवता पर प्रसन्न होकर उसकी मूर्ति को पर्वत पर स्थापित किया। उसके बाद से उसका नाम धनुञ्जय पडा। आरम्भ मे वह पर्वत शिवजी के अधिकार में रहा होगा। जिसका प्रमुख नाम सिद्धनाथ अथवा सिद्धों का स्वामी है। कदाचित् यह गौरव जैनियो के प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ को प्राप्त नही हुआ था।

पण्डरी पर्वत—आदिनाथ के शिष्य पण्डरी अथवा पुण्डरीक का पहाड़।
श्री सिद्ध क्षेत्र पर्वत—पवित्र अथवा सिद्ध क्षेत्र का पर्वत।
श्री विमलाचल तीर्थ—शुद्धि यात्रा तीर्थ (विमल शुद्ध, पवित्र)।
सुरगिरि—देवताओं का पर्वत।
महागिरि—बडा पर्वत।
पुण्यरस तीर्थानिकम्—पुण्य देने वाले तीर्थ स्थान।
श्री धनि पर्वत—धन देने वाला पर्वत (श्री लक्ष्मी)।
श्री मुक्त शैल अथवा शैल—मुक्ति देने वाला पर्वत।
श्री पृथ्वीपीठ—पृथ्वी का मुकुट।
श्री पाताल मूल—जिसकी जड पाताल में है।
श्री कामदा पर्वत—सर्व कामना पूरी करने वाला पर्वत।

बधी हुई लटकी रहती है। वह पुस्तक पूजन के निमित्त वर्ष मे केवल एक बार निकाली जाती है। उसके बाद पूजन करके फिर लपेट कर रख दी जाती है। इसके पश्चात् फिर वह दूसरे ही वर्ष निकाली जाती हैं। उसके अक्षर विचित्र रूप के हैं। कहते हैं कि एक स्त्री ने उसको पढने की कोशिश की तो वह अधी हो गयी।

शत्रुञ्जय के सम्बन्ध में पाठकों को जानकारी कराने के लिये माहात्म्य के निम्नलिखित अंश का यहाँ पर देना अनिवार्य हो गया है।

आदिनाथ के दो लड़के थे, एक का नाम था भरत और दूसरे का नाम था बाहुबलि। बाहुबलि का राज्य मक्का देश में था, जो बलि देश (१) के नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ से जावडशाह ने विक्रमादित्य से सौ वर्षों के पश्चात् बाहुबलि की मूर्ति लाकर शत्रुञ्जय पर स्थापित की थी और उस स्थान से वह मूर्ति गोगो में पहुँचायी गयी। वहाँ पर गोहिलों की अपनी राजधानी भावनगर में स्थापित करने के समय तक रही। वहाँ पर यह मूर्ति अब तक मौजूद है।

बाहुबलि से चन्द्रवंश की उत्पत्ति हुई और उसके बड़े भाई भरत से सूर्यवंश चला। इसके साथ ही इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि भरत उन सभी वंशों का आदि पुरुष था, जो भारतवर्ष अथवा भारतखण्ड में फैले हुये हैं। उसमें एशिया का वह भाग भी शामिल है जो कास्पियन और गंगा के बीच में है।

आदिनाथ एक ऐसा शब्द है, जिसके कई अर्थ हो सकते हैं उसका अर्थ प्रथम, पहला और मूल में भी आता है। लेकिन इस प्रकार के किसी भी अर्थ से कोई अभिप्राय सिद्ध नहीं होता है। बड़े विवेचन के बाद आदिनाथ दो बड़ी शाखाओं में विभाजित मालूम होते हैं। एक शाखा के लोगों का अरब के समुद्री किनारे से होकर भारत में आना और दूसरे का उत्तर की ओर से आगमन समझ में आता है। इसी के आधार पर इस प्रायद्वीप के सौर अथवा सीरिया होने का एक ठोस आभास मिलता है।

कुछ इसी प्रकार की अवस्था हिन्दुस्तान में शकों और जेट लोगों की मानी जाती है। उनके सम्बन्ध में मनु ने यवन अथवा अवन नामों का उल्लेख किया है। हमें इस बात को इस प्रकार की आलोचना के समय याद रखने की जरूरत है और विशेष रूप से कालनेमि का ईरोपीय मुखमण्डल, घुंघराले बाल और मोटे होंठों को देखने के समय एवम् हिन्दुओं के मू द्वार, जगत कूंट पर कृष्ण के मन्दिर को देखने के समय, जहाँ पर उससे भी प्राचीन बुद्ध त्रिविक्रम का मन्दिर आज तक मौजूद है। मैं इस बात पर फिर जोर देना चाहता हूँ कि गिरनार के पाषाण-लेख का अध्ययन करने के साथ-साथ कुछ अनुसंधान का कार्य होने की आवश्यकता है।

यह तो निश्चित रूप से सही मालूम होता है कि मक्का में एक हिन्दू मन्दिर था और उसमें हिन्दुओं की परम्परा के अनुसार पूजा आराधना होती थी। जो लोग उस मन्दिर में गये थे, उनमें एक बरहाड भी भी था उसका कहना है कि जिस काले

(१) बालू रेत का कहते हैं। बालू देश को फारसी में रेगिस्तान कहा जाता है। उसका सम्बन्ध अरब के रेगिस्तान से है। हिन्दुओं के भूगोल में मरुस्थल अथवा बालुका देश का भी यही मतलब होता है।

पत्थर की इस्लाम के मानने वाले पूजा करते हैं, वह हिन्दुओं का शालिग्राम है और कृष्ण वर्ण देवता कृष्ण का रूप होने के कारण पूजनीय है। हमको इस बात के विरोध करने के लिए कोई आधार नहीं मिलता कि प्राचीनकाल मे हिन्दू लोग मक्का जाया करते थे और अब तक अष्ट्रखान (१) की आबादी में रहने वाले लोग वालगा के किनारे पर ठीक उसी प्रकार विष्णु की पूजा करते हैं, जिस प्रकार वे अपनी मातृभूमि मुल्तान में किया करते थे। ये लोग उसी वंश के हैं, जिस वंश का जावडशाह काश्मीरी वैश्य था और जो बाहुबलि की मूर्ति शत्रुञ्जय पर विक्रम से एक सौ वर्ष बाद लाया था। इसका समय ४६ ईसवी माना गया है।

अब हम फिर मूल विषय पर आते हैं। यह पहाड़ तीन भागों मे विभाजित है, वे टूक कहे जाते हैं। एक भाग का नाम मूलराज है, दूसरे का शिविर सोमजी अथवा चिवा सोमजी का चौक कहा जाता है, वह अहमदाबाद का धनिक मूल निवासी था। उसने सम्वत् १६७४ सन् १६१८ ईसवी में मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया और चारों तरफ पक्की दीवार खड़ी कराई। उसके निर्माण मे उसका बहुत धन खर्च हुआ। कहा जाता है कि चौरासी हजार रुपये अर्थात लगभग दस हजार पौण्ड तो ऊपरी सामग्री मँगाने में खर्च हुए थे। तीसरी भाग बड़ौदा के एक सम्पत्ति वाले के नाम पर मोदी का टूक कहलाता है। उसने भी इसी तरह करीब पचास वर्ष पहले बहुत अधिक धन खर्च किया था।

इन मन्दिरों में बने हुए भवन अपनी सुन्दरता और पवित्रता के साथ-साथ प्राचीनता का जो प्रमाण देते हैं, वे इस प्रकार हैं

पहली इमारत भरत ने बनवाई थी, दूसरी उसकी आठवीं पीढ़ी में घुषवीर्य अथवा दण्डवीर्य ने, तीसरी ईशानेन्द्र ने, चौथी महेन्द्र ने, पाँचवीं ब्रह्मेन्द्र ने, छठी भवनपति (२) ने, सातवीं सगर चक्रवर्ती ने, आठवीं विहेन्द्र ने, नवी चन्द्रयशा ने, दसवीं चक्रायुध ने, ग्यारहवी राजाराम चन्द्र ने, बारहवी पाण्डव भाइयों ने, तेरहवी काश्मीर के व्यापारी जावडशाह ने विक्रमादित्य से एक सौ (३) वर्ष बाद बनवायी थी।

---

(१) वोलगा नदी के पास तातार जाति के लोगों की बस्ती है। ये लोग तुर्कों की उस शाखा में हैं जो हूणों के आक्रमण के पश्चात् वोलगा नदी के नीचे के भागों में आबाद हो गये थे। उसके बाद सन् १५५७ ईसवी में रूस ने इन को पराजित किया था।

(२) जिन हर्षगणि और समय सुन्दर उपाध्याय ने षष्ठ के उद्धार का श्रेय चमरेन्द्र को दिया है। वह भुवनपति के नाम से भी प्रसिद्ध था।

(३) शत्रुञ्जयरास और महात्म्य में इस उद्धार का समय विक्रम से एक सौ आठ वर्ष बाद माना है।

चौदहवीं अनहिलवाड़ा के राजा सिद्धराज के मंत्री बहिदेव (बाहड) मेहता (१) ने, पन्द्रहवीं दिल्लीपति के काका सुमरा सारङ्ग (समराशाह) ने सम्वत् १३७१ सन् १३१५ ईसवी में और सोलहवीं का निर्माण चित्तौर के मंत्री कमशाह दोसी (देवताओं के दास) ने सम्वत् १५७८ सन् १४२२ ईसवी में कराया था। (२)

इस बात का भी उल्लेख मिलता है कि जावडशाह, जो मूर्ति को यहाँ पर लाया था, कालोर में प्राचीन नगरी मधुमावती (वर्तमान महुवा) में सौराष्ट्र के समीप आबाद हो गया था।

पालीताना से इस पर्वत के नीचे तक के पूरे रास्ते में विशाल वट के वृक्षों की छाया है। उस छाया से आने वाले यात्रियों को बहुत आराम मिलता है। यह रास्ता काफी चौड़ा है और थोड़ी थोड़ी दूर पर जलाशय, बावड़ियाँ और अनेक प्रकार के दूसरे जल में स्थान बने हुये हैं। इनका निर्माण धार्मिक आदमियों के द्वारा हुआ था। खूबसूरत चट्टानों के ऊपर काटकर ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं, जो नीचे से चोटी तक चली गयी हैं उनके दोनों तरफ वेदियों पर किसी न किसी तीर्थङ्कर के चरणों के चिह्न बने हुए हैं जैसे आदिनाथ, अजितनाथ, जिनको तरंगी पर्वत अपण किया गया है। सन्तनाथ और गौतम अथवा गौतमार्य जैसा कि उनको सर्वसाधारण में कहा जाता है, जो चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर के अनुयायी थे। यद्यपि उनका गौतम नाम हिन्दुस्तान से बाहर भी बहुत दूर दूर तक फैला हुआ है, फिर भी उनको वह सम्मान प्राप्त न हो सका जिसका उपयोग उनके पहले के तीर्थङ्कर ने किया था।

कुछ आगे जाने पर पहाड़ी के ऊपर विश्राम करने के लिये एक स्थान है। उसके लिये कहा जाता है कि वह स्थान इएडो सीथिया के राजा आदिनाथ के बड़े बेटे भरत की चरण-पादुकाओं से भी अधिक पाक और पवित्र है। कुछ और आगे जाने पर स्वच्छ जल का एक स्थान है वह अच्छा के नाम से प्रसिद्ध है और नेमिनाथ की चरण पादुकाओं से भी पवित्र माना जाता है।

वहाँ से करीब चार सौ गज के फासिले पर विश्राम करने के लिये एक दूसरा विश्राम स्थान है। वहाँ पर एक तालाब है, जिसको अनहिलवाडा के राजा कुमारपाल ने बनवाया था। उसके पास हिन्दुओं की शक्ति देवी हिङ्गलाज माता का मन्दिर है।

वहाँ से चलने पर पहाड़ी की चढ़ाई के करीब आधे रास्ते पर एक तीसरा विश्राम घर है। यह स्थान सभी विश्रामालयों से विशाल है और यहाँ का सरोवर धोल कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर एक छोटा सा बाग है और वहाँ पर सीढ़ियाँ

(१) बाहड (वाग्भट्ट) मेहता ने इसका उद्धार सम्वत् १२१३ में कराया था। वह कुमार का मंत्री था।

(२) इसका समय सम्वत् १५८७ होना चाहिए।

बनी हुई हैं। उस बाग के समीप एक सुदर झरना है। यह स्थान अपनी पवित्रता के लिये अधिक प्रसिद्ध है। क्योंकि यहाँ पर भगवान की खडाऊ हैं।

वहाँ पर और भी विश्राम के स्थान हैं, जिनके साथ सरोवर बने हुए हैं। इस प्रकार के सभी स्थानो पर प्राचीन ऋषियो के चरणो के चिह्न पाये जाते हैं। जितने भी तालाब हैं, पानी सभी का स्वच्छ और साफ है। साधारण तौर पर जल का प्रवाह न होने के कारण तालाबो का पानी शुद्ध और निर्मल नही होता, लेकिन यहाँ के इन तालाबों की अवस्था बिल्कुल भिन्न है और इन सबका जल बहुत निर्मल है।

बहुत ऊची चढाई के बाद हम इस पर्वत की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँचे। वह चारों तरफ से एक सुरक्षित परकोटे से घिरी हुई है और उस चोटी की पूर्वी मीनार पर हज्जा पीर नामक एक मुसलमान फकीर की श्वेत ध्वजा फहराती रहती है। जैन तीर्थ-कूटों के पास इस मुस्लिम फकीर के प्रवेश के विषय में आगे प्रकाश डाला गया है।

इस स्थान को अपनी दाहिनी ओर छोडकर हम पर्वत के दक्षिण की तरफ आदीश्वर की टूक की ओर मुडे। कुछ देर तक इस सडक मे चलने पर हम किले के पहले दरवाजे पर पहुँच गये, वह रामगोपाल के नाम से मशहूर है। वहाँ से उस सडक पर होते हुए जो पत्थरो से बनी है और जिसके दोनो तरफ नीम के पेड लगे हुए थे, चार दूसरे दरवाजो को पार करके हम एक मन्दिर के बगीचे में आ पहुँचे, जो पर्वत के दक्षिण-पूर्व कोने पर बना हुआ था।

रामगोपाल के कुछ ही आगे एक तालाब है, वह पाण्डवो की माता कुन्ती के नाम से मशहूर है। जनश्रुति यह है कि जब उसके लडके विराट मे बनवास के दिन काट रहे थे, उन दिनो में उसी के कहने से इस तालाब का निर्माण हुआ था। लेकिन भूकम्पों के कारण इसकी चट्टानें टूट गयी हैं और वसुदेव की लडकी (बहन ?) का यह पवित्र स्मारक पानी से खाली हो गया है। अब उसमें जल बिल्कुल नहीं है।

दूसरे दरवाजे का नाम सूगर पोल है, जो बङ्गाल के एक व्यापारी की दान शीलता का परिणाम है। इसके पास ही पालीताना के प्रथम गोहिल नवघन के द्वारा बनवाया हुआ तालाब है। यहाँ पर आने वाले लोग ठहर कर विश्राम किया करते हैं और यात्री लोग अपने-अपने विश्वास के अनुसार यहाँ पर पूजा किया करते हैं।

तीसरा द्वार वाघन पोल कहलाता है। यहाँ पर हिन्दुओ की सिविली (१) सिंह केसरी (२) माता की एक छोटी मूर्ति है। यहीं पर गिरनार के नेमिनाथ की चोरी भी है। इसकी इमारत से मिला हुआ एक पत्थर है, जिसमे जमीन से तीन फीट ऊचा पन्द्रह इञ्च व्यास का एक चौकोर सूराख है, वह मुक्ति द्वार कहलाता है। जो व्यक्ति

(१) ग्रीक की प्रकृति देवी।
(२) शिव वाहिनी माता।

अपने शरीर को सम्हाल कर उसको पार करके निकल जाता है उसको निश्चित रूप से मुक्ति मिलती है। लेकिन धनी सुखी और सम्पन्न पुरुष अपने शरीर के मांस को बिना सुखाये हुए उसको पार नहीं कर सकते।

मुक्ति पाल के सामने एक ऊंट की पाषाण मूर्ति है। वह विचित्र रूप से बनी हुई है। उसका आकार प्रकार एक जिन्दा ऊंट के बराबर है। ये सभी खड़े पत्थर शूल अथवा सुई कहे जाते हैं। उनकी कल्पना हमारे इन लेखों को पढ़कर नहीं की जा सकती।

चौथा द्वार हाथी पोल पर जिनेश्वर पार्श्व का मन्दिर है। जो शेषनाग (सहस्र फणि) के नाम से मशहूर है। इसका अर्थ है, वह देवता, जिस पर एक हजार फण वाले सर्प की छाया रहती है। यहाँ पर मिस्र के हरमीज (१) के साथ विचित्र समता का आभास होता है। इसका चिह्न भी साँप है और उसका दूसरा नाम फनेटीज है।

इसके बाद हम उस मन्दिर पर पहुँचते हैं। जो बङ्गाल के प्रसिद्ध सेठ का बनवाया हुआ है और वह सेठ जगत सेठ के नाम से प्रसिद्ध है। मराठों के आक्रमण के समय धन उसके नाम का पर्यायवाची माना जाता था और दो करोड़ रुपयों का नुकसान उसके ऊपर कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सका था। यह विवरण इतना आधुनिक है कि इस पर जरा भी अविश्वास नहीं किया जा सकता।

इससे मिला हुआ एक दूसरा मन्दिर है, जो हजार खम्भों का मन्दिर कहलाता है। यद्यपि इस मन्दिर में सब मिलाकर चौसठ खम्भे हैं। इसके पास कुमारपाल का मन्दिर है, उसमें बावन मूर्तियाँ हैं। इसके और पाँचवीं पोल के बीच में दो कुण्ड हैं, वे सूर्य कुण्ड और ईश्वर कुण्ड के नाम से मशहूर हैं। पहले कुण्ड पर एक शिवालय बना हुआ है और उसके पास अन्नपूर्णा देवी का मन्दिर है।

इसके बाद बहुत-सी सीढ़ियाँ को पार करके पण्डरी पोल नामक द्वार से हम श्री आदिनाथ मन्दिर के सामने पहुँचे। चौक में जाने के लिये जिस पण्डरी के नाम पर बने हुए द्वार से जाने का रास्ता है, वह तीर्थङ्कर का शिष्य था और उस द्वार के ऊपर कोठे में वह रहा करता था। प्राचीन काल की बहुत-सी चीजें इस चौक में मौजूद हैं। लेकिन अनेक कारणों से वे सब चीजें नष्ट भ्रष्ट हो गयी हैं। इनके नष्ट होने के अनेक कारण हैं। जैसे, साम्प्रदायिकता का विरोध, निर्माता कहलाने की आकांक्षा और दूसरे धर्म वालों के अत्याचार। इस प्रकार के बहुत से कारणों के फलस्वरूप वहाँ की प्राचीन चीजें नष्ट भ्रष्ट हो गयी हैं।

लोगों का कहना है कि दूसरे धर्म वालों की घृणा की बजह इन चीजों के नष्ट

(१) ग्रीक माइथालाजी के अनुसार एक देवता जो ज्यूस का लड़का था और वह मुर्दों के आत्मा को मृत्यु के बाद ले जाया करता था। वह वाणी और भाग्य का स्वामी और व्यापारियों का रक्षक माना जाता था।

होने का कारण हमारे धर्म के अनुयायियों का आपसी मतभेद अधिक है। यदि इस धर्म के लोगों में आपसी भेद भाव न होते और एक दूसरे के साथ वे ईर्षा भाव न रखते होते तो कदाचित विनाश की यह नौबत न आती। अहिंसा परमोधर्मा: के सिद्धान्त पर विश्वास करने वाले विद्वान जैनी लोग भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके तपागच्छ और खरतर गच्छ नामक प्रमुख भेदों के आपसी वैमनस्य के कारण हमारा अधिक नाश हुआ है। उनका स्पष्ट कहना है कि इतनी बड़ी क्षति हमको मुसलमानों के द्वारा नहीं पहुँची।

असलियत यह है कि आपसी मतभेदों में जब जो शक्तिशाली हुआ उस समय उसने निबलों का विनाश किया। जैनियों के द्वारा इस सत्य को छिपाया नहीं जा सकता कि जब तपागच्छ वाले अपनी शक्तियों का संचय कर सके तो उन्होंने खरतर वालों के लेखों को तोड़-फोड़ कर नष्ट कर डाला और उनके स्थान पर अपने लेख लिखवा दिये। इसके बाद जब सिद्धराज सोलङ्की के समय में खरतर-गच्छ को शक्तिशाली बनाने का मौका मिला तो उन लोगों ने तपागच्छ वालों के लेखों के टुकड़े टुकड़े करवा दिये।

इन दोनों मतों में अलगाव की भावना चतुर्थ सोलङ्की राजा दुर्लभसेन के समय में उत्पन्न हुई थी, जो ११०१ ईसवी में गद्दी पर बैठा था। विरोधी भावना के फलस्वरूप दोनों मतों के लोगों में ऐसी कटुता पैदा हो गयी थी कि आपस में दोनों मतों के लोगों में अनेक बार गहरी लड़ाइयां हुई और अहिंसा के सिद्धान्तों को भुलाकर एवम् पर्वत की पवित्रता को ठुकरा कर वे एक दूसरे के साथ लड़े और खून के नाले बहाये। उन दिनों में उनको एक बार भी इस बात का स्मरण नहीं आया कि हम लोग उस धर्म के अनुयायी हैं, जिसकी नींव अहिंसा के सिद्धान्तों पर रखी गयी है।

अनहिलवाड़ा के अजयपाल ने अपने पूर्ववर्ती राजा कुमारपाल के बनाये हुए सभी मन्दिरों को तुड़वा दिया था। कुछ लोगों का कहना है कि इस अधार्मिक कार्य में उसकी अपेक्षा उसका प्रधान मन्त्री अधिक अपराधी था। कुछ लोगों का यह भी कहना है कि उस प्रधान मन्त्री ने उस समय यह किया, जब उसने हिंदू धर्म और जैन धर्म को छोड़कर इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया था।

हमको इस बात के प्रमाण नहीं मिले कि महमूद गजनवी जैनियों के इस पवित्र पर्वतों को भी देखने के लिये आया था। लेकिन यह सत्य है कि 'खूनी अल्ला के क्रोध के सबब यहाँ के सभी धर्म वालों ने अपने अपने देवताओं को घरों के भीतर छिपा लिया और जिन देवताओं की मूर्तियों को नहीं छिपाया गया था, उनको मुसलमानों ने तोड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डाले थे। उस समय बहुत अधिक देवताओं की मूर्तियाँ तोड़ी गयी थीं और वही बच सकी थीं, जो मुसलमानों की नजरों में नहीं पड़ीं।

यही हालत मन्दिरों की भी थी। बुरी तरह से ये मन्दिर तोड़े गये थे और

जो बच गये थे, उन मन्दिरों को मस्जिदों के रूप में बदल दिया गया था। इस प्रकार के विनाश का यह परिणाम हुआ है आदिनाथ के चौक पे नजर डालने पर यह तो नहीं कहा जा सकता कि यहाँ पर कोई भी प्राचीन चीज रह नहीं गयी है, लेकिन यह सही है कि पूरी इमारत आज बदली हुई है। उसके बहुत से भाग नष्ट कर दिये गये हैं और टूट फूटे जो हिस्से दिखायी देते हैं, उनका बहुत बुरा हाल है।

यही अवस्था कुमारपाल के मन्दिर की भी है। समूचा मन्दिर बुरी तरह टूट-फूटकर बरबाद हो गया था और मरम्मत के द्वारा उसके निर्माण का बहुत कुछ कार्य किया गया है। लेकिन उस मन्दिर की प्राचीनता के अब दर्शन नहीं होते।

यहाँ की इमारतों में आदिनाथ का मन्दिर अधिक प्रसिद्ध है। लेकिन आबू के मन्दिरों की तरह निर्माण की कला इसमें नहीं पायी जाती। न इसमें वह बनावट है और न इसमें उतनी अच्छी सामग्री है। निज मन्दिर एक- चौकोर रूप-रेखा में बना हुआ है, उसके ऊपर गोलाकार छत है। उसका सभा मण्डप और बाहरी बरामदा भी इसी प्रकार की छत में बना हुआ है।

देवता की मूर्ति बहुत बड़ी और श्वेत संगमरमर की बनी हुई है। ऋषभदेव पद्मासन लगाये बैठे हैं, उनकी मुख मुद्रा बहुत गम्भीर है। उनका चिह्न वृषभ, जिसके द्वारा उनका नाम वृषभदेव है। यह उनके पीठ की तरफ लिखा हुआ है। मुख-मण्डल पर उसी प्रकार की गम्भीरता है, जो आमतौर पर जैन-तीर्थंकरों की मूर्तियों में देखी जाती है। उनके दोनों नेत्र लगाये हुए हीरे के हैं, उनसे उस गम्भीरता का अनुभव- और अनुमान नहीं होता, जिस प्रकार आज के किसी भक्त के द्वारा इस प्रतिमा की सजावट और बनावट से होता है।

इस प्रतिमा को देखने से जिस गम्भीरता और महानता का आभास होता है उसमें देवदूतों के पुरातनी गिर्जाघर आधार पहुँचाते हैं। आदिनाथ के मन्दिर को सजाने और निर्माण करने में उनकी कला से प्रेरणा ली गयी है। उसी के आधार पर मोटी आकृति और सुनहले पंखों के देवदूतों के चित्र अंकित किये गये हैं, जिस प्रकार इगलैण्ड के किसी ग्रामीण गिर्जाघर में इस प्रकार के चित्र बनाये जाते हैं। एक बात और भी है, यहाँ पर अंगरेजी गीतवेत्ते को प्रधानता प्रदान करते हैं और पुजारियों को प्रातःकाल जगाने के लिए जिस लोहे के डंडे से घण्टा बजाया जाता है, वह किसी पुरातनी समुद्री जहाज का कोई टुकड़ा अथवा अंग है, उस पर बनाने वाले की कास्टा का नाम है। इन विरोधी चीजों और अनुकरणों से यहाँ की शोभा कुछ फीकी पड़ जाती है। अच्छा होता कि इन पवित्र स्थानों में ऐसा न किया जाता।

यहाँ पर संगमरमर की बनी हुई बैल की एक मूर्ति के साथ-साथ हाथी की मूर्ति भी है, इनमें की यह मूर्ति माप में छोटा है और उस पर आदिनाथ की माता

मरुदेवी अपने पौत्र भरत और बाहुबलि को गोद में लिए हुए बैठी है।

द्वार पर दो शिला लेख हैं। वे देखने में बहुत साधारण हैं। उनमे से एक में लिखा है, 'चित्रकूट (चित्तौर), मेवाड़ के महाजन जोशी ओसवाल बोसाकुमार शाह ने बहादुरशाह गुजरात के बादशाह के समय में इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया, शनिवार सम्वत् १५७८' और दूसरे में लिखा है आदिनाथ, उसके मन्दिर की कीर्ति और जीर्णोद्धार कराने वालो के यश का वर्णन है।

चौक मे बायें हाथ की तरफ भीतर जाने पर इस धर्म के अनुयायियो के लिये एक सुन्दर स्थान बना हुआ है, वहाँ पर आदिनाथ 'एक ईश्वर की उपासना के लिये बैठते थे। उन दिनो में इस पर्वत के ऊपर आकाश के सिवा और कुछ नही था। आदिनाथ की आराधना विशेष रूप से होती थी, उनका यह प्रमुख स्थान था।

यहाँ पर एक राया का पेड़ है। धार्मिक लोगो का विश्वास है कि यह पेड़ उस अमर वृक्ष की सतान है, जिसकी छाया में आदि जिनेश्वर बैठा करते थे। उस वृक्ष की छाया आज भी उनको पवित्र पादुका पर है। अपने अभीष्ट ईश्वर तक पहुँचने के के लिए चित्त को एकाग्र करने वाला उन्होंने इस स्थान को माना था और अपनी उपासना के लिये उन्होंने इसी स्थान को महत्व दिया था।

वहाँ का दृश्य रमणीक था। घिरे हुए बादलो के कारण दृष्टि अधिक दूर तक नही जाती थी। लेकिन सूर्य की किरण कभी कभी प्रायद्वीप के दक्षिण-पूर्वी भाग मे प्राचीन गोपनाथ और मधुमावती (आधुनिक महुवा) को प्रकाश देती हुई समुद्र की तरफ जाती थी। पश्चिम म हमको नमिनाथ के पर्वत और प्रसिद्ध गिरनार के दृश्य देखने को मिल गये। लेकिन उत्तर और पूर्व में कुछ साधारण अधकार था, जो समुद्र के तट की ओर बीस मील से आगे देखने से बाधा उत्पन्न करता था।

हमने वहाँ पर पर्वत के नीचे के भाग में नागवती नदी के जल को सूर्य की किरणों से चमकते हुए और उसकी छोटी-छोटी लहरो को समुद्र की तरफ अग्रसर होते हुए देखा। हमने वहाँ पर और भी कुछ देखा, हमने देखा वहाँ की घनी वृक्षावली को, उनकी पत्तियों से बनने वाली रमणीक छत को और पूर्व की तरफ फैली हुई झील को। ये सभी चीजें वहाँ के दृश्य को रमणीक बना रहे थे।

इसके पास ही आदिनाथ के दूसर बेटे बाहुबलि का एक छोटा सा मन्दिर बना हुआ है। उसके बनवाने के लिये उन लोगों को श्रेय मिला है जो बाहुबलि के पिता के भक्त थ। मक्का के इस अधिपति की पूजा भारत में और कहो पर होती है, ऐसा मैंने नही सुना और न कही पर देखने मे आया।

इसके साथ सम्बन्ध रखने वाले दो और भी पर्वत हैं—सौर भूमि के बाहर सिंधु के पार सहस्रकूट और मगध की राजधानी में समेत शिखर जो अब बङ्गाल में

है। बाहुबलि के मन्दिर के करीब सासन नामक जैनदेवी की एक छोटी-सी मूर्ति है और द्वार पर जैनियों की दूसरी प्रतिमा वेहोती माता की है, जिसका यह मन्दिर अनहिलवाड़ा के एक वैश्य ने बनवाया था। लेकिन इसकी तुलना उनके द्वारा आबू पर बनवाये हुए देव भवन के साथ नहीं की जा सकती।

चौक मे दीवार के किनारे-किनारे बहुत अधिक कोठरियाँ बनी हुई हैं। उन कोठरियों में प्रत्येक में किसी न किसी देवी अथवा देवता की प्रतिमा स्थापित है। इन असंख्य कोठरियों में अगणित देवताओं की मूर्तियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि इस देश के लोगों का देवता—आराध्य भगवान भी कोई एक नहीं है। उनकी जाति एक है, उनका देश एक है, उनका नगर एक है, उनका वंश एक है, लेकिन उनका देवता एक नहीं है।

इन सभी कोठरियों में विभिन्न प्रकार के देवताओं की मूर्तियाँ हैं और चारों तरफ से आये हुए यात्री अपनी अपनी श्रद्धा के अनुसार देवता की कोठरी में जाकर उसकी पूजा आराधना करते हैं।

मैंने अपनी तिपाई रायन पेड़ के नीचे लगायी और देखा कि पारा २८°४ पर है और थर्मामीटर दोपहर को भी ७२० बता रहा था। पहला यन्त्र पर्वत की उसी ऊंचाई का परिचय दे रहा था, जो आबू के गणेश मन्दिर की थी। उदयपुर की घाटी की ऊँचाई भी वही थी।

मन्दिर में कुछ ऐसी बातें भी थी जो न होनी चाहिये थी, जैसे जङ्गाली घंटे और उनको बजाने वाले लोहे के डंडे, अंगरेजी दीपक, कबूतरों और पायाधीशों के बेमेल चित्र, फिर भी यदि कोई दर्शक अथवा यात्री वहाँ के शिखर पर से लौटते हुए सन्ताप अनुभव नहीं करता तो उसके स्वभाव की यह एक विचित्रता होगी। यह बात जरूर है कि एक इतिहासकार और अन्वेषक के लिए यहाँ पर मिलने वाली सामग्री नहीं के बराबर है।

मैंने यहाँ पर प्राचीन पाली और दूसरे लेखों को पाने का प्रयत्न किया लेकिन उसमें मुझको सफलता नहीं मिली। बड़ी कोशिश के बाद मुझे जो पुराना लेख मिला, वह सम्वत् १३७३ सन् १३१७ ईसवी का था। उसको मल्ला के मरने के बीस वर्ष के बाद का भी कहा जा सकता है। यहाँ के सभी स्थानों पर इमारतों के टूटे फूटे हिस्सों के ढेर लगे हुये हैं और उन्हीं के बीच में टूटे हुये मन्दिर अतीत काल की स्मृतियाँ दर्शकों और यात्रियों के मनोभावों में जाग्रत करते हैं।

अब हम मन्दिर को छोड़कर हम पर्वत के उस भाग में आते हैं, जो बड़ौदा के प्रसिद्ध अनाज के व्यापारी के नाम पर प्रेम मोदी का टूट कहा जाता है। सम्पत्ति की शक्ति का इससे और बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि जिसने पचास वर्ष पहले ही एक महान प्रतापी सम्प्रतिराज के नाम को फीका कर दिया, जो विक्रम की दूसरी शताब्दी

में हुआ था और जिसकी पवित्रता तथा महानता के स्मारक अजमेर और कुम्भलमेर के मन्दिरों के रूप मे आज भी मौजूद हैं और जिसको समस्त जैनी लोग राजग्रह में राजा श्रेणिक के समय से अब तक अनहिलवाडा के स्वामियो अर्थात् अधिकारियों को मिलाकर अपना सबसे बड़े बड़ा राजा मानते रहे हैं।

इस प्रकार के तथ्य जिनके द्वारा मुझे प्राप्त हुए हैं, उन आचार्यों और उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में मैं पहले लिख चुका हूँ, इसके साथ साथ यहाँ की परम्पराओं के लिए मैं प्रशंसा करूंगा, जो मोदी के नाम के साथ सम्प्रति के नाम को जोड़ने का काम करती हैं। किसी भी अवस्था में वह मोदी भी प्रशंसा पाने का अधिकारी है, जिसने टूटे हुए पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया और उनको नयी जिन्दगी देकर उनके पुजारियों के गुजर-बसर के लिए न केवल अपनी कमाई का धन प्रदान किया, बल्कि उन मन्दिरों की रक्षा के लिए मजबूत परकोटे भी बनवा दिये।

मन्दिर बहुत स्थानों पर बनवाये गये हैं। लेकिन उनकी रक्षा के लिये इस प्रकार के सुरक्षित परकोटे सबत्र देखने को नहीं मिलते। यहाँ पर आदिनाथ और उनके अनुयायी यदि अपने आदमियों की शक्ति पर विश्वास रखते हों तो वे निर्भय होकर रह सकते हैं।

इन शिखरों का विभाजन एक घाटी के द्वारा होता है, जिसमें चट्टान को काट-काटकर विशाल सीढ़ियाँ ऐसे ढंग से बनायी गयी हैं कि जिनके द्वारा सम्पत्तिवान भी यहाँ की चढ़ाई को बिना किसी कठिनाई के पार कर सकें। आधे भाग पर आदि बुद्ध-नाथ की ऐसी मूर्ति खड़ी है, जिसका कोई स्पष्ट रूप नहीं है। इसके बिल्कुल निकट खोरियामाता का तालाब है, जिसके जल में सभी प्रकार के रोगों को नष्ट करने की शक्ति मानी जाती है। कहा जाता है कि इस महामाया ने तपस्या के इस पवित्र स्थान को भ्रष्ट करने वाले दानवों और राक्षसों तथा सौरों की खोर अथवा हड्डियों को भी निकाल लिया था।

उपरोक्त नाम बुद्ध और जिनेश्वर के अवतारों की एकता का एक अच्छा प्रमाण देता है और मेरे पास जो प्रमाण हैं नर-बुद्ध और आदिनाथ अथवा आदि-देव में कोई अन्तर नहीं है। मैं जानता हूँ कि अनेक योरप के लोगों ने इस विषय पर कितनी ही उलझनें पैदा कर ली हैं। वे दूर हो सकती हैं, यदि वे इन पर्वतों की यात्रा करें और इस प्रकार के किसी जलाशय के तट पर बैठकर यहाँ के आचार्यों को समझने की चेष्टा करें।

इसके बाद ही हम मान्दी के द्वारा सफेद संगमरमर के बने हुए उस मन्दिर में पहुँचे, जो यहाँ पर आमतौर से रत्नपोर कहा जाता है। इसमें आदिनाथ की पाँच मूर्तियाँ हैं, वे संगमरमर की बनी हुई हैं। कहा जाता है कि ये पाँचों मूर्तियाँ पाँच

पाण्डवों भाइयों को बनवाई हुई हैं। प्रत्येक भाई ने अपनी एक मूर्ति बनवाकर आदि जिनेश्वर को अर्पित की थी। एक छठी मूर्ति भी है जो नीचे है। कहा जाता है कि माता कुंती ने उसको बनवाया था, उस समय जब वे उनके साथ बनवास में आयी थीं। द्वार के पास ही पञ्चपाण्डव निवास बना हुआ है। सभी यात्री वहाँ पहुँचकर उसको प्रणाम करते हैं और अपनी श्रद्धा प्रकट करते हैं। इसके कुछ आगे एक जलाशय है, जो जिष्णु कुण्ड कहलाता है।

परकोटे में बने हुए एक दरवाजे से होकर हम मोटी टूक से शिवा सोमजी के टूक पर गये। वह अहमदाबाद का एक सम्पत्तिशाली नागरिक था। वह दानशील था, इसलिये उसका नाम उस प्रतिमा के नाम के साथ जोड़ दिया गया, जिससे मन्दिर का जीर्णोद्धार उसने करवाया था।

यह मन्दिर बहुत पुराना था। मूर्ति का नाम चौमुखी आदिनाथ है। यह मुख्य मन्दिर की ग्यारह फीट ऊँची मूर्ति से छोटी नहीं है। कहा जाता है कि इसके एक-एक पत्थर को मारवाड़ की पूर्वी सीमा के मकराणा की खान से यहाँ तक लाने में आठ हजार पौण्ड खर्च किये गये थे। लेकिन उन पत्थरों को लाने के लिये इतनी दूर जाने की जरूरत नहीं थी, इसलिये कि इससे भी अच्छा संगमरमर आबू और अरावली पहाड़ में भारी पाया जाता है।

शत्रुञ्जय माहात्म्य में एक स्थान पर लिखा हुआ है—'संवत् १६७५ सन् १६-१६ सुल्तान नूरुद्दीन जहाँगीर सवाई विजय राज्ये और शाहजादा सुल्तान खुसरु व खुरम के समय में शनिवार बैसाख सुदी १३ (२८ वैसाख) देवराज और उनके परिवार ने (जिसमें सोमजी और उसकी पत्नी राजुलदवी था), चतुर्मुख आदिनाथ का मन्दिर बनवाया।

इसके अतिरिक्त आचार्यों की एक विस्तृत सूची है, मैंने उसको छोड़ दिया है। उसी सूची में जिनमाणिक्य सूरि का नाम आता है। जिसके लिये कहा जाता है कि उसने जैन धर्म के लिए जिस प्रथम बरस्तान के दर में बादशाह अकबर से यह फरमान पाया था कि जहाँ कहीं जैन धर्म का प्रचार है, वहाँ पर पशु-वध नहीं किया जायगा। अकबर बादशाह का साम्राज्य उसकी इसी उदारता के कारण विशाल हो गया था। उसके साम्राज्य में विभिन्न धर्मों के मानने वाले रहते थे, अकबर बादशाह सभी का आदर करता था। इसका नतीजा यह हुआ था कि उस बादशाह को जगद्गुरु की पदवी दी गयी थी। वैष्णव लोग तो उसको कन्हैया का अवतार मानते थे। उसके बेटे जहाँगीर ने भी अपने पिता के आदर्शों का अनुकरण किया था। लोगों का कहना है कि वह एक बार इस्लाम के सिद्धान्तों से बहक कर हिन्दुओं के मन्दिरों में पहुँचा था। उसने दिगम्बर श्वेताम्बर साधुओं के सम्बन्ध में एक व भिन्न दैर का आदेश जारी

किया था। उप समय आचार्य जिनचन्द्र सूरि ने बुद्धिमानी से काम लेकर उसको टाला था।

शिवा सोमजी की टूट से चलकर मैं आदिनाथ की माता मरुदेवी के मंदिर मे पहुँचा। वह मन्दिर छोटा था, मैंने देवी की मूर्ति के दर्शन किये। उस माता के दर्शनो के लिए सभी यात्री उसके मन्दिर में जाते हैं और मस्तक झुकाकर उसके प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं। इसी प्रकार वहाँ पर एक दूसरा छोटा-सा मंदिर सन्तनाथ का है। चौबीस जैन तीर्थङ्करों में से यही एक ऐसा है, जिसकी मूर्ति सिद्धाचल पर भी है और जो प्रथम तीर्थङ्कर के नाम से प्रसिद्ध है।

इस नाम में पर्वत के कितने ही पर्यायवाची नामो में से इसके प्रयोग और प्रथम जैन तीर्थङ्कर के दूसरे नामों मे से इस नाम सिद्ध के जोड में हमें शैवों के शाश्वत प्रयोग की एक समता दिखायी देती है। शिव का दूसरा नाम सिद्धनाथ है, उसका अर्थ होता है, सब सिद्धों के स्वामी। आदिनाथ और आदीश्वर एक ही हैं और आदिनाथ का प्रसिद्ध नाम वृषभदेव नन्दिकेश्वर का पर्यायवाची है। उसका अर्थ होता है, वृषभ का स्वामी।

इसके अनुसार आदिनाथ अथवा वृषभदेव की मूर्ति उसके नीचे अंकित वृषभ अथवा बैल से जानी जाती है। ईश्वर अथवा शिव को नंदिक से उसी प्रकार पृथक नहीं किया जा सकता जैसे मूसिस से ओसिरिस को। कदाचित् इनका माहात्म्य एक सा है और एक-बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि ये भारतीय सीरिया पालीताना मे और मध्य सागर के सीरिया पैलेस्टाइन (फिलिस्तीन) में, सिन्धु और गंगा के किनारे पर अथवा उसी प्रकार नील नदी के तट पर पाये जाते हैं। बाल अथवा सीरा या सूर्य देवता (जिसके नाम और आराधना के कारण दोनो देशो का नाम सीरिया पड़ा) के उपासकों के द्वारा सच्ची भक्ति के साथ वृषभ अथवा लिंग के रूप में पूजे जाते हैं। और उनके सम्बन्ध में किसी समय बौद्धो और जैनियो का मत एक था।

इस पर्वत की तीनो टूकों का वर्णन करने के पश्चात् हमको आदिनाथ के मन्दिर से नीचे आना चाहिये। प्रत्येक मंदिर के अलग अलग वर्णन में लिये और उसकी ऐतिहासिक गाथा को सामने लाने के लिये अधिक अवकाश की आवश्यकता है। उसको पूरा करने के लिए मैं अपने आपको इस थोड़े दिनो की यात्रा मे काफी नहीं समझता। इसलिये इस आवश्यकता को पूरा न कर सकने की दशा म मैं दूसरे अन्वेषको स आशा करता हूँ कि व अपने शोध के द्वारा इसे पूरा करेंगे।

मैं यहाँ पर अपनी असमर्थता को स्वीकार करत हुये इतना ही कहना चाहता हूँ कि मैंने जो कुछ किया है, उस पर वे लोग जो यहाँ का ऐतिहासिक अन्वेषण करेंगे–विचार करें और देखें कि यहाँ के धर्मावलम्बियो के सम्बन्ध मे अधिक खोज करन पर किस प्रकार की जानकारी प्राप्त हो सकती है।

यहाँ के ठीक उत्तर में बनी हुई एक खिड़की होकर हम उतरकर बाहर आये और मुसलमानों के हैंगा पीर की दरगाह पर पहुँच गये। मैंने [illegible] जानने की कोशिश की कि यह पीर कौन था और वह किस समय हुआ था, इन बातों की खोज के लिये मैंने जितनी भी कोशिश की, वह सब बेकार गयी और मुझे सफलता नहीं मिली। जो कुछ मालूम हुआ, उसमें धार्मिक अन्धविश्वास के सिवा और कुछ नहीं है।

मुझे बताया गया कि दिल्ली के बादशाह का भतीजा गोरी बेगम पालीताना में रहता था और उसने अपने जीवनकाल में भीतर और बाहर दोनों मसजिदें और ईदगाह बनवायी थी। इस जनश्रुति के आधार पर हम यह नतीजा निकाल सकते हैं कि पीर किसी दीन के दीवाने अर्थात् धर्म के अन्धे विजयी के वश का था। लोगों का कहना है कि उस हैंगा ने अपनी तलवार आदिनाथ की मूर्ति पर चलाई, उसके परिणाम स्वरूप आक्रमणकारी को इतनी गहरी चोट आयी कि उसकी स्वयं मृत्यु हो गयी। कहा जाता है कि मरने के बाद वह भूत हो गया और पुजारियों के पूजा-पाठ में वह विघ्न पैदा करने लगा। उस दशा में एक बड़ी सभा की गयी और हैंगा के प्रेत को बुलाकर पूछा गया कि इस भूत के आत्मा को किस प्रकार शान्ति मिल सकती है? उस प्रेत ने इस प्रश्न का जवाब देते हुए कहा कि मेरी हड्डियाँ इस पर्वत की चोटी पर रखी जावें। कहा जाता है कि भूतों को वश में करने वाला हैंगा पीर अब भी जीवित है और [illegible] वहाँ पर लेटा हुआ है।

हिन्दुओं को इस प्रकार की उलझी हुई बातों पर बहुत आनन्द मालूम होता है। ऐसा मालूम होता है कि उनके धर्म को आघात पहुँचाने वाले का जब वे प्रतिरोध नहीं कर सकते तो इस प्रकार की कथाओं की रचना करके वे शान्ति अनुभव करते हैं। किसी भी अवस्था में हालत यह है कि इस समय जो दरवेश अपने पीरगाह की निगरानी करता है, उसने यहाँ के नियमों को पूरे तौर पालन करने का निश्चय कर लिया है और भली प्रकार वह उस स्थान के नियमों का पालन करता है। उसने अनेक दूसरे नियन्त्रणों के साथ मांसाहार त्याग दिया है।

हमारे नीचे उतरने के साथ ही बादलों ने हलकी बूँदें गिराना आरम्भ कर दिया और कुछ देर के पश्चात् वे बादल तितर बितर हो गये। कुछ देर तक पानी की बूँदें गिरने के कारण हवा ठंढी चलने लगी। पहाड़ पर बैरोमीटर २८° पर था और थर्मामीटर पहाड़ से नीचे उतरने पर भी ७२° पर बना रहा था।

पश्चिमी ढाल से होकर नीचे उतरने पर थोड़ी दूर पर हमको एक हलवाई का चबूतरा मिला। कहा जाता है कि जब काठी लोगों ने आदिनाथ के पुजारियों को लूटा था तो उस हलवाई ने पवित्र पर्वत की रक्षा के लिये अपना जीवन दे दिया था।

कुछ और आगे चलने पर कृष्ण की माँ देवकी के छै बेटा के स्थान पर आ

गये, जिनको हिन्दुस्तान हेरोड (१) कंस ने मार डाला था और कृष्ण द्वारका (२) भाग गये थे, जिससे उनकी जान बच गयी थी। यह मंदिर छै कोनों का बना हुआ है। उसमें चबूतरा और स्तम्भ हैं। मारे गये बच्चों की मूर्तियाँ काले पत्थरों की हैं।

यहाँ पर हमको एक वृद्ध गाने वाला विदूषक मिला। वह लाल कपड़े की टोपी पहने था। उसमें नकली मोती लगे हुए थे उसके कपड़े रेशमी थे। उसके पास इकतारा और मजीरे थे और उसके पैरों में घुंघरू बंधे थे। मजीरों की ताल पर वह अपने पैरों के घुंघरू बजाता और भाटों के रचे हुए अपने प्रदेश के गाने गाता था। अपने इन गानों के साथ, बीच-बीच में आदिनाथ की प्रशंसा करता जाता था। वह देखने में बहुत प्रसन्न मालूम होता था। अपनी इच्छानुसार वह घाटी की तलहटी तक मेरे साथ साथ गया। आगे चलकर हम लोग अलग अलग हो गये।

अपने खेमे पहुँचने के पहले और पालीथाना देखने के पूर्व हम इस पर्वत के सम्बन्ध में आवश्यक विवरण अपने पाठकों को देना चाहते हैं।

आदिनाथ के नाम पर जो सम्पत्ति है, उसका प्रबन्ध अहमदाबाद, बड़ौदा, पट्टण और सूरत आदि प्रसिद्ध नगरों के अधिक भक्त लोगों की समिति करती है। वह समिति सभी प्रकार से उस रियासत की देख भाल करती है और जिन आदमियों की नियुक्ति की जाती है, वे सब समिति के अधिकारियों के द्वारा रखे जाते हैं। वहाँ के गुमाश्ते भक्तों के द्वारा आयी हुई भेंटों को स्वीकार करते हैं और उस समिति के सामने ले जाते हैं। उनको और भी बहुत से काम करने पड़ते हैं, जैसे मरम्मत का कार्य, धूप, केसर आदि पूजा की सामग्री, कबूतरों और पशुओं की निगरानी, गायों की सेवा और उनके खाने पीने का प्रबन्ध और आमदनी तथा खर्च का हिसाब। इस प्रकार सभी कार्य उनको देखने और करने पड़ते हैं।

समिति का वर्तमान प्रबन्धक एक मेवाड़ का निवासी है, कहा जाता है कि वहाँ का खजाना सोने और जवाहिरात से भरा हुआ है। खर्च की अपेक्षा वहाँ की आमदनी अधिक है। यदि विदेशियों के द्वारा उस खजाने की लूट का भय न हो अथवा

(१) हेराड, गोलिली का बादशाह था। उसका समय ईसा से ४० वर्ष पहले से ४ ईसवी तक माना जाता है। वह निरपराधियों की हत्या कराने के लिए बदनाम था।

(२) इस घटना को लिखने के समय मूल ग्रंथकार टॉड साहब ने भूल की है, जिन पुस्तकों के आधार पर उन्होंने यह विवरण दिया है, उसका यह तो अनुवाद करने में अथवा इस विवरण को लिखते समय भूल कर गये हैं। जन्म के समय कृष्ण को गोकुल पहुँचाया गया था और द्वारका वे उस समय गये थे, जब कंस की मृत्यु हो गयी थी और जरासंध का आक्रमण हुआ था। [अनुवादक]

लूट न की जाय तो उसकी सम्पत्ति के कम होने का और कोई कारण नहीं है। इसलिए कि यात्रियों और भक्तों की संख्या बहुत अधिक है और उनकी चढ़ौनी तथा भेंटों से अपरिमित सम्पत्ति आती है। कितना भी खर्च करने पर उसके कम होने का कोई कारण नहीं है, यदि ऊपर लिखा हुआ कारण न पैदा हो।

एक समय था, जब काठी जाति के लुटेरे और आक्रमणकारी लोग बौद्ध और जैन लोगों को पैलेस्टाइन की यात्रा पर जाने वालों को रोका करते थे। लेकिन इधर लगभग पचास वर्षों से वह सब खत्म हो गया है। लेकिन पहले की हालत खराब थी। जो लोग वहाँ की यात्रा पर जाते थे, उनको कैद कर लिया जाता था और माँगी हुई रकम अदा करने पर उनको छोड़ा जाता था। लेकिन वह समय अब बिल्कुल बदल गया है। आशा यह की जाती है कि भविष्य में प्राचीन सौरों का छोटा सा राज्य कायदे से शासन में रखा गया तो निश्चय ही इसके उपजाऊ मैदान सौरोस (१) के आशीर्वाद से फिर सम्पन्न दिखायी देंगे और जो लोग आदिनाथ की यात्रा करने के लिए आते हैं, ऐसे भक्तों को कष्ट देने वाले लुटेरे कभी दिखायी न देंगे।

मेलों के दिनों में भारत के प्रत्येक स्थान से अगणित लोग इस प्रायद्वीप की यात्रा पर आते हैं। इन यात्रियों के झुण्ड अथवा गिरोह को संघ कहा जाता है। एक एक संघ में बीस बीस हजार और कभी-कभी इससे भी अधिक यात्री आते हैं। प्रायः धनिक व्यापारी अपने क्षेत्र के यात्रियों का संघ पति होता है और गरीब भक्त यात्रियों के खर्चों की भी व्यवस्था करता है।

इन मेलों के दिनों में आदिनाथ के दर्शनों के लिए बेशुमार यात्री आते हैं और सभी अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुसार आदिनाथ पर भेंट चढ़ाते हैं। यात्रियों का विश्वास होता है अथवा विश्वास कराया जाता है कि इस भेंट के बदले उन यात्रियों को आशीर्वाद और वरदान मिलता है, जिसकी जैसी भेंट होती है, उसको वैसा वरदान मिलता है। इसे सभी समझते हैं और जो नहीं समझते, उनको समझाया जाता है। ऐसा कोई भी यात्री नहीं होता, जो भेंट नहीं देता। अपनी सामर्थ्य के अनुसार, सभी को चढ़ौनी अथवा भेंट देनी पड़ती है और वहाँ के पण्डित, पुजारी तथा साधु, महन्त माँगकर नहीं, झगड़कर भेंटें ले लेते हैं।

इस चढ़ौनी और भेंट का विवरण बहुत महत्वपूर्ण है उस मन्दिर की प्रतिमा पर चाँदी और सोने के वजनी आभूषण चढ़ाये जाते हैं और इस प्रकार अपनी भेंट में कीमती आभूषण देने अथवा चढ़ाने वाले अपना गौरव अनुभव करते हैं। इन भेंटों में सोने के कीमती हार, कंठे, पाँच-पाँच और सात-सात लरों की जंजीरें साधारण बात

(१) प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार वनस्पति और अनाज का देवता। आदिनाथ पहाड़ पर उसका निवास-स्थान माना गया है।

है। बहुमूल्य हीरे जवाहिरात और पन्नों (नीलम) से जटित सोने के मुकुट प्रतिमा पर चढ़ाये जाते हैं, जिनकी कीमतें प्रायः ३५०० पाउंड से भी बढ़ जाती हैं। इस प्रकार कीमतें भेंटे देने वाले धनिक भक्त अधिक सख्या में आते हैं। यदि यह कहा जाय तो कुछ भी अतिशयोक्ति न होगी कि भक्त यात्रियो मे धनिकों की सख्या अधिक होती है।

आदिनाथ के मस्तक पर हमेशा एक मुकुट रहा करता है, जिसकी कीमत का अनुमान नही किया जा सकता है। जिस समय मैंने आदिनाथ के दर्शन किये थे, उस समय उनके मस्तक पर गगा जमुनी सोने-चाँदी का गोल मुकुट था।

पाश्चात्य देशों के यात्री जब कभी इन स्थानों पर आते हैं तो यहाँ के आचार्य और जैन मत के विद्वान उनके सामने अपने धर्म और सम्प्रदाय की मोटी-मोटी पुस्तकें रखकर अपने सिद्धान्तों की प्रशसा करते हैं। यहाँ पर जो उत्सव होते हैं, उनमे कार्तिक की पचमी का उत्सव सबसे अधिक श्रेष्ठ माना जाता है। उस उत्सव का नाम है, ज्ञान पचमी अर्थात् ज्ञान का देने वाला उत्सव। उस दिन सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में जैनियों के पुस्तक भण्डारों से पुस्तकें निकाल कर धूप में रखी जाती हैं, उनको हवा दी जाती है और उनकी सफाई की जाती है। इसके बाद उन पुस्तकों की पूजा की जाती है।

इससे होता यह है कि पुस्तकें खराब होने से बहुत-कुछ बच जाती हैं। सीड न लगने और कीडो के खा जाने से पुस्तको के पन्नों की बहुत कुछ रक्षा होती है। पूजा के बाद वे सभी पुस्तकें ग्रंथ भडार में रख दी जाती हैं। इन ग्रंथो के सम्मान का एक बड़ा प्रमाण यह है कि उनका भडार आदिनाथ की मूर्ति के पास ही रखा गया है।

पालीताना—शत्रुञ्जय के नीचे कुछ मीलो के घेरे की भूमि में जो लोग रहते हैं, वे सम्पूर्ण पृथ्वी को पवित्र मानते हैं। उनके अनुसार, पल्लि का निवास इस पर्वत से बिल्कुल मिला हुआ है। मैंने इसके जानने की बहुत कोशिश की कि इस नाम का रहस्य क्या है? मेरी यह पुरानी आशा थी कि जिस भूमि पर पल्लि ने अपने धर्म का प्रचार और प्रसार किया था, वहाँ पर मुझको इडोसीथिया की गलाती अथवा केट्टी नामक सदा भ्रमण करने वाली जाति के सम्बन्ध में कुछ जानकारी प्राप्त होगी, लेकिन पुरातत्व के पाठक यहाँ की परिस्थितियों का अनुमान लगावें, जब कि मुझे कुछ प्राप्त होने की अपेक्षा जो मेरी कल्पनायें थीं, वे भी नष्ट हो गयी। मैंने पालीताना, शत्रुञ्जय, आदिनाथ और उनके अनुयायी शिष्यों के सम्बन्ध मे जानने के लिए मेरे अन्तरतर में जो उत्साह था, वह व्यर्थ हो गया। इससे मुझे बड़ी निराशा हुई।

मिस्र के फिलातीनो अथवा प्राचीन इटली (१) निवासी पेलो के साथ किसी प्रकार की समता करने के बजाय अथवा कुछ जानकारी कराने के स्थान पर मुझको

(१) एट्रूरिया इटली का एक जिला है, जो आजकल टस्कनी के नाम से प्रसिद्ध है। रोम के उत्थान के दिनों से पहले यहाँ पर ऐसी सभ्य जातियाँ रहा करती थीं,

पा^लिप्त नाम के एक महातान्त्रिक का कुछ परिचय दिया गया। मुझे बताया गया कि वह अपने निवास स्थान भृगुकच्छ (जिसको ग्रीक लोग बैरीगाज़ा कहते थे और जो आजकल भड़ौच कहलाता है) से आदिनाथ पर्वत तक आकाश के रास्ते से यात्रा किया करता था।

इसके सम्बन्ध में लोगों का यह भी कहना है कि वह उड़न के समय अपने पैरों के तलुओं में किसी खास चीज का लेप किया करता था, इसीलिए उसका नाम पादलिप्त पड़ा था। इस प्रकार के कथानक कहाँ तक सही हैं और उन पर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है, इस पर मैं कुछ अधिक लिखना नहीं चाहता। अपने सम्बन्ध में मैं स्पष्ट बताना चाहता हूँ कि मैं स्वयं विश्वास नहीं करता।

यहाँ पर संक्षेप में मैं इसके नाम के सम्बन्ध में कुछ लिखना आवश्यक समझता हूँ। यहाँ के विद्वान आचार्यों ने इसके नाम की जो व्याख्या की है, वह व्याख्या मुझको छोटे बच्चों की बातों की तरह भोली-भाली मालूम पड़ती है। संसार की बातों से अनभिज्ञ लोग उनको सुनकर विश्वास कर सकते हैं, लेकिन सभी लोग विश्वास न करेंगे।

उसके नाम के सम्बन्ध में जो मुझे बताया गया और उसकी आकाशी यात्रा का वर्णन किया गया, उसको सुनकर मेरे ऊपर कुछ अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। मैं तो साफ कहना चाहता हूँ कि बूढ़ा पादलिप्त उसके पादलेप भले हो चमत्कार पूर्ण रहे हों, लेकिन उनका कोई सम्बन्ध पल्ली लोगों के साथ उस तरह का समझ में नहीं आता। पल्लियों ने समस्त पश्चिमी भारत में अपनी कला के निशान छोड़े हैं।

मेरा तो कुछ यह भी विश्वास है कि मध्य एशिया से एक प्रसिद्ध जाति के आने का यह परिणाम सामने आया है। वह कौम अपने साथ धर्म के कुछ विशेष सिद्धान्तों को लेकर यहाँ आयी थी और उन्हीं का यहाँ पर बौद्ध तथा जैन धर्मों के रूप में विकास और उत्थान हुआ। मेरे ऐसा सोचने का एक मजबूत कारण और आधार है।

पालीताना में प्राचीन काल के खण्डहरों को छोड़कर और कुछ नहीं मिलता। यहाँ पर जो मन्दिर और देवस्थान देखने को मिलते हैं वे सभी मुसलमानों के द्वारा नष्ट भ्रष्ट हो चुके हैं। इन इमारतों को देखने से पता चलता है कि वे कच्चे पत्थर की

जिनकी सभ्यता के प्रमाण आज भी पाये जाते हैं। उनकी सभ्यता का प्रभाव निश्चित रूप से रोम की सभ्यता पर पड़ा था। सभ्यता का प्रवाह संसार के सभी देशों में एक के बाद दूसरे में फैला है। रोम के लोगों में जो वहाँ की सभ्यता का असर हुआ, उसके प्रमाण में अनेक प्रकार की कला और संगतराशी के द्वारा गुम्बदों और फूलदानों पर चित्रकारी आज भी देखने को मिलती है।

बनी हुई हैं। उनके ऊपर की पपड़ी अपने आप उखड़ जाती है। इसके फलस्वरूप यहाँ के शिलालेख नष्ट हो गये हैं। ये शिलालेख भूरे रंग के पाये जाते हैं।

इस नगर का विस्तार पहले बहुत अधिक था। गोरी बेगम की बनवायी हुई मस्जिद पहले नगर के भीतर थी। लेकिन अब नगर के बाहर है मैंने शिला-लेखों के सम्बन्ध में यहाँ पर जो खोज की, वह सब बेकार गयी। इतिहास में हमें कहीं पर भी गोरी वंश के सम्बन्ध में पढ़ने को नहीं मिलता। जिससे मालूम हो सके कि यहाँ पर कभी उस वंश का राज्य था अथवा उस वंश के लोग दिल्ली राज्य के मातहत बनकर कभी यहाँ रहे हों।

इस मस्जिद और पालीताना में बनी हुई हिन्दू इमारतों के खण्डहरों से दोनों जातियों की कलाओं का अनुमान होता है। यहाँ पर मम्बार अथवा मुल्लों के चबूतरे के दोनों तरफ जो तोरण बने हुए हैं, उनमें शैव लोगों की कुछ बातों के आधार पाये जाते हैं। शहर के भीतर एक प्राचीन स्मारक पाया जाता है, वह एक बावड़ी अथवा जलाशय है, जो प्राचीन जनश्रुतियों के अनुसार प्रसिद्ध सदयवत्स और सावलिंगा के नाम से मशहूर है। उन दोनों में प्रेम था और उनकी प्रणय कथा हिन्दुओं के द्वारा आज भी सुनने को मिलती है। इस प्रकार की कथाओं के सम्बन्ध में अगर हमको कोई शिला लेख मिल जाता तो उसके आधार पर हम इस बात को मान लेते कि इस बावड़ी के निर्माण का समय निश्चित् रूप से आठारह सौ वर्ष पहले का कोई है।

सदयवत्स तक्षक शालिवाहन का लड़का था। उसने हिन्दुस्तान के सबसे बड़े सम्राट विक्रम को पराजित किया था, जिसका सम्वत् आज भी उत्तरी भारत में चलता है। एक दिन था, जब यह सम्वत् सम्पूर्ण हिन्दुस्तान में प्रचलित था। इसके बाद टाक अथवा तक्षक राजा ने विक्रम पर आक्रमण किया और नर्मदा के दक्षिणी भाग में से उसके शासन का अन्त कर दिया। इसी समय उसने अपना शक सम्वत् प्रचलित किया। इसके आधार पर सीथिक अथवा गेटिक जाति की कुछ बातों का पता चलता है।

यदि हम पुराने कथानक पर विश्वास करें तो हम इसके मानने के लिये मजबूर हो जाते हैं कि इन दोनों राजाओं के युद्ध में आपसी समझौता हुआ था और उस समझौते के अनुसार शालिवाहन भारत के प्रायद्वीप के हिस्से का अधिकारी हो गया। और नर्मदा का समस्त उत्तरी भाग विक्रम के अधिकार में आ गया। अब तक पूर्वी भाग अर्थात् दक्षिणी भारत में शक सम्वत् का प्रयोग होता है और उत्तरी भारत में विक्रम सम्वत् चलता है। इसके आगे हम बावड़ी के सम्बन्ध में लिखना चाहते हैं।

सावलिंगा उन दिनों में अपने रूप और गुणों के कारण चारों तरफ प्रसिद्ध हो रही थी। वह जैन धर्म का पालन करती थी। उसके पिता पद्म को उसके ऊपर गरूर

था। पद्म अपने समय का एक सम्पत्तिशाली व्यापारी था। वह गोदावरी के किनारे शालिवाहन की राजधानी पैठान (१) नामक नगर में रहता था। वहाँ के रेगिस्तानी दक्षिणी भाग में पारकर (२) नामक नगर के निवासी के सम्पत्तिशाली महाजन ने सार्वलिगा के माता पिता से उसके साथ विवाह की बातचीत की थी और उसके साथ सार्वलिगा की सगाई हुई थी। उसका भावी पति सार्वलिगा को लेने के लिये पैठान में आया था। लेकिन सार्वलिगा उसके साथ जाने के लिये तैयार नहीं थी। उसने शालिवाहन के लड़के से अपना प्रेम सम्बन्ध जोड़ा था। यह सम्बन्ध भीतर ही भीतर मजबूत हो चुका था। सार्वलिगा शालिवाहन के लड़के को छोड़कर वहाँ जाने के लिये तैयार नहीं थी। वह आत्म हत्या करके मर जाना अपने लिये अच्छा समझती थी, लेकिन [illegible]रकर जाना नहीं चाहती थी।

शालिवाहन के लड़के के साथ सार्वलिगा का प्रेम अभी तक अछूता और पवित्र था। कालिकादेवी के मन्दिर में एक ही आचार्य के पास दोनों ने शिक्षा पायी थी और दोनों की अनजान अवस्था में प्रेम का अंकुर उगा था जो धीरे धीरे अपने आप पनप रहा था।

एक तरफ प्रेम का पौधा तेजी के साथ सजीव हो रहा था और दूसरी तरफ वियोग का समय समीप आता जाता था। सगाई तो हो ही चुकी थी। गुरु के यहाँ दोनों शिक्षा पा रहे थे और भीतर ही भीतर दोनों में प्रेम की आग बढ़ती जाती थी। आचार्य की शिक्षा उन दोनों के स्नेह को रोक नहीं सकी। सार्वलिगा अपनी सगाई की बात जानती थी और उसके प्रेमी से भी यह बात छिपी न थी। सार्वलिगा में इतना साहस नहीं था कि वह पिता से अपने विवाह का विरोध कर सके। लेकिन उसने हृदय से अपना पति शालिवाहन के बेटे को चुना था। विवाह के दिन निकट आते हुए जान कर दोनों ने कालिकादेवी के मन्दिर में शपथ ग्रहण की हम दोनों एक दूसरे के लिये जीवित रहेंगे। दोनों ने अपनी इस प्रतिज्ञा में कालिकादेवी को साक्षी बनाया।

विवाह का समय आ गया। विवाह हो भी गया। यह निश्चय हुआ कि दूसरे दिन प्रातःकाल पारकर महाजन अपनी नवविवाहिता पत्नी को लेकर विदा होगा और मरुभूमि के रास्ते में पड़ने वाले सभी सौरदेशीय मन्दिरों में दर्शन करता हुआ अपने नगर को जायगा।

---

(१) यह परीप्लस का तागारा है। जहाँ से रोम के बाजारों में बिकने के लिये मलमल के कपड़े जाया करते थे। मैं पूरे तौर पर इस बात पर विश्वास करता हूँ कि यह नाम टार नगर अथवा तक्षर नगर का अपभ्रंश है।

(२) मूल कथानक में पारा नगर और रूपसी मेहता के नाम पढ़ने को मिलते हैं। उनके आगे का कोई भी विवरण नहीं पाया जाता।

सावलिंगा ने किसी प्रकार इस निश्चय का समाचार अपने प्रेमी के पास भेज दिया और अन्तिम मिलन के लिये देवी का मन्दिर निश्चित किया। जहाँ पर उन दोनों ने प्रेम की प्रतिज्ञायें की थीं। सावलिंगा का प्रेमी और शालिवाहन का बेटा सदयवत्स उस समाचार को पाने के बाद कालिका देवी के मन्दिर में जाकर छिप गया। समय पर सावलिंगा भी वहाँ पहुँच गयी। लेकिन कालिका देवी को एक नारी का यह पतन सहन नहीं हुआ। इसलिये कि वह एक दूसरे पुरुष के साथ अपना विवाह कर चुकी थी। अतएव देवी ने राजकुमार सदयवत्स को गहरी नींद में सुला दिया और समय रहते उसकी नींद न खुली। इसका नतीजा यह हुआ कि उन दोनों प्रेमी और प्रेमिका ने जो निश्चय किया था, वह असफल हो गया। सावलिंगा ने उसको जगाने की सभी चेष्टायें कीं। लेकिन उसकी नींद नहीं खुली और बिना आँखें खोले वह बेहोशी के साथ सोता ही रहा। सावलिंगा के हृदय को निराशा ने उसके मन में घबराहट पैदा कर दी। जब उसका कोई उपाय नहीं चला तो उसने सोचना आरम्भ किया।

अपने मन में जो आशा लेकर सावलिंगा मन्दिर में आयी थी, वह व्यर्थ हो गयी। दोनों ने मिलकर अपने भविष्य जीवन के लिये एक योजना बनायी थी, लेकिन उसका रास्ता ही कटता हुआ उसको दिखायी पड़ा, उसे यह भी चिन्ता हुई कि लोग उसको खोजने के लिये निकलेंगे। उसका भय बढ़ने लगा। सभी चेष्टायें उसकी बेकार हो गयीं, राजकुमार की नींद नहीं टूटी। अन्त में घबराकर सावलिंगा ने खाये हुए पान की अपनी पीक से प्रेमी के हाथ में कुछ लिखा और निराश होकर वह मन्दिर से लौट पड़ी।

सावलिंगा के चले जाने के बाद राजकुमार की नींद खुली। उसको होश आया, अपने आस-पास सावलिंगा को न पाकर वह अत्यधिक व्याकुल हुआ। उसने सावलिंगा को खोजने और पाने के लिये निश्चय किया। उसने भिखारी का वेष धारण किया, हाथ में एक कमण्डल लिया। बगल में मृगछाला दाबी और प्रेमिका की तलाश में उसने अपना राजमहल छोड़ दिया।

राजकुमार पालीताना पहुँचा वहाँ पर वह नगर की पुरानी बावड़ी में हाथ-मुँह धोने के लिये गया। स्नान करने के समय उसने अपने हाथ में लिखा हुआ देखा, मन्दिर की शपथ को भूलना नहीं।

इस बात को पढ़ते ही राजकुमार के सारे शरीर में मानो बिजली दौड़ गयी। उसे स्मरण हुआ कि सावलिंगा मन्दिर में आयी थी और मैं लेटकर सो गया था। मेरे न जागने पर वह मेरे हाथ में लिखकर चली गयी है। उसके हृदय में सावलिंगा के मिलने की आशा फिर से जागृत हो उठी। स्नान करके उसने सूखे कपड़े पहने और मरुभूमि की तरफ वह रवाना हुआ।

इस कथानक को अधूरी हालत में मैं यहीं पर छोड़ता हूँ। कारण यह है कि

इसके आगे का भाग मुझसे खो गया है। मैं पूरी घटना अपने पाठकों को नहीं द सका, इसके लिये मुझे अफसोस है। लेकिन जहाँ तक मैंने इसके सम्बन्ध में लिखा है, उसके आगे का भाग बावड़ी के निर्माण और नाम से बहुत कुछ सम्बन्ध रखता है। उसकी कल्पना की जा सकती है। कथायें सभी सही नहीं होतीं अथवा उनके पूरे अंश सही नहीं हुआ करते, यह ठीक है। लेकिन ऐसे मौकों पर यदि कोई घटना अधूरी छूटती है तो शेष भाग कल्पना पर अपने आप आ जाता है। मैं तो इस बात पर विश्वास करता हूँ कि दो हृदयों के प्रेम की घटनाओं और प्रतिज्ञाओं के बाद यदि किसी स्मारक के नाम म दोनों का नाम आता है तो घटना का शेष भाग अपने-आप स्पष्ट हो जाता है। सही बात तो यह है कि उस बावड़ी के निर्माण की जब तक एक-एक ईंट बाकी रहेगी, दोनों के प्रणय की कहानी कही जायगी। इस स्मारक ने प्रेम की इस घटना की महिमा अमर बना दी है।

यहाँ के किसी शिला लेख का पाने के लिये मैंने बहुत चेष्टा की, लेकिन मुझे सफलता नहीं मिली। यह बात नहीं है कि उन दिनों में यहाँ पर शिला लेख लिखे न गये हों। लेकिन हुआ यह है कि तुर्कों के आक्रमण के बाद यहाँ पर जो इमारतें—हिन्दुओं और मुसलमानों—दोनों की बनी, उनमें पुरानी इमारतों की अन्य सामग्री के साथ-साथ, शिला लेख के पत्थर भी काम में लाये गये। ऐसा करने वालों ने यह नहीं सोचा कि इन शिला-लेखों को भी अपने प्रयोग में लाकर अतीतकाल के ऐतिहासिक अन्वेषकों के प्रति हम कितना अधिक अन्याय कर रहे हैं।

हिन्दुओं क पुराने ग्रन्थों में जो कथायें पढ़ने को मिलती है, उनम अधिकांश ऐसी हैं, जिनके साथ एक न एक ऐतिहासिक घटना का सम्बन्ध पाया जाता है और उसके अभाव में उन दिनों का इतिहास अधूरा रह जाता है।

वर्तमान पालीताना का इतिहास अधिक विस्तृत नहीं है। यहाँ का अधिकार गोहिलवंश की एक शाखा के हाथों में उस समय से चला आ रहा है, जब से यह जाति सौराष्ट्र में आकर बसी थी और अब तक यहाँ पर उसकी पच्चीस पीढ़ियाँ बीत चुकी हैं।

पिछले साठ सत्तर वर्षों में पालीताना का सम्मान बढ़ा है। इसका कारण यह है कि गायकवाड़ के अधिकारियों के क्रूर अत्याचारों और काठी लोगों के हमलों से अपनी और अपने परिवार की जान बचाने के लिये गोडिमावाड़ के रहने वाले उस प्रदेश को छोड़कर यहाँ चले आये थ।

यहाँ के वर्तमान शासक का नाम कांधड़ भाई है। उनकी अवस्था बावन वर्ष की है और उसने अपने शासनकाल में अच्छी ख्याति पायी है। उसके इस छोटे-से राज्य में गोडिमावाड़ के लोगों को मिलाकर छोटे और बड़े—सब मिलाकर पचत्तर हैं। लेकिन वे कुछ तो उनके वंश की बड़ी शाखा के प्रधान भावनगर के राव से वैर भाव

के कारण और बहुत कुछ काठी लोगों की लूटमार से भयभीत होकर इधर-उधर हो जाने के कारण प्रायः उजाड़ और निर्जीव हो गये हैं। कुछ लोगों को शर्तों के बन्धनों में आ जाने के कारण सुरक्षित बने रहने के लिये अरब वालों को खुश रखना पड़ता है। जब आक्रमण और लूटमार की आशङ्का कम हो गयी तो उनको अपने इन रक्षकों से ही अधिक भय उत्पन्न हो गया। इसलिये उनकी धमकियों से बचने के लिये अपनी सारी जायदाद उन लोगों ने एक वैश्य के यहाँ गिरवी कर दी और अपने निर्वाह के लिये जायदाद की आमदनी से वार्षिक चलीस हजार लेना मन्जूर कर लिया। उस बनिये ने जायदाद को अपने अधिकार में लेकर अरब वालों की माँग के अनुसार, एक निश्चित रकम देना आरम्भ कर दिया।

अरब वालो को यह रकम देने की प्रणाली कैसे कायम हुई, इसके तथ्य जानने के लिये आवश्यकतानुसार मेरे पास समय नही था। इसलिये यहाँ के एक दिन के मुकाम में मैं अधिक जानकारी प्राप्त नहीं कर सका। लेकिन जो कुछ मैं समझ सका, वह यह है कि ऋण देने वाला जब कुछ निश्चित वर्षों के लिये जायदाद का ठेका ले लेता है तो वह किसानो की दशा को अच्छा बनाने की चेष्टा करता है। लेकिन इस क्षेत्र की अवस्था कुछ और ही थी। भय और आतंक का प्रभाव बहुत दिना तक चला था और आज तक वहाँ की भीतरी अवस्था अधिक स्थिर नही है, इसलिये किसानों से लेकर अधिकारियो तक अपने भविष्य की सुरक्षा का कोई अधिक और स्थायी रूप से विश्वास नहीं है। इसलिये वे अपनी परिस्थियो को सुधारने में सफल नही हो पाते।

पहले गोहिल राजाओं की तरफ से यात्री-कर चलता था और उस समय यह कर यात्रा की दूरी के हिसाब से एक रुपये से पाँच रुपये तक प्रत्येक आदमी पर था। लेकिन अब उसमे अन्तर पड़ गया है। मुझे बताया गया है कि वह कर अब साधारण रूप से सब पर एक रुपया कर दिया गया है।

यहाँ पर अगर हम यह मान लें, जैसे कि पहले भी हमें जानने को मिला है कि सघों में धनिक और सम्पत्तिशाली हमेशा से गरीबो की सहायता नहीं करते थे, बल्कि वे उनका कर भी अदा करते थे। ऐसी दशा में भी इस नगर की आमदनी दस हजार से लेकर बीस हजार तक होना चाहिये और इस परिस्थिति म इस नगर की उन्नति होनी चाहिए।

इन दिनों में आस पास के ग्रामों में खेती का काम बहुत कम हो गया है और इसका प्रभाव यह पड़ा है कि पड़ोसी प्रदेशों में खेती लोग कम करने लगे हैं। यहाँ की मिट्टी में कोई खराबी नही है और पता लगाने पर मुझे बताया गया है कि मध्यभारत की तरह यहाँ की भूमि उपजाऊ है। यहाँ की मिट्टी मे चिकनी मिट्टी की अधिकता पायी जाती है और यह मिट्टी 'माल' के नाम से प्रसिद्ध है। इस मिट्टी के कारण ही उस प्रदेश का नाम मालवा पड़ा है।

मैं नहीं चाहता कि पालीताना से यहाँ के स्मारकों और शिलाओं तथा पालियों के विषय में बिना कुछ कहे विदा हो जाऊँ। इसलिए जो सामग्री मैं प्राप्त कर सकता हूँ, उसके आधार पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

नगर के पश्चिमी भाग में और कुछ दूसरे स्थानों पर जो पहाड़ी की तलहटी तक उन पत्थरों के बहुत से ऊँचे ढेर मिलते हैं, जो सौराष्ट्र के शौर्य का परिचय देते हैं। उनको देखकर उत्तरी भारत के यात्री आश्चर्यचकित हो जाते हैं यद्यपि वे यात्री, कभी राजपूताना नहीं गये और वहाँ के दृश्य नहीं देखे, जहाँ पर इनको जुझार कहा जाता है। इस प्रकार के पत्थर राजपूताना के उन स्थानों में अधिक पाये जाते हैं, जहाँ पर वहाँ के बहादुर राजपूतों ने अपने स्वत्व की रक्षा करने में प्राण दिये थे। लेकिन यहाँ पर जो पत्थर गाड़े गये हैं, व कब्रिस्तान के-से मोटे मोटे हैं।

हिन्दुस्तान में पत्थरों पर ऐतिहासिक घटनाओं और उनके समय का लिखना एक प्राचीन प्रणाली है। उनके द्वारा इतिहास के छोटे छोटे जो तथ्य पाये जाते हैं, वे बड़े काम के होते हैं। अन्वेषण के लिये जो यात्री भ्रमण करते हैं, उनके सही इतिहास की सामग्री इन पत्थरों से ही मिलती है और उनसे प्राचीन जातियों के रीति रिवाज, रहन सहन से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी बातें मिल जाती हैं।

इस प्रकार इन पत्थरों से जो प्राचीन सामग्री प्राप्त होती है, उसके सत्य होने में किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता। यह भी होता है कि लेख न होने पर भी केवल पत्थर अथवा उस प्रकार की कोई दूसरी चीज हो, उससे भी प्राचीन ऐतिहासिक तथ्यों का आभास होता है। उदाहरण के तौर पर यहाँ से पास ही एक बेरवा ग्राम में मारे गये व्यक्ति की मूर्ति रथ में बैठी हुई दिखायी गयी है। उससे प्राचीन काल का अनुमान आभास होता है। इसलिये कि रथों का प्रयोग युद्ध में प्राचीन काल में ही होता था। अब रथों का प्रयोग नहीं होता।

जैनियों, उनकी परम्पराओं और उनकी दूसरी बातों के सम्बन्ध में जो कुछ मुझे लिखना है, उसको मैंने गिरिनार के पर्वत की यात्रा के समय तक के लिये रोक लिया है। कुछ कारणों से उसके पहले कुछ लिखना मैंने अनावश्यक और असमय समझा है। मेरे मित्र मेजर मार्डन ने इसके सम्बन्ध में बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। वे चाहते हैं कि मैं उस पर कुछ अधिक लिखूँ, लेकिन मैंने अधिक लिखने की चेष्टा की तो बहुत कुछ उनकी सामग्री की छाया आ जायगी। हम दोनों के अन्वेषण के स्रोत एक से हैं। परिणाम एक हो जाना अस्वाभाविक नहीं होगा। इसलिये इन सब बातों को सामने रख कर ही मैं आगे लिखने की चेष्टा करूँगा।

पन्द्रहवाँ प्रकरण

काठी जाति और पाण्डव बन्धु

गोडियाधार का क्षेत्र—दम्मनगर की विशेषता—गुजरात का प्रदेश—काठी राजपूत—उनकी आकृति, शूरता और वीरता—सौराष्ट्र प्रदेश का गौरव—ग्रामीण दृश्य—पूर्वी और पश्चिमी जातियों के रस्मोरिवाज—पाण्डवों का शरण स्थान—मानचित्र और इस प्रदेश का भूगोल—सूर्य मन्दिर के विवरण।

गोडियाधार—नवम्बर हमें इस स्थान तक पहुँचने में लगभग सत्रह मील उपजाऊ जमीन का रास्ता पार करना पड़ा। उपजाऊ हमने इस अर्थ में लिखा है कि यहाँ की मिट्टी खेती की उपज के लिए बहुत अच्छी है। लेकिन मिट्टी के अनुसार यहाँ पर खेती का कार्य अधिक नहीं होता और मुझे बताया गया है कि यहाँ पर ऐसे गाँवों की संख्या कम है, जहाँ पर लोग खेती का काम करते हैं।

यहाँ के मैदान समतल नहीं हैं, वे ऊँचे-नीचे हैं। कहीं-कहीं पर थोड़ी दूर के बाद ही आगे का रास्ता आँखों से ओझल हो जाता है और कहीं-कहीं पर आँखों का प्रकाश मीलों की दूरी तक काम करता है। ऐसे मैदानों में शत्रुञ्जय पर्वत और दक्षिण की तरफ की लम्बी श्रेणियाँ भी दिखायी देती हैं।

इस क्षेत्र में वृक्षों की संख्या बहुत कम है। वे गाँवों के भीतर और बाहर दिखायी देते हैं और जो पुन गाँवों के निकट हैं, उनमें नीमों और आमों के पेड़ अधिक हैं। आबादी से दूर जंगलों में बबूल के पेड़ों की संख्या अधिक मिलती है। उनके कारण मार्ग के दृश्य आँखों से ओझल हो जाते हैं।

पिछले पृष्ठों में लिखा गया है कि गोडियाधार म देखने के योग्य कोई विशेष स्थान नहीं है। फिर भी, यह एक प्रमुख स्थान है, जहाँ पर पालीताना के ठाकुर के सम्बन्धी रहा करते हैं।

दम्मनगर, १६ नवम्बर—यह स्थान बारह मील के फासिले पर था। गायकवाड़ का विशेष क्षेत्र होने के कारण यहाँ के कृषकों को संरक्षण प्राप्त था। यही कारण था कि यहाँ पर खेती का कार्य अच्छा होता था।

यह स्थान पहले गोहिलों के अधिकार म था। लेकिन बाद में उनके अधिकार से चला गया और अब यह अमरेली का एक हिस्सा है। प्राचीन काल में इसका नाम हिन्दुआ से सम्बन्धित था। लेकिन दक्षिणी नामक दामोजी न इसका नाम अपने नाम

पर कर दिया। यह वही दामोजी था, जिसने पाटण का कोट निर्माण कराया था।

यहाँ पर हमने काले गन्ने के कुछ हरे हरे खेत देखे और धान, तिल और मूंग के पेड़ों से भरे हुये खेतों को भी देखा। लेकिन ज्वार और बजरा के पतले पतले पेड़ बता रहे थे कि यहाँ पर बरसात अच्छी नहीं हुई है और वर्षा के जल के अभाव से गुजरात का प्रायद्वीप भी अधिक प्रभावित था।

मैंने कपास के बहुत अच्छे कुछ खेतों को देखा जिसमें कपास बोयी गयी थी और जिनमें कपास के पेड़ खड़े थे, उन्हीं में एरण्ड की फसल भी थी और उसके ऊँचे पेड़ हवा की तेजी में हिल रहे थे।

मुझे लोगों ने बताया कि यहाँ पर पानी केवल बीस फीट नीचे है। यहाँ पर गेहूँ की खेती के लिये आबपाशी का कोई साधन नहीं है। गोगो से आने के बाद मुझे कहीं पर खेती की सिंचाई के बाद साधन नहीं मिले। यहाँ की मिट्टी गेहूँ की खेती के लिये बहुत अच्छी है। फिर भी पानी का प्रबन्ध न होना किसी राजनैतिक कारण की तरफ संकेत करता है।

इस स्थान के पास से ही एक छोटा सा पानी का नाला बहता है। उसमें मछलियाँ बहुत अच्छी हैं। इसकी मछलियाँ उत्तरी भारत की गोरिया मछली की तरह मालूम होती हैं और सफेद मछलियों से बहुत-कुछ मिलती जुलती हैं।

आकला, २० नवम्बर—मैं पहले ही डरता था कि यहाँ का बीस मील लम्बा रास्ता अगर एक साथ पार करना पड़ा तो साथ के लोग बहुत थक जायेंगे। इसलिए मैंने इस मंजिल के टुकड़े करने का विचार किया। लेकिन जब मालूम हुआ कि आकला पिछले मुकाम से केवल नौ मील के फासले पर था तो सतोष मिल गया।

हम अपने मुकाम पर प्रातःकाल आठ बजे के करीब पहुँच गये। उस समय थर्मामीटर ६८° पर था। यह स्थान—जो आकला के नाम से प्रसिद्ध है—एक छोटे-से झरने के करीब बसा हुआ था और वह एक छोटा-सा गाँव था। इस झरने को सौराष्ट्र राज्य में नदी कहा जाता है। यहाँ की मिट्टी और खेती की फसलें ठीक उसी प्रकार की हैं। जिनका ऊपर वर्णन हो चुका है। लेकिन यहाँ के अनेक दृश्य बड़े प्रभावशाली हैं। यहाँ की सीमा दोनों तरफ गिरनार और शत्रुंजय से मिलती-जुलती है। बीच-बीच में कुछ छोटी छोटी पहाड़ियाँ आ गयी हैं। मैं छोटी पहाड़ियों को पार करके निकला और उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ पर खोड़ियार माता का मन्दिर है।

यहाँ की यात्रा भयानक और खतरनाक है। किसी भी यात्री को यहाँ के संकटों का सामना करना पड़ता है। अच्छे से अच्छे तपस्वी यहाँ की कठिनाइयों के शिकार होते हैं और जो लोग मुसीबतों के अभ्यासी होते हैं वे भी यहाँ की यात्रा के दिनों में घबरा उठते हैं।

लोगों का कहना है कि यहाँ पर प्रत्येक दूसरे अथवा तीसरे वर्ष अपने आप आग लग जाती है और पूरा जंगल जलकर खाक हो जाता है। इसके बाद यहाँ की वायु शुद्ध हो जाती है। इसको सुनकर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि यहाँ पर भू गर्भ में छिपी हुई आग कभी कभी भड़क उठती है। वायु मण्डल में गन्धक तो रहता ही है, उस दशा में आग का भयानक हो जाना और जंगलों का जल जाना किसी प्रकार अस्वाभाविक नहीं है।

मोती अथवा साओ नामक एक छोटा सा गाँव यहाँ से तीन मील के फासले पर है।

अमरेली, २१ नवम्बर—फासिला तेरह मील। यहाँ का रास्ता बहुत साफ है और मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है। यहाँ के प्रायद्वीप में अब तक जितना भूमि देखी है। लगभग सभी से यहाँ की भूमि की मिट्टी अच्छी है। यात्रा करते हुये हमने सात मील तक लगातार गेहूँ के हरे-भरे खेत लहराते हुए देखे। उनके साथ तिल भी बोया गया था। चने की फसल कमजोर मालूम पड़ती थी। गाँव की हालत गरीबी से भरी हुई थी। वहाँ पर मिट्टी की दीवारों से बने हुये मकान काठी लोगों के आक्रमण से बचने के लिये काफी नहीं थे।

करीब पहुँचने पर अमरेली का नगर आकर्षक मालूम हुआ। उसके आस पास चारों तरफ पक्का परकोटा है और उसमें कई स्थानों पर गोल बुर्जें बनी हुई हैं। परकोटे के भीतर लगभग दो हजार घरों की बस्ती मालूम पड़ती है और वह उत्तर की तरफ के एक नाले से घिरी हुई है।

यहाँ पर प्रदेश का शासक रहता है। यह स्थान विशेष होने के कारण पाँच जिलों में प्रमुख माना जाता है। शायद इसीलिए इस नगर की दशा अच्छी है। यहाँ पर जो प्रा० नीम नामक अर्थात् गवर्नर रहता है, उसने लोगों को अनेक प्रकार की सुविधायें दी हैं। जब से अङ्गरेजी सरकार ने इस प्रायद्वीप के प्रमुख सामन्तों को सरक्षण प्रदान किया है, उस समय से यहाँ पर अनेक प्रकार के सुधार हुये हैं।

विशाल गिरनार की आकृति साफ होती जा रही थी और कुछ ऊँचाई पर चढ़कर देखने से इसके समस्त शिखर—जो इसको शत्रुञ्जय से जोड़ते हैं—हमारे बायीं तरफ एक अर्द्ध गोलाकार के रूप में चलते हुए दिखायी देते हैं।

अब हम काठी के मध्यवर्ती भाग में आ गये हैं। यह भाग घाघरानदी के द्वारा गोहिलों की भूमि से विभाजित होता है। आज सवेरे मैंने एक देहाती काठी पुरुष को देखा। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह अपने गेहूँ के खेतों की देख भाल के लिए जा रहा था। उसने अपने परिश्रम से खेतों को जोता था, बोया था और उनकी सिंचाई की थी। उसने खेतों की रक्षा उसी प्रकार की थी, जैसे कोई अपने परिवार की रक्षा करता

है। उसकी पुरुषोचित आकृति, साफ सुथरा चेहरा और आजादी से भरी हुई उसकी चाल ढाल को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने पिछले क्षेत्रों में जितने किसानों को देखा था, वे सभी चिन्ताओं में डूबे हुए थे। उनमें और इस किसान में मैंने बड़ा अन्तर पाया।

इस सौभाग्यशाली किसान को देखकर मालूम होता था कि वह अपने खेतों का स्वयम् मालिक है और पैदावार का दसवाँ हिस्सा लगान अदा करने में उसको साथ किसी प्रकार का दबाव नहीं डालना पड़ता। उसके जीवन के सभी बातें सही और कायदे की मालूम हो रही थीं। यह किसान काठी जाति का था। उसके बैल स्वस्थ और विशाल थे। एक विशेष तरह के कपड़े पहने हुए सभी काठी किसानों ने हँसते हुए हमारा अभिवादन किया। हमने जो कुछ पूछा, उसके स्पष्ट उत्तर दिये।

मैंने कुछ देर तक उन लोगों से बातें कीं। उनके मुख मण्डल पर निर्भीकता थी। वे सीधे खड़े हुए मुझसे बातें करते रहे। उनमें न तो डर था और न किसी प्रकार का अभिमान था। वे स्वाभिमान के साथ खड़े हुये मुझसे बात करते रहे। उनके चेहरा पर गम्भीरता थी और प्रसन्नता के भी चिह्न दिखायी दे रहे थे।

काठी राजपूतों का एक वंश है। इस वंश के लोग शूरवीर होते हैं। वे निर्भीक होते हैं। लेकिन वे दूसरों का आदर करना जानते हैं। काठी लोग अपने हल की पूजा करते हैं। जब वह अपने हल को उठाता है तो बड़ी समझदारी के साथ उसका प्रयोग करता है। उसको देखकर मालूम होता है कि वह एक वीर सैनिक की भाँति तलवार लेकर युद्ध क्षेत्र में जा रहा है। कभी आवश्यकता पड़ने पर वह अपनी तलवार को हल से बने हुए रास्ता में कड़ाई के साथ गाड़ देता है। उसके ऐसा करने से मालूम होता है कि वह अपनी तलवार को या तो अपने पास रखना चाहता है अथवा अपने खेत में रखना चाहता है।

सदा से संघर्ष में रहने के कारण इन काठी राजपूतों की मनोवृत्तियाँ संघर्षमय हो गयी हैं और उनको शान्ति अशान्ति में कोई अन्तर नहीं मालूम होता। लेकिन अन्तर है जरूर। उस अन्तर का भेद नहीं जा सकता। जिसने दूसरों के लिए अशान्ति उत्पन्न की है, उसको भी अशान्ति ही मिलेगी, वह शान्ति का अधिकारी नहीं हो सकता।

मैं यह नहीं मानता कि इन काठी लोगों की तरह कोई भी व्यक्ति अथवा कौम संघर्ष तथा अशान्ति से डरे वह डर बिल्कुल नहीं। अशान्ति और संघर्ष का डटकर मुकाबिला करे। लेकिन अत्याचार का मुकाबिला करते हुये भी शान्ति की महिमा और उसके वरदान को वह भूल न जाय। यथार्थ यह बात है कि शान्ति की महिमा, अशान्ति में ही बढ़ती है। यदि अशान्ति न हो तो शान्ति का वरदान अभिशाप हो

जाय। यही कारण है कि शांति के पुजारी लोग और देश मुर्दा हो जाते हैं और वे सदा उसके अभिशाप का ही भोग करते हैं।

मैं काठी राजपूतों के उत्साह साहस और शौर्य की प्रशंसा करता हूँ। मैं इसे आवश्यक समझता हूँ कि उनके इन गुणों को सुरक्षित रखते हुए उन पर नियंत्रण रखा जाय, जिससे वे अपने इन गुणों का दुरुपयोग न कर सकें। इनके इन गुणों का महत्व बहुत अधिक है। अपने इन गुणों के कारण ही ये लोग सिकन्दर के समय से लेकर अब तक अपनी मानसिक स्वतंत्रता की रक्षा करते चले आ रहे हैं।

दिन के तीसरे पहर यहाँ का सूबेदार गोविन्दराव मुझसे मिलने आया। कुछ समय तक बातें करने के बाद हम नगर घूमने के लिये रवाना हुए और उसके बाद हम सूबेदार के मकान तक गये। अमरेली का प्रमुख बाजार काफी लम्बा चौड़ा है और वहाँ पर मजदूर श्रेणी के लोग अधिक संख्या में रहते हैं। उस बाजार के बीच में एक चौक है, उस स्थान से निकलकर कई एक गलियाँ जाती हैं। उससे भीतरी भाग के उत्तर पश्चिम कोने पर एक शस्त्रागार है। वह अधिक बड़ा नहीं है, लेकिन मजबूत बहुत है। यह शस्त्रागार दामोजी के समय में बनवाया गया था। उसके सामने एक चौक है और वह मजबूत परकोटे से घिरा हुआ है। उसमें खपरैल की छावनी के नीचे गायकवाड़का तोपखाना रखा है। हम जैसे ही सूबेदार के निवास स्थान में पहुँचे उसी समय पाँच तोपों की सलामी दी गयी। मैं समझता हूँ कि यहाँ आकर जब कोई यारप का निवासी सौराष्ट्र के सूबेदार के निवास स्थान में प्रवेश करेगा तो निश्चित रूप से आश्चर्यचकित होगा और विशेषकर उस अवस्था में जब वह नया नया अपने देश से यहाँ पर आया हो।

हम लोग एक विशाल दीवानखाने में गये। वह पचास फीट लम्बा बीस फीट चौड़ा और इससे कुछ अधिक ऊँचा था। उसके दोनों तरफ छै छै खम्भे थे, वे मेहराबों के साथ जुड़े हुए थे। छत पर आकर्षक कोटनिंग का निर्माण हो रहा था। वहाँ पर चमकते हुए काँच के बारह झाड़ लटक रहे थे। बीच बीच में गोल दीपकों की हाँडियाँ पंक्तियों के रूप में लगी थीं।

इस विस्तृत हाल के चारों तरफ बीस फीट चौड़ा एक बरामदा था, उसकी रङ्गीन लकड़ी की बनी हुई ढालू छत में दीपकों की पंक्तियाँ थीं। दीवानखाने के ऊपरी भाग में हम लोगों के बैठने के लिये कुर्सियाँ लगी हुई थीं। सामने की तरफ एक फव्वारा चल रहा था। वहाँ के एक विशाल आँगन में आतिशबाजी जलायी जा रही थी, उसे भी मैंने देखा।

यह एक अद्भुत क्षेत्र था। आश्चर्य में डालने वाले उसके वैभव को देखकर किसे विस्मय न होगा। अभी कुछ वर्ष पहले की बात है, जब यहाँ पर लुटेरे और आक्रमणकारियों के घोड़ों की टापों के सिवा और कुछ सुनायी नहीं देता था। हम लोग स्वागत

के स्थान पर बैठ गये थे और मेजमान तथा उनके आदमियों के साथ कुछ समय तक सभी प्रकार की बातें करते रहे। मेजमान की सभ्यता और मिलनसारिता देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। इसी मौके पर इत्र लगाकर गुलाब जल छिड़का गया। उसके बाद ही खुशबूदार पान के बीड़े सामने लाये गये। उनका खाना और न खाना हम लोगों पर निर्भर था।

दवड़ा २३ नवम्बर, इस स्थान का फासिला हमने बीस मील का समझा था। लेकिन वह पूरे सत्ताईस मील का निकला, जिससे हम लोगों में सभी को काफी थकान आ गयी। अपने मुकाम पर पहुँचने के समय हमने देखा कि सूर्य आकाश के बीचो बीच है। हमें उस समय और अधिक आश्चर्य मालूम हुआ जब हमें बताया गया कि तुलसीशाम—जिसके कारण गिरनार का सीधा रास्ता छोड़कर हम इस रास्ते से आये थे—यहाँ से अभी छै कोस अर्थात् बारह मील के बजाय बीस मील के फासिले पर है। यह रास्ता भी आसान नहीं था, वह ऊंचा नीचा, टेढ़ा-मेढ़ा और पहाड़ी था। इस लिये मैंने इस रास्ते की दो मंजिलें बनाने का निश्चय किया। ऐसा करने में परेशानी यह थी कि समय बहुत कम था और जो शेष रह गया था, वह भी निकला जा रहा था। वे लोग मुझसे बहुत दूरी पर थे, जो मेरा रास्ता देख रहे थे और करीब आ जाने का अनुमान लगा रहे थे जब कि हम लोग अभी तक काठियावाड़ के जङ्गलों का ही रास्ता पार करने में लगे थे।

आज सबेरे दस बजे तक की हवा बड़ी अच्छी रही। वह खुश करने वाली और ताजगी पैदा करने वाली थी। लेकिन जब हम लोग अपने खेमे तक पहुँचे, उस समय थर्मामीटर ६०° तक पहुँच गया। इस क्षेत्र में खेती का काम बहुत अच्छा होता है। यहाँ पर सिंचाई का काम चमड़े के चड़स के द्वारा होता है, जिसको चलाने के लिये एक ही आदमी काफी समझा जाता है। इस सिंचाई के लिये जो चड़स काम में लाये जाते हैं, उनके तैयार करने का काम भी यहीं अधिकता से और खूबसूरती के साथ होता है। यह जरूर है कि समस्त भारत में सिंचाई का काम कुछ इसी प्रकार के चड़सों के द्वारा होता है। लेकिन दूसरे स्थानों पर जो चड़से मैंने देखी हैं, वे कुछ दूसरी तरह के बने होते हैं।

जहाँ पर पानी नजदीक होता है, वहाँ पर धानों और पेड़-पौधों को सींचने के लिये भी इसी का प्रयोग किया जाता है। कोटा के प्रसिद्ध शासक जालिमसिंह ने—जो ऐसे मौकों पर लाभ उठाने में कभी नहीं भूलता—इसकी नकल कर डाली है।

अमरली से चलकर आठ मील दूर हमने शत्रुञ्जय नदी की सबसे बड़ी शाखा को पार किया। उसका निकास गिरनार की दक्षिणी पहाड़ियों में है। वह नदी उन सभी नदियों से बड़ा है जो इस प्रायद्वीप में मेरी देखी हुई हैं। वहाँ पर गाँव तो बहुत थे, लेकिन उन सभी में आबादी कम थी। यहाँ के गाँवों में और गुजरात के

गाँवो में—जहाँ व्यापार और खेती का काम साथ साथ चलता है—बहुत बडा अन्तर है। यहाँ पर अमरेली की तरह के बडे ग्रामो को छोडकर कही पर भी व्यापार का नाम नही है।

आज का रास्ता दक्षिण की तरफ था। गिरनार दाहिने और शत्रुञ्जय बाएँ ओर लगभग बराबर की दूरी पर थे उनकी नीची पहाडियाँ इधर उधर फैली हुई थी। प्रात काल के प्रकाश मे चमकती हुई ये पहाडियाँ बडी सुन्दर मालूम पडती हैं। उनके हरे भरे दृश्य बडे सुहावने लगते थे और ससार की अपवित्रता से दूर पहाडी वातावरण एक नवीन जीवन का सृष्टि करता था।

सबसे पहले एक काला स्तम्भ गिरनार पर्वत के ऊपर दिखायी पडा। इसके बाद वह धीरे धीरे आदिनाथ के निवास शत्रुञ्जय की तरफ चलता हुआ दिखायी पडा। उसके चलने से एक मोटी, साफ चलती हुई रेखा सी बन जाती थी, जो नेत्रो की दृष्टि के साथ मिली-जुली चलती मालूम होती थी। इसके कुछ समय के बाद ही मैंने देखा कि दोनो पर्वतो के बीच का स्थान बाष्प के अन्धकार से भर गया।

यह दृश्य उत्तर की तरफ के दृश्य से सर्वथा विपरीत था। क्योंकि वहाँ से पारदर्श के द्वारा अमरेली की मीनारें साफ साफ दिखायी दे रही थी। यद्यपि रास्ता समतल नही था और भूमि कहीं ऊची और कहीं अधिक नीची थी, लेकिन मार्ग बडे आकार मे होकर स्पष्ट दिखायी दे रहा था।

शत्रुञ्जय के दृश्य बडी तेजी के साथ बदलते जा रहे थे। एक स्थान पर काली, भद्दी सी विषम आकार प्रकार वाली आकृति से एक स्तम्भ- सा बनता हुआ दिखायी पडा। कुछ ही दूर आगे चलने पर उसकी आकृति में परिवर्तन हो गया और इसके तुरन्त बाद उसका दूसरा ही आकार दिखायी पडने लगा। एक विस्तृत और विशाल पर्वत का भाग, जिसकी बगले टूटी फूटी और गिरी हुई थी, ऊँचे उठता हुआ दिखायी पडा।

सबसे अधिक आकर्षक दृश्य उस समय दिखायी पडा, जब सूर्य की किरणें समुद्र के जल को छूती हुई ऊपर की तरफ चली और पर्वत के ऊपर फैल गयीं। उन किरणो के द्वारा फैला हुआ प्रकाश देखने पर ऐसा मालूम हुआ, मानो अतरिक्ष के अधकार मे अग्नि का मिश्रण हो गया है। आकाश की तरफ फैले हुए धुध पर सूर्य के प्रकाश ने विजय प्राप्त की और जहाँ सब कुछ धुधला दिखायी दे रहा था, वहाँ पर नीचे से ऊपर तक पर्वत के ऊपर प्रकाश ही प्रकाश दिखायी पडने लगा। जो अधकार-सा भरा हुआ था, वह तेजी के साथ मिट गया।

प्रकाश की गति जितनी बढती गयी, धुध का वातावरण उतना ही टूटता गया और आखीर में चारों तरफ फैले हुये प्रकाश के द्वारा पहाड के विभिन्न प्रकार के दृश्य दिखायी देने लगे।

मैंने इस प्रकार के और कुछ अर्थों में इनसे भी बढ़कर दो दृश्य देखे हैं—मरुभूमि के उत्तर की तरफ हिसार नामक स्थान पर और दूसरा दृश्य कोटा में देखा है। उनका वर्णन यहाँ पर इसलिए करने की आवश्यकता नहीं है कि उनको विस्तार के साथ राजस्थान के इतिहास में लिखा गया है।

हमने जैर गाँव की पहाड़ी पर चढ़ना आरम्भ किया। यहाँ से दोनों पर्वतों पर जाने के मार्ग हैं। थूरों और खजूरों के पेड़ों से ढके हुये पाँच मील का रास्ता पार करके हम अपने मुकाम देवला नामक ग्राम में पहुँच गये। वहाँ के ठाकुर के अतिरिक्त इस स्थान का कोई महत्व अथवा गौरव नहीं था। देवला में जो ठाकुर रहता है, उसके दुर्ग के चारों तरफ मिट्टी का एक छोटा सा परकोटा है। उसमें बुर्जें भी हैं और इसके मालिक को इस दुर्ग पर उतना ही गर्व है, जितना कि लुई चौदहवें को अपने किले लिले पर था। यद्यपि दोनों किलों में बहुत बड़ा अन्तर है। जैर के ठाकुर का किला कच्ची मिट्टी का बना हुआ है और वह अधिक ऊँचा नहीं है। लेकिन लुई चौदहवें का लिल (१) दुर्ग बहुत ऊँचा और मजबूत था।

देवला की सीमा एक पहाड़ी नाले पर है। यहाँ के जो निवासी हैं, वे कुनबी और काली जाति के हैं। उनका ठाकुर काठी जाति का है। यहाँ के ठाकुर के साथ हमने दिन के तीसरे पहर मुलाकात की।

जेसा अथवा जेसाजी ने अपनी जाति के लोगों में बहुत सम्मान प्राप्त किया था। उसकी अवस्था पचास वर्ष से कम नहीं है। लेकिन स्वास्थ्य अच्छा होने के कारण उसका सम्पूर्ण शरीर रक्त से भरा हुआ है। यदि वह अपनी दाढ़ी के अचकटे बाल—जो लगभग एक सप्ताह से लगातार बढ़ रहे हैं और काली मूछें—कटवाकर अपने चेहरे को साफ करा ले तो निश्चय ही उसकी इस अवस्था में कुछ वर्षों की कमी मालूम होने लगेगी।

ठाकुर के यहाँ मैं कुछ समय तक आराम से बैठा। हम दोनों ही पूरी स्वतन्त्रता का अनुभव करते थे और वह ठाकुर भी एक सच्चे काठी की हैसियत से बिना किसी रुकावट और लिहाज के आजादी के साथ बातें कर रहा था। उसी मौके पर उसकी बातों का सिलसिला उसके जीवन के सम्बन्ध में मोड़ते हुए मैंने पूछा—क्या आपने इस एकान्त निवास स्थान को छोड़कर कभी अपने सम्मानित शस्त्रों के प्रयोग का प्रयत्न किया है?

---

(१) यह किला फ्रांस की राजधानी पेरिस के उत्तर में १५५ मील की दूरी पर है। स्पेन के फिलिप चौथे की मृत्यु के बाद लुई चौदहवें ने लिले के किले पर १६६७ ईसवी में अधिकार कर लिया था। इसका पेरिस गेट नामक फाटक सन् १६८२ ईसवी में उसी के सम्मान में फ्लैण्डर्स विजय के बाद बनवाया गया था।

मेरे इस प्रश्न को सुनकर उसने उत्तर दिया—बहुत कम, भावनगर, पाटण और झालावाड से आगे कभी नही।

अगर यहाँ का मानचित्र देखा जाय तो साफ जाहिर होगा कि जेसाजी के बताये हुये यह तीनो नगर एक ऐसा त्रिकोण बनाते हैं, जो प्रायद्वीप के पूर्वी दक्षिणी और पश्चिमी भागो तक फैला हुआ है और अगर किसी भी दिशा मे वह कुछ भी आगे बढ़ता है तो घोडा और घुड़सवार, दोनो को समुद्र के पानी मे जाना पडता है।

उसकी बातो को और साफ करने के लिए मैंने फिर प्रश्न किया—यह क्षेत्र तो बहुत सीमित मालूम होता है। क्या कभी उत्तरी भाग की तरफ भी चेष्टा की है।

मेरे इस प्रश्न को सुनकर उसने अपनी पूरी सादगी के साथ और कुछ गर्व भरे शब्दो में उत्तर देते हुए कहा—मैंने अहमदाबाद की पोल तक अपने भाले का प्रभाव दिखाया है।

उसके इस उत्तर को सुनकर फिर मैंने कुछ नही पूछा। मुझे इसके आगे अधिक कुछ जानना नही था। देवला के ठाकुर जेसाजी और उसके एक दर्जन साथियो ने—जिनकी भूमि एक अच्छी जायदाद के अतिरिक्त और कुछ नही थी—गुजरात की राजधानी का मान मर्दन किया था।

मुझे प्रत्येक स्थान का अध्ययन करना था और ईमानदारी के साथ ऐतिहासिक तत्वों की जानकारी प्राप्त करनी थी। इस दृष्टिकोण से मुझे इस मौके पर स्मरण आया कि आदिवासी जातियो के द्वारा उत्तरी इटली की लूट हुई थी। जैसा काठी की मूर्ति की समानता और तुलना लाङ्गोबार्ड अल्बोइन (१) से की जा सकती है और यह तुलना कदाचित् सही परिचय देने का काम करेगी।

अलबोइन जाति का एक दूसरा व्यक्ति भी है जो इसकी उपमा मे आता है और वह भी मेरे सामने है। जब आर साम्राज्य के संस्थापक रूरिक का उत्तराधिकारी पहली बार अस्सी हजार सैनिको की सेना लेकर बोरिस्थिनीज को पार करके राजधानी पर हमला करने के बाद जब पहुँचा तो उस नगर की हार और अपना विजय के प्रमाण मे उसने बाइजण्टिअम के फाटक पर अपनी तलवार कीलो से जडवा दी थी और वहाँ के बादशाह को उसने संधि करने के लिए विवश किया था। उसमे विजेता के वाराङ्गिअन रक्षा करने वालों ने अपने शस्त्रो की शपथ ली था। इस कथानक से हमको इतना ही नही मालूम होता बल्कि शपथ लेने का एक विशेष तरीका भी हमारे सामने आता है जो देखने में पूरा रूप से राजपूती है और आमतौर पर जगल के

(१) लाङ्गोबार्ड अथवा लम्बी दाढ़ी वालो की कौम्राएल्ब नदी के किनारे उपजाऊ मैदानो मे रहती थी। इस शब्द का इटालियन रूप है। इसके बादशाह अल्बोइन ने सन् ५६८ ई० में इटली पर आक्रमण किया था।

निवासी काठा जाति के प्रत्येक व्यक्ति के मुह से सुनने को मिलता है। लेकिन साक्सा बाड अलबोइन और वारक्षिन्न ओर दोनो ही नारमन जाति के थे, जिस जाति के लोगो ने वेजर (१) और एल्व (२) के मुहानो का अपना निवास स्थान बना रखा था। स्कैण्डिनविया के प्रारम्भिक इतिहासकारो ने भी उनको एशी अथवा एशियाई कहकर उनकी प्रतिकूलता को माना है।

हम लगातार ऐसे प्रमाण मिल रहे हैं कि कोई आदिकालीन भाषा ट्यूटानिक से जिनका अलगाव जाहिर करने के लिए इण्डो जरमनिक नाम दिया गया है, उससे बहुत कुछ मिलता जुलता है और उनके बहुत से पुराने रीति रिवाज भी मिलते-जुलते हैं। इससे मालूम होता है कि यद्यपि आज इन देशों के रहने वालों के रूप, रग, धर्म और रहन सहन मे बहुत अन्तर आ गया है। फिर भी यह सम्भव है कि एल्व के काठो और सिकन्दर का सामना करने वाले काठा के पूर्वज मध्य एशिया के किसी एक ही स्थान से चलकर विभिन्न स्थानो को गये थे।

अब हम अपने मार्ग पर आगे चलना चाहते हैं और अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हुए एक बार फिर जेसाजी से मुलाकात करना चाहते हैं। आजकल की शांति के दिन जेसाजी के लिए अच्छे साबित नही हुए। उसके मन मे अनेक प्रकार की आशकाओं ने जो निर्बलता पैदा कर दी है, उससे उसका मार्ग अवरुद्ध हो गया है। उसकी बातचीत से पहले भी कुछ इस प्रकार का आभास हो चुका है और उसने अपने स्वभाव के अनुसार इसको जाहिर भी किया है। ऐसा मालूम होता है कि उसकी दौड अब अपने क्षेत्र के खेतो मे काम करने वाले किसानो की देख भाल करने तक ही रह गयी है और इन किसानो से जो कुछ आमदनी होती है, उसी से उसका गुजारा होता है। उसके जीवन की कथा इस प्रकार है—अपने अनैतिक कामो के अलावा जेसाजी ने गोहल के चार गाँवो पर ग्रास (३) कायम किया था।

जेसाजी के इस प्रकार के कार्यों का नतीजा भी मिला था। लगान अथवा लूट की रकम को लेकर वह चुपचाप अपने निवास स्थान की तरफ जा रहा था। अचा

(१) जर्मनी की एक नदी जो मिण्डेन नामक स्थान पर फुल्डा और वेरा नामक नदियों के मिलने से बनती है और ३०० मील उत्तर की तरफ बहकर उत्तरी समुद्र मे जाकर गिरती है।

(२) योरोप की प्रसिद्ध नदी जो बोहेमियाँ के पहाडो से निकलती है और ७२५ मील तक बहकर उत्तरी समुद्र मे गिरती है।

(३) ग्रास या गिरास उस लगान अथवा कर वसूल करने के अधिकार को कहते हैं, जो किसी सरदार के द्वारा डर और भय पैदा करके किसी गाँव से अथवा व्यापारिक मार्ग से वसूल किया जाता था।

तक उसे घेर लिया गया। जीवन भर को सायिन घानी न उसको उतारा गया और बुरी तरह उसको बाँधकर गाडल के किले में कैदी बना दिया गया। जेमाजी मे साहस था और सूझ भी थी। मनुष्य के ये दोना ऊँचे गुण हैं और सफलता के मूल आधार हैं। दोनो का जब सहयोग होता है तो मनुष्य को शक्ति अपार हो जाती है। एक के अभाव में दूसरा अपने-आपको निबल पाता है।

जेसाजी ने कैद से निकलने का प्रयत्न किया। जो खोजता है वह पाता भी है। उसे एक लोहे की कील मिल गयी। कहा जाता है कि उसने उस कील के द्वारा अपनी बेडियाँ खोल डालीं और भाग जाने का प्रयास करने लगा। उस आधी रात को मौका मिला। उसने जोखिम की परवाह न की और वह जेल की ऊँची दीवार से कूद पडा। सयोग और सौभाग्य से उसे कोई बडी चोट नहीं आयी। वह भागकर वहाँ से निकल गया और फिर राहत के साथ चलकर कुछ घटों में एक काठी ग्राम मे पहुँच गया।

लोगो से मिलने पर उसने अपनी कहानी कही और बताया कि वह किस प्रकार बन्दी बनाया गया था। उसने अपनी घोडी की चर्चा भी की, उसे अपनी घोडी से बहुत स्नेह था। लूट के काम में घोडी उसकी सबसे अधिक सहायता करती थी। वह अपनी तलवार और घोडी की हमेशा प्रशसा कर रहा था। इन्हीं दोनों के बल पर उसकी लूट सम्बन्धी योजनायें बनती थी। जब कोई उसके अत्याचारों की बात करता तो वह बिना किसी सकोच के कहा करता मैंने लोगो को डराया जरूर है, लेकिन मैंने कभी किसी को मारा नहीं है।

अपने उद्देश्य की परिभाषा करना वही जानता था। वह एक कुशल लुटेरा था और मार्ग मे जब कोई मिल जाता था तो उसके पास और अधिकार की कोई भी चीज वह छोडता नही था, फिर चाहे वह साफा, पगडी अथवा कोई कपडा हो अथवा उसके अधिकार मे गाय, भैंस या घोडा घोडी हो। वह मिले हुए यात्री की कोई चीज छोडता नहीं था। यही उसका व्यवसाय था और ऐसा करने मे उसका किसी प्रकार का भय अथवा सकोच नहीं था।

इस अपराधी ने पाटण तक पहाडियो मे हमारा भाग दर्शक होना स्वीकार कर लिया। उसका कहना था कि इन पहाडियो का छोटा बडा रास्ता हो नही—यहाँ के किसी भी पत्थर और उसके टुकडे से मैं अपरिचित नहीं हूँ। ऐसा कहने में वह अपनी बहादुरी अनुभव करता था। रास्ते मे उसने न जाने कितनी बातें सुनायी और उनके द्वारा उसने मुझे प्रसन्न करने की कोशिश की। मैं लगातार उसकी बातो को सुनता भी रहा।

इस प्रायद्वीप मे कुछ जातियाँ हैं जो हमेशा घूमा फिरा करती हैं। इसलिये उनको अगर घुमक्कड जातियाँ कहा जाय तो अनुचित नही होगा। इन जातियो के कुछ अपने

रस्मो रिवाज हैं। उन पर संक्षेप में प्रकाश डालने के लिए मैं यहाँ पर एक उदाहरण लिखना चाहता हूँ।

कल की यात्रा में जब हम उधर से निकले तो एक ब्राह्मण ने हमको चउरी के काठी सरदार के यज्ञ में चलने के लिये कहा। चउरी की आठ हजार रुपये वार्षिक आमदनी है। वहाँ के ठाकुर ने एक मन्दिर बनवाया था और उसी के उपलक्ष में यज्ञ की व्यवस्था की गयी थी। उसमें अधिक से अधिक ब्राह्मणों को भोजन कराना भी था। इन ब्राह्मणों के साथ साधु सन्यासी और उस वक्त में जो कोई आ जाय सभी का स्वागत सत्कार था। भोजन के बाद ब्राह्मणों का एक एक रुपया और एक एक ऊनी कम्बल दिया गया था।

हमारे पथ प्रदर्शक ने मन्दिर बनवाने वाले ठाकुर का और उसकी इन बातों का वर्णन करते हुए उसकी साधुता के जीवन का चित्र खींचा। मैं जानता था कि यहाँ पर लुटेरों की संख्या अधिक है। यहाँ का तरीका यह था कि जो समर्थ था वह लूट मार का काम करता था और जो असमर्थ तथा निर्धन था, वह लूटा जाता था। पथ प्रदर्शक की बातों को सुनकर मैं सोचने लगा कि इन लुटेरों और अन्यायों के बीच में एक धार्मिक पुरुष का इतिहास जानने के योग्य है इसलिए मैंने प्रश्न करके अधिक जानने की कोशिश की।

मैंने इस धार्मिक ठाकुर की भीतरी और बाहरी—सभी बातें जानने की चेष्टा की और बताने वाले ने मेरी श्रद्धा का अनुमान लगाकर अधिक प्रेम से बताना आरम्भ किया। मैं तो सही बातों की खोज में था। बहुत समय तक विभिन्न प्रकार की बातों और घटनाओं को सुनने के बाद मुझे मालूम हुआ कि यह ठाकुर पहले काठियावाड़ के लोगों में लूटमार के लिये बहुत भयानक माना जाता था उसकी लूटमार में भले आदमी ही भिखारी नहीं हुए थे, बल्कि ग्राम कस्बे और नगर वीरान हो गये थे। उसका यह जमाना बहुत दिनों तक चला।

अन्त में उस ठाकुर का ऐसा समय भी आया जब वह इस प्रकार के अत्याचार करने के योग्य नहीं रह गया। उसकी शक्तियाँ अधिक निर्बलता में बदल गयी। इस लिये उसने धार्मिक जीवन बिताने का निश्चय किया। उसने मन्दिर बनवाये, यज्ञ कराये, चारों तरफ के ब्राह्मणों को बुलाकर उनको भोजन कराये, उन्हें दान दक्षिणा से प्रसन्न किया साधु-सन्तों का एक मेला हमेशा उसके यहाँ रहने लगा। अब उसने लूट-मार का काम अपने लड़कों पर छोड़ दिया था और जवानी में लूटी हुई रकमों से दान पुण्य के धार्मिक कार्य आरम्भ कर दिये। अपने इन नये कार्यों से वह धार्मिक और पुण्यात्मा कहा जाने लगा।

आत्मा की अशान्ति और ग्लानि को मिटाने के लिये इससे कोई दूसरा रास्ता अच्छा नहीं हो सकता। इतिहास अगर सही तरीके से लिखा गया है तो उसके पन्नों

मे इस प्रकार की अगणित घटनायें पढ़ने को मिलती हैं। इन घटनाओं की तहों में छिपे हुए तथ्य चिल्लाकर कह रहे हैं कि जिन्होंने बुढ़ापे के पहले तक जघन्य पाप और अपराध किये हैं, वे बुढ़ापे में धार्मिक और आध्यात्मिक बन गये हैं।

इस कथानक को अब हम सम्राट की (ग्युल्फिक) (१) परम्परा में बदल देना चाहते हैं, जिसके विषय में (कॉनराड) (२) ने भी पहले के युगों का वर्णन करते हुए प्रतिभाशाली (गिबन) (३) ने लिखा है हम उनके सम्बन्ध मे जो कुछ जानने को मिला है, उसके आधार पर हम यही कह सकते हैं कि जो जवानी में हर तरीके से धन लूटते थे, वे बुढ़ापे में गिरजे बनवाते थे।'

काठी राजपूत की तरह के किसी भी मनुष्य के आचरण को बदलने के लिये शक्ति के प्रयोग का कोई अचूक साधन नहीं है। इस देश में भूमि का एक प्रलोभन रहता है और उस प्रलोभन में ऐसे कार्यों को बुरी नजर से नहीं देखा जाता। एक बात और है। अगर इस प्रकार के लोग अपने ढंग और तरीके बदल देते हैं तो राजदरबार में उनका कम सम्मान नहीं होता और उनके पिछले कारनामों की कोई परवा नहीं करता। ऐसे लोग जब अपने राजा को कर देने लगते हैं और उसके सामने आत्म समर्पण कर देते हैं तो व राजा के निकट सम्मानित हो जाते हैं।

गढ़िया, २४ नवम्बर—यहाँ के जंगल की ऊंची और मनोरम भूमि के सुन्दर दृश्यों को देखते हुए हमने सात मील का रास्ता पार किया। रास्ते के प्रत्येक मील पर जङ्गली पेड़ों से आच्छादित घाटियों के बीच में छोटे छोटे झरने थे, वे सुनसान स्थानों में बड़े प्रिय मालूम होते थे। उनको मैंने भली प्रकार देखा।

ये झरने पठार की भूमि पर बहते हुए शत्रुञ्जय नदी में जाकर गिरते हैं। वहाँ के वन जंगलों मे थोड़ी-थोड़ी दूरी पर झोपड़ियाँ भी दिखायी देती हैं। उनको देखकर जाहिर होता है कि मनुष्य इन स्थानों पर भी रहा करते हैं, जहाँ पर डाकुओं और लूटेरों को सभी प्रकार की सुविधायें प्राप्त होती हैं और किसी प्रकार का भय

---

(१) इंगलैण्ड का राजवंश। सन् १९१७ ईसवी में सम्राट पंचम जार्ज ने अपने वंश की सभी पुरानी जर्मन उपाधियाँ छोड़ दीं और विण्डसर कुल कायम कर लिया। यह कुल पहले ग्युल्फिक कहा जाता था। [अनुवादक]

(२) अंग्रेजी उपन्यासकार जोजेफ कॉनराड का जन्म सन् १८५७ ईसवी में हुआ था। उसकी कथाओं में समुद्री लोगों का वर्णन अधिक मिलता है। उसकी मृत्यु अगस्त १९२३ ईसवी में हुई थी। [अनुवादक]

(३) प्रसिद्ध अंग्रेजी इतिहासकार। जन्म १७३७ ईसवी के २७ अप्रैल को और मृत्यु १६ जनवरी १७९७ ईसवी को हुई थी। उसकी लिखी हुई (डीलाइन एण्ड फाल आफ दी रोमन इम्पायर) नामक पुस्तक बहुत प्रसिद्ध है।

कोष के पेड़ बहुत बड़ी संख्या में हैं और वे इस झरने पर झुके हुये हैं। किनारे पर बहुत-से वृक्ष ठूँठ से हैं, उनको मैंने आसानी से पहचान लिया।

इस टेढ़े-मेढ़े रास्ते में मेरा पथ प्रदर्शक एक अच्छी घोड़ी पर बैठा हुआ चल रहा था। वह गढ़िया-सरदार सम्पूर्ण रास्ते में विभिन्न प्रकार की मुझे बातें सुनाता रहा। ऐसा मालूम होता था कि इन लोक-कथाओं के साथ उसकी बहुत अधिक रुचि है। उसके कहने का तरीका अच्छा था। मैं बड़े ध्यान से उसके प्रत्येक बयान को सुनता रहा। उनके द्वारा मेरा मनोरंजन ही नहीं हुआ, बल्कि उनमें अतीतकाल की जो घटनायें भरी हुई थीं, मैं उनको बड़ी सावधानी के साथ अनुभव कर रहा था।

जब हम लोग रास्ते के बाईं तरफ नदी के किनारे चुने पत्थरों के एक समाधि के स्थान से होकर गुजरे तो उस काठी सरदार ने एक ठंडी साँस लेकर कहा—यहीं पर जब बाबरिया लोग लड़ने के लिये आये थे तो उनके साथ युद्ध करता हुआ मेरा भाई मारा गया था और उसे मारकर उन लोगों ने पुरानी वस्तुओं का कब्जा लिया था, मुझे अब तक वह स्मरण है।

कुछ आगे चलने पर एक लकड़ी का लट्ठा मिला। उसको देखकर ठाकुर की घोड़ी एकाएक भड़क उठी। ठाकुर ने लगातार अपनी घोड़ी को निर्दयता के साथ चाबुक मारे। इसके बाद उसकी वह घोड़ी काबू में आ गयी। यह देखकर मैंने कहा—मेरा खयाल था कि तुम काठी लोग अपने घोड़ों को बच्चों की तरह समझते हो और उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते हो, जिस प्रकार बच्चों के साथ हमदर्दी से भरा हुआ व्यवहार किया जाता है।

मेरी इस बात को सुनकर उसने कहा—आपका कहना सही है। लेकिन हमारी और आप की तरह यह घोड़ी भी समझती है कि यह लकड़ी का लट्ठा है।

इस प्रकार कहकर वह फिर अपनी घोड़ी की भिड़की बताने लगा। ऐसा मालूम होता था कि उसकी इस नाराजगी का वह घोड़ी समझती है। इसके बाद मैंने इसके विषय में कुछ नहीं कहा। मैं कभी उसकी घोड़ी की तरफ देखता था और कभी उसकी तरफ।

ठाकुर का गाँव गढ़िया जूनागढ़ में है। परन्तु गायकवाड़ उससे कर वसूल करता है। यह कर अच्छा नहीं है और बल पूर्वक वह वसूल किया जाता है, इसको बन्द हो जाना चाहिए। इस बात को प्रत्येक काठी समझता है। जब तक यह कर बन्द नहीं होता और काठी लोगों को उसकी अदायगी करनी पड़ती है, उस समय तक काठी लोग शान्ति के साथ नहीं रह सकते, उनको उसका विरोध करना ही चाहिये।

हम जितना ही अपने अभीष्ट स्थान की तरफ बढ़ते जाते थे, वहाँ की भूमि के सम्बन्ध में नयी-नयी घटनाओं की जानकारी होती जाती थी। इसी जंगली प्रदेश में,

जो हिडम्बा बन के नाम से मशहूर है, बनवासी पाण्डवों ने रमणीक भाग से निर्वासित होने पर शरण में आये थे। इस प्राचीन घटना को बीते हुए तीन हजार वर्ष से कम का समय नहीं हुआ, फिर भी प्रत्येक हिन्दू इस स्थान के महत्व का अनुभव करता है और जब वह इस स्थल को देखता है, जहाँ पर पाण्डव ने आकर शरण ली थी तो उसका मन आज भी काँप उठता है।

इस स्थान को हिन्दू लोग पवित्र मानते हैं। यह उनका एक ऐतिहासिक स्थान है और यह स्थल उनको एक भयानक पीड़ा का स्मरण दिलाता है। तुनमीग्राम से दो मील पहले ही हम वहाँ के उस पवित्र स्थान पर पहुँचे, जहाँ पर पाण्डवों की माता कुन्ती ने विश्राम लिया था और यहाँ पर रुककर उसने इसको पवित्र बना दिया था। विरोधियों के गुप्तचरों से छिपते हुए जब पाँचों भाई बन में घूमते हुए इस स्थान पर आये थे तो उनकी माता थकावट और प्यास के मारे बेहोश हो गयी थी। उसकी चेतना में लाने के लिये यहाँ पर कहीं पानी नहीं मिला था। उस समय भीम ने अपनी गदा से एक चट्टान को तोड़ा और उसके टूटते ही जल का एक फव्वारा निकल पड़ा।

इस फव्वारे का परिणाम अच्छा नहीं निकला। लेकिन इसको कौन जानता था और इसमें फव्वारे के जल का क्या अपराध था। उसका जल लेकर जैसे ही कुन्ती के मुख में डाला गया, उसके साथ ही कुन्ती की प्यास और उसके जीवन का साँस—दोनों का एक साथ अन्त हो गया। (१)

यहीं पर कुन्ती का अन्तिम संस्कार किया गया और उसकी स्मृति में एक छोटा सा मन्दिर बनवाया गया, उस मन्दिर के प्रति सभी हिन्दू अपना सम्मान प्रकट करते हैं। उस मन्दिर का कई बार जीर्णोद्धार हो चुका है। इस रास्ते से बाईं तरफ एक पगडण्डी उस स्थान की ओर जाती है, जहाँ पर कोई भी यात्री जाकर टूटी हुई चट्टान की दरार को देख सकता है जिसमें से स्वच्छ पानी का झरना निकला था और जिससे इस जनश्रुति का समर्थन होता है। इस झरने का पानी सदा से स्वास्थ्य के लिये हानिकारक रहा है और आज भी वह लोगों के समझ में अच्छा नहीं है।

इस स्थान के सम्बन्ध में एक कथा और भी कही जाती है, वह कदाचित अधिक सही है। कहा जाता है कि तुलसी राक्षस के साथ कृष्ण का युद्ध यहाँ पर हुआ था। उस राक्षस को मारकर कृष्ण ने आराम करने का इरादा किया था। उस समय उनके भाई बलदेव ने अपने हलकी फाल से चट्टान तोड़ी थी और उसके दरार में से झरना जारी हुआ था वह दरार अब तक बलदेव की फाड़ कही जाती है पुजारियों ने

(१) महाभारत के अनुसार यह कथानक सही है। पाण्डव की माता कुन्ती का अन्त तो महायुद्ध में उसके लड़कों की विजय के बाद हुआ था, जब वह धृतराष्ट्र और विदुर के साथ बनवास में गयी थी।

कर सकता है। लेकिन उसको नहीं कर देना अथवा उसमें सुधार करना बहुत कठिन है।

मैं यहाँ पर जो काम कर रहा हूँ मेरा आजकल का स्वास्थ्य उस के बिल्कुल अनुकूल नहीं है। मैंने पहल-पहल इस तरफ बहुत ध्यान दिया था और उन दिनों में मैंने बहुत कुछ काम भी किया था। आजकल अगर मेरा स्वास्थ्य ठीक होता तो मैं सब कुछ छोड़कर यहाँ का मानचित्र ठीक करता और उसमें इस देश के सभी प्राकृतिक तथा राजनीतिक स्थानों को सही रूप तथा स्थान देता। लेकिन मेरे लगातार गिरते हुये स्वास्थ्य ने मेरी इस अभिलाषा को पूरी होने से रोक रखा है। अपने स्वस्थ जीवन में यदि मैं ऐसा कर सकता तो मुझे कितना आत्म सतोष होता, इस मैं ही जानता हूँ।

दोहन से दो मील पहल ही हमने पहाड़ियों को पार कर लिया। जहाँ पर हमने पार किया, उस स्थान को हेतिया गाँव कहा जाता है। दो खूबसूरत यहाँ पर झरने हैं, वहाँ का स्थान चौड़ा है और विभिन्न प्रकार के छोटे बड़े पेड़ों तथा पौधों से भरा हुआ है। इन दोनों झरनों के बीच में हेतिया गाँव बसा है। इनमें एक झरने का नाम मधदरी है। उसके ऊपर हलू के पेड़ों और घने सरपतों की छाया पड़ती है। इस घनी छाया में भी झरने के जल के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं।

दोहन नदी का जल यहाँ पर विशेष रूप से खराब माना जाता है। लोगों का कहना है कि इसके जल से आमतौर पर जलोदर का रोग उत्पन्न हो जाता है। लोगों का यह भी कहना है कि इस नदी के पानी का प्रभाव कभी कभी इतना अधिक हो जाता है कि उसके पास के गाँव तथा बस्तियों के लोग अपने स्थानों को छोड़कर भग गये हैं और वे गाँव बरबाद हो गये हैं। इस समय हम जिस स्थान पर हैं। वह समुद्र के किनारे से छै मील के फासिल पर है।

सोमवार, २७ नवम्बर—इस स्थान की यात्रा के इक्कीस मील निकले। जिन स्थानों से हम लगातार गुजर रहे थे वे एक दूसरे से भिन्न थे और उनके परिवर्तन देखकर हम एक प्रकार का नया सुख मिलता था। इसलिये कि अच्छी से अच्छी एक ही चीज लगातार प्रसन्न करने वाली नहीं होती। नवीनता परिवर्तन में आती है और उस परिवर्तन में ही प्रसन्नता का अनुभव होता है।

तुलसीश्याम से चलकर हमने वाबरिचावाड के ऊपर और पहाड़ी देशों को पार किया और वहाँ से आगे चलकर आज नामगर जिले में पहुँच गये। उसके बाद हरी घास से भरे हुये रास्ते पर चलते रहे। आरम्भ के चार मीलों का ऐसा रास्ता मिला जिसमें टेढ़े मेढ़े कंकड़ बिखरे हुए थे। उन कंकड़ों में चमकीले पत्थरों के दाने मिले हुये थे। हम बहुत दूर तक जमीन कुछ इसी प्रकार की मिली। वहाँ की फैली हुई छोटी छोटी घास में साँपों की चाल की तरह पत्तियाँ बनी हुई थीं।

यहाँ के हरे भरे मैदानों में प्रवेश करने के कुछ ही देर पश्चात् हमने उस नदी को पार किया, जिसका जल काँच के रंग का था। उसका जल बहुत साफ था और बहुत गहरा था किन्तु उसके फैलने के लिये स्थान नहीं मिला था, इसीलिये उसकी चौड़ाई बहुत कम थी। उस नदी के दोनों किनारों पर हरी घास के सिवा छोटे छोटे पेड़ भी थे।

इसके बाद थोड़ी ही देर में हमने सगवरी गोरोदार के करीब दूसरी मछ दरी को पार किया। यहाँ पर पेंसिल का कार्य बहुत अच्छा किया जा सकता है। गाँव के ऊपरी भाग में किला और बुर्ज बने हुये हैं। उनका आधार एक मजबूत चट्टान है। वे अब बुर्ज काले रंग के हो गये हैं। पहाड़ी के ऊपर निकले हुए मालूम होते हैं, मानो वे रखवाली कर रहे हैं।

यहाँ पर एक ओर गिरनार के शिखर हैं दूसरी तरफ समुद्र के किनारे बसे हुए नगर हैं। उनकी ऊँची चट्टानों के कारण समुद्र के दृश्य आँखों से ओझल हो जाते हैं। हमने इस यात्रा में जामुनवाडा और मोल नामक गाँवों के बीच विजयनाथ महादेव के मन्दिर के टूटे हुए भागों में दोपहर के समय विश्राम किया। यह मन्दिर एक छोटे से झरने के करीब एकान्त स्थान में बना हुआ है। उसमें प्रवेश करने का दरवाजा तो अभी तक बना हुआ है और निज मन्दिर भी, जिसमें देवता की मूर्ति भी बनी हुई है, साधारण अवस्था में सुरक्षित है। लेकिन मन्दिर का प्रमुख भाग टूटकर नष्ट हो गया है। मैं देर तक उस टूटे हुए भाग को देखता रहा।

मन्दिर के पुजारी को देखकर मुझे कम रहस्य नहीं मालूम हुआ। वह बिल्कुल मन्दिर के समान था। जिसने इस मन्दिर में वर्तमान पुजारी की व्यवस्था की है, उसने बड़ी दूरदर्शी से काम लिया है। पुजारी बिल्कुल मन्दिर के अनुकूल और अनुरूप है। मन्दिर अगर श्मशान की भूमि है तो पुजारी उस श्मशान भूमि का मुर्दा है। वह अपने आपको जोगी कहता था। लेकिन वह एक रोगी था और जब मैंने उसको देखा, तब वह तमाखू के पत्तों की गड्डी को धूप में सुखा रहा था।

इसी समय मेरे साथ दशक रैवारी ने शिव की मूर्ति के सामने जाकर सिर झुकाने के साथ ही प्रणाम किया और आराधना में कुछ शब्दों का उच्चारण किया। मैं समझता हूँ कि इष्ट देव की मूर्ति के सामने जाकर *अपने व्यक्तिगत सुख और साधना* के लिये उसने प्रार्थना की थी कि उसकी गायें झरने की भाँति दूध देने लगें। यह स्थान आदि पुष्कर के नाम से प्रसिद्ध है। मैंने आज पहले पहल सुना कि इस नाम के बारह तीर्थ-स्थान हैं।

मैंने इस देश के बाईस वर्षों के जीवन काल में जितने स्थानों को देखा है, उनमें हरियाणा के सिवा यही एक ऐसा स्थान है, जिसको मैं पशु-पालन के लिये

सबसे अच्छा समझता हूँ। यहाँ पर मुझे यह देखकर प्रसन्नता हुई कि यहाँ के लोगों में ठीक उसी प्रकार की सादगी है, जिस प्रकार की यहाँ के लोगों में कार्यों के अनुसार होनी चाहिये थी।

यहाँ सम्पन्न और विस्तृत मैदानों में रहने वाले लोग रैवारी कहलाते हैं। इस नाम से उत्तरी भारत में प्रायः ऊँट चराने वालों अथवा उनके पालने वालों का अनुमान होता है। लेकिन यहाँ पर इस नाम का अर्थ चरवाहा अथवा गड़रिया कहा जाता है। और उनकी बहुत सी जातियाँ होती हैं। उनकी इन जातियों को वंश भी कहा जा सकता है। वास्तव में उस जाति की शाखाओं को मूल जाति की उप जाति समझना चाहिए।

कुछ दूर तक खोज करने वालों ने इस जाति में हूणों का भी सम्मिश्रण माना है। यहाँ के घास से भरे हुए चरागाहों में झुंड के झुंड चरते वाले पशुओं को देखकर हमको बड़ा आनंद मालूम हुआ। आकृति, सौन्दर्य और शक्ति में यहाँ के पशु कदाचित् हिन्दुस्तान में सबसे अच्छे साबित होंगे। इसके पहले मैंने हरियाणा के पशुओं की प्रशंसा की है। कर्नल स्किनर के खेतों में जिन चरने वाले पशुओं और विशेषकर गायों को देखा है, उनकी कोई भी प्रशंसा करेगा। यहाँ पर मैंने अच्छे घोड़े भी देखे हैं, जिनके मस्तक अरबी घोड़ों की तरह के थे और उनकी आँखें देखने में बड़ी अच्छी मालूम होती थीं। बेचे जाने पर इनकी अच्छी कीमत मिलती है। यहाँ की गायें बहुत स्वस्थ और देखने में अच्छी हैं। उनके बछड़ों से अच्छे बैल तैयार होते हैं। मैं इस बात को मानता हूँ कि रैवारी जाति के लोग ईमानदार और सीधे होते हैं। इसे मैंने भली प्रकार समझा है।

मेरे साथ जो मार्ग-दर्शक है वह स्वयं पशुओं का पालन करता है। उसके व्यवहार में सभ्यता और नम्रता है। लगातार चौदह मील तक चलने के बाद उसका गाँव दिखायी पड़ा तो मैंने चाहा कि वह अपने गाँव चला जाय और इसीलिये मैं उसको कुछ चाँदी के रुपये देने लगा। परन्तु उसने लेने से इन्कार कर दिया और कहा—मैं तो बड़ी खुशी के साथ पूरी यात्रा में आपके साथ रहता लेकिन मेरी एक भैंस दूध दुहने के वक्त किसी दूसरे को पास नहीं आने देती।

इतना कहकर वह कुछ रुका। जिस गाँव में हम लोगों को पहुँचना था, उसकी तरफ इशारा करके एक आदमी को देखकर उसने कहा—"लेकिन कोई ऐसी बात नहीं है। वहाँ पर मेरा भांजा है। आप उसका नाम लेकर आवाज लगाइये, वह फौरन आ जायगा।

यह कहकर वह जब अपने घर की तरफ चलने को हुआ तो उसने प्रसन्न होकर बिदाई की सलाम की और फिर अपने रास्ते पर चल पड़ा। मैं उसकी तरफ

देखता रहा। इसके बाद वह फिर लौटा और बड़े विनम्र शब्दों में कहते हुए उसने प्रार्थना की—आप मुझको कभी भूलियेगा नहीं।

मुझे उसकी यह बात बहुत अच्छी लगी। मैंने प्रसन्न होकर गम्भीरता के साथ उससे कहा—नहीं, मैं कभी नहीं भूलूगा।

वह मुझसे विदा होकर चला गया। उसके बाद मुझे प्राय उसका स्मरण आता रहा। वह एक किसान था लेकिन ईमानदार था और दूसरों से प्रेम करना जानता था। उसने न भूलने के लिये जिस प्रकार मुझसे बात कही थी, उसको मैं प्राय याद करता हूँ। उस समय उसकी और भी बहुत सी बातें याद आती हैं।

मैंने और भी एक ग्रामीण आदमी को देखा, जो अपनी रोटी को तोड़कर दूसरे को देते हुए आग्रह कर रहा था। इस तरह के लोगों की बातों के आधार पर और उनके साधारण व्यवहार से उनका सतोष देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि इन लोगों का रहन सहन और स्वभाव इनके जीवन के बिल्कुल अनुकूल है।

मैंने अपने मार्ग-दर्शक के भाञ्जे को आवाज दी, उसे सुनकर वह तुरन्त झोंपड़िया की झाड़ी में से निकलकर आया। मुझे कोरवार तक पहुँचना था। इसलिये मैंने उसको वापस भेज दिया। कोरवार उस स्थान से सामने दिखायी पड़ रहा था। इसलिये मैं उसकी तरफ बढ़ा।

ये बुर्जें, जो गाँव की रक्षा के लिये बनायी गयीं मालूम पड़ती हैं, इस क्षेत्र के दृश्यों में विशेष महत्व रखती हैं। ये बुर्जें प्राय दो दो मंजिल ऊची हैं। बत्तीदार बन्दूकें छोड़ने के लिये बने हुए सूराखों के दो से चार उन पर बने हुए हैं। कुछ बुर्जों पर साधारण मिट्टी की छतें हैं और कुछ की छतें फूस के छप्पर से बनी हुई हैं। उनमें सहज ही आग लग सकती है और फिर उनमें किसी प्रकार इनमें आश्रय पाने वालों की रक्षा नहीं मिल सकती।

कोरवार से एक मील आगे हमने उस झरने को पार किया, जो सौराष्ट्र के सभी झरनों से श्रेष्ठ था। वह मिगोरा के नाम से प्रसिद्ध है। बहुत से लोग उसे निकुम्भी भी कहते हैं। इस झरने का साफ जल सुन्दर मैदानों से होता हुआ कंकरीले स्थान पर जाकर गिरता है। उसके किनारे बट के ऊँचे ऊंचे पेड़ हैं। यहाँ पर अपने घोड़े से उतरकर मैं खेमे तक पैदल गया। मेरे खेमे के पीछे कोरवार का किला है और झरने के पास ही रणछोड़ का मंदिर है। यह झरना चिरचेए नामक पर्वत से निकलता है और उत्तर की तरफ छै मील दूर महादेव के मंदिर के पास होकर मूल द्वारिका के पर्वत के करीब समुद्र में जाकर गिरता है। द्वारिका के पास इसका वेग इतना बढ़ जाता है कि वहाँ पर वह एक टापू के रूप में दिखायी देता है।

हिन्दुओं और विशेषकर वैष्णवों के लिये यहाँ की भूमि का प्रत्येक टुकड़ा पवित्र है। इसलिये कि वे इस स्थान को कन्हैया के अवतार से भी बहुत पहले मूल-द्वार अथवा देव भूमि का प्रवेश पथ मानते आ रहे हैं।

मुख्य रूप से यह प्रतिमा कच्छ की खाड़ी के बिल्कुल सामने की भूमि पर बेट द्वीप के मन्दिर में स्थापित थी। लेकिन इधर चौदह सौ वर्ष बीत गये, यह मूर्ति वहाँ से हटा ली गयी है और ब्राह्मणों ने मूल रणछोड़ नाम की ख्याति से बहुत अधिक लाभ उठाया है।

हिन्दू लोग गायकवाड़ के दीवान की धर्म प्रियता के लिये भी बहुत अनुगृहीत हैं, जिसने नये मन्दिर का निर्माण करवा के उसमें सोमनाथ के एक बहुत प्राचीन शिव की मूर्ति स्थापित की है। इन दोनों प्रतिमाओं का पूजन करने के लिये आखा तीज अथवा अक्षय तृतीया यानी वैसाख मास की तीज को बहुत बड़ी भीड़ लग जाती है। और दूर दूर से लोग आते हैं।

यहाँ से लगभग बारह कोस के फासिले पर एक दूसरा पवित्र स्थान है, जो गणपति प्रयाग के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर पानी के सोते से निकल कर एक छोटा-सा झरना बहता है, जो गंगा के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ पर सन्यासियों का एक मन्दिर है, उनका भार इसके जल में स्नान करने वाले यात्रियों की श्रद्धा पर निर्भर है। कोरवार का महत्व धार्मिक और राजनीतिक—दोनों तरह से है। इसलिये कि यह स्थान चौरासी गाँव में प्रमुख माना जाता है।

सूत्रपाड़ा, २८ नवम्बर—यहाँ की यात्रा सोलह मील की थी। जो बड़े अच्छे ढंग से पूरी हुई और हमने एक अच्छे प्रदेश में प्रवेश किया। अभी तक हमने पहाड़ी भूमि के गरीब किसानों और दूसरे लोगों की बस्तियों में यात्रा की थी। लेकिन अब हमने कोरवार के मैदानों में सुखी किसानों की बस्तियों में प्रवेश किया।

सौराष्ट्र के पहाड़ी इलाकों की हालत दूसरी थी। वहाँ पर मकानों के स्थान पर झोपड़ियाँ थीं स्थान पर ऊँची-नीची चट्टानें थीं और न जाने कितने तरह के झरनों के हमने वहाँ पर दृश्य देखे थे। परन्तु यहाँ का दृश्य दूसरा है। यहाँ का रहन-सहन सभ्यता से भरा हुआ है। यहाँ के लोगों की बहुत-सी बातें आज के युग की तरह की हैं।

भगड़ालू, मुफ्लिस, शिकारी लोगों और आक्रमणकारियों के बीच में घूमते घूमते हमें च कुछ ऊब गयी थी। अब इस नयी यात्रा में परिस्थितियाँ बदली हुई दिखायी देती हैं। यहाँ पर तलवारों का स्थान बहुत-कुछ हल के फाल ने ले लिया है और खेती का काम करके यहाँ के लोगों ने अपने परिवारों को सम्पन्न बनाया है। इतना होने पर भी हमें यह तो मानना ही पड़ेगा कि यहाँ के लोगों की सैनिक आदतें अभी तक

बनी हुई हैं और अपनी उन्हीं आदतों के कारण ये लोग अपनी रक्षा के लिये किसी प्रकार कमजोर नही है।

प्रत्येक गाँव में उसकी रक्षा के लिये चौकोर ऊंची बुर्जे दिखायी देती हैं और मुसलमानो की मस्जिदें तथा मजारें सुनसान मालूम होती हैं। हम सिंगुर, लोदवा, पछनौरा और मुख्य शूद्रपाड़ा जैसे ग्रामो से होकर गुजरे। प्रत्येक स्थान पर उसके दृश्य देखे, उनके रहने क स्थानो को देखा। यहाँ के रहने वाले अधिकांश अहीर, गोहिल और केरिया जाति के हैं। अहीर पूरे तौर पर चरवाहे हैं और केरिया जाति के लोग राजपूत हैं। लेकिन अब वे कृषक हो गये हैं, वे अपनी खेती मे अच्छी फसलें तैयार करते हैं।

शूद्रपाड़ा के पास एक सूर्य मन्दिर है। उसमे सूर्य देव की प्रतिमा स्थापित की गयी है। उस प्रतिमा मे अब बहुत परिवर्तन हो गया है। ग्रीक देवताओं के समान हिन्दुओ के देवताओं मे उनकी स्त्रियो को भी समान रूप से सम्मान मिलता है। कुछ इसी प्रथा के अनुसार जो पुरुषो की मूर्तियाँ हैं, उनके पास ही उनकी स्त्रियों की मूर्तियाँ भी स्थापित की गयी हैं। इस प्रकार की स्त्रियो की मूर्तियो में हमने रेणादवी की प्रतिमा देखी।

जहा पर सूर्य का मन्दिर है, वहाँ पर पानी का एक कुण्ड भी पाया जाता है। यहां के कुण्ड पर एक शिलालेख है, उसस इतना ही मालूम होता है कि चार सौ वर्ष पहले इस मन्दिर का जीर्णोद्धार हुआ था।

इसके करीब एक दूसरा मन्दिर है, वह नौ दुर्गा का मन्दिर कहलाता है। उसमें छोटी-छोटी नौ मूर्तियाँ स्थापित हैं। मन्दिर से पूर्व की तरफ कुछ फासिले पर एक कुण्ड है, जो प्राचीन ऋषि च्यवन के नाम से प्रसिद्ध है।

उत्तर की तरफ लगभग सात मील के फासिले पर प्राचीन नाम का एक स्थान है, वह सरस्वती नदी का निकास होने के कारण बहुत पवित्र माना जाता है और यहाँ पर यात्रियो की भीड़ भी बहुत होती है, जो दूर दूर स आये हुए होते हैं।

इसके पास ही मधुराय का मन्दिर है। वह बहुत कुछ भारतीय अपोलो की तरह का है। इसके विषय में कहा जाता है कि इसको देवप्रतिमा पर आने वाले यात्रियों की श्रद्धा बहुत है और वे अपनी बड़ी-बड़ी आशायें लेकर यहाँ पर आते हैं।

इसी स्थान पर लूटेश्वरनाथ का एक छोटा-सा मन्दिर है। यह मन्दिर लूट-मार के देवता का मन्दिर कहलाता है। इस क्षेत्र के लोगो में इसकी बहुत मान्यता प्राप्त है। इस देवता को लोग शिव का स्वरूप मानते हैं। उनके इन विश्वासों के सम्बन्ध में हमें अधिक कुछ नहो कहना चाहिये। फिर भी मेरी समझ में इसको मरकरी

अथवा कुछ यह मानना अधिक संगत मालूम होता है। क्योंकि आगे चलकर यह जाहिर होता है कि इस ग्रह में समुद्री डाकुओं का—जो इस तट पर प्राचीनकाल से रहते आये हैं—संरक्षण का गुण है।

पूजा और इसके विभिन्न मेले—जो साधारण रूप में इस क्षेत्र में हुआ करते हैं—प्राची में बड़े विस्तार से पाये जाते हैं। वहाँ पर भीड़ बहुत होती है, इसलिए कि उनमें आस पास के गाँवों के लोग तो आते ही हैं शहरों से ब्राह्मण और बनिये भी बड़ी संख्या में आते हैं। यही नहीं बल्कि पहाड़ी और जंगली स्थानों के लोग भी यहाँ आते हैं और मेला में सम्मिलित होते हैं।

सोलहवाँ प्रकरण

मंदिरों का निर्माण और भारत की सम्पत्ति

सोमनाथ और देवपट्टण—सूर्य मन्दिर की कथा—कन्हैया का निर्माण स्थान—मन्दिरों का निर्माण और उनके जीर्णोद्धार—सोमनाथ का प्रसिद्ध मन्दिर—मूर्तिभञ्जक महमूद—सोमनाथ के मन्दिर का पतन—पातालेश्वर की प्रतिमायें—कृष्ण के विभिन्न रूप—मन्दिर में मस्जिद और पुजारी में मुल्ला के दृश्य—हाजी की करामात।

पट्टण सोमनाथ, २९ नवम्बर—देवपट्टण भारत में एक प्रसिद्ध नगर है, उसे शुद्ध रूप में देवपत्तन कहा जाता है, अर्थात् देव का प्रमुख निवास। जो नगर इतना प्रसिद्ध था और जिसकी ख्याति पहले से हमने सुन रखी थी, यात्रा करते हुए हम उसके पास तक पहुँचे और उस प्रसिद्ध नगर के दर्शन किये।

हमारे पिछले मुकाम से यहाँ तक सात मील का फासिला है, इस रास्ते की जमीन बराबर, उसकी मिट्टी अच्छी और यहाँ पर खेती की फसलें उत्तम होती हैं। यहाँ पहुँचकर हमको त्रिवेणी पार करनी पड़ी। यहाँ पर कपिला, सरस्वती और हिरण्या अर्थात् स्वर्णमयी का संगम है। पहली नदी दलदल में होकर प्रवाहित होती है, इसलिये उसके जल की कोई प्रशंसा नहीं की जा सकती। लेकिन शेष दोनों नदियों का जल स्वच्छ और निर्मल है।

तीसरी नदी को पार करने के बाद सूर्य का शिखरहीन मन्दिर और नगर के परकोटे की बुर्जे पेड़ों की पत्तियों के बीच के रास्तों से दिखायी पड़ने लगा। इसी समय आठ सौ वर्ष पहले के महमूद के आक्रमणों, अत्याचारों और भयानक दृश्यों की स्मृतियाँ जाग्रत हुईं। उस समय पीड़ित लोगों पर क्या गुजरी होगी और उस संहार में स्त्री-पुरुषों ने क्या सोचा होगा? इन प्रश्नों को लेकर विभिन्न प्रकार की बातें मन में उठने लगीं। यहाँ की यात्रा करने वालों और इस मन्दिर के दर्शन करने वालों के दिलों में आने के पहले ही क्या कुछ भावनायें न उठती होंगी? महमूद नहीं रहा लेकिन अकारण जिसने इस प्रकार के अत्याचार यहाँ आकर किये थे, वे इतिहास के पन्नों से कभी मिटाये नहीं जा सकते।

इस प्रकार की बातों को सोचता और उन पर विचार करता हुआ मैं अपने मार्ग पर बढ़ता रहा और चलते-चलते कुछ समय के बाद मैं मुसलिम संत अबीशाह की मजार के पास पहुँच गया। लेकिन मैं वहाँ पर एक क्षण के लिये भी ठहरा नहीं और

सूर्य मन्दिर तेजी से पहुँचने की चेष्टा करता रहा। यह मन्दिर अब उजाड़ हो गया है और पालतू पशुओं के बाँधने का स्थान मात्र रह गया है। उसका शिखर टूट गया है। मन्दिर के दूसरे भाग भी गिर गये हैं और उनके ढेर वहीं मन्दिर में दिखाई पड़ते हैं।

यह मन्दिर बहुत विस्तृत और विशाल नहीं है लेकिन अपनी बनावट और मजबूती में यह किसी समय सम्मानित रहा होगा, ऐसा अनुमान इसको देखकर होता है। दीवारें बड़ी कारीगरी के साथ बनाई गई हैं। भवन के नष्ट हो जाने पर भी उसके कुछ भाग आकर्षक मालूम होते हैं। लेकिन जो सामग्री इसके बनाने में लगाई गई है, उसमें बजरी अथवा बजरी की तरह की मिट्टी अधिक मालूम होती है। मन्दिर के आसानी से टूटने का यह एक बड़ा कारण मालूम होता है। फिर भी, यह तो साफ जाहिर है कि मन्दिर जब जब बना होगा, उस समय यह प्रभावोत्पादक और आश्चर्य रहा होगा।

मन्दिर का प्रवेश द्वार अच्छा बना हुआ है। उसकी लकड़ी उत्तम और खूबसूरत होने का आज भी प्रमाण देती है। उस पर की गई पालिश अब तक अपने अस्तित्व को कायम किये हुए है। ऐसा मालूम होता है कि जिस लकड़ी से यह फाटक बनाया गया था, वह लकड़ी कदाचित् संगमरमर के जात की रही होगी।

मन्दिर के मण्डप का व्यास सोलह फीट से अधिक नहीं है, जो मजबूत खम्भों पर रखा हुआ है। उसके चारों तरफ बरामदे हैं। उसके किनारे पर चौकोर खम्भे हैं वे बाहर की दीवार की तरफ से आने पर मिलते हैं। मण्डप के आगे एक चारएक बना हुआ है। उसकी छतरियाँ चौकोर हैं और खम्भों पर रखी हुई हैं। यहाँ से होकर निज मन्दिर में जाने का रास्ता है। वहाँ पर सिन्दूर से रंगा हुआ एक गोल निशान बना हुआ है। उसको सूर्य देवता का चिह्न माना जाता है।

महमूद ने यहाँ पर तोड़ फोड़ किया था, उसकी पूर्ति नहरवाला के राजा ने करवा दी थी। लेकिन धर्म के नाम पर राक्षस होकर जिस अल्ला ने इसके शिखर को तोड़ा था, उसको आज बनवाया नहीं जा सका। मन्दिर के उत्तर में चट्टान को खोदकर बनाया गया सूर्य कुण्ड है। उसमें नीचे जाने के लिये छोटी छोटी बहुत-सी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

कहा जाता है कि सूर्य-कुण्ड का जल शारीरिक और मानसिक रोगों को अच्छा करता है। लेकिन इसके लिये रोगी को स्नान करने के लिए बहुत समय की मियाद दी गयी है। इस स्नान के साथ रोगी की पूर्ण श्रद्धा होना चाहिये और सेहत-लाभ करने के लिये उत्तम कार्य करना चाहिये। तभी इस कुण्ड का स्नान रोगों को दूर करने में सफल हो सकता है।

हमको बहुत अच्छे आदमियों के द्वारा मालूम हुआ कि जिन लोगों पर भगवान की कृपा नहीं होती, उनकी पहचान यह है कि उनके पास जितनी चाँदी होती है, अथवा जितनी चांदी लेकर यात्री यहाँ पर आते हैं, भगवान की कृपा न होने के कारण वह सब चाँदी पीतल हो जाती है। लोगों की इन बातों को सुनकर मैंने यह नतीजा निकाला कि श्रद्धावान व्यक्ति को इस जल में स्नान करने के पहले ही अपनी समस्त चाँदी सूर्य मन्दिर के पुजारी को दे देना चाहिये। दूसरा नतीजा यह कि जो लोग अपने पास की चाँदी अथवा चाँदी के रुपये साथ रखते हैं, उनको यह समझाया जाता है कि उनके पापों के कारण उनकी वह चाँदी अथवा चांदी के सिक्के पीतल में बदल जाते हैं।

लोगों के इस विश्वास में एक रहस्य छिपा हुआ है। उस कुएड के जल में कोई ऐसा रासायनिक तत्व पाया जाता है, जो चाँदी को पीतल कर देता है। ऐसी दशा में यात्री अपने साथ की चांदी को बचाने के लिये उसे पुजारी के हवाले कर सकते हैं। किसी भी सूरत में रोगी अथवा यात्री की वह सम्पत्ति पुजारी की सम्पत्ति हो जाती है।

सूर्य के देवता के मन्दिर से निकल कर मैं सिद्धेश्वर के मन्दिर में आ गया। वह मन्दिर एक अंधेरी चट्टान को काटकर बनाया गया था। वहाँ पर अंधकार था और नमी थी और उस मन्दिर की बहुत नीची छत टूटे फूटे खम्भों पर किसी प्रकार रखी हुई थी। कोई भी उसको देखकर डल्फास (१) की गुफा का अनुमान लगा सकता है। यद्यपि हमारे इस अंधे ओलिया की जो भविष्यवाणी होती थी, वह अप्रिय होने के साथ साथ सत्य निकला करती थी। यह मन्दिर कैसा भी बना हुआ हो, वह अंधकारपूर्ण नरक मालूम होता था। हिंगलाज माता (२) और पाताल वर की मूर्तियों के सिवा एक छोटे से मण्डप की दीवार पर भी छोटी-छोटी मूर्तियाँ कुरेद कर बनी हुई थीं। उनको अंधे महन्त ने नवग्रह बताया था, वे ग्रह जो मनुष्य के भविष्य पर शासन करते हैं।

---

(१) ग्रीस का डल्फी नगर जहाँ पर भविष्यवाणी होती थी।

(२) हिंगलाज माता को चारण लोग आदि शक्ति का अवतार मानते हैं। उपाख्यानों में चारण लोगों को इसे पहली कुलश्री कहा गया है। इसका प्रमुख स्थान बिलोचिस्तान बताया गया है। लोगों का यह भी कहना है कि आरम्भ में चारण लोग इसी देवी की छाया में बिलोचिस्तान में रहा करते थे। उसके बाद वे दक्षिण और पूर्व की तरफ चले आये। उनके कुछ वंश गुजरात और काठियावाड में बस गये और कुछ राजस्थान की तरफ चले गये। जहाँ जहाँ पर ये लोग गये, वहाँ हिङ्गलाज के मन्दिर बनाये गये।

गुफा के सामने एक छोटा सा आँगन है। उसकी पुरानी दीवारों का जीर्णोद्धार हो चुका है। उसकी इस मरम्मत में दूसरे पुराने मन्दिरों की सामग्री काम में लायी गयी हो, यह भी सम्भव हो सकता है। इसके प्रत्येक भाग में मूर्तियों के टुकड़े मौजूद हैं।

इसके आँगन में वट के पेड़ खड़े हुए हैं। कहा जाता है कि ये पेड़ शिवजी को बहुत पसन्द हैं। यहाँ पर पर्यटकों के लिये कोई आकर्षक स्थान नहीं है। फिर भी पुराणों के जानकार लोगों के लिये बहुत कुछ सामग्री मिल सकती है। क्योंकि जो सामग्री उनको मिलेगी, उसे वे विश्वास की दृष्टि से देखेंगे।

इस गुफा से चलकर मैं उस स्थान पर गया, जिसको हिंदू लोग अत्यन्त पवित्र मानते हैं, जहाँ पर गोपालदेव मोक्ष के धाम को गये थे। हम इसके पहले किसी दूसरे स्थान पर यादव लोगों के इतिहास का वर्णन कर चुके हैं वे अपने जीवनकाल में पूरा सम्मान पा चुके थे और जो कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। भक्तों ने उनको श्याम कहकर भी सम्बोधन किया था। इसका कारण कदाचित् यह कि उनके शरीर का रङ्ग साँवला था। वे अपने अनेक नामों से विष्णु का अवतार माने जाते थे। बहुत से लोग उनको कन्हैया भी कहते थे।

कौरवों और पाण्डवों के आपसी युद्ध में कृष्ण ने पाण्डवों का पक्ष लिया था और वनवास के दिनों में भी उनका साथ दिया था। उन दिनों में कृष्ण ने मदन मोहन मुरलीधर का रूप छोड़ दिया था और अपने उस वेष को बदल दिया था जिसमें वे वंशी बजाते हुए सूरसेन देश के गोकुल में गायें चराते थे और गोपियों को मोहित किया करते थे। लेकिन अब इसको गेटिक जाति के प्राचीन शस्त्र चक्रसुदर्शन (१) को धारण करके चक्रधारी बन गये थे।

कृष्ण सोरों के क्षेत्र में विजेता होकर आये थे लेकिन वे विजेता रह नहीं सके। इसलिये कि उनको चेदि के राजा (२) से भयभीत होकर भागना पड़ा था और यहाँ आकर उन्होंने शरण ली थी। यही कारण था कि उनका नाम रणछोड़ प्रसिद्ध हुआ था। इससे सम्बन्ध में पहले हम लिख चुके हैं।

यहाँ पर हमारा अभिप्राय और कुछ नहीं है। उनका कोई भी नाम पड़ा हो और किसी भी नाम से उन्हें पुकारा गया हो, उनको मानने वाले लगातार नये भक्त मिलते रहे। सबसे बड़ी बात तो यह रही कि रणछोड़ जैसे शब्दों और नामों का कुछ भी अर्थ हो, हिन्दुओं का विश्वास उनके प्रति सदा बढ़ता रहा और उनकी श्रद्धा में कभी

---

(१) भारत में सिक्खों को छोड़कर अब कोई इस शस्त्र का प्रयोग नहीं करता।

(२) कृष्ण चेदी के राजा से डर कर कभी नहीं भागे। जरासन्ध के आक्रमण पर भागने से रणछोड़ नाम पड़ा।

किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। यद्यपि रणछोड़ का अर्थ रण से भागने वाला होता है, लेकिन हिंदुस्तान की सम्पूर्ण हिन्दू जाति उनके विवेक और शौर्य पर विश्वास करती रही। हिंदुओं में जो लोग इस प्रकार कृष्ण के भक्त थे, उनमें राजपूतों की संख्या बहुत अधिक है। इसका कारण है। राजपूतों का जीवन भर युद्ध करना काम रहा है और कृष्ण ने युद्ध में ही दिलचस्पी ली थी। महाभारत नामक युद्ध कृष्ण के कारण लड़ा गया था और उसमें इस देश का बहुत बड़ा विनाश हुआ था। इस विनाश को बचाने के लिये अर्जुन ने युद्ध न करने का विचार किया था, उस समय विभिन्न प्रकार के उपदेश देकर कृष्ण ने अर्जुन को उत्तेजित किया और युद्ध कराया।

कृष्ण के उस समय के उपदेश पर गीता नामक हिन्दुओं का एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। वह राजनीतिक था, लेकिन धार्मिक बनाया गया और उसमें बताया गया कि युद्ध करना राजपूतों का धर्म है। उस उपदेश के अनुसार, युद्ध हुआ और देश का बहुत कुछ विध्वंस और विनाश हुआ। एक हरा भरा देश उजड़ गया। उसके बाद युद्ध में बचे हुए कुछ सम्बन्धियों को लेकर रक्तपात के अपराध का प्रायश्चित करने के लिये हिंदुओं के ग्रन्थों के अनुसार कृष्ण जगतकूट नामक स्थान पर गये और अर्जुन, युधिष्ठिर तथा बलदेव आदि को लिये हुए वे एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ की यात्रा करते हुए सोमनाथ तक पहुँचे। पवित्र त्रिवेणी में स्नान करने के बाद दोपहर की कड़ी धूप में कृष्ण ने अपने साथियों के साथ पीपल के वृक्ष के नीचे विश्राम किया।

इन समस्त घटनाओं का वर्णन करने वाले हिंदुओं के ग्रन्थ हैं। उन्हीं ग्रन्थों के अनुसार, और बहुत कुछ जनश्रुति के आधार पर, जब कृष्ण उस पेड़ के नीचे लेटे थे, एक भील ने उनके पैर के तलवे में पद्म चिह्न देखकर हरिण की आँख समझी, उसने बाण मारा, उस समय उनके साथी वहाँ पर न थे। जब वे लौटे तो उन्होंने कृष्ण को मृत दशा में लेटे हुए देखा। बलदेव कुछ देर तक कृष्ण के मृत शरीर से लिपट कर विलाप करते रहे। अन्त में साथ के लोगों ने तीन नदियों के सङ्गम पर कृष्ण का अन्तिम संस्कार किया। वहाँ पर एक पीपल का पेड़ था जो, जिसके नीचे लेटकर हिन्दुओं के अपोलो अर्थात् विष्णु ने प्राण छोड़े थे, उसके सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की जनश्रुतियाँ हैं, जो आज तक कही जाती हैं।

जहाँ पर कृष्ण ने प्राण विसर्जन किये थे, ठीक उसी स्थान से सीढ़ियाँ हिरण्य नदी के जल तक पहुँचती हैं। उन सीढ़ियों से उतरकर यात्री लोग उस नदी में स्नान करके अपने मन और शरीर को पवित्र करते हैं। कृष्ण के प्राण विसर्जन के कारण वह भूमि पवित्र भूमि होकर स्वर्ग द्वार के नाम से प्रसिद्ध हुई। जो लोग इस स्वर्ग-द्वार के दर्शन करते हैं, उनके सम्पूर्ण पापों का शमन हो जाता है।

उस स्थान पर अलका और पद्म कुण्ड नामक दो तालाब हैं। अलका कुण्ड का

निर्माण बारह कोण देकर किया गया है। यह बारह कोण उसकी बारह भुजायें कही जाती हैं। उसका व्यास तीन सौ फीट के लगभग है। पद्म कुण्ड कुछ छोटा है और उसके जल की सतह पर कमल के फूल फूले हुए दिखायी देते हैं। लोगों का कहना है कि फूलों की खूबसूरती के कारण उसका नाम कमल पड़ा है।

इस कुण्ड के पूर्वी तट पर महादेव का एक छोटा सा मंदिर है। भक्त लोगों के द्वारा इन दोनों कुण्डों की बड़ी प्रशंसा हुई है और आज तक होती है। इन दोनों कुण्डों की महिमा अकबर के शासन काल में भी ठीक इसी प्रकार थी जैसी कि आजकल है। उसका प्रमाण यह है कि अबुल फजल ने अपनी रचनाओं में पीपलेश्वर और भलका को तीर्थ मानकर उल्लेख किया है। जहाँ पर यह पीपल का वृक्ष है, वहीं पर उसको स्पर्श करती हुई मुसलमानों की एक मसजिद है। इस क्षेत्र में बहुत समय से हिन्दू राजाओं का आधिपत्य चला आ रहा है। परन्तु इस मसजिद के सम्बन्ध में कभी किसी ने आपत्ति नहीं की और वह अपनी उसी शान के साथ अपने स्थान पर ज्यों की त्यों मौजूद है।

यहाँ से हम हिरण्य नदी के ऊपर की तरफ आगे बढ़े और सोमनाथ के मन्दिर में पहुँच गये। शिव का यह दूसरा नाम है। इसका शिखर एक सेले के समान मालूम होता है। उसकी छत पिरामिड की तरह बनी है कदाचित् महाकाल का मन्दिर इसी तरह का बना हुआ है। इसको देखकर मेरे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि मैं इसके कलीतराल का वर्णन करूँ। इसलिए कि इसमें एक बट के वृक्ष ने अपनी जड़ें पृथ्वी में दूर तक भीतर पहुँचा दी हैं। साथ ही उसकी शाखायें मन्दिर की छत में चली गयी है।

इस बट वृक्ष को देखकर ऐसा मालूम होता है कि यदि कोई विशेष प्रबन्ध न किया गया तो यह विशाल वृक्ष इस मंदिर के विध्वंस का कारण हो जायगा। इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि इस वृक्ष को कटवा दिया जाय। लेकिन मन्दिर के पुजारियों और भक्तों के वश का यह काम नहीं है। इसलिये कि यह मन्दिर महाकाल का है और महाकाल सर्व संहारकारी का प्रभाव इस वृक्ष में भी है। इसलिये डर के मारे वे इस प्रकार की बात सोचने में भी डरते हैं। ऐसी दशा में यह वृक्ष मन्दिर के लिए भयानक हो गया है।

यहाँ का सारा प्रबन्ध और उसकी व्यवस्था मंदिर के पुजारी के अधिकार में है। मैंने आवश्यक समझकर उससे इसके सम्बन्ध में बातें की और किसी प्रकार उसको समझाना चाहा कि अगर वह मन्दिर का और मंदिर के देवता का शुभचिन्तक है तो वह इस वृक्ष को कटवा दे। मन्दिर के लिये यह बहुत आवश्यक है। अगर ऐसा नहीं किया गया तो मन्दिर का पूरा खतरा है और यह वृक्ष इस मन्दिर के विध्वंस का कारण हो जायगा।

मैंने बहुत ढङ्ग से पुजारी को समझाया और उसने मेरी बातों को सुना भी। लेकिन मेरी बातों को सुनते हुए वह अपने प्राण बचाने के लिये बहाना सोचता रहा। जब मैं अपनी बात कर चुका तो मैं उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय उस पुजारी ने मेरी बात को महत्व देते हुए कहा—आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। परन्तु मैं बड़ी परेशानी में हूँ। एक तरफ कुआँ है तो दूसरी तरफ खाई है। मेरे दोनों तरफ खतरा है। मैं बड़े असमंजस में हूँ।

उसकी बात से साफ जाहिर होता था कि वह बट के वृक्ष को कटवाने से बहुत डरता है। इसलिये जो कुछ मैंने उससे कहा, मन्दिर की सुरक्षा के लिये जो कुछ समझाया, वह सब बेकार हो गया। वह पुजारी किसी प्रकार उस पेड़ को कटवाने के लिये तैयार नहीं हुआ।

इस मन्दिर के करीब एक दूसरा मन्दिर महादेव का है, वह कोटेश्वर कहलाता है। वह लाल पत्थर का बना हुआ है, उसमें और भी छोटी छोटी मूर्तियां हैं। मैं पापेश्वर के एक ऐसे मन्दिर में पहुँच गया, जिसकी इमारत का कोई भी भाग गिरने से बचा नहीं था। मैंने अपनी जिन्दगी में पहली बार इस नाम के देवता का विग्रह के देवताओं में सुना। कहा जाता है कि कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी इस पापेश्वर मन्दिर की प्रमुख पुजारिन ही नहीं थी, बल्कि इस मन्दिर का निर्माण भी रुक्मिणी ने ही कराया था।

अब यहां पर प्रश्न यह पैदा होता है कि लोगों का यह कहना क्या सही है ? और अगर सही है तो इससे यह भी साबित है कि प्राचीनकाल में पाप और पुण्य की परिभाषा एक दूसरे से अधिक अलगाव नहीं रखती थी। लेकिन इस प्रकार की कल्पना करने के बाद भी उस नाम का कोई सार्थक अर्थ नहीं निकलता। ऐसी सूरत में इस प्रकार की जनश्रुतियों पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता।

इसमें किसी प्रकार का कोई रहस्य है, यह भी नहीं कहा जा सकता, और आसानी से उसके नाम पर विश्वास भी नहीं होता। मन्दिर का नाम पापेश्वर होना, उसकी पुजारिन कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का होना और रुक्मिणी के द्वारा ही उसका निर्माण किया जाना, यह सब रहस्यमय है। इससे भी अधिक रहस्य उस समय सामने आता है जब उसका नाम पापेश्वर मन्दिर हमको बताया जाता है। क्या रहस्य है, यह समझ में नहीं आता।

मैंने अपना शंकायें लोगों के सामने रखी, जनश्रुतियों की आलोचना की और उनका समाधान करने के लिये बड़े सोच विचार में पड़ा। लेकिन किसी संतोषजनक निर्णय तक नहीं पहुँचा। मुसलमानों के आक्रमण के समय यह मन्दिर तोड़ा गया, उसका कोई पत्थर सही नहीं रखा गया। लेकिन मन्दिर की जो मुख्य प्रतिमा है,

उसकी जगह पर नवीं जोड़ दिया गया। यह सब क्या है? इस मन्दिर की सारी बातें रहस्यपूर्ण मालूम होती हैं।

और भी ऐसे मन्दिर मुझे मिले हैं जिनकी कुछ बातों पर विस्मय मालूम हुआ है। उनके सम्बन्ध में नहीं जानी बातें, और भी अनेक बातों की जानकारी मालूम हुई है। लेकिन इस मन्दिर की तरह का आश्चर्य नहीं मालूम हुआ।

रहस्यपूर्ण होने पर भी बिना समझे मुझे उसे छोड़ देने का इरादा नहीं होता। जब इस मन्दिर का नाम पापेश्वर रखा गया था तो क्या उस समय लोग इसके नाम का अर्थ नहीं जानते थे? फिर इस मन्दिर का इस प्रकार नाम रखना, मन्दिर का पुजारिन बनाना आदि कुछ समझ में नहीं आता। बहुत-कुछ कोशिश करने पर भी पापेश्वर (१) के नाम का रहस्य कुछ स्पष्ट नहीं हुआ।

यहीं से चलकर मैंने संगम पार किया। दो छोटी नदियाँ आकर और हिरण्य में मिलकर सागर के रूप में समुद्र की तरफ प्रवाहित होती हैं। यहीं पर आने वालों के लिए धर्मशालाएँ और उनकी पूजा के लिए मन्दिर बने हुए हैं। इसलिये दूरवर्ती स्थानों से जो यात्री और लोग यहाँ पर आते हैं, उनको मन्दिर के दर्शन करके पूजा और अध्ययन करने एवम् ठहरने में बड़ी सुविधा मिलती है। यहीं पर बहुत सुन्दर प्रकृति के निराले दृश्यों के साथ साथ समुद्र की लहरों के दृश्य भी देखते हैं।

मैंने स्वयं यहाँ पहुँचकर छोटे छोटे मन्दिरों को देखा। ठहरने के लिए बनी हुई धर्मशालाओं को देखा। और भी कुछ उन स्थानों को देखा, जो मेरे सामने आये। मुझे तो सबको देखना ही था। बहुत दिनों की पुरानी अभिलाषा इन सब स्थानों को देखने के सम्बन्ध में थी। यहाँ पहुँचकर समुद्र की जिन लहरों को दूसरे लोग विस्मय के साथ देखते हैं, वे यद्यपि मेरे लिए कोई नया महत्त्व नहीं रखतीं, फिर भी मैंने उनको भली प्रकार देखा और इसके बाद मैं सोमनाथ के मन्दिर की तरफ रवाना हुआ।

मैं आगे चलकर सूर्य मन्दिर और बाण नगर के प्रवेशद्वार में पहुँचकर दामोदर महादेव के निकट होकर गुजरा। उसको गायकवाड़ के दीवान विट्ठलराव ने—जिनके उदार एवम् धार्मिक कार्यों से उनके राजा की प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई—आमूल परिवर्तन करा दिया है। और इस परिवर्तन में विशेषता यह आ गयी है कि मन्दिर की मूल आकृति में किसी प्रकार का अन्तर नहीं आने पाया।

यह मन्दिर देखने में बहुत अच्छा है, लेकिन इसके लिखने के लिये किसी प्रकार का कोई विवरण नहीं मिलता। मैं परिश्रम करके लिखने के लिये इतनी ही सामग्री

(१) वास्तव में पापेश्वर का अर्थ है, पापों के नाश करने वाले ईश्वर अथवा शिव। इसका कोई दूसरा अर्थ सही नहीं है। नाम का कुछ भी अर्थ लगाया जा सकता है, लेकिन उसके साथ नाम की कोई सार्थकता नहीं होती।

पा सका कि मंदिर के बाहरी एक बन्द आले में—जहाँ पहले सूखा माता अर्थात् अकाल देवी की मूर्ति थी—वहाँ अब एक विशाल पत्थर रखा हुआ है और उस पर सैण्ट एण्ड्यू (१) का क्रास बना हुआ है। स्कॉटलैण्ड के इस रईस की सुदूर पूर्व मे इतने दूर की यात्रा के सम्बन्ध मे मैंने कभी कुछ सुना नही था और यह भी ख्याल है कि इसमें पुर्तगाल वालो का हाथ है। क्योकि उनके अधिकार मे किसी समय समुद्र का यह पूरा किनारा था और जो सोराष्ट्र के प्राचीन गौरव के लिये महमूद से भी भयानक शत्रु साबित हुए थे।

यह बात दूसरी है कि हिन्दुओ में भी कई प्रकार के क्रॉस उन दिना मे प्रचलित थे। विशेषकर जैनियों के सिक्कों और उनकी इमारतों में मैंने मिस्र देश के अनेक चिह्न देखे हैं।

मैंने देव पट्टण में सूर्यपोल से प्रवेश किया। नगर के परकोटे की दीवार, इसके प्रयोग में आयी हुई सामग्री और उसकी बनावट ठीक उसके अनुकूल है, जिसके लिये इसका निर्माण किया गया है। इन दीवारो में लगाने के लिये पास की खानो से जो पत्थर लाये गये हैं, वे भली प्रकार बिना गढे हुए लगा दिये गये हैं, यहाँ के वायु मण्डल में नमी खीचने का एक गुण है, इसीलिये इनके रग रूप मे फरक पड गया है। लेकिन चौकोर छतरियाँ जिनकी बनावट बाहर की तरफ ढालू है, सुन्दर और मजबूत बनी हुई हैं।

परकोटे का घेरा तीन चौथाई कोस का माना जाता है। लेकिन मेरी समझ में यह पौने दो मील से किसी प्रकार कम नहीं है। इसका पश्चिमी भाग, जो सबसे छोटा है और उत्तर से दक्षिण की तरफ गया है, लगभग पाँच सौ गज लम्बा है। दक्षिण अथवा समुद्र के तरफ की दीवार, जो सीधी नही है और अन्तिम दो सौ गज लम्बाई में उत्तर पूर्व की तरफ मुडी हुई है, सब मिलाकर करीब करीब सात सौ गज है। पूर्व की दीवार आठ सौ गज के करीब है। (२)

इन दीवारों की ऊंचाई बराबर नहीं है, कही पर वह पच्चीस फीट है और कही पर तीस फीट है। एक पच्चीस फीट चौडी और लगभग इतनी ही गहरी खाई—जिसकी दीवारें चुनी हुई और ढलाव लिये हैं, चारों ओर बनी हुई हैं। इसको एक हौज से आवश्यकतानुसार भरा जा सकता है और खाली भी किया जा सकता है। मैंने सभी मीनारों की गणना तो नही की, परन्तु इस बात को देखा कि दीवारो की

(१) स्कॉटलैण्ड का एक प्रोटेस्टेण्ट शहीद।

(२) चौथी और उत्तरी दीवार की माप मेरे लेखों में नहीं मिल रही है, फिर भी हम इसको पूरे छै सौ गज मान लते हैं।

हिफाजत के लिये उनकी संख्या काफी है। किनारा पर विशेषकर दक्षिण पूर्वी कोने पर इनकी बनावट पचकोनी है और उनका प्रमुख भाग नगर की तरफ निकला हुआ है।

यहाँ के इतिहास में हमें इस बात की जानकारी नहीं होती कि वाबन (१) और नहरवाला के राजाओं का क्या सम्बन्ध था। इसकी दीवारें और मीनारें ही ऐसी हैं जिनका निर्माण इस्लामी सीढ़ियों की तरह किया गया है, तो यह जरूर है कि इनको इन्हीं के खण्डहरों पर बनाया गया है। क्योंकि इनकी बनावट एक सी है जो सोमनाथ की रक्षा के लिये ही बनायी गयी थी न कि देव पट्टण के लिये नगर वासों की रक्षा के लिये। इसलिये यह घेरा यहाँ की आबादी और सम्पत्ति से—जो एक मील के फासिले पर बताया जाता है, बना हुआ है। इसका यह मतलब नहीं है कि शहर के भीतर की तरफ भी दीवार बनी हुई थी।

भद्रकाली के मन्दिर में मिले हुए एक शिला लेख से यह प्रश्न हल हो जाता है और यह मालूम हो जाता है कि सोमनाथ का जो भाग महमूद से पहले आने वाले आक्रमणकारियों से बच गया था, उसको सौराष्ट्र के सम्राट और नहरवाला के राजा कुमारपाल ने दो शताब्दियों के पश्चात् बनवा दिया था।

नगर के पूर्वी द्वार पर बाहर दरवाजे के सिवा एक भीतरी अच्छा सा प्राङ्गण है, जिसकी एक नुकीली मेहराबदार दूसरी पोल अथवा ड्योढ़ी है। मेहराब के दोनों बाजू चार चपटे स्तम्भों पर टिके हुए हैं। उनके ऊपर समुद्री जल के भयानक जीवों के चित्र बने हुए हैं। उनके फैले हुए जबड़ों में से मेहराबें निकलती हुई दिखायी गयी हैं और उनके मुखों में विभिन्न प्रकार के मनुष्य बने हुए हैं। किसी में एक ऐसे मनुष्य का चित्र है कि जिसको वह समुद्री जानवर खा गया है तो दूसरा चित्र ऐसा बना हुआ है कि जिसमें उसके पेट से कटार के द्वारा फाड़ कर निकलते हुए आदमी का चित्र बनाया गया है।

इस प्रकार चित्रों का निर्माण विस्मयकर और आकर्षक मालूम होता है और उससे यह भी मालूम होता है कि निर्माण कला में यह तरीका हिन्दुओं की शैली का परिचय देता है, जो यहाँ के निर्माण में मन्दिर की शोभा बढ़ाता है। मैंने देखा है कि सभी प्राचीन मन्दिरों के तोरणों में—चाहे वे जैन हों अथवा शैव—मेहराबों को इसी

---

(१) वाबन एक फ्रेन्च सैनिक और इञ्जीनियर था। वह स्पेन की सेना में नौकर था। उसने पैंतीस लड़ाइयों में नेतृत्व का काम किया था। तैंतीस नये किले बनवाये थे और तीन सौ पुराने किलों की मरम्मत कराई थी। डाइम रायल नामक उसकी पुस्तक सन् १७०७ में प्रकाशित हुई, जिसमें कर व्यवस्था का विवरण दिया हुआ है। उसी वर्ष चौदहवें लूई ने उसकी योजना को नामञ्जूर कर दिया था।

कार बनाया गया है और जल के जानवरों के पेट में जाते हुए अथवा उनसे निकलते हुए मनुष्यों के चित्रों को अङ्कित किया गया है।

मैंने चम्बल पर बाडोली के शिव मन्दिर और आबू पर जैन मन्दिरों में इसी प्रकार की शैली देखी है। यह सम्भव है कि इनके नक्शे अगर इस्लामी लोगों के द्वारा बने हैं तो इनका निर्माण निश्चित रूप से राजा कुमारपाल और उसके कारीगरों ने किया है। खम्भे तो स्पष्ट रूप से हिन्दू शैली का परिचय देते हैं। निर्माण के अन्य तरीके भी उसके अनुकूल ही है। इसलिये हमें यह भी मालूम हो जाता है कि महराब की नुकीली शैली कहाँ से प्राप्त हुई है।

इस पोल की ऊँचाई तीस फीट और चौड़ाई उसी के अनुपात से है। इस प्रवेश के द्वार पर हमें एक शिला-लेख मिला है। उसमें एक यदुवंशी राजा की लड़की भक्त मामुनी के कुछ कार्यों का उल्लेख है।

प्रवेश करने का जो प्रमुख द्वार है, वह उत्तर की दीवार के बीच में है। उसका निर्माण आधुनिक तरीकों पर बड़ी मजबूती के साथ किया गया है। उसको देखने से मालूम होता है कि टूटे हुए प्राचीन मन्दिरों के सामान से इसका पुनर्निर्माण कराया गया है। इसका पहला दरवाजा उत्तर की तरफ है, दूसरा पूर्व की तरफ है और तीसरा, दूसरे से मिलकर समकोण बनाता है। उससे निकलने पर विशाल मन्दिर का सम्पूर्ण दृश्य दिखायी देता है।

इस दीवार से घिरे हुए पोल की ऊंचाई साठ फीट की है। शस्त्रों का प्रयोग करने के लिये यह एक उपयोगी स्थान है। शत्रु के आक्रमण को रोकने के लिये इसका निर्माण बड़ी बुद्धिमानी के साथ कराया गया है। यह स्थान इस बात का भी प्रमाण देता है कि मजहब के ईर्षालु लोगों का आक्रमण प्रमुख रूप से यहीं पर हुआ था।

दूसरे दरवाजे पर एक मजबूत छतरी बनी हुई है, जहां से आने वाली शत्रु की सेना को देखा जा सकता है। इस छतरी की समानता नारमन किलबन्दी के साथ की जा सकती है। दोनों की शैली एक सी है और दोनों के प्रयोग एक ही आवश्यकता के समय किये जा सकते हैं। खुदाई का काम देखने के योग्य है और उसके दृश्य प्रथम द्वार से ही देखने को मिलते हैं। शिव मन्दिरों में अत्यन्त आकर्षक दृश्य देखने को मिलते हैं, जैसे सिंह के साथ युद्ध करते हुए मनुष्य, कहीं पर एक मनुष्य शेर की पीठ पर सवार है और अपनी कटार वह शेर के गले में भोंक रहा है। कदाचित् इस प्रकार के चित्रों को अङ्कित करके पशु-बल पर साहस की विजय दिखाई गयी है।

अब मैं सोमनाथ की ड्योढ़ी पर पहुँच गया। मूर्ति पूजकों का यही वह मन्दिर है, जिसका नाम बहुत दूर दूर तक फैला हुआ है और जिसकी ख्याति को सुनकर सुदूर-वर्ती देशों की जातियाँ अपने देशों से चलकर यहाँ तक किसी समय आयी थीं। वास्तव

मे हिन्दुस्तान का सोमनाथ मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था और यह मन्दिर प्राचीन काल में जो कुछ था, उसका आज सवा भाग भी नहीं है।

इस मन्दिर का शिखर भाग चले जाने से सम्पूर्ण मन्दिर नङ्गा हो गया है और उसके प्रसिद्ध शिखर के टुकड़े फैले पड़े हुए हैं। मन्दिर का ऊपरी भाग नष्ट हो गया है और इसीलिये वह अपने प्राचीन गौरव को खो चुका है। फिर भी उस मन्दिर के खण्डहरों को देखकर उसके अतीतकालीन गौरव का अनुमान किया जा सकता है। आज मन्दिर मे जो कुछ बच गया है, वह उसके साहस और शौर्य का परिणाम है, जिसने अपने पौरुष के बल पर मुसलमानो की विजय को अधूरा बना दिया था। लेकिन उस समय जो रक्तपात हुआ था और 'ला इल्लाह मोहम्मद रसूल अल्लाह' अर्थात 'परमात्मा एक है और मोहम्मद उसका पैगम्बर है', की बाग लगाई जाती थी, उनकी प्रतिध्वनि आज भी इस देश के लोगो के कानो मे गूजती है।

इस्लाम के मानने वालो ने सगठित रूप से इस देश में आकर जब आक्रमण किये थे तो धर्म के नाम पर और अपने खुदा और उसके पैगम्बर को खुश करने के नाम पर क्या नही किया? उन्होने बे गुनाहो को मारा था। बलात् धर्म परिवर्तन किया था। ग्रामो और नगरो को लूटा था। आश्चर्य की बात तो यह है कि उन लोगो ने यह सब कुछ किया था, धर्म के नाम पर और अपने खुदा के नाम पर।

किसी भी धर्म के मानने वाले यदि इस प्रकार का कोई भी अमानुषिक कार्य करते हैं तो वह धार्मिक नही, खुदा के नाम पर नही, बल्कि अमानुषिक और बर्बरता का परिचय देता है। इसके सम्बन्ध मे अधिक लिखना और आलोचना करना यहाँ पर आवश्यक नही मालूम होता।

उस मौके की कुछ बातें हैं जो लिखने का इरादा न होने पर भी कुछ या थोड़ी बहुत यहाँ प्रकाश में आ रही हैं। महमूद का बारहवाँ आक्रमण इस देश मे सबसे अधिक भयानक माना जाता है। वह आक्रमण इस्लाम का झण्डा लेकर किया गया था और 'खुदा एक है' का नारा लगाकर किया गया था। उस समय वे भूल गये थे कि खुदा सबका एक है। उसका यहाँ पर बटवारा नही है।

इस मन्दिर की बनावट चित्तौर के लाखा राना के मन्दिर से और भारत के दूसरे दूरवर्ती शिव मंदिरों से—जो इस्लाम के हमलो से किसी प्रकार बच गये हैं—प्रतिकूल नही है। इन मन्दिरों में जिस प्रकार का निर्माण किया गया है, उनमे शिल्प की कला एक-सी है। इस एकता और समानता को स्पष्ट करने के लिये हमारी लेखनी उतना अधिक कार्य नहीं कर सकती, जितना कि उनके चित्र कर सकते हैं।

सोमनाथ [redacted] मन्दिर चार भागों में विभाजित है—बाहरी पोल, वह निज मन्दिर का प्रवेशद्वार कहलाता है और बहुत से स्तम्भों से घिरा हुआ है। बाहरी

परिधि ३३६ फीट, लम्बाई ११७ फीट और चौड़ाई ७४ फीट है। जिन लोगों ने मार्क के गिरजाघर या मिलान के ड्यूमो (१) सैण्ट पीटर अथवा सैण्ट पाल के गिरजाघरों के नमूने पर मंदिरों की बनावट का विचार कर लिया हो, उनको यह समझ लेना चाहिये कि एशिया के मूर्ति पूजक एकत्रित होकर और समूह बनाकर पूजा नहीं करते, बल्कि वे अपने देवता की आराधना एकत्रित करने की अपेक्षा अलग अलग करते हैं। उनकी आराधना का दुनिया की बाहरी बातों से कोई सम्बन्ध नहीं है।

यहां पर हमको एक दूसरे मन्दिर की याद आती है। उसकी जानकारी हमको बहुत पहले से रही है। वह मंदिर कुछ उतना ही पुराना है, जितना पुराना वह नक्शे में प्रकट किया गया है। वह है सिआन (२) का मन्दिर। इसकी लम्बाई तो सोमनाथ के मन्दिर के बराबर ही है। लेकिन यह 'बुद्धिमान राजा (३) का मन्दिर चौड़ाई और ऊँचाई में सोमनाथ के मन्दिर से कम है। फिर भी, यहूदी इतिहासकार (४) ने लिखा है कि उन दिनों उन देशों में इस तरह का दूसरा कोई मन्दिर नहीं बना था।

जब इजराइल के निवासी सीरिया के देवता बालिम (५) और अष्टारथ (६) तथा अमन (७) और बाल देवताओं का पूजन करते थे।

---

(१) इटली का प्रसिद्ध नगर।

(२) जेरुसलम के पास सिआन पर्वत पर बना हुआ।

(३) हाड्रियन।

(४) जोसफ्स समय ३७ ई० से ९५ ई० "हिस्ट्री आफ ज्यूविस वार एण्ड एण्टीक्वीटीज आफ ज्यूस" का रचयिता।

(५) सीरिया में बाल शब्द ग्राम देवता के लिए प्रयोग किया जाता है। बालिम बाल का बहुवचन है। राष्ट्रीय बॉल का पूजन ऊँचे स्थानों पर हुआ करता था। बाद में पैगम्बरों ने इस प्रकार के पूजन का बदल दिया था।

(६) अष्टारथ एक नगर का नाम है, वह नगर एक देवता का निवास स्थान माना जाता है। ऐसे बहुत से स्थान और नगर देवताओं के स्थानों के नाम पर प्रसिद्ध थे। फोईनीशिया में मिलने वाले शिला लेखों से इन देवताओं के सम्बन्ध में बहुत सी बातों की जानकारी होती है। इनको केनेनाइट, फोनीशियन और हिब्रू देवता कहा गया है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि पुरुष और स्त्री, दोनों ही रूपों में इस देवता की पूजा होती थी। उसकी पूजा के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की बातें कहने और सुनने में आती हैं।

(७) मिस्र का बड़ा देवता। इसका प्रभाव यूनान तक फैल गया था। वहां पर यह ज्यूस नाम से और रोम में ज्यूपिटर एम्मोन के नाम से प्रसिद्ध था।

योरप में ऐसे बहुत थोड़े गिरजाघर हो सकते हैं जो सोमनाथ के मन्दिर से बड़े न हों। लेकिन सोमनाथ के मंदिर की दृढ़ता और विशालता दर्शकों के चित्त पर प्रभाव डालती है और मालूम होता है कि सभी प्रकार की कठिनाइयों का सामना करने के लिये ही इस मंदिर का निर्माण इतनी मजबूती के साथ किया गया है। इस मंदिर का शिखर मल्लाहों के लिये मार्ग का संकेत करता था और बहुत दूरवर्ती स्थानों से वह दिखायी देता था। इस मंदिर के प्रवेश द्वार, गुम्बज द्वार उसकी छत और दूसरे भाग बड़े अनोखे ढंग से बनाये गये थे। उस मन्दिर की अनेक अच्छाइयाँ थीं, जिनको लिखा नहीं जा सकता।

सोमनाथ का मंदिर अपनी सभी बातों के लिये अन्य सभी मन्दिरों की अपेक्षा अधिक आदरणीय था और आज भी उसके सम्मान में किसी का अन्तर नहीं पड़ा। इसका निर्माण उन दिनों में हुआ था, जब इस देश के हिंदू सभी प्रकार सम्पन्न और गौरव पूर्ण थे। उस प्राचीन काल की अपेक्षा मन्दिर की परिस्थितियों में आज बड़ा अन्तर हो गया है। इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व महमूद के ऊपर है। इसका विध्वंस हिजरी सम्वत् ४१६, सन् १००८ ईसवी में गजनी के सुलतान के द्वारा हुआ था। मुझे यह पढ़कर आश्चर्य मालूम होता है कि उस सुल्तान के इस अत्याचार को इस्लामी इतिहासकारों ने उसकी बहादुरी के रूप में वर्णन किया है। इस मंदिर में उसके पतन को छोड़कर आज लिखने योग्य दूसरी कोई सामग्री नहीं रह गयी। ऐसी दशा में उसके अतीतकाल के गौरव का अधिक वर्णन करना कुछ अच्छा नहीं मालूम होता।

यहाँ पर हमारे मुकाम का जो अन्तिम दिन था, वह सामने आ गया। अपने काम के सम्बन्ध में जो कुछ सामग्री मुझे यहाँ प्राप्त हो सकी, उसे पाकर मैंने सन्तोष कर लिया। यहाँ जो चीजें हस्तलिखित मुझे मिलीं उनमें एक प्रति कविता में लिखी हुई, यद्यपि वह सम्पूर्ण नहीं है, लेकिन जितनी है, उसमें अतीतकाल का कुछ वर्णन है। उसको सुनने के बाद ऐसा मालूम हुआ, मानो वह पुस्तक फारसी कविता में लिखी गयी थी और फिर उसका हिन्दी में अनुवाद किया गया है। अनुवाद का यह कार्य किसी भाट कवि के द्वारा हुआ है। जो कुछ पृष्ठ हमें प्राप्त हुए हैं। उनको अपनी दृष्टि से और उन पाटण के पतन की कहानी के रूप में मैंने नीचे दिया है। मेरा अभिप्राय यह है कि उनमें जो कुछ लिखा है वह संक्षेप में और सीधे अर्थ में इस प्रकार के हैं—

'एक हाजी महमूद नाम का व्यक्ति मक्का से एक व्यापारिक जहाज में आया और पट्टण से उत्तर पश्चिम की तरफ तीस मील के फासिले पर माँगरोल नामक बन्दरगाह पर उतरा। इस बन्दरगाह के नाम पर वह माँगरोली शाह कहा जाने लगा।'

वहाँ से वह पट्टण आया और एक रैबारी के घर पर रहने लगा। यहाँ पर उसको मालूम हुआ कि सोमनाथ की प्रतिमा के सामने रोजाना एक मुसलमान की बलि दी जाती है और उसके रक्त का टीका मूर्ति के माथे पर लगाया जाता है।

इसको सुनने के बाद हाजी महमूद के दिल मे एक जिज्ञासा पैदा हुई। उसको जानने की गरज स वह नगर मे गया। उसने देखा कि एक विधवा तेलिन छाती ठोंक-ठोंककर और चिल्ला चिल्लाकर रो रही है। हाजी महमूद ने उसके करीब जाकर रोने का कारण पूछा।

उस विधवा तेलिन ने रोते हुए जबाब दिया—मेरे इकलौते बेटे को सोमनाथ में बलि देने के लिये पुजारियो ने माँगा है।

हाजी ने उसको शान्त करने की चेष्टा की और उसके उत्तर मे कहा—मैं तुम्हारे बेटे की जान बचाऊंगा और उसके स्थान पर मैं अपनी बलि दे दूंगा।

जब यह समाचार राजा को मिला और उसने सुना कि कोई विदेशी यहाँ पर आया है और वह तेली के बेटे की जान बचाने के लिये अपनी बलि देने के लिये तैयार है तो पहल का निर्णय रद्द कर दिया गया। लेकिन वह सन्त हाजी महमूद किसी तरह अपनी प्रतिज्ञा छोडने क लिये तैयार नही था।

अपने निश्चय के अनुसार हाजी महमूद रवाना हुआ। वह मन्दिर के सामने पहुँचकर बाहरी सीढियो पर बैठ गया, यही से नन्दी की पीतल की प्रतिमा के पास जाने का रास्ता था और जहाँ पर मनुष्य की बलि चढाई जाती थी।

राजा और मन्दिर के पुजारी को पहले से ही वहाँ पर बुला लिया गया था और बलिदान होने वाला भी वहाँ पर मौजूद किया। हाजी महमूद ने राजा से प्रश्न किया—क्या बलिदान होने वाले को नन्दा खा जायगा?

राजा ने उत्तर दिया—नहीं, परन्तु यह एक परम्परा है, लड्डुओ की भेंट सदा चढाई जाती है।

तब हाजी महमूद ने पानी मँगवाया और जब एक भक्त कुण्ड से पानी लाने के लिए गया तो उसने लड्डुओ की परात उठायी और नन्दी के मुंह के पास वह ले गया तो वह लड्डू खाने लगा। यह देखकर सभी लोग आश्चर्य में आ गये। उसी समय हाजी ने बाँग लगायी—अल्लाहो अकबर।

उसी समय सोमनाथ की मूर्ति अपने स्थान से अदृश्य हो गयी और उसके स्थान पर एक हबशी प्रकट हुआ। उसको हाजी ने अपने प्याले मे जल लाने का आदेश दिया। जब वह पानी ले आया तो कहा जाता है कि उसी समय किसी ने खबर दी कि उस कुण्ड का पानी सूख गया और उसकी मछलियाँ तडपने लगा।

इस खबर को सुनने के बाद पानी का वह प्याला वापस कर दिया गया और कुण्ड म प्याले के पानी के गिरते ही कुण्ड जल से भर गया।

"इस प्रकार तेली के लडके की जान बच गयी और पट्टण के मूर्ति के पुजारियों को दण्ड देने के लिये अपने चमत्कार को खतम करने के बाद उसने एक आदमी गजनी रवाना किया।"

जब हाजी का आदेश महमूद के पास पहुँचा तो वह बहुत प्रभावित हुआ और अन्धा हो गया। लेकिन जब उसने हाजी के पवित्र आदेश को श्रद्धा के साथ अपने सिर से लगाया तो उसकी दृष्टि फिर से लौट आयी। इस चमत्कार को देखकर सुलतान महमूद हाजी के आदेश के अनुसार अपनी तैयारी करने लगा।

हाजी की करामात में हमारा यकीन हो अथवा न हो, यह घटना सही हो अथवा झूठ हो, उस पर कुछ न कहकर इतना तो लिखना मेरे लिए अनिवार्य हो गया है कि इस कथानक का क्रम और संयोग तिथि और तारीख कुछ भी विश्वास के योग्य नहीं है। जिस हिन्दू भट्ट ने ईरानी भाषा से इस घटना का उल्लेख अनुवाद करके अपनी भाषा में पेश किया है, वह इस ऐतिहासिक भ्रान्ति का उत्तरदायी है।

इसमें बताया गया है कि महमूद ने हाजी के पत्र को पाने के बाद मांगरोल में आने के लिये सतलज नदी को उस स्थान पर पार किया, जहाँ पर वह सिन्धु नदी से मिलती है और वह जैसलमेर के रेगिस्तान में होकर आया। इस हस्तलिख में यह भी लिखा है कि पट्टण को विजय करने से पहले महमूद के चौबीस हजार आदमी मारे गये। उसके बाद उसने नगर पर अधिकार करने की चेष्टा की। इस अवसर पर जो तिथियाँ और तारीखें दी गयी हैं, वे किसी प्रकार सही नहीं हो सकतीं।

उसमें लिखा है कि उस समय कुमारपाल पट्टण का राजा था और उसका भाई जयपाल मांगरोल पर शासन कर रहा था। अब यहाँ पर देखने की बात यह है कि महमूद का आक्रमण १००८ अथवा १०२४ ईसवी में हुआ था और कुमारपाल की मृत्यु ११६६ ईसवी में हुई थी। इससे यह जाहिर होता है कि यह एक ऐसा आक्रमण था, जो किसी कारण से मुस्लिम इतिहासों में लिखा नहीं किया गया अथवा लिखने से छूट गया। इसका वर्णन चरित्र नामक पुस्तक में आया है और जिसके फलस्वरूप कुमारपाल की राज्य च्युति, धर्म परिवर्तन अर्थात् तबलीग और मृत्यु हुई। उसके बाद पागल अजयपाल सिंहासन पर बैठा।

इस कथानक (१) में अनेक गड़बड़ी मिलती है। सबसे बड़ी भूल महमूद के नाम की मालूम होती है। उसके बाद जो लोग गजनी के शासक हुए और सिंहासन पर बैठे, उनमें एक नाम मौदूद भी आया है और वह कम प्रसिद्ध नहीं है। चरित्र में जो उल्लेख मिलता है, वह इसके साथ बहुत कुछ मिलता जुलता है, उसमें साफ लिखा है कि कुमारपाल ने मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और इसके गुम्बद पर सोना चढ़वाया, आदि।

---

(१) यह कथानक सर्वथा गलत है और वैसे भी विश्वास करने योग्य नहीं है कि उस समय भारत में मुसलमानों की संख्या इतनी कम बल्कि नहीं के बराबर थी कि नित्य प्रति बलि के लिये एक मुसलमान का मिलना सम्भव होता। [अनुवादक]

गजनी के बादशाह ने महा सरोवर पर मोर्चा लगाया और पट्टण के राजा ने अपनी सेना भलका कुण्ड पर रोकी। दोनो तरफ से एक महीने तक अनेक बार लड़ाइयाँ हुई और खून के नाले बहे। सुल्तान ने अपने पीछे की तरफ मजबूत मोर्चा लगाया और पवित्र त्रिवेणी पर भी मजबूती के साथ प्रबंध किया।

पट्टण के राजा की सहायता के लिये हमीर और वेगड़ा गोहिल बन्धु अपनी सेनाओं के साथ गजनी के बादशाह से युद्ध करने के लिये आये थे। जब दोनों की तरफ की सेनाओं में भीषण युद्ध आरम्भ हुए तो हमीर (१) और उसके सहयोगी गोहिल बन्धुओं ने अपनी वीरता का परिचय दिया और गजनी की सेना को मारकाट कर छिन्न-भिन्न कर दिया।

इसके बाद पाँच महीने बीत गये तब दोनो ओर की सेनाओं में भयानक युद्ध हुआ। उस युद्ध में सुल्तान की सेना के नौ हजार और हिन्दुओं की सेना के सोलह हजार आदमी मारे गये। इस भीषण युद्ध के बाद भी गजनी की मजहबी सेनायें लगातार आग बरसाती गयी और सुल्तान ने ककालो के मंदिर पर अधिकार कर लिया और फिर उसने उसको अपना प्रमुख स्थान कायम किया।

इसके बाद गजनी के सुल्तान ने दूसरे मंदिरों की इमारतों पर आक्रमण करने का आदेश दिया और यह आक्रमण सोमनाथ के मंदिर पर होने को था, जिसमें उसकी विजय में किसी प्रकार का संदेह नहीं मालूम होता था। जिस दिन युद्ध की यह हालत थी, उसी दिन हाजी की मृत्यु हो गयी। उसके मर जाने पर सुल्तान ने शोक में तीन दिनों तक भोजन नहीं किया, वह बहुत दुखी हुआ।

इस अवसर पर जो युद्ध हुआ, उसमें हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमान अधिक संख्या में मारे गये थे। परन्तु हिन्दुओं की तरफ से संधि के लिये कोशिश की जा रही थी। इसके लिये हिन्दू राजा की तरफ से महमूद के पास दूत, चारण और भाट भेजे गये थे, जिन्होंने महमूद से प्रार्थना की थी कि वह किसी भी शर्त पर और कितना ही धन लेकर युद्ध को रोक दे।

---

(१) हमीर लाटी और अरटोला के ठाकुर भीम जी गोहिल का छोटा लड़का था। जब महमूद ने सोमनाथ पट्टण पर आक्रमण किया तो अपने मित्र और ससुर वेगड़ा भील की सहायता से पाँच सौ आदमियों को लेकर सोमनाथ की रक्षा के लिये आया और युद्ध करते हुये वह मारा गया। वेगड़ा भील की लड़की से जो संतान पैदा हुई, उसके वंशज देव जिले में नाघेर नामक स्थान में अब तक पाये जाते हैं और वे गोहल कुली कहलाते हैं। यह घटना महमूद गजनवी के समय की नहीं है। इस कथानक को समझने में यह ऐतिहासिक भूल की जा रही है।

—रासमाला, हिन्दी अनुवाद द्वि० मा०

साथ-साथ चालीस लाख रुपये देने की भी बात कही गयी थी। इस प्रस्ताव को और इस रकम को सुल्तान ने मंजूर भी कर लिया था, लेकिन कुछ सलाहकारों के कारण सुलह हो न सकी। उसके हिमायती लोगों ने सुलह के प्रस्ताव का विरोध किया और नारा देते हुए कहा—काफिरों के साथ सुलह नहीं हो सकती, मंदिर को नेस्तनाबूद कर दो।

यही हुआ भी, मंदिर पर आक्रमण किया गया और भीषण रक्तपात के बाद मंदिर का विध्वंस और विनाश हुआ। जो लोग उसके रक्षक थे, वे तलवार के घाट उतारे गये। देवता की प्रतिमा के टुकड़े टुकड़े किये गये। जहाँ पर सोमनाथ की वेदी थी, वहाँ पर सच्चे खुदा और उसके पैगम्बर के नारे लगाये गये।

इसके बाद गजनी की फौज ने नगर में प्रवेश किया। काट मार के साथ साथ लूट की गयी। मंदिर की लूट और वहाँ की अपरिमित सम्पत्ति सुल्तान के हक में एकत्रित की गयी। लेकिन नगर की लूट में जो कुछ मिला, उसमें सेना के सैनिकों के सिवा और किसी का कुछ अधिकार न था, जिसने जो कुछ पाया, उसकी वह सम्पत्ति बनी।

मीता खाँ को पट्टण और उसके अधीनस्थ क्षेत्रों का अधिकारी बनाया गया और चौरासी अथवा एक सौ गाँव के साथ माँगरोल हाजी के एक सम्बन्धी को दिया गया। सुल्तान के लौट जाने के बाद हिन्दुओं ने मीता खाँ के विरुद्ध युद्ध की तैयारी की, लेकिन उनका विद्रोह और संघर्ष उन्हीं के लिये घातक साबित हुआ।

इस प्रकार जो हस्तलिखित लेख मिला था, उसकी सभी बातें यहाँ पर ज्यों-की-त्यों दी गयी हैं और उसके आगे विवरण को खत्म किया जाता है।

जिस हस्त लिखित प्रति के विवरण ऊपर दिये गये हैं, वह प्रति अथवा पुस्तक अधूरी हमें प्राप्त हुई। सोमनाथ के मन्दिर के युद्ध में जिस राजा ने अपने शूरवीरों की बलि दी, उसका नाम नहीं लिखा गया। मेरा ख्याल है कि वह सौराष्ट्र के पुराने चावड़ा राजपूतों में से था। इस युद्ध का वर्णन करते हुये फरिश्ता ने लिखा है कि वह राजा युद्ध के अवसर पर एक नाव में बैठकर निकल गया, यह सही भी मालूम होता है।

इसी हस्तलिखित प्रति में लेखक ने एक दूसरी कथा का भी उल्लेख किया है। उसमें आकाश के अधर में लटकती हुई मूर्ति को महमूद के द्वारा गदा के प्रहार से भूमि पर गिराते हुये दिखाया गया है। यहाँ पर मैं फिर लिख देना चाहता हूँ कि यह हस्तलेख किसी प्रामाणिक पुस्तक का अंश है और जिससे यह अंश लिया गया है, वह किताब कदाचित् 'तारीखें महमूद गजनी' हो सकती है। मैंने उसको प्राप्त करने के लिये हिन्दुस्तान की राजधानी तक बड़े परिश्रम के साथ खोज की, लेकिन सफलता नहीं

मिली। मुझे मालूम है कि योरप में इस किताब का अभाव नहीं है। यदि वह देखने को मिले तो इस बात का निर्णय किया जा सकता है कि ऊपर जो विवरण दिया गया है, वह उसी का अंश है, अथवा नहीं। उस किताब को देखकर ही हम उस राजा के नाम का भी निर्णय कर सकते है, जिसने सोमनाथ की रक्षा के लिए अपने समस्त वीरों का बलिदान कराया। (१)

इस प्रकार के विवरण पढ़कर हमारे सामने एक प्रश्न पैदा होता है। यदि उसका हल हम निकाल सकें तो एक महत्वपूर्ण परिणाम पर हम पहुँच सकते हैं। प्रश्न यह है कि सोमनाथ में जो खण्डहर दिखायी देते हैं और इस मन्दिर के जो टूटे हुये भाग हमारे नेत्रों के सामने आते हैं क्या ये सब महमूद के आक्रमण के समय के ही हैं? यदि हमको इस बात की सही जानकारी हो जाय कि दरवाजे की मीनारें और मम्बार अथवा मुल्ला का धर्मासन उसी समय के हैं तो हम उसके विध्वंस के एक परिणाम पर पहुँच सकते हैं।

खोजने के बाद भी किसी दूसरे इस्लामी आक्रमण का उल्लेख नहीं मिलता। (२) इसलिये हम इस परिणाम पर पहुँचने के लिए विवश हो जाते हैं कि कुमारपाल के बाद (जिसके लेख से प्रकट होता है कि हम उसके प्रति मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये आभारी हैं) कोई भी राजा ऐसा समर्थ नहीं हुआ, जो इस प्रसिद्ध इमारत की फिर से प्रतिष्ठा करा सकता। उसके मरने के बाद नहरवाला का साम्राज्य तेजी के साथ पतन और विनाश की ओर जा रहा था।

यहाँ पर एक दूसरा प्रश्न पैदा होता है और उससे एक दूसरी शंका उत्पन्न हो जाती है। वह यह है कि महमूद से पहले इस प्रकार विध्वंस और विनाश करने वाला कौन हुआ? इसमें सन्देह नहीं है कि इसमें विध्वंस हुआ और इसका विनाश किया गया, उसमें परिवर्तन भी हुआ। क्योंकि एक स्तम्भ को ध्यान से देखने पर एक बड़े पत्थर पर मेरी नजर गयी, जिस पर संगतराशी का काम होता है। इस पर तराशी हुई मूर्तियाँ उलटी हैं, अर्थात् पत्थर को उलटकर रख दिया गया है। यह सब जीर्णोद्धार के समय में ही सम्भव हो सकता है।

---

(१) इसके विषय में हिन्दू-ग्रन्थों में कहीं पर कोई विवरण नहीं मिलता। लेकिन 'इब्ने असीर' नामक पुस्तक के आधार पर—जो सन् ११६० ईसवी में लिखी गयी थी यह कहा जा सकता है कि उन दिनों में भीमदेव प्रथम राजा था।

—रासलीला हि० अनु० भा० १ पृ० स० १६१-१६४

(२) सन् १४६० ईसवी में महमूद बेगड़ा ने सोमनाथ पर आक्रमण किया था और वह अन्तिम आक्रमण था। महमूद गजनवी ने नहीं।

—रासमाला, हि० अनु० भाग २

बहुत आसानी क साथ यह बात समझ में आती है कि आधुनिक नींव को भरने में प्रचीन इमारत के मलवे को काम में लाया गया है। लेकिन महमूद से पहले के किसी आक्रमणकारी का हमको ज्ञान नहीं है। अर्थात् हम किसी भी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानते, जिसके धर्म में मूर्तियों को तोड़ने के लिये आदेश दिया गया हो। मध्य एशिया के इण्डोगेटिक आक्रमणकारियों में भी कोई ऐसा नहीं था, जिसने इस प्रकार क कार्य किये हों। मुझे कहीं से यह जानकारी नहीं हो सकी कि वे लोग मूर्तियों का तोड़ना अपना एक धार्मिक काय समझते थे। यह जरूर है कि उन लोगों ने मंदिर के रंगकों को आत्म समपण करने के लिए विवश किया था और इसके लिये उन्होंने मार-काट की थी।

वेलावल अथवा वेरावल में मैंने जो खोज की थी और सोमनाथ से जो शिला-लेख मिले थे, उनके सम्बन्ध में मैं अन्यत्र लिख चुका हूँ। फिर भी इस विषय को अपूर्ण छोड़कर मैं आगे नहीं बढ़ सकता, इसलिये कि उसके साथ इसका गहरा सम्बन्ध है। उसकी ऐतिहासिक रूप-रेखा पर मैं विवेचन कर चुका हूँ। उनसे हमको दो नये सम्वतों का पता चलता है। एक वलभी सम्वत का और दूसरा सिंह सम्वत का। पहला सम्वत् ३७५ विक्रमी स आरम्भ हुआ था और वलभी के सूर्यवंशी राजाओं से सम्बन्ध होने के कारण महत्वपूर्ण माना गया था एक दूसरा शिला लेख मिला है और उसके लेख से इसका समर्थन हो जाता है। इसमें कुमारपाल के शासन-काल को साधारण और विक्रम सम्वत् म न लिखकर वलभी सम्वत् ८५०+३७५=१२२५ वि० सम्वत लिखा गया है। इस सम्वत् को पवित्र और आशीर्वाद के रूप मे मानना चाहिए इसलिए कि उस समय स उन समस्त विपदाओं का अन्त हो गया था, जिनका आना बहुत पहले से जारी था। (१)

इण्डो-गेटिक आक्रमणकारियों के द्वारा वलभी का जो विनाश हुआ था, उसके विवरण मेवाड़ के पुराने लेखो में पाये जाते हैं। उनमें यह घटना सम्वत् की बतायी गई है, यह मूल वलभी सम्वत् मालूम होना है। इस तरह ३००+३७५=६७५—५६ (विक्रम सम्वत् और ईसवी सन् का अन्तर) ६१६ का समय वलभी के विनाश और लोहकोट म कनकसेन के वंश की इतिश्री का अनुमान होता है।

यह वही समय है जिसको कासमस ने एब्टीरी लास अथवा श्वेत हूणों के जेट लोगों के साथ होने वाले आक्रमण को माना है। वे लोग बाद में सिंध घाटी के

---

(१) यहाँ पर सम्वत् के सम्बन्ध में कुछ गड़बड़ी मालूम होती है, लेकिन उसका संशोधन सम्भव नहीं है। कुमारपाल के राज्यपाल के राज्य सिंहासन पर बैठने का समय ११८६ वि० सं० है। लेकिन वलभी और सिंह सम्वत् के लिये कुछ नहीं कहा जा सकता।
—राममाला प्र० भाग।

मीनागर नामक स्थान में बस गये थे, उस जाति का यह दूसरा आक्रमण था, पहला आक्रमण दूसरी शताब्दी में हुआ था और पेरीप्लस के लेखक ने उसे मंजूर किया है। उसके सिवा ? बॉनविले, गिबन और डी गुइग्नीस आदि ने भी उसी को स्वीकार किया है।

इन जातियों के बहुत-से पारिवारिक लोग सौराष्ट्र में रह गये थे। लेकिन यही नहीं कहा जा सकता कि उन लोगों ने मन्दिरों को विध्वंस किया था, इसके सम्बन्ध में एक और भी अनुमान लगाया जा सकता है यद्यपि उसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। वह यह है कि जिसने ७४६ ईसवी में चावड़ा वंश के राजाओं का समुद्र में लूटमार करने के कारण देव पट्टण से निकाला था और अनहिलवाड़ा की स्थापना की थी, वह प्राचीन लेखों के अनुसार, खलीफा हारू था।

इस नगर में आजकल लगभग नौ सौ मकान हैं, उनमें दो सौ ब्राह्मणों के हैं, चार सौ मुसलमानों के और लगभग इतने ही शैव जाति के लोगों के हैं, उन्हीं में व्यापारी और रोजगारी शामिल हैं। अगर इन मकानों की यह संख्या ठीक है तो यहाँ की आबादी पाँच हजार से अधिक नहीं होना चाहिए। बल्कि कुछ ही होना चाहिए।

नगर के आस पास जो दृश्य हैं, वे आकर्षक और मनोरञ्जक हैं। उनमें प्राचीन काल के वैभवों का कुछ आभास मिलता है। वहाँ पर कितने ही अच्छे जलाशय हैं। वे यहाँ के रहने वालों के सुभीते के अभिप्राय से तैयार कराये गये हैं। इनमें पहला जलाशय उत्तर के द्वार से करीब-करीब एक सौ गज के फासिले पर है। उसकी परिधि अठारह सौ गज की है। देखने में वह वृत्ताकार मालूम होता है। उसके चारों तरफ दीवार है, जो ठोस किन्तु बिना गढ़े हुए पत्थरों से बनी हैं। उसमें चारों तरफ से नीचे जाने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उसमें जानवरों के पानी के लिये भी स्थान बने हुए हैं।

नगर के उत्तर-पश्चिम में आधे मील के फासिले पर भलका और पद्मकुण्ड हैं। उनके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। हिन्दू जाति की इन प्राचीन बातों की महिमा इसलिये और बढ़ जाती है कि इनसे उन स्थानों का पता चलता है, जहाँ पर उत्तर की तरफ से आने वाली फौजों ने मुकाम किये थे, जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है कि महमूद ने भलकाकुण्ड के करीब मुकाम किया था।

पट्टण के चारों तरफ जो बेशुमार मजारें बनी हुई हैं, वे इस्लाम पर शहीद होने वालों के प्रमाण दे रही हैं। इन मजारों की संख्या बहुत है। इतनी अधिक संख्या में मजारें अथवा कब्रें हिन्दुस्तान के किसी बड़े से बड़े शहर में नहीं मिलतीं। समुद्र के किनारे एक बड़ी ईदगाह है। ऐसा मालूम होता है कि जिसने इसको बनवाया है, उसका नाम किसी प्रकार गायब हो गया है।

बेलावल पट्टण का बन्दरगाह है। उसको वेलाकूल भी कहा जाता है। जब अनहिलवाड़ा के अच्छे दिनों में हुरमुज का नूरुद्दीन यहाँ के जहाजी बेड़े का अधिकारी

था, उन दिनो में इस बन्दरगाह का बडा महत्व था। यह बेडा अब बहुत कुछ मिटकर बरबाद हो गया है और वह अब कुछ ही नावों तक सीमित रह गया है। उन नावों से अब थोडा बहुत केवल समुद्री रास्ते का व्यापार होता है। मक्का जाने वाले बहुत से यात्री उन नावो का भी प्रयोग करते हैं।

योरप के मूर्ति पूजको ने अन्य नगरो तथा स्थानो की तरह इसको भी बडी क्षति पहुँचायी थी। उनके लालच बहुत बढ गये थे और उसकी पूर्ति के लिये वे लोग भयानक अत्याचार करते थ। उनके अत्याचारो के सामने तातारी और अफगानी लोगो के अत्याचार कुछ भी नही थ।

प्राचीन समुद्री-यात्रा के सम्बन्ध म कुछ घटनाओ का पहले लिखा जा चुका है, जो १५३२ ईसवी मे (नूना डा कुन्हा) और उसके मददगार (एन्टोनियो डी सलाडान्हा) के साथ सम्बन्ध रखती हैं। सही बात यह है कि ये समुद्री लुटेरे थे और उनके इन आचरणो को सभी जानते थे। लूट मार मे वे लोग कोई अत्याचार बाकी नही रखते थे।

उन लोगो के अत्याचारो का वर्णन उन्ही के आदमी स्पेन वालों ने किया है और उनके कारनामों को ससार के सामने रखा है।



सत्रहवाँ प्रकरण

जूनागढ़-प्राचीन और नवीन

प्राचीन सभ्यता के अंश—वहाँ के निवासी और उनकी जातियाँ—जूनागढ़ का प्राचीन इतिहास और वर्तमान जीवन—यादवों का सरोवर—गिरनार का प्राचीन शिला लेख—सुगा लोगों का ईश्वरवाद—दामोदर महादेव का मन्दिर—शैव और वैष्णवों के साम्प्रदायिक झगड़े—अकबर के समय अहीरों का मान और महत्व।

चूड़वाड़ अथवा चोरवाड़, ४ दिसम्बर—आज की यात्रा लगभग आठ कोस की थी, जो सोलह मील से कम नहीं थी। यदि उसको सीधे रास्ते से देखा जाय तो भी साढ़े चौदह मील से वह कम की नहीं थी। यों तो भारत की यात्रा करने वाले के सामने बहुत सी बातें आती हैं, लेकिन उनमें से एक ऐसी है, जो आश्चर्य चकित कर देती है।

वह बात यह है कि दूसरे देशों में दूरी की नाप भिन्न-भिन्न होती है लेकिन हिन्दुस्तान में कोई नाप न होने पर भी लोगों के अनुमान दूरी के सम्बन्ध में एक से पाये जाते हैं। आश्चर्य यह है कि आस पास के मुकामों की दूरी कहीं किसी के पास लेख में नहीं होती और न उनके सम्बन्ध में कोई स्मृति रखी जाती है, जो लेख बद्ध हो। लेकिन कहीं कहीं स्थान की दूरी सभी लोग एक ही बताते हैं।

मैं प्रायः विस्मय करने लगता हूँ, जब किसी एक स्थान का फासिला अनेक आदमियों से पूछता हूँ और उन सबके जवाब एक ही होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि उन लोगों ने नाप करके उसकी दूरी अपने पास लिख रखी है। अथवा परामर्श करके एक ही फासिले को सब लोगों ने मान लिया है।

यह समानता, एकता और शुद्धता साधारण नहीं है। मैं प्रायः सोचने लगता हूँ कि इसका कारण क्या है? यह संयोग की बात नहीं है और न किसी का दिया हुआ कोई विवरण है। सही बात यह है कि इस प्रकार के वातावरण जो देखने और जानने में आते हैं, वे प्राचीन सभ्यता के अंश हैं।

यह सभ्यता आज की नहीं है, पुरानी है और हिन्दुस्तान इस प्रकार की सभ्यता को सदा से अपनी सम्पत्ति मानता आया है। लेकिन आज का जीवन इस सभ्यता से भिन्न है। प्राचीन काल की जो चीज इतनी अच्छी थी, आश्चर्य यह है कि आज हम लोग स्वाभाविक रूप से उसकी उपेक्षा करने लगे हैं। हम यह नहीं सोचना चाहते कि

इस पुरानी सभ्यता में समाज का कितना कल्याण था, कितना सुख था और उसके विकास के लिये कितना अच्छा आधार मिलता था।

यह बात दूसरी है कि प्राचीन काल की यह नैतिकता आज पुराने खण्डहरों में दबी हुई पड़ी है, लेकिन उसका अभी तक अन्त नहीं हुआ है और उसकी विशेषता का सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि सैकड़ों और हजारों वर्षों की उपेक्षा के बाद भी वह आज जीवित है। हमारे जीवन के साथ उसका सीधा कोई सम्पर्क नहीं रह गया है परन्तु रूढ़ियों और परम्पराओं के रूप में आज भी हमारे ऊपर प्राचीन सभ्यता का शासन चल रहा है।

कुछ भी हो, इससे यह तो साबित हो है कि हिन्दुस्तान के प्राचीन काल में मार्गों की नाप के तरीके प्रचलित थे और उन तरीकों का ही यह परिणाम है कि इस देश का प्रत्येक आदमी अपने आस पास के स्थानों की दूरी जानता है प्रशंसा की बात तो यह है कि जब इस दूरी को जरीब अथवा नापने के दूसरे यन्त्रों से इन स्थानों की नाप की जाती है तो इस नाप में और लोगों के बताने में कोई विशेष अन्तर नहीं निकलता और कभी कभी दोनों ही के द्वारा एक दूसरे का समर्थन होता है।

मेरे देश के लोग यदि यहाँ पर एक हजार अथवा डेढ़ हजार मील की पैदल यात्रा करें तो उनको यहाँ के कोसों और उनके मीलों में अन्तर मिलेगा। वे यहाँ के लोगों की बताई हुई दूरी को सहज ही स्वीकार न कर सकेंगे। उसका कारण यह नहीं है कि यहाँ के लोग जो बतलाते हैं, वह सही नहीं है, बल्कि जो विदेशी लोग यहाँ आते हैं, उनकी नाप तौल में और यहाँ की प्राचीन जानकारी में अन्तर है।

इस अन्तर को लेकर मैं अधिक गहराई में नहीं जाना चाहता। यहाँ पर मेरा यह उद्देश्य भी नहीं है। इसलिये इतना ही लिखकर मैं इसको समाप्त कर देना चाहता हूँ कि प्रत्येक देश के अपने अपने सिक्के होते हैं, अपनी अपनी तौल होती है और अपनी माप होती है। सिक्का, तौल और माप, जहाँ पर जो प्रचलित होती है, वहाँ पर वही सही मानी जाती है। उसमें किसी को सन्देह करने की आवश्यकता नहीं होती।

इस प्रदेश की भूमि उस पिछले प्रदेश की भूमि की तरह है जिसकी हम यात्रा कर चुके हैं और जिसके वर्णन लिखे जा चुके हैं। भूमि का तल पानी के बहाव के कारण नीचा हो गया है और उसकी सतह धुल गयी है। मैंने कई स्थानों पर देखा कि यहाँ की मिट्टी बहुत कुछ बजरी मिली हुई है, जो उन पहाड़ियों की तलहटी में से बह-कर इस तरफ आती है, जो प्रायद्वीप को बीच से विभाजित करती है।

खेती का काम गाँवों में और उनके आस-पास की जमीन में ही होता है। यहाँ पर अधिकतर गहूँ और जौ की फसल होती है। कुछ और चीजें भी बोयी जाती हैं। गन्ने की खेती यहाँ पर अच्छी होती है। यहाँ की भूमि और मिट्टी उसके लिये बहुत उपयोगी साबित होती है।

मार्ग की परिस्थिति म परिवतन हुआ, उसके परिणाम स्वरूप गिरनार की चोटियाँ सामने दिखायी पडने लगीं और चोरवाड से सीधा फासिला उ० २६° पू० मे पच्चीस कोस अथवा पैंतालीस मील पड़ा गया।

पट्टण से लगभग चार मील के फासिले पर अहीरो का गाँव है, उसका नाम ढाव है। उसम दो मन्दिरा के खण्डहर हैं। एक था सूर्य मंदिर। यहाँ पर एक अच्छा जलाशय और बावडी भी है। मुझे बताया कि उसम एक शिला लेख है।

यह शिला लेख पानी की सतह से नीचा था। हमने अनेक नदियाँ पार की। मैंने सुन रखा था कि इनमें से एक नदी जहाँ समुद्र मे गिरती है, वहाँ पर चोरवाड माता का मंदिर है और वही पर हनुमान की एक बडी मूर्ति भी है।

चोरवाड का मतलब है, चोरों का नगर अथवा चोरो का स्थान। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, इसलिए कि पुराने जमाने मे समुद्र के किनारे का प्रत्येक बन्दरगाह समुद्री लुटेरो का निवास स्थान था। आजकल के लोग विभिन्न प्रकार के दूसरे व्यवसाय करत हैं। लकिन उन दिनो में प्रमुख व्यवसाय लूट मार का था।

रैबारी अथवा अहीर लोग पशु-पालने का व्यवसाय करते हैं। उनकी तरह यहाँ पर कोरिया और रायजादा जाति के लोग भी थे। रायजादा प्राचीन चूडासमा शाखा के लोग हैं, जा किसी समय यहाँ के राय अर्थात् मालिक थे। चोरवाड के ठाकुर जेठवा राजपूत हैं। यहाँ के सभी लोग देखन में अच्छे हैं।

नगर मे कोई विशेष उल्लेखनीय सामग्री नही मिली। परन्तु मुझे एक अच्छा-सा-शिला लेख मिला। जो कोरोसी के पुराने सूर्य मंदिर से प्राप्त किया गया था। इसको मैंने अपनी दाहिनी तरफ कुछ दूरी पर देखा। यह शिला लेख यो तो काम का है ही, लेकिन इसमें विशेषता यह है कि इस शिला-लेख मे गहलोत राजपूतो का उल्लेख भी मिलता है। उसमे लिखा है कि गहलोत राजपूतो ने सौराष्ट्र को विजय किया था।

इस लेख से अबुल फजल के उस विवरण का समर्थन होता है, जो इसके अभाव में अप्रामाणित समझा जा सकता था, वह यह कि अकबर के शासन काल में सोरठ (सोराष्ट्र [redacted] दूसरा नाम) एक स्वतन्त्र प्रदेश था। (१)

यहाँ का अधिकारी गहलोत राजपूत था और उसके अधिकार मे पचास हजार आश्वारोही सैनिक और एक लाख सैनिक थे। यह उसका स्वतन्त्र अधिकार था।

---

(१) सूबा गुजरात की सरकारो मे सोरठ (काठियावाड) सरकार भी शामिल है, उसम तेरह बन्दरगाहों को मिलाकर बाहर महाल हैं। सरकार की आमदनो ६३, ४ ३, ७६६ दाम हैं।

—आईन-ए-अकबरी, अनु० एच० एस० जैरट, भाग २

यहाँ पर यह न भूलना चाहिए कि मेवाड़ में इस जाति के वंशजों के बारमो उनका आराध्य देवता सूर्य था और अब तक ये लोग उसी की आराधना करते हैं। मैं अपने इस अनुसन्धान के लिये लुंकागच्छ के एक जैन यति का बड़ा आभारी हूँ, वह बहुत विनम्र, साधारण, विद्वान और योग्य था। उसको सभी प्रकार की जानकारी थी। अपनी जानकारी को बढ़ाने के लिये ही उसने बहुत-सी यात्रायें की थीं। आज से पहले यद्यपि उसको अंग्रेज के साथ व्यवहार करने का मौका नहीं मिला था, फिर भी मैंने उसको बड़ा समझदार और शिष्ट पाया। वह बहुत अच्छी बात करता था।

लुंका लोग ईश्वरवादी हैं। (१) ये लोग एक ईश्वर को मानते हैं और मन्दिरों पर विश्वास नहीं करते और न कभी वे किसी मंदिर में जाते हैं। वे लोग पहाड़ों और जङ्गलों को ही भगवान की उपासना के लिये उपयोगी स्थान मानते हैं। वे लोग चौबीस तीर्थङ्करों के उपदेशों को महत्व देते हैं और उनकी श्रेष्ठता को स्वीकार करते हैं। वे लोग इस बात को मानते हैं कि जीवन की पवित्रता के कारण उन लोगों को मोक्ष प्राप्त हुआ। इसलिये वे उनको पूज्य मानते हैं।

मेरे नये मित्र ने पवित्र पर्वत तक मेरे साथ रहकर यात्रा करना और अनुसंधान के कार्य में मेरी सहायता करना मंजूर कर लिया है। यह प्रसन्नता की बात है कि मेरे गुरु यति ने उत्साह के साथ इस व्यक्ति को सहयोग में लेना मान लिया है। मेरा विश्वास है कि इस सहयोग से लाभ उठाया जा सकेगा।

चोरवाड़ बहुत बड़ा है। उसमें लगभग पन्द्रह सौ मकान हैं और बनियों तथा मुसलमानों की आबादी है। जो लोग रहते हैं, वे प्रमुख रूप से पशुओं के पालने का व्यवसाय करते हैं। वहाँ पर अहीरों की भी आबादी है। हाथी जाति के लोग भी वहाँ पर रहते हैं। इस जाति के सम्बन्ध में पहले मैंने कभी कुछ नहीं सुना। व्यवसाय और सूरत शक्ल में हाथी जाति के लोग अहीर मालूम होते हैं। इस जाति के लोग सौराष्ट्र के मध्य भाग में अधिक पाये जाते हैं।

इस अहीर जाति के लोग अपराधों से प्रायः दूर रहते हैं। ये लोग प्राचीन काल में उन्नत थे और अब भी इन लोगों में पल्लि जाति के आदमियों के बहुत से लक्षण पाये जाते हैं। मध्य भारत में एक विशाल क्षेत्र इस जाति के नाम से प्रसिद्ध है, वह अहीरवाड़ा कहलाता है, जो वहाँ पर मध्य भाग में है। वहाँ पर प्रायः सभी नगरों के

---

(१) वास्तव में ये लोग अनीश्वरवादी हैं। इस गच्छ का संस्थापक अहमदाबाद का रहने वाला लौंका अथवा लुंपाक नामक था। लेख में भूल हो जाने के कारण ज्ञान यति द्वारा अपमानित होकर उसने अपना मत चलाया था।

—रत्न सागर, (जैन इतिहास) भाग ५

नाम के आग पाल शब्द पाया जाता है। वहाँ पर राजाओं का एक वंश चला था। और उनकी राजधानियाँ मेनसा तथा भोपाल आदि में थी।

उस क्षेत्र म बौद्धकालीन शिला-लेख पाये जाते हैं, वे पाली भाषा मे लिखे होते हैं। वहाँ की छानबीन और खोज करने के बाद यह मात होता है कि पशु पालन का व्यवसाय करने वाली इस जाति का विस्तार बढ़ा रहा है और आज भी उस जाति के लोग अच्छी हालत म हैं। इस जाति के सम्बंध म मैंने लिखा था कि इस जाति का आदि निवास भारत नहीं है। (१)

अकबर बादशाह के शासन काल में अहोरों का सौराष्ट्र प्रायद्वीप मे राजनीतिक महत्व था। अबुल फजल ने लिखा है—"ढूढ़ी नदी के किनारे अहोरों का एक छोटा-सा जिला था, वह स्थानीय भाषा म पुरछ कहलाता था। वहाँ पर तीन हजार अश्वारोही सैनिक और लगभग इतने ही पैदल सैनिको की एक सेना रहा करती था। उसका जाम (जाडेचा) जाति के साथ हमेशा झगड़ा रहा करता था।'

अबुल फजल का यह एक भ्रम था कि उसने काठी जाति को अहोरा की एक शाखा मान लिया है। लेकिन उसके साथ साथ, उसने यह भी लिखा है कि 'बहुत से लोग इस शाखा का अरबी मानते हैं।'

इस भूल का कारण यह मालूम होता है कि उन लोगो मे घोड़े की सवारी का शौक था, हमारा ख्याल है कि यही देखकर उसको यह भ्रम पैदा हुआ है। इस भ्रम का कुछ आधार भी है। यह हो सकता है कि ब्राह्मणों, पण्डों और पुजारियों के व्यवहारों से तंग आकर अहोरों ने पशु पालन के साथ, लूट-मार भी आरम्भ कर दी हो और उनके इस प्रकार के रंग-ढंग देखकर उसने उनको काठी लोगों में मान लिया हो।

मालिया ५ दिसम्बर—सात कोस का सफर। यह स्थान बहुत पुराना है और इसके बहुत थोड़े चिह्न पाये जाते हैं। मालिया एक झरने के समीप बसा हुआ है। वह झरना ऊपर की पहाड़ियों से निकला है।

आज सवेरे की यात्रा म आदमियों की हालत अच्छी नहीं रही। रास्ते म जो गाँव मिले, वे बहुत छोटे-छोटे थे, उनके रहने वाले बहुत गरीब और अनेक प्रकार की मुसीबतों में फँसे हुए थे। उन गाँवों में खेती की दशा भी अच्छी नहीं थी।

मालिया में बनियों और रेबारी लोगो की बस्ती है। दूसरा गाँव जहाँ से होकर हम निकले, काठिया और हाथिया का है। लेकिन वहाँ पर बहुत-से राजपूत भी थे, वे सभी मेरे लिये नये थे। वे करिया राजपूत कहलाते थ, वे परमारों के वंशज अपने आपको कहते थे। वहाँ पर कुछ कोली लोगों के परिवार भी थे।

(१) बाद के अनुसंधानों के अनुसार इस प्रकार अनुमान गलत प्रमाणित हुए हैं।

उनियासा अथवा उनियारा, ६ दिसम्बर—नौ कोस की यात्रा। हमको पहाड़ी की तरफ फैले हुए मैदान की तरफ जाना था। मार्ग के आखीर में रेवतगढ़ की चोटी थी। यहाँ से समुद्र के किनारे का मांगरोल नगर साफ साफ दिखाई देता था।

उनियारा से ऊन अथवा गर्मी का अर्थ निकलता है। मेरा ख्याल है कि इसका यह नाम अपनी अरक्षित परिस्थिति का परिचय देता है। यहाँ के निवासी विशेष रूप से मुसलमान और सोखाना जाति के बनिये हैं, उनके पूर्वज भाटी राजपूत थे। और वे सिन्ध की घाटी में पाये जाते थे।

जूनागढ़ ७ दिसम्बर—नौ कोस की यात्रा। आज सुबह की अठारह मील की मंजिल में हमको बहुत थोड़े गाँव मिले। वे एक दूसरे से बहुत दूरी पर बसे हुए थे और उनके आस-पास झाड़ियाँ और जंगल बहुत थे। हालत यह थी कि उनियारा से जूनागढ़ तक जंगल और उजाड़ था। इन जनहीन और जंगली स्थानों में भी हमें कोई अप्रियता नहीं मालूम हुई। इसलिये कि हम लगातार पर्वत के समीप पहुँचते जाते और हमारी यात्रा का उद्देश्य यही था।

गाँवों में अधिकतर अहीर लोग रहते थे और वे अपनी बस्ती के आस पास खेती भी करते थे। लेकिन उनके इस व्यवसाय की हालत अच्छी नहीं थी, धार्मिक और राजनीतिक—दोनों तरह के अत्याचारों में यहाँ के निवासियों को जीवन के दिन काटने पड़ रहे थे। कारण यह था कि यहाँ का सूबेदार मुसलमान था और उसका प्रबन्ध बहुत कठोर था।

जूनागढ़ का अतीत कालीन वैभव नष्ट हो गया था। परम्परागत कथानकों और पुरानी बातों की जानकारी रखने वालों से यहाँ के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता था। मैंने उसके इतिहास के विषय में जानने की कोशिश की तो लोगों ने इतना ही बताया कि बहुत पहले से लोग इसको पुराना किला कहते आ रहे हैं। पुराना किला का अर्थ उन लोगों ने जूनागढ़ बताया।

यहाँ के सम्बन्ध में जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे मालूम होता है कि यहाँ पर यादव राजाओं की किसी समय राजधानी थी। जिन दिनों में मेवाड़ के राणाओं के पूर्वज बलभी के राजा थे, उन दिनों में भी यही कहा जाता था और जब उस वंश के अंतिम शासक माण्डलिक का विनाश महमूद बेगड़ा के द्वारा हुआ, उस समय भी लोग इसी प्रकार कहा करते थे। इससे स्पष्ट मालूम होता है कि शासन की पुरानी शृङ्खला का अंत नहीं हुआ था और ईसा की दसवीं शताब्दी में जब महमूद का आक्रमण हुआ था, उस समय यहाँ पर किसी यदुवंशी राजा का शासन था।

अबुल फजल जूनागढ़ के विषय में प्रकाश डालते हुए लिखता है "यह नौ जिलों में विभाजित था, प्रत्येक भाग में अलग अलग जाति के लोग रहते थे। पहले

भाग का—जो नवसोरठ कहलाता है बहुत दिनों तक घने जंगलों और पहाड़ों के कारण उसका कुछ पता नहीं चलता था। उन्हीं दिनों में कोई खोजक वहाँ पर पहुँच गया और उसने अपनी खोज दूसरों को दी। वहाँ पर एक किला है, जो पत्थरों से बना हुआ है। वह जूनागढ़ कहलाता है। इसको सुल्तान महमूद ने जीत लिया था और इसकी तलहटी में एक दूसरा छोटा सा किला बनवाया था।

जूनागढ़ अब आबाद हो गया है। लेकिन इसमें कोई अधिक परिवर्तन नहीं हुआ और देखने में वह उसी प्रकार का है, जैसा कि अबुल फज़ल ने शताब्दियों पहले उसका वर्णन किया है। वह चारों तरफ से घने जंगलों के द्वारा घिरा हुआ है। उस जंगल में कांटेदार बबूल के वृक्ष इतने घने हैं कि उनके भीतर प्रवेश करना आसान नहीं है। लेकिन दो तीन प्रमुख गाँवों में जाने के लिये बबूलों को काटकर रास्ते बना दिये गये हैं। इस प्रकार के कटीले पेड़ों के घने घेराव से किसी भी नगर का उस समय बहुत बड़ा लाभ होता है, जब उस पर किसी बाहरी शत्रु का आक्रमण होता है और वह भीतर प्रवेश नहीं कर पाता।

यदि उस सुरक्षा के प्रश्न को यहाँ पर छोड़ दिया जाय तो एक और हानि यहाँ के लोगों को इस घने जंगल के कारण उठानी पड़ती है। जंगलों से घिरे हुए स्थान स्वास्थ्य के लिये बड़े भयानक हो गये हैं। घने पेड़ों और वनस्पति के कारण यहाँ के लोगों को शुद्ध वायु नहीं मिलती। इसका मुझे भी कुछ अनुभव हुआ। (१) ये दिन स्वास्थ्य के लिये अच्छे माने जाते हैं। लेकिन यहाँ पर जब मैंने मुकाम किया तो बहुत जल्दी हमारे साथ के कई आदमी बुखार में बीमार हो गये।

प्राचीन काल में यह नगर सात कोस अथवा चौदह मील के घेरे में था, लेकिन अब उसका घेरा पाँच मील से अधिक नहीं है। पहले यह बहुत दूर तक फैला हुआ था, लेकिन अब उसका विस्तार बहुत कम हो गया है। फिर भी उसका आज जितना क्षेत्र है, मौजूदा आबादी के हिसाब से अधिक है। इसलिये कि यहाँ के निवासियों की संख्या पाँच हजार से अधिक नहीं है।

इस नगर में रहने वाले लोग नागर और गिरनारा जाति के ब्राह्मण हैं। इन्हीं की संख्या में यहाँ के मुसलमान हैं। बाकी जो लोग यहाँ पर रहते हैं, वे या तो खेती करते हैं अथवा मजदूर हैं। यहाँ पर खेती करने वाले लोग अहीर और कोली जाति

---

(१) मूल लेखक ने इन स्थानों को अस्वास्थ्यकर होने का कारण यह बताया है कि वह स्थान घने जंगलों से घिरा हुआ है और वहाँ के रहने वालों को शुद्ध वायु नहीं मिलती। यह धारणा सही नहीं है। क्योंकि शुद्ध वायु मनुष्य को पेड़ों से ही मिलती है। मनुष्यों की घनी आबादी में शुद्ध वायु नहीं मिला करती। वहाँ के स्वास्थ्य और जलवायु का कुछ दूसरा ही कारण हो सकता है। [अनुवादक]

के लोग हैं। यहाँ पर राजपूत नहीं हैं और अगर होंगे भी तो बहुत कम।

आजकल जो जूनागढ़ का अधिकारी है, वह मुसलमान है। वह नवाब कहलाता है। वह गायकवाड़ को खिराज देता है। उसकी अपनी आमदनी बहुत थोड़ी है। उसके अरमान बहुत बढ़ चढ़े हैं लेकिन दबे पड़े हैं। वह जिस स्थान में रहता है, वह खण्डहरों से घिरा हुआ है।

प्राचीन काल में जूनागढ़ का निर्माण बड़ी मजबूती के साथ हुआ था। उसमें ठोस और चौकोर छतरियाँ बहुत थीं और उसका परकोटा ऐसे ढंग से बना हुआ था, जिसमें बहुत से स्थान स्थान पर सुराख थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्राचीन काल की परिस्थितियों के अनुसार, इस प्रकार का निर्माण गौरवशाली था।

मैंने इसकी चहारदीवारी को भली प्रकार देखने और उसको नापने की कोशिश की है। इसकी दक्षिणी दीवार जो सबसे छोटी है और मुख्यद्वार की है, सात सौ गज लम्बी है। उसका पूर्वी भाग आठ सौ गज का है। सभी तरफ सत्रह सत्रह छतरियाँ बनी हुई हैं। उनकी पतली दीवारों से स्थान में कोई रुकावट नहीं आती। पश्चिमी दीवार सबसे बड़ी है, वह लगभग दो मील लम्बी है। उत्तर के तरफ की दीवार बहुत टेढ़ी मेढ़ी बनी है। उसकी लम्बाई दक्षिणी दीवार से कुछ अधिक है। उसमें एक किनारे पर द्वार बना हुआ है। इस तरफ की दीवार सोनारिका नदी के किनारे किनारे चली गयी है। वह नदी के कगारों की चट्टानों को काटकर बनायी गई है। इसीलिये यह दीवार सब दीवारों से मजबूत है।

चट्टान को काटकर एक खाई भी बनाई गयी है। वह खाई कहीं पर बीस फीट और कहीं पर तीस फीट गहरी है। उसकी चौड़ाई इसके लगभग है। इस खाई से जो सामग्री निकली है, उससे किले के दीवारें बनायी गयी हैं। उससे किले का परकोटा साठ से अस्सी फीट ऊँचा हो गया है। जहाँ पर नदी का किनारा आ गया है वहाँ पर उसकी ऊँचाई सौ फीट ऊँची कर दी गयी है। परकोटे पर जो स्थान तोपखाने का है वहाँ पर क्रमशः ढलाव भी है। उसका फायदा यह होता था कि तोप के दागे जाने पर दीवार के फटने से खाई के भर जाने का कोई अन्देशा नहीं होता था।

उत्तर की तरफ का दृश्य अधिक प्रभावशाली है। पहाड़ी के खुलते हुए भाग से गिरनार दिखायी पड़ता है। जहाँ से यह देखा जाता है, उनमें एक स्थान का नाम दुर्गा के नाम पर है और उस तरफ सोनारिका नदी बहती हुई दिखायी देती है।

मिस्टर विलियम के द्वारा हमको किले में प्रवेश करने का अवसर मिल गया। मुझे लोगों से मालूम हुआ कि किले में आने की यह सुविधा पहले-पहल मुझे मिली है। अभी तक किसी योरप के यात्री को यह सुभीता नहीं दिया गया।

मैंने किले के भीतर जाकर देखा, उसकी भीतरी अच्छाइयाँ अब नष्ट हो गयी

हैं, लेकिन उसके बाहरी दृश्य अभी तक कायम हैं। किले के द्वार पर सैनिक रक्षा दल ने हमारा स्वागत किया। सैनिकों की संख्या का देखना मेरे हृदय में सम्मान और अविश्वास—दोनों प्रकार की भावनायें उठीं। लेकिन अपनी इस भावना को प्रकट करने के लिए मैंने जल्दबाजी से काम नहीं लिया।

यहाँ का प्रत्येक पत्थर हमको अतीत काल के उस अवसर की याद दिलाता है, जब यादवों ने छप्पन वंश भारत में राजसत्ता का भोग कर रहे थे। ग्रामनाथ के—जिस बाद में दैव शक्ति प्राप्त हुई थी—सोराष्ट्र में शासनकाल का कोई भी समय माना गया हो, लेकिन इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि जब राणा के पूर्वज कनकसेन ने पंजाब के लोहकोट से आकर दूसरी शताब्दी में बालका देश को विजय किया था, उस समय भी यहाँ पर कोई यदुवंशी राजा राज्य करता था।

दक्षिण पश्चिम कोने में दो अध चन्द्राकार बनी हुई मोरियों में से होकर भीतर गये। वे मोरियाँ मुख्यद्वार की रक्षा के लिये बनी हुई थी। पहले दरवाजे को पार करके हम एक चौक में पहुँचे, उसके दूसरे किनारे पर पुराने ढंग का एक दरवाजा बना हुआ था। प्रत्येक दरवाजे के बाहर की तरफ नोकदार मेहराब बनी हुई है। लेकिन भीतर की तरफ बड़े बड़े ग्रेनाइट पत्थर लगे हुये हैं। उनके खुरदरे संगमरमर पर कुराई का काम हो रहा है। उनके ऊपरी भाग चार चार खम्भों पर रखे हुये हैं। ये खम्भे भी उसी पत्थर से बने हुये हैं।

उसके बीच में एक विस्तृत आँगन है, वह इसी प्रकार के दरवाजों से घिरा हुआ है। उन्हीं के ऊपर बड़े बड़े कमरे बने हुये हैं। दरवाजों पर नोकदार मेहराब बनाने के लिये उनको मोटी लकड़ी से ढक दिया गया है। उनको ऊपर लोहे के पत्तरों से मढ़ दिया गया है। वे मौसिम के कारण काले हो गये हैं। इस किले के द्वार पर सबसे प्रिय मुझको वे तलवारें और ढालें मालूम हुईं, जो प्रवेश-द्वार से बाहर की तरफ चूने से बनायी गयी हैं। वे ऐसे स्थान पर बनी हैं जिन पर लोगों की आँखें अपने आप जाती हैं। उनके विषय में यहाँ पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है, इसलिये कि वे अपनी उपयोगिता और महानता का परिचय स्वयं देती हैं।

जिन लोगों ने रूस वारांझियन शासकों का इतिहास पढ़ा है, उनको रूरिक (१)

---

(१) रूरिक स्केण्डेनेविया का निवासी था। उसने उत्तरी-पश्चिमी रूस में ६ वीं शताब्दी सन् ८५० ईसवी में अपना साम्राज्य कायम किया था। उसके उत्तराधिकारी और बेटे आइगर के संरक्षक ड्यूक आलग ने वर्तमान रूस की नींव रखी थी। कुस्तुन्तुनिया के लोग इनके सिपाहियों के युद्ध-कौशल की प्रशंसा करते थे और उनको वारांझिन कहते थे।—दी आउट लाइन आफ हिस्ट्री, एच० जी० वेलो पे० ६०८

के पुत्र के द्वारा बाइजण्टिअम (१) के दरवाजे पर लटकाई हुई ऐंसी ढाल का स्मृतिया का स्मरण आवेगा, जब वह अस्सी हजार सेना लेकर बोरिस्थिनीज (२) से गुजरा था। हमें इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि वारांग्रियन नारमन जाति के थे और उस समय तक वे लोग आधे एशियायी थे। हम यहाँ पर इतना और कह देना चाहते हैं कि जिन वारांग्रियन सैनिकों ने युद्ध की संधि को पूरा करने के लिये अपने शस्त्रों की शपथ ली थी, उनको हम अपने अनुमान से राजपूत कह सकते हैं, वे वास्तव में राजपूत थे।

इन दीवारों को छोड़कर सीढ़ियों पर चढ़ते हुए हम किले के उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर तोपें रखी जाती थीं। इस किले के भीतर पहले चाहे जैसी इमारतें रही हों, लेकिन अब हिंदुओं के द्वारा बनवायी हुई यहाँ पर एक भी इमारत नहीं है। एक विशाल भवन ने किले की मुण्डेर को गायब कर दिया है। वह विशाल इमारत है, एक लम्बी चौड़ी मस्जिद, जिसका निर्माण राजपूतों पर इस्लाम की विजय के स्मारक में बनवाया गया है और हिंदुओं के बनवाये हुये मन्दिरों की सामग्री को उसके बनाने में इस्तेमाल किया गया है।

कहा जाता है कि यहाँ के राजा माण्डलिक को सुलतान मोहम्मद बगड़ा (महमूद बेगड़ा) ने पराजित किया था। इस्लाम की प्रेरणा लेकर जितने लोग आये, उन्होंने इस देश में मन्दिरों का नाश किया और इस्लाम के नाम पर मस्जिदों का निर्माण किया गया। उन लोगों ने विनाश और निर्माण का यह कार्य इस्लाम की तरक्की के लिये किया, लेकिन उसका यहाँ के लोगों पर प्रभाव क्या पड़ा ! जो धर्म जबरदस्ती किसी पर लादा जाता है, वह एक बोझे के सिवा और कुछ नहीं समझा जाता।

हिंदुस्तान में इन आक्रमणकारी मुसलमानों ने यही किया। उन्होंने नर संहार करके बचे हुये लोगों को मुसलमान बनाया और मन्दिरों को गिराकर मस्जिदें खड़ी कीं। लेकिन इनके द्वारा वे लोग यहाँ के निवासियों को इस्लाम में प्रभावित नहीं कर सके।

मुसलमानों के द्वारा यहाँ पर जो इमारतें तैयार की गयीं, वे बेमेल रहीं। उनमें बहुत कुछ सामग्री हिन्दू मन्दिरों की काम में लायी गयी। जो इमारत तैयार हुई, उसमें उस सामग्री ने प्राणों का काम किया।

---

(१) बासफोरस नदी के किनारे का एक प्राचीन ग्रीक नगर जो वर्तमान कुस्तुन्तुनिया की सात पहाड़ियों पर बना हुआ था।

(२) योरप की महानदी जिसका वास्तविक नाम नीपियर था। ग्रीक लोगों ने उसका नाम बोरिस्थिनीज रखा। यह नदी बाल्डाई की पहाड़ियों से निकली है और श्याम सागर में जाकर गिरती है।

यहाँ पर जो मस्जिद बनी है, उसकी लम्बाई एक सौ चालीस फीट और चौड़ाई एक सौ फीट है। उसकी दालान गोल और चौकोर पत्थरों से बनी हैं और उनका आधार दो सौ स्तम्भों को बनाया गया है। इसके तीन विभाग हैं। दाहिना, बांया और बीच का भाग। बीच का भाग कोणों के साथ बनाया गया है। प्रत्येक की लम्बाई तीस फीट है और प्रत्येक खम्भों से घिरा हुआ है। स्तम्भों का फासिला आठ आठ फीट का है। मालूम होता है कि हिन्दू प्रथा के अनुसार इनको गुम्बजों से ढकने की योजना बनायी गयी थी। क्योंकि स्तम्भों में जो पत्थर लगे हैं, उनको देखकर इस प्रकार का अनुमान होता है।

दोनों बगलों के स्तम्भ चौकोर हैं। इनका निर्माण भी उसी प्रकार के पत्थरों के द्वारा हुआ है। इनमें से प्रत्येक की ऊँचाई सोलह फीट है। उनके सिर का भाग सादा रखा गया है। बीच की छतरी के चारों ओर दो दो खम्भों को एक नोकदार मेहराब से जोड़ा गया है। उत्तर और पश्चिम की तरफ का काम पूरा हो चुका है। शेष भाग खुल पड़े हैं और नोकदार मेहराबें दो-दो खम्भों पर खड़ी की गयी हैं।

इस इमारत को देखकर यह बात आसानी से समझ में आ जाती है कि हिन्दुओं के मन्दिरों के सामान से इसका निर्माण किया गया है। इसके विषय में किसी प्रकार का संदेह करने की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि इसमें जो पत्थर लगे हैं, वे ठीक उसी प्रकार के हैं, जिस प्रकार के पत्थर गढ़े हुये हिन्दुओं के मन्दिरों में पाये जाते हैं।

कुमारपाल के मन्दिर का मण्डप उतार लिया गया है और यही हालत नेमिनाथ के मन्दिर की भी हो गयी है। मस्जिद की गुम्बजों में भी मन्दिर के गढ़े हुये पत्थर पूरे-पूरे आ जाते हैं।

पर्वत पर बनी हुई सम्प्रतिराज की छतरी जिसका व्यास ठीक इसी के बराबर है—तीसरी गुम्बज के निर्माण में प्रयोग की गयी है। इसी प्रकार मस्जिद के और भी भाग हैं, जिनके निर्माण में हिन्दुस्तान के मन्दिरों की सामग्री काम में लायी गयी है और कदाचित् इसी सामग्री के कारण मस्जिद के निर्माण का कार्य बहुत कुछ मन्दिर की तरह का हो गया है।

यादवों का स्मारक यहाँ पर एक और है और वह है एक सरोवर, जो ठोस चट्टानों को काटकर और खोदकर बनाया गया है। उस सरोवर की गहराई एक सौ बीस फीट से कम नहीं है। इसकी बनावट वृत्त के आकार में है, जो सरोवर से छोटी होती चली गयी है। इसके सबसे बड़े स्थान का व्यास पचहत्तर फीट के लगभग है, जो पत्थर यहाँ पर लगाये गये हैं, उनमें विभिन्न प्रकार की चित्रकारी की गयी है।

इस किले की एक चीज बहुत अधिक महत्व रखती है और वह है यहाँ की तोप। यह तोप पीतल की बनी हुई है और वह पश्चिम की तरफ एक चबूतरे पर रखी हुई है। उसकी लम्बाई बाईस फीट, जोड़ पर का व्यास दो फीट दो इञ्च, मुख

के ऊपर उन्नीस इञ्च और मुख के छेद का भाग सवा दस इञ्च है। उस पर दो लेख खोदकर लिखे गये हैं। उनसे पता चलता है कि यह तोप टर्की में ढाली गयी थी। यह भी जाहिर है कि यह तोप सुलमान महान के साथ आयी थी। उसने पन्द्रहवी शताब्दी में आक्रमण करके गुजरात के राजा के मुकुट में लगे हुए सभी रत्नों को अपने अधिकार में कर लिया था।

जूनागढ़ के इस प्राचीन किले में इस प्रकार के कुछ पदार्थ जरूर ऐसे रह गये हैं, जिनका अध्ययन किया जा सकता है, लेकिन साधारण तौर पर वह जङ्गल हो गया है। वहाँ पर अनेक प्रकार के वृक्ष पाये जाते हैं, लेकिन शरीफे के वृक्षों की अधिकता है।

उत्तर पश्चिम के रास्ते से जब मैं उतर रहा था तो वहाँ पर मैंने एक गुफा देखी। यह गुफा यात्रियों के लिये निवास देने का एक प्रिय स्थान है। वहाँ के एक ऊँचे और विस्तृत पहाड़ को खोदकर कुछ कमरे और कोठे बनाये गये हैं, जो देखने में अच्छे नहीं लगते। उनमें वहाँ के बहुत से लोगों के नाम दिये गये हैं। उन कमरों और कोठों की एक पंक्ति पाण्डवों के नाम से है। खाखरा नामक चोर का भी वहाँ पर नाम है। प्राचीन काल में यह व्यक्ति इस इलाके में राबिनहुड (१) हो रहा था। लेकिन वह पुरुषार्थ में हमारे चरित्र नायक से आगे था। यह व्यक्ति वही था, जो कलश में लगे हुए सोने को चोरी करने के लिये बाडोली के मन्दिर की चोटी पर चढ़ गया था।

वहाँ पर खाखरा की गुफा है, जो कई भागों में विभाजित है। वहाँ पर एक छोटा-सा हाल है, जो उसके बैठने उठने के लिये था। उसके एक भाग में रसोईघर और एक उसमें अश्वशाला भी है। यह अश्वशाला साठ फीट लम्बा और उतना ही वर्गाकार है। यह स्थान लगभग सौ फीट ऊँचे सोलह खम्भों पर बना हुआ है। मुसलमानों ने खाखरा की इस गुफा को जलालशली दरवेश की दरगाह बना डाली है।

अब हम सुरक्षा के पहाड़ के रास्ते पर आते हैं। यह पहाड़ उन पच्चीस गिरिराज अथवा पर्वतों में राजा के नामों में से एक है। जिनके उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में पाये जाते हैं। गिरिराज को गिरिनार कहा जाता है। गिरि का अर्थ पहाड़ होता है।

---

(१) अंग्रेजी कथाओं में राबिनहुड का नाम आमतौर से पढ़ने को मिलता है। प्राचीन काल के बहादुराना कार्यों में भी उसके उल्लेख पाये जाते हैं। उसके सम्बन्ध में लिखे गये विवरणों से पता चलता है कि वह धनिकों को लूट मारकर जो सम्पत्ति लाता था, उससे वह गरीबों और अनाथों की सहायता किया करता था। उसके नाम का उल्लेख इतिहासों में कहीं पर नहीं पाया जाता। परन्तु कथाओं और काव्यों में चौदहवीं शताब्दी तक उसके उल्लेख मिलते हैं।

और नार का अर्थ स्वामी होता है। दूसरा नाम उज्जयन्त अथवा उजयन्ती है। यह पापा का नाश करने वाला पहाड़ माना जाता है। हर्षद शिखर अथवा यात्रियों का अध्यक्ष शिव, स्वर्णगिरि अथवा सोने का पहाड़, श्रीढ़ांक गिरि अथवा सभी पर्वतों को आश्रय देने वाला पहाड़, श्रीमद्ध्य कोमल अथवा अत्यन्त कोमल पर्वत, मारदेवी पर्वत अथवा आदिनाथ की मामोरदवी का पहाड़, बाहुबलि तीर्थ अथवा आदिनाथ के दूसरे लड़के बाहुबलि का स्थान, आदि।

इन सभी नामों में उसका स्वर्ण नाम अधिक सही और सार्थक है, जो यहाँ की निर्झरणी नामक नदी के लिये प्रयोग में लाया गया मालूम होता है। उसमे काली चट्टानों और पहाड़ी रास्तों से बहकर आने वाले झरने दिखायी देते हैं। इसके सम्बन्ध में यह विश्वास करना अस्वाभाविक नहीं है कि इस अत्यन्त प्राचीन कालीन पहाड़ में कोई बहुमूल्य धातु प्राप्त होती रही है और वह धातु सोनारिका अथवा स्वर्ण प्रवाहिनी का अर्थ देता है। राखंगार वंश के इतिहास के उपसंहार भाग में एक ऐसा कथानक पढ़ने को मिलता है, जिससे पता चलता है कि सौराष्ट्र के शक्तिशाली यादव वंशीय राजा ने अपनी लड़की एक ऐसे अतिथि को ब्याही थी, जो कीमती धातुओं की खोज करने की कला को भली प्रकार जानता था और अपनी इस खोज के लिये वह मशहूर हो रहा था। उसने गिरिनार के पहाड़ों में ऐसे स्थानों का पता लगाया था, जहाँ पर सोना मौजूद था।

अब हम जूनागढ़ के किले के पूर्वीद्वार से सीढ़ियों पर चलते हुए आगे की तरफ आते हैं। धाड़ा के व्यवसायी सुन्दरजी का वैभव यहाँ से आरम्भ होता है। उसका यश बढ़कर उसके नाम को सदा के लिये अमर बना देगा, ऐसा सोचना स्वाभाविक ही है। इसके साथ साथ यहाँ आने वाले यात्रियों को अपने स्थान पर पहुँचने के लिये बहुत बड़ी सहायता मिलती है, जो किसी आशीर्वाद से कम नहीं है।

नगर की बाहरी दीवाल से आरम्भ होकर एक अच्छा सा मार्ग जङ्गल की तरफ जाता है। उस मार्ग के दोनो तरफ आम और जामुन की तरह के बहुत से वृक्ष लगे हुए हैं। इन वृक्षों से यहाँ के थके हुए यात्रियों को शान्ति देने के लिये छाया भी मिलती है और उनके फलों से यात्रियों को अपनी क्षुधा मिटाने में सहायता भी मिलती है। यह रास्ता जहाँ पर सोनारिका से मिलता है, वहाँ का लम्बा रास्ता पत्थरों से बना हुआ है। वह मार्ग नदी के साथ साथ चलता है और वहाँ पर जाकर खत्म हो जाता है, जहाँ पर इस दर्रे के बहुत से मार्ग होकर अपनी अपनी दिशा बनाते हैं। वहाँ पर तीन महराबों का एक बड़ा खूबसूरत पुल है। उस पुल पर जालीदार खुली दीवारें बनी हुई हैं।

इस पुल से यहाँ का दृश्य अत्यन्त खुशनुमा हो जाता है और उसके साथ-साथ उसकी उपयोगिता बहुत कुछ आँखों के सामने आ जाती है। सबसे बड़ी बात यह

है कि इसके निर्माण के द्वारा हजारों गरीबों को रोटी कमाने के लिए काम मिलता है और इस पुल के द्वारा हजारों तथा लाखों भक्त-यात्रियों के संकटों का भी अन्त हो जाता है।

सुन्दरजी अब संसार में नहीं हैं। उनकी मृत्यु हो चुकी है। उसके परिवार में आज जो लोग भी मौजूद हैं, लड़के अथवा उत्तराधिकारी, उन सबकी प्रशंसा की जा सकती है। इसलिये नहीं कि वे एक ऐसे अच्छे आदमी के वंशज हैं। बल्कि इसलिए कि उन सबने मिलकर सुन्दरजी के यश और गौरव को कायम रखने की पूरी कोशिश की है। इन लोगों ने सुन्दर जी के किसी कार्य को शिथिल नहीं होने दिया। उसके पुत्र ने अपने उसी धार्मिक उत्साह का आज तक परिचय दे रखा है, जो उसके पिता में मौजूद था। पुत्र के कार्यों से पिता की ख्याति की वृद्धि हुई है। सुन्दर जी ने निर्माण का जो कार्य आरम्भ किया था, वह लगातार बढ़ता हुआ दिखायी देता है। इसके लिए सुन्दर जी के उत्तराधिकारियों की और उनके धार्मिक उत्साह की तारीफ हो रही है।

पुल के ऊपर खड़े होकर देखने से जो दृश्य दिखायी पड़ते हैं, वे बड़े मोहक और प्रभावोत्पादक हैं। सामने की तरफ पहाड़ों के बीच में दुर्गा-द्वार के रास्ते पर गिरनार का ऊँचा और प्रसिद्ध शिखर दिखायी देता है। पीछे की तरफ जूनागढ़ का किला है। ऐसा जान पड़ता है, मानो उसका प्राचीन गौरव अपनी ख्याति की रक्षा करने में असमर्थ हो रहा है। उसको देखने से यह भी आभास होता है कि पर्वत के ऊपर जाने के लिये घाटी के मार्ग को सुरक्षित बनाने की आवश्यकता थी, इसीलिये यह किला बनाया गया है।

अब हम पुल को छोड़कर एक महत्वपूर्ण स्मारक की तरफ आते हैं। हमारा विश्वास है कि उसका वर्णन और प्रतिपादन इतिहास के पाठकों को अधिक प्रिय मालूम होगा।

इस स्मारक को मैं बड़े आदर के साथ देखता हूँ। उसका गौरव मेरे जैसे आदमी को बहुत पहले से आकर्षित कर रहा है। ऐसा मालूम होता है कि लोगों के सामने अज्ञान का एक घना अंधकार फैला हुआ है, उसको दूर करने के लिए ही यह स्मारक मुझे अपनी ओर आमन्त्रित और आकर्षित कर रहा है। यह स्मारक चाहता है कि युगों से फैला हुआ लोगों का अंधकार दूर हो।

यहाँ पर इस स्मारक के सम्बन्ध में इतना लिखना और आवश्यक हो गया है कि यह स्मारक जिस कठिन और घने जंगलों के बीच में है, उनमें घने बबूलों के इतने अधिक वृक्ष हैं कि उनसे गुजर कर स्मारक तक पहुँचना साधारण कार्य नहीं है। उस सारे रास्ते को कँटीले बबूलों के घने पेड़ों ने बुरी तरह से घेर रखा है।

यहाँ पर मैं पहले दो छोटे स्थानों का उल्लेख करना चाहता हूँ। उन दोनों

स्थान। मे एक कुण्ड है, यह छोटा है, लेकिन देखने मे बहुत अच्छा लगता है। यह कुण्ड नगर के बाहर निकलते ही मिलता है। इसका नाम सोनार का कुण्ड है। दूसरा स्थान दुर्गा की पहाड़ी के नीचे बाघेश्वरी माता का छोटा सा मन्दिर है। यह मन्दिर फ्रीजियन (१) देवी से बहुत कुछ मिलता-जुलता है। वह कांटों का माला पहने है और शेर पर सवार है।

यह एक स्मारक है, जो किसी विजेता का मालूम होता है। उसका निर्माण काले पत्थरों पर हुआ है। उसकी बनावट बड़ी अनोखी और अजीब है। सारे पत्थर एक-स हैं और सभी इतने समान हैं, जो काट काटकर बनाये जाने का प्रमाण देत हैं। उसकी परिधि करीब करीब नब्बे फीट की है। वह स्मारक कई विभागों मे विभाजित है, उनके भीतर प्राचीन अक्षरो में खुदे हुये शिला-लेख हैं, उनमें से दो शिला-लेखों की भी नकल ली गयी। परन्तु अक्षरों की बनावट कुछ दूसरे तरह की होने के कारण नकल सन्तोषजनक नहीं रही।

मैंने पहले जिन दो शिला-लेखों की नकल कराई, वे दिल्ली के विजय स्तम्भ और मेवाड़ के भील के बीच में बने हुए विजय-स्तम्भ (२) एवम् भारत के बहुत-से प्राचीन गुफाओं और मन्दिरो के लेखो के समान हैं। इन लेखों के प्रत्येक अक्षर की लम्बाई लगभग दो इन्च है। ये शिला-लेख बड़ी सावधानी के साथ लिखे गये हैं, बहुत प्राचीन होते हुये भी उनके आकार प्रकार मे कोई विशेष अन्तर नहीं आया।

जिस प्रकार के अक्षरो में ये शिला-लेख मिले, वैसे अक्षरो मे पहले भी शिला-लेख मिल चुके थे। कुछ उसी प्रकार की शैली मे यहाँ पर भी अनेक शिला लेख मिले। इनके अक्षरों की बनावट कुछ उसी प्रकार की है, जिस प्रकार के अक्षरो में मैंने 'ट्रान्जेक्शन्स आफ दी रायल एशियाटिक सोसाइटी' के लिए इरान्ने गेटिक पदकों पर खुदवाये थे और जिनके नमूने मैंने कालीकट के खण्डहरों और अन्य प्राचीन नगरो से प्राप्त किये थ।

इन लेखो के सम्बन्ध मे मैं कुछ अधिक गहराई मे जाने की कोशिश कर रहा हूँ। मेरी समझ मे इन सबका लिखने वाला कोई एक ही था। परन्तु वह व्यक्ति कौन था? अक्षरो की यह शैली सुरोई के विजेता मीनाण्डर और अपोलोडोटस के बहुत पहले समय की है। अक्षरो की इस शैली में ग्रीक अक्षरो की बनावट का मिश्रण मालूम होता है। फिर भी इस मिश्रण के सम्बन्ध मे किसी प्रकार की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसी

(१) फ्रीजिया एशिया माइनर म है। वहाँ क लोग नोकदार टोपियाँ पहनते हैं।

(२) मेवाड़ का विजय-स्तम्भ चित्तौर के दुर्ग में है, वहाँ पर भील ...

दशा में अक्षरों की इस शैली के सम्बन्ध में अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं मालूम होती, अतएव उसे मैं यहीं पर छोड़ता हूँ ।

मैं इस बात को मानता हूँ कि जब किसी काम में हाथ डाला जाता है तो मनुष्य किसी परिणाम पर पहुँचता है, लेकिन उसका निश्चय कहाँ तक सही है, यह आसानी के साथ नहीं कहा जा सकता । इसलिये इसकी जटिलता के निवारण करने के कार्य को मैं उन विद्वानों पर छोड़ता हूँ, जो भविष्य में पुरातत्व के इस प्रश्न को अपने हाथों में लेंगे ।

इस जटिल प्रश्न को हल करने और काम को अधिक गहराई में जाने का कार्य अपने हाथों में लेने वालों में मैं पहला आदमी नहीं हूँ । आधी शताब्दी पहले उत्तरी भारत में जिस प्रथम अंगरेज ने फीरोज के पुराने महल में स्तम्भ को देखा था उसके लेख के सम्बन्ध में उसने पारस के विरुद्ध सिकन्दर की विजय का लेख स्वीकार करके उल्लेख किया था । इस प्रश्न को—जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है—भविष्य में काम करने वाले विद्वानों पर छोड़ता हूँ । इसका कारण एक यह भी है कि पहले भी जब मैंने उसकी खोज में अधिक समय व्यतीत किया तो कुछ हासिल नहीं हुआ ।

कुछ शिला लेखों की लिखावट बहुत प्राचीनकाल की जानी है । जो शिला लेख जितना ही पुराना होता है, उसका पढ़ा जाना उतना ही कठिन होता है । प्राचीनकाल में जैनियों ने इन लेखों की लिपि का सुधार कार्य का विचार लगभग बारहवीं शताब्दी में किया था । मैंने इन लिपियों की पुरानी शैली का संकलन किया था, मेरे उस संकलन में कुछ पाँचवीं शताब्दी के थे । उनमें जेट राजाओं के आक्रमणों के वर्णन लिखे गये थे । मैंने इस काम को अपने गुरु और सहायक आदमियों के द्वारा बड़ी सावधानी के साथ कराया था । मेरे इस काम में जो लोग सहायक थे, वे पुरानी लिपियों को समझने में काफी योग्य थे । लेकिन वे भी कभी कभी कुछ लिपियों के समझने में असमर्थ हो जाते थे ।

अब हम पुल को पार करके अपनी यात्रा में आगे बढ़ने की चेष्टा में थे, हमारा रास्ता घाटी और दोनों पहाड़ियों के बीच से होकर गया था । जब मैं अपने इस रास्ते में था तो उसकी संकीर्णता पर अनेक प्रकार की बातों पर विचार करता रहा, इस मार्ग में हिन्दुओं ने अपनी कल्पनाओं से काम लेने में कुछ उठा नहीं रखा था । मैंने देखा, मार्ग के दाहिने ओर अश्वमुखी देवी और बाईं ओर जोगिनी माता रक्षा के लिये मौजूद हैं । खोज करने पर मालूम हुआ कि इनके द्वारा दो प्रकार के कार्य होते हैं, एक तो आने वाले यात्रियों की रक्षा होती है और जिन आने वाले लोगों में श्रद्धा नहीं होती, उनका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है ।

घाटी से चलने वाला रास्ता नदी के तटवर्ती वृक्षों और पहाड़ के मध्य भाग में तंग रास्ता छोड़कर सानारिका के बायें किनारे से चलता है, वृक्षों में अधिक पेड़

सागवान के हैं। इन पेड़ों में पत्ते बड़े बड़े होते हैं। इतने बड़े पत्ते और इतने छोटे पड़ तथा तने मे, यह देखकर कुछ विस्मय भी होता है। लेकिन इन पेड़ों की लकड़ी मकान बनाने में बहुत काम की साबित होती है।

पहाड़ी के किनारे पर जिस पतली इमारत पर दृष्टि जाती है, वह दामोदर महादेव का मन्दिर है। वह एक बड़े क्षेत्र मे तैयार कराया गया है। सोनारिका को रोककर वहाँ पर एक कुण्ड बनाया गया है। उस मन्दिर में दर्शनों के लिए जाने वाले यात्री पहले उस कुण्ड में स्नान करते हैं और उसके पश्चात सीढ़ियों पर चढ़कर मन्दिर में जाते हैं। उस कुण्ड मे बिना स्नान किये हुये मनुष्यों को अपवित्र माना जाता है और उस मन्दिर में जाने से रोक दिया जाता है।

उस मन्दिर के चारों ओर ऊँची ऊँची दीवारें हैं। वहाँ पर एक धर्मशाला भी बनी हुई है। थके-मादे यात्री उस धर्मशाला मे जाकर विश्राम करते हैं। एक दूसरे कुण्ड में जाने के लिए ऊपर की तरफ सीढ़ियाँ जाती हैं। यह कुण्ड चट्टान को काटकर बनाया गया है, उसका अगला भाग पत्थरों को काट कर तैयार किया गया है। कुण्ड के भीतर मूर्तियाँ मौजूद हैं, वे टूट फूट कर विद्रूप हो गयी हैं। मुसलमानों के द्वारा ये मूर्तियाँ नष्ट की गयी हैं। इस कुण्ड का नाम रेवती कुण्ड है।

इस कुण्ड के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि जूनागढ़ के पुराने यादववंशी राजाओं ने अपने आदि पुरुष कन्हैया को समर्पित किया था। वहाँ पर मुझे एक शिला लेख मिला, उससे मुझको अपार आनन्द हुआ। मूर्तियों को नष्ट करने वालों से वह शिला-लेख किसी प्रकार बच गया था। इस शिला लेख मे लिखी गयी पंक्तियों को पढ़वाने के पश्चात् मेरी समझ में यह नहीं आया कि इस मन्दिर का शिव मन्दिर क्या कहा जाता है। इसलिए कि मुझे बताया गया है कि कन्हैया अर्थात् श्रीकृष्ण के लड़कपन का एक नाम दामोदर भी है। मालूम होता है कि आठवीं शताब्दी में शैवों और वैष्णवों के बीच साम्प्रदायिक संघर्ष होने पर शैवों के द्वारा यहाँ पर शिव की मूर्ति स्थापित की गयी। इसलिये कि शिव को वे लोग अपना आराध्य देव मानते थे। इन समस्त बातों का अनुमान पुरानी परिस्थितियों के आधार पर होता है और सही जान पड़ता है। यह भी सही मालूम होता है कि शिवजी की मूर्ति के बाद ही उस मन्दिर के नाम में परिवर्तन हुआ और लोग उसे शिवजी का मन्दिर कहने लगे।

कुण्ड के करीब एक छोटा-सा दूसरा मन्दिर है। उस मन्दिर में कन्हैया के भाई बलदेव की मूर्ति स्थापित है। उस मूर्ति के हाथों मे गदा, चक्र और शंख (१) है।

---

(१) यहाँ पर मूल लेखक ने जिस मूर्ति को बलदेव की मूर्ति लिखा है, वह सही नहीं मालूम होता। इसलिये कि उस मूर्ति में गदा, शंख और चक्र का होना सन्देह पैदा

यहाँ के ब्राह्मणों में यह देखकर आश्चर्य होता है कि वे अपने जिन देवताओं की पूजा करते हैं, उनके सम्बन्ध में उनको कुछ भी जानकारी नहीं है। देवताओं के साधारण चिह्नों और उनकी मामूली बातों का ज्ञान तो उनके पुजारियों को होना ही चाहिये।

नगी के दूसरी तरफ उन यात्रियों की समाधि बनी हुई है, जिनकी मृत्यु उनके यहाँ आने पर हो गयी थी। यात्री लोग उनका अपना सौभाग्य मानते हैं। यह भी जाहिर होता है कि सौराष्ट्र के यदुवंशी राजा लोगों की समाधियाँ भी यहाँ पर रही हैं। शिला लेख से इस बात का स्पष्ट समर्थन हो जाता है। विष्णु हिन्दुओं के भगवान का नाम है और कन्हैया में विष्णु की शक्तियों को हिन्दू जाति के लोग स्वीकार करते हैं। ऐसी दशा में कन्हैया को हम यूरप का देवता मानने में जरा भी अस्वाभाविकता नहीं है। इसलिए कि कन्हैया को मनुष्यों जाति का मूल पुरुष माना जाता है और मनुष्य की आत्मा को शान्ति देने की उसमें शक्ति भी है।

यहाँ पर जो शिला-लेख हम मिला, वह कई अर्थों में महत्वपूर्ण है, इसमें उस समय के कितने ही ऐसे राजाओं के नामों का उल्लेख है जिनके राज्य इस देश में रह थे। और जिन्होंने ख्याति भी प्राप्त की थी। एसे राजाओं में राव माण्डलिक और खेंगार के नाम विशेषता रखते हैं, उनके सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की कहानियाँ कही जाती हैं।

इस शिला-लेख में माण्डलिक के नाम का दो बार प्रयोग किया गया है। उसके आरम्भ में ही लिखा है कि पहला माण्डलिक अत्यन्त प्राचीन काल में हुआ था। इस प्रकार के शिला लेखों में प्राय देखा जाता है कि उनमें किसी न किसी प्रसिद्ध पुरानी घटना का उल्लेख होता है। उसके बाद बहुत सी पीढ़ियों को छोड़कर उसके वंश के लोगों की कुछ बातें दी जाती हैं। मालूम होता है कि यह शिला-लेख जयसिंह के द्वारा लिखाया गया था और उसने अपने वंश के प्रसिद्ध योद्धा अभयसिंह के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए यह शिला लेख लगवाया था। यह भी बतलाया जाता है कि अभयसिंह झिगरकोट के लोगों से युद्ध करता हुआ मारा गया था। जिन लोगों से अभयसिंह का युद्ध करना पड़ा था, उनको अवन शिला लेख में लिखा गया है। यह अवन शब्द वास्तव में यवन है और यवन शब्द का प्रयोग हिन्दुओं के ग्रन्थों और उल्लेखों में मुसलमानों के लिए किया गया है। झिगरकोट अथवा जूनागढ़ के लिये इस शब्द का प्रयोग क्यों किया जाता है, इस विषय में कुछ स्पष्ट नहीं है। इसका अस्तित्व तलहटी में होने के कारण कदाचित् वह शब्द सार्थक होता हो।

करता है। गदा, शंख और चक्र से चतुर्भुज विष्णु का अनुमान होता है। जान पड़ता है कि लेखक को लिखने के समय नाम का भ्रम हो गया है। —अनुवादक

इस शिला-लेख के गूढ़ अक्षरों से समय की सूचना मिलती है। इन लेखों से स्पष्ट जाहिर होता है कि यहाँ के ब्राह्मणों में भी मिश्र के पुरोहितों के समान किसी भी गुण अथवा जानकारी को गुप्त रखने का स्वभाव था। वे ऐसा क्यों करते थे, यह तो बहुत स्पष्ट नहीं कहा जा सकता, लेकिन ऐसा होता है कि वे लोग नहीं चाहते थे कि कोई अच्छा गुण दूसरे लोग भी जानें और उसका फायदा उठावें।

शिला-लेख में सम्वत् का कुछ सकेत के रूप में लिखा गया है, ऐसा मालूम होता है—राम तीन हैं, तुरङ्ग यानी सप्ताश्व अर्थात् सूर्य का सात मस्तक वाला अश्व, सागर का अर्थ होता है चारों समुद्रों से जो सम्पूर्ण पृथ्वी को घेरे हुए हैं और मही अर्थात् पृथ्वी एक है।

आगे की ओर लगभग आधा मील चलने पर, नदी को फिर पार करना पड़ता है, वहाँ पर इमली और पीपल के पेड़ों की छाया में घाटी का रमणीक स्थान है, वहीं पर भाव नाथ महादेव का मन्दिर और भव्य का तालाब है। उस तालाब में फिर से स्नान करना पड़ता है। उसके पश्चात् यात्री लोग विश्राम करके तथा पवित्रता प्राप्त करके दर्शन करने के लिए जाते हैं तो मन्दिर का पुजारी उनके माथे पर राख का टीका लगाता है।

आधा मील और आगे चलकर हम दो मुस्लिम महात्माओं की मजार पर पहुँचे, वहाँ पर कुछ वेदी के रूप में एक स्थान बना हुआ है, वह स्थान वस्त्रों से ढका रहता है, उस स्थान पर करीब एक दर्जन मुर्गे फिरा करते हैं। हिन्दू और मुसलमान—दोनों जातियों के लोग इन मजारों के सामने आकर श्रद्धा के साथ सिर झुकाते हैं। इस प्रकार के बहुत से उदाहरण पाये जाते हैं, जिनसे हिन्दुओं की स्वभाविक प्रवृत्ति और भावना का बोध होता है।

हमारे सामने यहाँ पर स्वर्ण पुजारिनी नदी का फिर से दृश्य उपस्थित हुआ। यह रमणीक दृश्य कुछ दूर तक हमारे साथ-साथ चला और उसके बाद घने जङ्गलों में जाकर गायब हो गया। हम आगे चलकर गिरिराज के नीचे दक्षिण पूर्व उस स्थान पर पहुँच गये, जहाँ पर उसका उद्गम है। यहाँ पर रास्ता बहुत तंग हो गया था। उस स्थान पर एक यात्री अकेला ही चल सकता था। उस स्थान पर वृक्षों की डालियाँ और पत्तियाँ इतनी पास हो जाती हैं कि वो बार-बार मुँह पर आकर लगते हैं। इसलिये उन पत्तों और डालियों को हटा हटाकर चलना पड़ता है।

कुछ दूर तक इस प्रकार के मार्ग को पार करने के बाद एक अत्यन्त प्राचीन मुनीश्वर की खड़ाऊँ देखने को मिलती हैं। सभी यात्री बड़े आदर-भाव से उनको प्रणाम करते हैं। यहाँ पर पाँच अन्य मन्दिर हैं जिनका निर्माण बहुत साधारण रूप में हुआ है। उनकी छतें ग्रेनिट के खम्भों पर बनी हुई हैं। इन मन्दिरों को पाण्डवों का मन्दिर कहा जाता है। इन मन्दिरों के पास अन्य दो मन्दिर और हैं, वे दोनों ही क्षत-

विगत हो चुके हैं। कहा जाता है कि उन पाँचों पाण्डवों की पत्नी द्रौपदी के ये मन्दिर हैं।

इस घाटी के सब ओर भरके रास्ते में जो क्रमश चढ़ाई पड़ती गयी है, वह गाइ तीन मील से कम नहीं है, जहाँ पर मुनीश्वर के मकाऊँ मिले थे, वहाँ से वह रास्ता सीधा ऊँचाई की तरफ जाता है। यात्रियों को इस मार्ग में पत्थरों के बड़े-बड़े टीले मिलते हैं। मालूम होता है कि पत्थरों के ये विशाल टीले किसी समय भूकम्पों के कारण पहाड़ी स्थानों से गिरकर यहाँ पर आ गये हैं। इन पत्थरों के टीलों को देखकर कुछ इसी प्रकार का अनुमान और आभास किया जा सकता है। इसलिए कि ये टीले कुछ इस तरह हुए हैं, मानों वे किसी भी समय अपने स्थान से गिरकर नीचे की तरफ लुढ़कते हुए आ सकते हैं।

उस मार्ग का यह स्थान 'भैरों झाप' के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान करीब एक सौ फीट ऊँचा और उससे भी अधिक लम्बा चुनी है। मार्ग का यह स्थान विशाल और अत्यन्त शान्तिपूर्ण है। उसका नाम भैरों झाप निश्चय ही कुछ अर्थ रखता है। ऐसा मालूम होता है कि जो लोग अपने सांसारिक जीवन से ऊब कर निराश हो जाते हैं, वे इस पहाड़ की ऊँची चोटी पर जाकर जीवन की कठिनाइयों से छुटकारा प्राप्त करने के लिये झाँप मारते हैं अर्थात् चोटी से कूदकर आत्महत्या कर लेते हैं। ऐसे समय पर वे भैरों नामक देवता का नाम लेते हैं। इस प्रकार आत्महत्या करने वालों का विश्वास है कि उनको वर्तमान जीवन की यन्त्रणाओं से छुटकारा मिल जाता है और उनको मोक्ष की प्राप्ति होती है। उनका यह भी विश्वास है कि उसके बाद उनका जन्म किसी राजा के यहाँ होता है।

इस प्रकार के आदमियों में—जो आत्मघात करते हैं—अच्छे श्रेणी के लोग नहीं होते बल्कि वही लोग होते हैं, जो अपने जीवन में किसी प्रकार की सफलता नहीं प्राप्त करते और जीवन का सुख तथा सतोष पाने की आशा नहीं रखते। एक आश्चर्य की बात और भी है और वह यह कि ऐसे अयोग्य, अकर्मण्य और निराश व्यक्ति अपने इस प्रकार के अपराधी कार्यों को वे तपस्या के रूप में लेते हैं।

सन् १८१२ ईसवी में मेरे दोस्त मिस्टर विलियम्स यहीं पर थे। उस समय करीब बारह हजार यात्रियों में केवल एक यात्री ने झाँप मारी थी। बाद में पता लगाने से मालूम हुआ कि वह अत्यन्त गरीब और कठिनाइयों का मारा था। अपनी दरिद्रता से ऊबकर उसने झाँप मारने के सिद्धान्त पर विश्वास किया था। इस प्रकार के कारनामों के कारण उसका नाम भैरों झाँप पड़ा।

यहाँ पर एक दूसरा पत्थरों का बड़ा टीला है। उसका नाम हाथी है। यह विशाल टीला पहाड़ की ऊँचाई से खिसककर एक चट्टान के ऊपर आकर टिका हुआ है। उसकी ऊँचाई सीधी पचास सौ फीट है। इसके कारण यात्रियों के चलने में किसी

प्रकार की रुकावट नही आयी। यहां तक जितना भी पहाडी माग है, जङ्गलो से ढका हुआ है। इसके बाद सभी प्रकार के वृक्षों का लाप हो गया है और वहां पर काली पथरीली चट्टानो के सिवा कुछ दिखायी नही देता। इन चट्टानो पर चलने का कार्य साधारण नही है, बल्कि बडी सावधानी स चलकर खगार के महलो तक पहुँचने की नौबत आती है।

यह बात अवश्य है कि धनिको ने यात्रियो के सुभीते के लिये बहुत-कुछ काम किया है और चट्टानो के पहाडी रास्ते को बहुत-कुछ सुविधाजनक बना दिया है। चट्टानो को काटकर बहुत कम ऊची सीढ़ियाँ बनी दी गयी हैं। इनके द्वारा यात्रियो को चढ़ने और उतरने मे बहुत सुभीता हो गया है। यह माग बहुत चक्करदार है और मोड़ों के साथ आगे की तरफ बढ़ा है। यहाँ की चट्टानें चलने के नाम पर बडी सकट पूर्ण थी। यहाँ पर उन धनवानो को धन्यवाद देना चाहिए, जिन्होंने अपनी सम्पत्ति के द्वारा इन मार्गों की कठिनाई को किसी हद तक दूर किया है।

कल शाम की बात है। मेरे पैर मे अचानक चोट आ गयी, जिससे मैं लगडा हो गया और चलने में असमर्थ हो गया। ऐसी दशा में मुझे एक पहाडी पालकी मे बैठने के लिये मजबूर होना पडा। इस प्रकार की पालकियाँ, जो यात्रियों को पहाड़ पर ले जाने का काम करती हैं, उनका वर्णन मैं आबू पहाड के परिच्छेद में कर चुका हूँ।

यहाँ पर चट्टानों को काटकर जो सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं, वे कुछ अर्थों मे मेरे अनुकूल साबित नहीं हुई। किसी प्रकार मैंने अपने माग को पार करने की चेष्टा की। ग्यारह बजे के करीब मैं उस दरवाजे के पास पहुँचा जो सौराष्ट्र के प्राचीन राजाओ के महलो में जाने के लिये था। उसकी काली काली दीवारें देखने में कुछ अजीब सी लगती है। मैंने वहाँ के विशाल प्रासाद को देखना और अनुभव करना आरम्भ किया। सासारिक जीवन से दूर पहाडो के एकान्त स्थान म इसके निर्माण का क्या अर्थ होता है, मैं यह बार बार सोचने लगा।

यहाँ की चट्टानों पर बने हुए खगार के प्रासाद म प्रहरी के लिये एक स्थान बना हुआ है। उसकी छत दो महराबो पर बनी हुई है। मैंने उसी म बैठकर भोजन किया। इस समय मैं जूनागढ़ से करीब तीन हजार फीट की ऊचाई पर था और जूनागढ़ के टूटे फूटे मकानों की ओर देख रहा था। ऊपर की तरफ पहाड़ की चोटी पर छै सौ फीट की ऊचाई पर देवमाता अदिति का मन्दिर है। उसके ऊपर पर्वत का शिखर दूर तक फैला हुआ है। मैं बडी सावधानी के साथ उसकी चोटियो की तरफ देखता रहा। मैं कुछ देर तक सोचता रहा की यहाँ तक पहुचने मे यात्रियो का कितने सकटो का सामना करना पडता है। मेरे मुह स अकस्मात् निकल गया—सचमुच इन पहाडो की यात्रा करना बडे साहस का कार्य है।

अठारहवाँ प्रकरण

पहाड़ों के कुछ अनोखे दृश्य

आराधना के स्थान—पीड़ा और प्रसन्नता—अन्वेषण के कार्य—भारत में आने की उत्सुकता—मेरे भारतीय मित्र और पुरुषोत्तम—भारत का अटूट सम्बन्ध—गोरख नाथ मंदिर का शिखर—पहाड़ों के ऊपर का दृश्य—जन्म और विनाश की दुविधा—पुरानी कथायें—जंगल का प्रसिद्ध राक्षस—दीर्घजीवी साधु—कालिका देवी के मंदिर में जाने का खतरा—पर्वत पर अघोरियों का शिखर—काठियावाड़ के अद्भुत मनुष्य—नरभक्षी अघोरी।

प्राचीन काल में सदा यह परम्परा रही है कि लोग जीवन की कठिनाइयों से बचने के लिये भगवान के प्रति आकृष्ट होते थे और भजन तथा आराधना करने के लिये एकान्त स्थान की खोज में रहते थे। ऐसे लोगों ने अपने इस पवित्र कार्य के लिये प्राय जंगलों और पहाड़ों को अधिक महत्व दिया था। कुछ इसी आधार पर पहाड़ों की यात्राओं का महत्व बढ़ा था। लोगों का यह भी विश्वास था कि इन निर्जन स्थानों मे भगवान की आराधना करने वाले बड़े बड़े तपस्वी, साधु-सन्तों के दर्शन होते हैं। और उनके दर्शनों से मनुष्य के पापों का नाश होता है।

मैं पहाड़ के जिस स्थान पर बैठा हुआ हूँ, वहाँ पर किसी की आवाज सुनायी नहीं पड़ती। अधिक ऊँचाई पर उड़ने वाले कुछ पक्षी दिखायी देते हैं और बिना किसी रुकावट के चलने वाली हवा के साथ बार बार टकराना पड़ता है। यहाँ पर पहुँचकर जब मैं नीचे-ऊपर दाहिने बायें और दूसरी दिशाओं की तरफ देखता हूँ तो न जाने क्या-क्या मैं सोचने लगता हूँ। पहाड़ों का यह जीवन संसार जीवन से बिल्कुल भिन्न है। यहाँ पर न तो किसी प्रकार की पीड़ा है और न किसी प्रकार की प्रसन्नता है। तब यह क्या है और हमारे जीवन मे इसका क्या महत्व है, इस पर मैं बार बार विचार करने लगा। किसी पुरातत्ववेत्ता के लिये इन स्थानों की यात्रा बहुत कुछ अर्थ रखती है। अन्वेषण करना ही उनके जीवन का कार्य होता है। फिर वह चाहे सुखमय हो अथवा दुखमय। परन्तु उनको तो वही अच्छा लगता है। लेकिन जो लोग अपने सांसारिक जीवन से ऊब कर पहाड़ों के इन एकान्त स्थानों मे आना पसन्द करते हैं, वे कहाँ तक सही हैं, इसका निर्णय करना साधारण कार्य नहीं है। मैं इसी उलझन मे कुछ समय तक पड़ा रहा।

अपना देश छोड़े हुए मुझको बाईस वर्ष हो चुके हैं। और जिस मार्ग से चलकर मैं मातृभूमि से इतनी दूर पहुँचा था। अब एक बार फिर उसी मार्ग पर चलना चाहता हूँ। पहले इस तरफ आने का कार्य था, अब इस बार यहाँ से जाने का कार्य है। उन दिनों में मैं इस तरफ आया था और इस बार मैं उस तरफ लौटकर जाऊँगा। बाईस वर्ष तक इस देश के विभिन्न स्थानों में रहकर और अभिलाषा के अनुसार भीषण संकटों का सामना करते हुए जो यात्रायें की हैं, उनकी स्मृतियों को लेकर मुझे अपने उस देश को वापस जाना है, जिसे मैंने बाईस वर्ष पहले छोड़ा था।

इस समय मेरे विचारों में जो बातें आ रही थीं, उनको मैं लिखना नहीं चाहता, कहाँ तक लिखूँगा। फिर भी, न चाहने पर भी मेरी कलम से कुछ लिखा जा रहा है। मुझे जीवन की व घड़ियाँ स्पष्ट याद आ रही हैं, जब मैंने अपने देश में घर वालों से, सगे-सम्बन्धियों से और मित्रों से इस दूरवर्ती भारतवर्ष में आने के लिये खुशी-खुशी बिदाई ली थी। मेरे सामने इस देश में आने के लिये कुछ अरमान थे, अनेक प्रकार की मधुर अभिलाषायें थीं। मेरी वे अभिलाषायें वहाँ से लेकर यहाँ आयीं और अन्त में मैंने अपने जीवन का बहुत बड़ा भाग उन्हीं अभिलाषाओं को पूरा करने में बिताया, इस बात की मुझे खुशी है।

इस देश में आने की उत्सुकता मेरे हृदय में कम न थी, जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है। गंगा, ब्रह्मपुत्र और सिंधु नदी के मुहानों तक मुझे अगणित मनुष्यों, उनके कार्यों और व्यवसायों तथा नगरों के अनुभव को प्राप्त करने का अवसर मिला। मैंने दिल खोलकर इस देश में यात्रायें कीं, उन यात्राओं में मैंने न जाने कितने अपने मित्र और शुभचिंतक बनाये। जिन्होंने मेरे साथ स्नेह प्रकट किया और मेरे बन गये, उनमें से बहुतेरे आज इस संसार में नहीं हैं, उनकी मृत्यु हो गयी है। अपनी यात्रा में मुझे सुविधाओं—और असुविधाओं—सभी प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। अच्छाइयाँ और बुराइयाँ—दोनों ही मेरे सामने आयीं। बहुत सी ऐसी घटनायें घटीं, जिनके स्मरण मुझे कभी नहीं भूलेंगे और ऐसी परिस्थितियाँ भी मेरे सामने आयीं, जिनके लिये मुझे अफसोस है।

इस देश में रहकर मैंने सभी प्रकार की परिस्थितियों को अनुभव किया और जब मैं अपने जाने की तैयारी कर रहा हूँ, तब भी मैं इस देश के साथ ऐसा बँधा हुआ हूँ कि उनसे छूटना कठिन मालूम पड़ता है। एक ओर मेरे मन में अपने देश लौटकर जाने की तीव्र उत्कण्ठा है और दूसरी ओर यहाँ के लोगों के साथ मेरा ऐसा कुछ अनुराग हो गया है कि उसे छोड़ने के लिये दिल तैयार नहीं होता। मेरे मन की कुछ ऐसी अवस्था है कि उसे किसी दूसरे को बता सकना बहुत कठिन जान पड़ता है। मेरी इन परिस्थितियों को सही रूप में वही अनुभव कर सकते हैं जिनको इन परिस्थितियों का सामना कभी करना पड़ा है।

सूर्य के निकलते ही अपनी सवारी में बैठकर मैंने अपनी यात्रा फिर शुरू कर दी चढ़ाई की ओर जाते हुए जब मैं अम्बा देवी के मन्दिर में पहुँचा, उस समय पहाड़ के ऊपरी भाग में सूर्य का प्रकाश फैल चुका था। यहाँ पर रुककर मैं केवल पहाड़ की घाटी देखना चाहता था। इसलिये उसके पश्चात् मैं गोरखनाथ के शिखर की तरफ चला। इस समय हम लोग काफी ऊंचाई पर थे लेकिन हवा मालूम नहीं पड़ती थी। सूरज बादलों में ढका हुआ था। सूर्य को निकले हुए जब दो घंटे हो चुके थे, उस समय भी थर्मामीटर अपने आरम्भ की संख्या से अर्थात् ६६ से केवल एक डिगरी आगे बढ़ा था।

गोरखनाथ के शिखर पर पहुँचने के लिये मुझे बहुत नीचे की तरफ आना पड़ा। बीच का कुछ ऐसा भाग था, जिसमें ऊपर की तरफ जाना पड़ा। यहाँ पर रास्ता बिल्कुल ढालू हो गया था। इसलिये सवारी से उतर कर मुझे पैदल चलना पड़ा। अनेक प्रकार की कठिनाइयों और असुविधाओं के बावजूद मेरे मन में उत्साह में कोई कमी नहीं आयी थी। इसलिये जिस स्थान की चढ़ाई बिल्कुल खड़ी ऊपर को गयी थी, मैं किसी प्रकार उस पर भी चढ़ गया।

शिखर पर पहुँचने के बाद मुझे एक चबूतरा मिला, उसका व्यास दस फीट से ज्यादा नहीं था। उस चबूतरे के मध्य भाग में पूरे पत्थर का छोटा सा मन्दिर बना हुआ था। यही गोरखनाथ का मन्दिर था। यह शिखर नल्य के आकार प्रकार का था। वह अपने मूल भाग से दो सौ फीट और अम्बा देवी के शिखर से डेढ़ सौ फीट अधिक ऊंचा है।

गिरिराज के सबसे ऊँचे शिखर पर पहुँचने के पश्चात् मुझे शान्ति मिली। एक छोटे से मन्दिर में स्थापित सिद्ध पादुकाओं के निकट बैठकर मैं शिखरों की तरफ देखने लगा। मैंने उन शिखरों की तरफ भी दृष्टि डाली, जिन पर अपने पैर की चोट के कारण मैं पहुँचने में असमर्थ था। मौसिम ठीक न था, इसलिये दूर की चीजें साफ नजर नहीं आती थीं, फिर भी दृश्य अत्यन्त मोहक था, अपनी आशाओं के प्रतिकूल मैं दृश्यक्षेत्र की सीमा नहीं देख सका। उस समय समुद्र की जलधारा पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था और उसके किनारे पर बसे हुए नगर स्पष्ट दिखायी नहीं देते थे, फिर भी चालीस मील की दूरी पर पट्टण से पार बन्दर तक बहुत कुछ स्पष्ट हो रहा था। पच्चीस मील के अन्तर के स्थान जैसे दुरगी, जैतपुर और कुछ दूसरे नगर साफ दिखायी देते थे।

गिरिनार के पाँच मशहूर शिखर हैं। उनमें चार नीचे से भी दिखायी देते हैं। इनमें विशेषता यह है कि पूर्व और पश्चिम दोनों तरफ से देखने पर यह एक शृङ्ग के रूप में दिखायी देता है। गोरखनाथ शिखर के ऊपर से देखने पर प्रत्येक शिखर सुन्दर और आकर्षक मालूम होता है। कुछ तो ऐसे हैं, जो पच्चीस मील के फासिले से भी

देखे जाते हैं। उससे अधिक फासिले से उनका अस्तित्व लोप होता हुआ जान पडता है।

गोरखनाथ से देखने पर जो स्थिति पैदा होती है, वह बहुत कुछ इस प्रकार है:

माता जी का शिखर	पश्चिम मे
अघोर (औघड) शिखर	उत्तर ७०° पू०
गुरुधातु शिखर	उत्तर ७०° पू०
कालिका माता शिखर	पूर्व मे
राई माता शिखर	दक्षिण ७१° पू०
दूसरे स्थान	
हिडिम्बा भूला	दक्षिण ७०° पू०
जमालशाह का मंदिर	दक्षिण ३८ पू०

अम्बा देवी और कालिका देवी—दोनो जल और विनाश की देवियाँ मानी जाती हैं। इन दोनों देवियो के मंदिरो की दूरी दो मील की है। कालिका देवी के मन्दिर की चोटी अम्बा देवी के धरातल से ऊची नही है। परन्तु मध्य भाग के शिखर दक्षिण के मुकाबिले अधिक बाहर की तरफ हैं। उन्हें भली भाँति समझा जा सकता है। कालिका देवी के मंदिर मे वहाँ की घाटी का रास्ता सीधा और नजदीक का है।

गोरखनाथ के शिखर के ऊपर से इन पहाडो को भली भाँति देखा और समझा जा सकता है। आस-पास की पहाडियो के मध्य मे यह मुकुट के समान मालूम होता है और अपने इलाके मे वह सभी का सरदार बना हुआ है। ये पहाड और पहाडियाँ भयानक जगलो से घिरी हुई हैं, उनकी चट्टानो की दरारो से निकलकर कितने ही वहा पर झरने प्रवाहित होते हैं। उन झरनो के अपने अलग अलग नाम हैं—दाघ बन, हनुमान भर की भाँति उनके नाम भी लोग लेते हैं।

हमने स्पष्ट रूप से यहाँ पर समझा कि वहाँ के जगलों, झरनो, पहाडो, उनके शिखरों और पहाडी स्थानो के नाम कुछ ऐसे तरीके पर रखे गये हैं, जिनसे सर्वसाधारण मे सहज ही भय उत्पन्न होता है। उनके सम्बन्ध में जो कथायें कही जाती हैं, वे और भी अधिक रोमांचकारी हैं। दक्षिण-पश्चिम की तरफ सबसे ऊंचे पहाड के शिखर पर जमालशाह नाम के एक मुस्लिम सन्त का स्थान बना हुआ है। लोगों का विश्वास है कि उसके दर्शनो से निजात हासिल होती है। उसकी देख रेख के लिये वहाँ पर एक बूढ़ा मुसलमान नौकर था, मैंने नम्रता के साथ उससे प्रश्न किया:

यहाँ से हम सबको क्या हासिल होता है?

मेरे प्रश्न को सुनकर उस बूढे मुसलमान ने बडी सावधानी और संजीदगी के साथ जवाब दिया यहाँ आने वालों को इमाम साहब की दुआ और वे सभी चीजें हासिल होती हैं जिससे हम सबको और हमारे बाल बच्चों को जिन्दगी तथा तन्दुरुस्ती मिलती है।

यहाँ पर एक हिडिम्ब की लड़की का एक झूला मशहूर है। वह झूला यहाँ के एक जङ्गल का प्रमुख हिस्सा है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में पाण्डवों के समय हिडिम्ब इस जङ्गल का राजा था। यह भी कहा जाता है कि यहाँ पर आने वालों में बहुतों को अब भी अँगूठियाँ देखने को मिलती हैं। इस प्रकार की बातों का रहस्य क्या है यह समझ में नहीं आता। उस झूले तक जाने का जो रास्ता है, वह बहुत तंग है। और वह मार्ग पहाड़ के नीचे, किनारे किनारे जाता है। हिडिम्ब उस जङ्गल का एक प्रसिद्ध राक्षस था।

जो कथा उस झूले के सम्बन्ध में सुनने को मिलती है, उसमें कहा जाता है कि उस राक्षस ने अपनी लड़की का ब्याह करना उस वीर पुरुष के साथ करने का निश्चय किया था, जो अपनी शक्ति का प्रदर्शन सबसे अधिक कर सके। कहा जाता है कि इस प्रकार के प्रदर्शन में भीम ही अकेला समर्थ हो सका था।

एक घाटी का नाम मुकुन्द्रा है। उसके सम्बन्ध में भी इसी प्रकार की एक कथा प्रचलित है। एक दूसरे स्थान के बारे में कहा जाता है कि वहाँ पर एक प्रसिद्ध जलाशय है और उस जलाशय का नाम है कमलदहली अथवा 'कमल कुण्ड।' वहाँ पर एक साधु रहा करता था। उसकी अवस्था बहुत अधिक थी। कहा जाता है कि उसकी अवस्था एक सौ बीस वर्ष की हो चुकी थी, सब लोग उसके दर्शनों के लिये वहाँ पर आया करते थे। वह साधु अपने जीवन की पवित्रता और अनेक प्रकार की उपयोगिता के लिये प्रसिद्ध था। उस साधु को अपने भक्तों से जो मिलता था, उसके द्वारा उसने गरीब यात्रियों के लिये सदाव्रत खोल रखा था। मेरा इरादा था कि ऐसे साधु के यहाँ जाकर उसके दर्शन किये जाँय। लेकिन शारीरिक निर्बलता के कारण मुझे निराश हो जाना पड़ा।

कालिका के मन्दिर में न पहुँच सकने के कारण मुझे बहुत खेद हुआ। इसलिये कि वहाँ की मैंने बहुत-सी रहस्यमय कथायें सुन रखी थीं। अतएव मेरी अभिलाषा वहाँ पर जाने की थी। इसी आधार पर मैंने गायकवाड़ के प्रतिनिधि सम्पत जोशी से कहा था कि चाहे जो मुसीबत मुझे उठानी पड़े मैं उसका सामना करते हुए वहाँ जाऊँगा जरूर। लेकिन जब मैं पैर की चोट के कारण लंगड़ा हो गया और चलने में अधिक कष्ट अनुभव करने लगा तो उस जोशी ने भी मुझे उसके लिये परामर्श नहीं दिया। मेरे साथ कोई साधन भी नहीं था। मेरे साथ के सभी साथियों ने वहाँ मेरे जाने का विरोध किया। वर्षा की मौसम में वहाँ जाने का रास्ता बहुत भयानक था। इसलिये कोई भी यात्री उस तरफ जाने का साहस नहीं कर सकता। वहाँ की प्रचलित कथाओं में सुनने को मिलता था कि वहाँ जाना किसी के लिये भी अच्छा नहीं है। अगर किसी ने भारी वर्षा में जाने का भी विचार किया तो उसका बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा। इसके सम्बन्ध में लोगों का विश्वास है कि जब कभी यात्री वहाँ पर जाते थे तो मार्ग

से ही एक आदमी उन यात्रियों के साथ हो जाता था। वह आदमी के रूप में देवताओं का शत्रु था। यात्रा में आगे जाकर वह अपना बनावटी भेष बदल कर असली भेष में आ जाता। वह असल में नरभक्षी अघोरी था, वह अघोरी अघोरेश्वरी देवी का पुजारी था और मनुष्यों को मारकर अपनी आराध्य देवी को भेंट करने के बाद स्वयं आहार करता था।

कालिका देवी के दर्शनों के लिये जाने वालों के सम्बन्ध में इस प्रकार की बहुत-सी कथायें प्रचलित थीं, उनको मैंने पहले-से सुन रखा था। इसीलिये मेरी तीव्र अभिलाषा वहाँ पर जाने के लिये थी। मैं जानता हूँ कि जिस प्रकार की खोज मेरे जीवन का उद्देश्य है, उसमें ये रहस्यपूर्ण बात अधिक महत्व रखती हैं। मैं उनका भेद समझने के लिये बहुत उत्सुक था। लेकिन मेरी लालसा इसके सम्बन्ध में अपूर्ण रह गयी।

मैंने यहां के अघोरियों के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुन रखा था, लोग उनको जो घटनायें सुनाते हैं, वे बड़ी दिलचस्प हैं इन अघोरियों की एक जमात होती है। उनके उद्देश्य क्या होते हैं, सर्वसाधारण को उनकी कुछ जानकारी नहीं होती, अघोरी लोग साधारण आदमियों में पहुँचकर अपने कुछ चमत्कार दिखाते हैं, उनको देखकर आम लोग गमगीन हो जाते हैं। यहां पर अघोरी लोगों की एक अच्छी संख्या है और वे बहुत पहले से इसी क्षेत्र में रहते आये हैं। वे पहले भी बड़े हिंसक क रूर में थे और वे कुछ उसी प्रकार के आज भी हैं। वे आरम्भ से खुले स्थानों में रहने के बजाय पहाड़ों, गुफाओं और घने जंगलों में सदा से रहने के अभ्यासी रहे हैं। अपने रहने के स्थानों में प्रकाश के बजाय अन्धकार अधिक पसन्द करते हैं। इनके सम्बन्ध में मैं अन्यत्र लिख चुका हूँ। इसलिये यहां पर मैं कुछ अन्य घटनाओं कथाओं और रहस्यों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करूंगा।

इस प्रसिद्ध पर्वत पर एक अघोर शिखर भी है। उसका नाम नरभक्षी अघोरियों के आधार पर ही रखा गया है ऐसा मालूम होता है। कदाचित् कोई अघोरी उस स्थान पर स्थायी रूप से रहने लगा था। इसीलिये उस स्थान का नाम अघोरी शिखर पड़ गया।

मनुष्य का आहार करने वाले इन अघोरियों के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की बातें सुनने को मिलती हैं। कहा जाता है कि इनमें से किसी एक का नाम गाजी था, वह किसी पहाड़ी गुफा में रहा करता था और भूखा होने पर जब पहाड़ों में कुछ न मिलता तो वह पहाड़ से उतर कर नीचे किसी मैदान में आ जाता। एक बार उस गाजी को देखा गया कि उसके सामने एक बकरा था और शराब से भरा हुआ मिट्टी का एक बरतन था। उसने उस बकरे को फाड़ डाला और उसका वह खून पीकर शराब पीने में लग गया। इसके पश्चात् वह लेट कर सो गया। जब वह जागा तो उस स्थान से वह जंगल की तरफ चला गया।

में इसके बाँसुरी रखने का क्या अभिप्राय हो सकता है।

उसकी गम्भीर खामोशी के कारण मैं इस विषय में उससे कुछ जान न सका। मैं कुछ सोच ही रहा था कि वह एकाएक अपने स्थान पर उठकर खड़ा हो गया और अलख का नारा लगाता हुआ, उस स्थान से वह चल दिया। उस समय भी मैं उसकी तरफ देख रहा था। वह अपने स्थान से शिखर के उत्तर तरफ कालिका देवी के मन्दिर की तरफ आगे बढ़ा। उसको किसी से बातचीत करते हुए मैंने नहीं देखा। वह कौन था, इसके जानने का भी मुझे अवसर नहीं मिला। उसको देखने के लिये जो लोग एकत्रित हो गये थे, मुझे उनकी बातें सुनने का मौका मिला। लोगों का कहना था कि यह कोई साधारण आदमी नहीं है।

मैं उस आदमी के सम्बन्ध में अपनी कोई धारणा निश्चित नहीं कर सका। वह कौन था और उसके जीवन का रहस्य क्या था। इसके समझने का भी मुझे मौका नहीं मिला। मैं नहीं कह सकता था कि वह नरभक्षी था या नहीं। मैंने साफ साफ देखा कि वह अपने स्थान से उठकर गोरखनाथ मन्दिर से सीधा अघोरी शिखर की तरफ चला गया था। लोगों का कहना है कि वहाँ पर और भी ऐसे कुछ लोग रहते हैं।

मैं अपने स्थान पर बैठा हुआ इस प्रकार की अनोखी और असाधारण बातों पर विचार करता रहा। लोग इस प्रकार के किसी आदमी में असाधारण शक्ति का आभास कैसे अनुभव करने लगते हैं। शायद इसका अर्थ यही होता है कि जिन बातों को लोग नहीं समझते, उनको वे असाधारण मान लेते हैं। मैं उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक नहीं कह सकता। कह सकने का मुझे कुछ आधार नहीं मिला। लेकिन यह तो कहा ही जा सकता है कि वह आदमी मनुष्य होकर भी प्रत्यक्ष रूप से मनुष्य नहीं है। यदि कोई भी अमानुषिक कार्य और व्यवहार असाधारण जीवन में माना जा सकता है तो इस प्रकार के लोगों के सम्बन्ध में जन साधारण की धारणा भी सही हो सकती है।

मैं जिस स्थान पर बैठा हुआ था, वह पृथ्वी के धरातल से तीन चार हजार फीट की ऊँचाई पर था और वह पर्वत का एक शिखर था। मनुष्य के रूप में जिस अघोरी को मैंने देखा, उसको मैं प्रकृति और सभ्यता के निकृष्ट पूर्ण रूप से पतित मानता हूँ। कदाचित प्राचीनकाल में पहले कभी ऐसा मनुष्य रहा होगा। लेकिन आज का मनुष्य ऐसा नहीं है और न यह मनुष्य का जीवन है।

लगातार धूप तेज हो रही थी और मुझे बार बार इस बात की याद आती थी कि अभी मुझे और भी अनेक चीजें देखनी हैं। इतना समझने के बाद भी मेरे मनोभावों पर उस अघोरी के जीवन का जो प्रभाव पड़ा, वह मन से हटता न था। उसके दृश्य को देखकर मैं रोमाञ्च हो रहा था। मैं उसके दृश्य को भुलाना चाहता था, लेकिन भूलता न था। मैं बार-बार सोचने लगता था कि यह भी कोई जीवन है।

ऐसे व्यक्तियों का क्या उद्देश्य हो सकता है और क्या सुख हो सकता है ? साधारण लोगों पर ऐसे आदमियों का क्या प्रभाव पड़ता है, मैं नहीं जानता। लेकिन मैं तो बहुत प्रभावित हुआ हूँ। इसलिये नहीं कि यह कोई अद्‌भुत और असाधारण व्यक्ति है, बल्कि इसलिए कि मनुष्य के रूप में जन्म लेकर, उसने अपने आपको राक्षस और जंगली जानवर बना डाला है। उसके हाथ-पैर, आकृति और दूसरे सभी अंग उसके मनुष्य होने का प्रमाण देते हैं। लेकिन उसके कार्य और व्यवहार जंगली जानवरों के से हैं। मैं उस अघोरी से कुछ स्पष्ट बातें पूछने की कोशिश करता। लेकिन एकत्रित लोगों के कारण इसके लिए मुझे अवसर नहीं मिला। इसलिए कि आमतौर पर लोग उसको एक अलौकिक तथा असाधारण व्यक्ति मान लेते हैं। मेरा ख्याल है कि लोगों की इस प्रकार की धारणा से इन अघोरी लोगों को प्रोत्साहन मिलता है। विशेषकर उस अवस्था में, जब लोग उसको आराध्य मान लेते हैं और सब प्रकार उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। ऐसी दशा में लोगों की यह धारणा मेरे लिए एक भयानक बाधा थी। इस प्रकार की बहुत सी बातों को सोचने के बाद मैंने अपने आपको बदलने की चेष्टा की।

मैं अम्बा देवी के मंदिर में पहुँच गया। मण्डप के नीचे बेदी पर देवी के दर्शन करके मैं पश्चिम की तरफ आ गया। वहाँ पर एक विशाल काला पत्थर था। मैं उसी पर बैठ गया और खंगार के महलों के आस पास बने हुए मंदिरों को देखने लगा। जैनियों ने अपनी सम्पत्ति से इन मंदिरों का निर्माण किया है और इन मंदिरों ने जैन सम्प्रदाय के गौरव की वृद्धि की है। ये समस्त मंदिर पहाड़ के पश्चिम तरफ बने हुए हैं। उनके अन्त में पहाड़ी के समीप एक हजार फीट ऊँची दीवार खड़ी है। वह देखने में काले पत्थरों की एक ऊँची चट्टान-सी मालूम पड़ती है। दक्षिण और महलों की सुरक्षा के लिए मजबूत ऊँची दीवारें हैं। यहाँ का दुर्ग महलों के बिल्कुल निकट है। यह साफ जाहिर है कि यदि खाने पीने की व्यवस्था पूरे तौर पर हो और पीने के जल का अभाव न हो तो गोरखनाथ के द्वारा सुरक्षित इस दुर्ग पर कोई शत्रु अधिकार नहीं कर सकता।

यहाँ पर जो मंदिर बने हुए हैं, मैं सभी के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक प्रकाश डालना चाहता हूँ, महामाया के शिखर से उतरते हुए रास्ते में ऊँचे स्थानों पर खम्भों पर बनी हुई छोटी बड़ी विभिन्न प्रकार की छतरियाँ मिलती हैं। उनको देखकर एक अद्‌भुत दृश्य की शोभा का आभास होता है। बेला आदि अनेक प्रकार के फूलों को तोड़ती हुई स्त्रियाँ भी दिखायी देती हैं। ये स्त्रियाँ यहाँ से फूल तोड़कर ले जाती हैं और उनसे माला तैयार करती हैं, वही माला भक्त यात्री लोग खरीदकर गिरनार के देवताओं पर चढ़ाते हैं।

प्रवेश द्वार के निकट नेमिनाथ का पहला मंदिर है। वह दिगम्बरों का बनवाया हुआ है। उस मंदिर में चौबीस जिनेश्वर आराधना किया करते हैं। जिनको इनके धर्म के विषय में सही जानकारी नहीं है, उनको समझने के लिये मैं यहाँ पर लिख देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि जैन धर्म दो भागों में विभाजित है। दिगम्बर और श्वेताम्बर—दोनों उसके विभाग हैं। दिगम्बर लोग अपने समस्त वस्त्रों को उतार कर बिल्कुल नग्न रहते हैं और दिक् अर्थात् दिशाओं तथा आकाश को ही अपना वस्त्र मानते हैं। श्वेताम्बर वे लोग हैं, जो केवल श्वेत वस्त्र धारण करते हैं अर्थात् वे श्वेत वस्त्र को ही पवित्र मानते हैं और उसी को धारण करते हैं।

इस प्रकार जैन धर्म दिगम्बर सम्प्रदाय और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में विभाजित हो जाता है। दिगम्बर सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा सिद्धसेन दवकाचार्य (१) (दिवाकर) ने की थी। उनका जन्मकाल सम्वत् ४००, सन् ३४४ ईसवी माना जाता है। उस मत के अनुसार, उसके गुरु बिना वस्त्र के रहते हैं। जाड़े के दिनों में शीत से बचने के लिये रजाई अथवा लिहाफ अपने ऊपर डाल लेते हैं। लेकिन अब यहाँ गिरिनार में बहुत थोड़े लोग ऐसे रह गये हैं, जिनको इस प्रकार की प्रतिष्ठा मिली हो। (२)

ग्वालियर की गुफाओं में जो मूर्तियाँ पायी जाती हैं और जिनमें से कुछ तो पचास पचास फीट तक ऊँची हैं, वे इसी प्रकार की बनी हुई हैं। भारतवर्ष के अन्य स्थानों में भी उस तरह की मूर्तियाँ मौजूद हैं। वे सभी इसी दिगम्बर मत से सम्बन्ध रखती हैं। इसके वर्तमान गुरु का मुख्य निवास स्थान सूरत में है। इनका नाम विद्या और योग्यता की बहुत प्रशंसा की जाती है। उनके पास रहने वाले शिष्यों की संख्या तो अधिक नहीं है। लेकिन भारतवर्ष के अन्य स्थानों में उनकी संख्या अधिक पायी जाती है। इस मत के मानने वाले अथवा अनुयायी व्यवसायी लोग हैं। उनमें भी विशेषकर हुम्बड़ लोग हैं, वे चौरासी कुलों में प्रसिद्ध हैं। इस मत के अनुयायियों का कहना है कि हम लोगों की संख्या सब को मिला कर चालीस हजार है। इनमें अधिकांश लोग जयपुर में रहते हैं। वहाँ पर इस मत से सम्बन्धित मंदिरों की संख्या अधिक पायी जाती है। परन्तु अब यह सम्प्रदाय भी 'काष्ठासङ्घी' और 'मुर मयूर

---

(१) सिद्ध सेन दिवाकर जैन धर्म के आदि आचार्य थे और दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में माने जाते हैं। किसी भी जैन धर्मावलम्बी के विश्वास में कोई अन्तर नहीं आता।

(२) मैंने एक ऐसे व्यक्ति को देखा है, जिसके पास कुछ भी नहीं था। लेकिन उसको ढालपुर के न्यायालय में सम्मानपूर्ण स्थान देकर उसकी श्रेष्ठता स्वीकार की गयी थी।

मट्ठो नामक दो मार्गों में बट गया है। (१) दोनों शाखाओं का नामकरण अलग-अलग आधार पर हुआ है। काष्ठा सङ्घो काष्ठ से सम्बन्ध रखता है (२) और दूसरी शाखा का नाम मोर के पंख लेकर चलने के कारण पड़ा है। इस मत के अनुयायी नेमिनाथ के बिल्लौरी अथवा हीरा आदि के नेत्र नहीं लगाते। अपने मत के अनुसार, ये लोग स्त्रियों के निर्माण में विश्वास नहीं करते। यद्यपि स्त्रियाँ उस मत के नग्न श्री पूज्य और गुरु की आराधना बड़ी भक्ति के साथ करती हैं। लेकिन श्री पूज्य स्त्रियों की आराधना को विक्षुब्ध रूप में ही स्वीकार करते हैं। श्री पूज्य उस शाखा के सर्वेसर्वा हैं। उनकी विशेषता में एक बात और है। कहा जाता है कि वे अपने हाथ से भोजन नहीं करते। अपने किसी सेवक अथवा शिष्य के द्वारा वे भोजन करते हैं। इस मन्दिर में और कोई उल्लेखनीय बात नहीं पायी जाती।

अब आगे चलने पर मन्दिर मिलते हैं। कहा जाता है कि उनका निर्माण और सुधार का कार्य तेजपाल और बसन्तपाल नामक दोनों भाइयों ने कराया था। इन दोनों भाइयों की अपरिमित सम्पत्ति आबू के मन्दिरों में खर्च की गयी थी। सम्वत् १२०४, सन् ११४८ ईसवी के एक शिला लेख से पता चलता है कि ये मन्दिर आबू के मन्दिरों से लगभग पचास वर्ष पहले के हैं। लेकिन इनका विस्तार अधिक माना जाता है।

इन तीनों मन्दिरों का निर्माण एक ऊँचे चबूतरे पर किया गया है। उनमें पत्थरों की गढ़ाई अधिक है। बीच के मन्दिर में उन्नीसवें जैन-तीर्थङ्कर मल्लिनाथ की मूर्ति देखने को मिलती है। दाहिनी तरफ का मन्दिर सुमेरु और बाईं ओर का समेत शिखर कहलाता है। इन अर्हतवादियों के पञ्च तीर्थों अथवा पवित्र शिखरों में से दो अधिक प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार के तथ्य के सम्बन्ध में न केवल जनश्रुति है, बल्कि उनके

---

(१) जैनियों के ये संघ मुनियों के आचरण एवम् उनके विश्वासों से सम्बन्ध रखते हैं। उन्हीं के आधार पर माथुर संघ, द्राविड संघ, मूल संघ, यापिनी संघ इत्यादि संघों की प्रतिष्ठा की गयी है। लेकिन इनके नाम ग्रन्थों तक ही हैं। अब उनके नाम भी लुप्त हो गये हैं।

(२) काष्ठ की प्रतिमा की पूजा करने के कारण ही इस शाखा का यह नाम पड़ा है। कहा जाता है कि नन्दी गाँव के निवासी विनयसेन के शिष्य कुमारसेन ने आजीवन संन्यासी रहने का संकल्प किया था। लेकिन कुछ दिनों के बाद वह उसको निभा नहीं सका। इस प्रकार उसका सङ्कल्प भंग हो गया। कुछ आचार्यों ने उसको फिर दीक्षा लेने का परामर्श दिया था, लेकिन उसने उसको स्वीकार नहीं किया, उसने काष्ठ की प्रतिमा तैयार की और वह उसी की आराधना करने लगा।

धर्म ग्रन्थों में भी ऐसा लिखा हुआ मिलता है। (१) मल्लिनाथ का मंदिर चार खण्डों में बना है। नीचे से ऊपर के खण्ड लगातार छोटे होते गये हैं। आखिरी मंजिल पर आठवें तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभु की एक छोटी सी प्रतिमा स्थापित है। मन्दिर के प्रत्येक कोने में किसी न किसी की प्रतिमा मौजूद है। एक कोने में लगी हुई प्रतिमा पीले रङ्ग की है।

इसके आगे का मंदिर पार्श्वनाथ का मंदिर कहलाता है। कहा जाता है कि उसको सोमप्रति राजा ने बनवाया था। वह राजा विक्रम के पहले दूसरी शताब्दी में हुआ था। राजा का बनवाया हुआ यह तीसरा मंदिर है। इसके अनुसंधान में मुझे बड़ी छानबीन करनी पड़ी है। शेष दोनों मंदिरों का जिक्र मैंने अपने पहली पुस्तक में किया है। (२) इन मंदिरों को देखने से जैनियों की निर्माण कला का उत्कृष्ट उदाहरण मिलता है। इस प्रकार की निर्माण-कला यारप के देशों में नहीं है। जैनियों ने जितने भी मन्दिर बनवाये हैं, वे सभी कुछ इसी प्रकार के सुंदर बने हुए हैं। इसके अस्तित्व की सुंदरता का एक कारण यह भी है कि वह एक विशाल चट्टान पर बना हुआ है। धरातल से काफी ऊंचाई पर बनी हुई उसकी मंजिलें इसलिये भी अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गयी हैं कि उसमें ग्रेनिट प्रस्तरों का प्रयोग किया गया है।

पश्चिमी प्रवेश के द्वार पर जो सीढ़ियाँ बनी हुई हैं, उनका निर्माण खम्भों पर हुआ है और वे सीढ़ियाँ ड्योढ़ी तक चली गयी हैं। उनसे आगे आकर मन्दिर के समी भागों का रास्ता मिल जाता है। उसकी छत और मध्यवर्ती गुम्बज बड़ी खूबसूरती के साथ बनाये गये हैं। केन्द्रीय गुम्बज की लम्बाई और चौड़ाई—दोनों ही तीस तीस फीट की है। स्तम्भों पर उसका आधार है। वहां के स्तम्भों का निर्माण भी बड़ी सावधानी और मजबूती के साथ किया गया है। उसके चौकोर स्तम्भ दीवारों से मिले हुए हैं। उसकी एक बड़ी दालान आन्तरिक मण्डप से आकर मिलती है।

उसके पश्चात् सोमपट्ट का मन्दिर बना हुआ है। उसकी विशाल वेदी पर पार्श्वनाथ की मूर्ति स्थापित है। खम्भों की ऊंचाई चौदह फीट के अधिक नहीं है। गुम्बज की छत में जो स्तम्भ बने हुए हैं, उनमें उत्कृष्ट निर्माण-कला देखने को मिलती है। सम्पूर्ण मन्दिर भीतर से बाहर अत्यन्त आकर्षक और मजबूत बना हुआ है। पश्चिमी-

---

(१) पार्श्वनाथ का जो समेत शिखर है, वह विहार में है, वह स्थान प्राचीन काल में मगध-राज्य का होता था। उन दिनों में पार्श्वनाथ मत के मानने वाले अधिक संख्या में वहीं पर रहा करते थे। यह यह शिखर सिंधु नदी के पश्चिम में है और मेरे अनुमान से वह बल्ख बामियां की तरफ है। वहाँ की जैन मूर्तियों का वर्णन अबुल फजल ने अपने ग्रन्थ में किया है।

(२) अरवल भारतवर्षीय पञ्चतीर्थों में शत्रुञ्जय, गिरिनार, आबू समेत शिखर और ऋषभदेव के नाम आते हैं।

द्वार के निकट से भूमि के नीचे तहखाने मे होकर एक गुप्त मार्ग जाता है। लोगों का कहना है कि महमूद बेगडा के आक्रमण करने पर, उस समय जब उसने राजधानी पर अधिकार कर लिया। वहाँ का राजा माण्डलिक इसी गुप्त मार्ग से निकलकर भाग गया था।

इस मन्दिर से चलकर मैं भीमकुण्ड पहुँचा। उस कुण्ड का निर्माण यहाँ के यदुवंशी राजा भीमक ने देवकूट के उत्तरी भाग पर कराया था। चट्टान को काटकर कुण्ड और सीढ़ियाँ बनवायी गयी हैं। कुण्ड का जल सत्तर फीट की लम्बाई और पचास फीट की चौड़ाई में भरा हुआ है।

उस कुण्ड के पास एक दूसरा मन्दिर है। उसके सम्बन्ध में लोगों का कहना है कि उसे अनहिलवाड़ा के कुमारपाल ने बनवाया था। इस समय उसकी गयी-गुजरी अवस्था को देखकर जन साधारण के इस विश्वास पर यकीन करना पड़ता है कि कुमारपाल के उत्तराधिकारी ने तारिंगा के अजितनाथ मन्दिर को छोड़कर उसके बनवाये हुए सभी मन्दिरों को तुड़वा डाला था।

इस मन्दिर के सभी ऊपरी भाग नष्ट कर दिये हैं। उसके मध्य के कितने ही स्तम्भ भी गायब कर दिये गये हैं, मैंने पहले ही एक स्थान पर लिखा है कि महमूद बेगडा अथवा अन्य किसी मुस्लिम विजेता ने जूनागढ़ मे एक मसजिद बनवायी थी। उसके निर्माण में अनेक मन्दिरों का कीमती सामान काम में लाया गया है। बहुत सम्भव है कि इस मन्दिर की उत्कृष्ट सामग्री उसमे लगायी गयी हो।

इस मन्दिर की बनावट बिल्कुल पार्श्वनाथ के मन्दिर की तरह की है, दोनों का क्षेत्र बराबर मालूम होता है। जैनियों की संस्था ने—जो मन्दिरों का प्रबन्ध करती है—इसके उद्धार का कार्य आरम्भ कर दिया और निज मन्दिर के उद्धार का कुछ भाग तैयार हो गया था, उन्हीं दिनों में एक बाधा उत्पन्न हो गयी। इस प्रदेश के एक सेठ ने अपने इष्टदेव शिव की मूर्ति वहाँ पर स्थापित करने का निश्चय किया। जैनियों को जब मालूम हुआ तो उन लोगों ने इसका विरोध किया, लेकिन उनकी न चली और वह सेठ हठधर्मी पर उतारू हो गया, उस समय जैनी लोग हताश हुए और जब उनका उपाय न चला तो उस संस्था के प्रबन्धकों ने मन्दिर के द्वार पर प्राण दे देने की धमकी दी। इसके बाद दोनो तरफ से कुछ नहीं हुआ।

शैव और जैन लोगों में इस प्रकार के झगड़े हमेशा से चलते आ रहे हैं। दोनों के आराध्य देवता अलग अलग हैं और उन दोनों के देवता एक साथ, किसी किसी एक ही मन्दिर में नहीं रह सकते।

यहाँ पर दूसरा मन्दिर पार्श्वनाथ का है, जो ऊँची दीवारों से घिरा हुआ है और उसमें नाग-नाथ के सहस्र फण बने हुए हैं। लोगों का कहना है कि मन्दिर के देवता पर नाग नाथ ने अपने हजार फण फैलाकर छाया कर रखी है। यह मन्दिर

सोनी पार्श्वनाथ के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। अकबर बादशाह के शासन-काल में सग्राम नामक एक सोनार दिल्ली में रहता था। उसने इस मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया था। उसी समय से लोग इस मन्दिर को सोनी पार्श्वनाथ का मन्दिर कहने लगे। यह सोनार जैन मतावलम्बी था और उसके पास अपरिमित सम्पत्ति थी। लोगों का कहना है कि वह सोनार जादू की तरह का कोई चमत्कार जानता था और उसी के द्वारा उसने यह सम्पत्ति अपने पास एकत्रित की थी। सोमप्रीति राजा के मन्दिर की अपेक्षा यह मन्दिर अधिक प्राचीन नहीं साबित होता। फिर भी, इसके भीतरी भाग मे जिस प्रकार हरे और चमकदार चट्टानों के पत्थर काटकर लगाये गये हैं, उनसे इसकी शोभा और मर्यादा अधिक बढ़ गयी है। यह भी सही है कि इसके निर्माण की शैली बहुत कुछ पुरानी है और आंगन के पीछे चारों तरफ कोठरियाँ बनी हुई हैं। उन कोठरियों में विभिन्न प्रकार के देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित की गयी हैं।

इसके आगे चलने पर 'गढ़ टूक' मिलता है। ऋषभदेव अथवा आदिनाथ का मन्दिर अधिक खूबसूरत है। उसमें बने हुए स्तम्भ और कोठे तथा कोठरियाँ देखने के योग्य हैं। उनके सम्बन्ध में यहाँ पर अधिक लिखने से कुछ अनावश्यक विवरण आ जायेंगे अतएव उनके विस्तार में मैं नहीं जाना चाहता। इसलिए कुछ जरूरी बात लिखकर मैं आगे बढ़ूंगा।

इस मन्दिर में मेरु और समस्त आभ्यन्तर संगमरमर के बने हुए हैं और चौक की दीवारें भी निहायत खूबसूरती के साथ तैयार की गई हैं। मन्दिर में चौबीस तीर्थङ्कर की मूर्ति की प्रतिष्ठा की गयी है।

नगर के महलों से सटे हुए यहाँ पर जितने भी मन्दिर बने हुए हैं, उनमें गिरिनार की रक्षा करने वाले नेमिनाथ का मन्दिर अन्तिम मन्दिर है। इसमें सन्देह नहीं कि यह मन्दिर बहुत पुराना है। लेकिन विभिन्न परिस्थितियों में रहने के कारण इसकी रूप रेखा इतनी खराब हो गयी है कि आज प्रांत के मन्दिर के सामने यह कुछ महत्व नहीं रखता। शत्रुञ्जय पर बने हुए आदिनाथ मन्दिर की तरह इसका भीतरी भाग भी चमकील पत्थरों से जड़ा हुआ है। उनको देखकर सहज ही अनुमान होता है कि मन्दिर की इस सजावट और बनावट में आवश्यकता से अधिक व्यय किया गया है। स्वर्ण निर्मित मन्दिर की जंजीर नेत्रों में लगे हुए हीरा और रत्न जड़ित चाँदी का मुकुट पहने हुए नेमिनाथ की श्याम मूर्ति वेदी पर स्थापित है। दीपक जलाने और धूप देने के लिए शुद्ध पीतल के मनोहर पात्र बने हुए हैं, इन दीपकों में रात दिन प्रकाश होता रहता है। भक्त यात्री लोग यहाँ आकर अपनी अपनी भेंट चढ़ाते हैं।

दूसरे मन्दिरों की अपेक्षा इस मन्दिर की चट्टानें छोटी-छोटी हैं। आने वाले यात्रियों को सुविधापूर्वक चलने के लिए चट्टानें काट-काटकर रास्तों का निर्माण हुआ है। इस भाग में बहुत-से शिला-लेख हैं, लेकिन उनके पाषाण ऐसे हैं कि उनको तोड़कर

शिला-लेख निकालना बहुत कठिन है। जब किसी शिला लेख को निकालने की कोशिश की गयी तो उसका पत्थर चटखकर टुकड़े-टुकड़े हो गया और एक भी शिला-लेख ऐसा नहीं निकल सका, जो पढ़ा जा सकता। एक-दो शिला लेख किसी प्रकार निकाले गये, वे भी दो-दो टुकड़ों के हो गये। उनको पढ़ने से मालूम हुआ कि वे पाँचवीं शताब्दी से कुछ पहले के हैं और वे केवल उन लोगों के स्मारक हैं, जिन्होंने मन्दिर का जीर्णोद्धार किया था।

दूसरा शिला लेख खगार के महलों के फाटक पर लगा हुआ है। उसमें भी यहाँ के राजा माण्डलिक के द्वारा जीर्णोद्धार का ही उल्लेख है। यह राजा माण्डलिक पहला था अथवा तीसरा, इस विषय का उसमें कोई स्पष्टीकरण नहीं है। एक बात यह भी है कि गिरिनार की राजधानी जूनागढ में इस नाम के चार राजा हो चुके। अनुमान से काम लिया जाय तो वह खगार का चौथा राजा हो सकता है। लेकिन खगार नाम के भी तो कितने ही राजा हो चुके हैं। (१)

नेमिनाथ के मन्दिर का वर्णन मैं यहाँ पर देना आवश्यक नहीं समझता। इस-लिए इतना ही लिखना चाहता हूँ कि इस मन्दिर की यह बहुत बड़ी इमारत है और इसका शिखर बहुत ऊँचा है। इसमें सबसे अधिक आकर्षण की चीज तो नेमिनाथ की काली मूर्ति है। वह संगमरमर पर तैयार की गयी है। यह मूर्ति अत्यन्त विशाल है और बैठी हुई दशा में बनायी गयी है। उसके बाल नीग्रो लोगों के समान घुंघराले हैं और उसके मुख पर दया एवम् प्रसन्नता के भाव प्रकट होते हैं।

भारत के बौद्ध लोगों के नेमि और बृटिश म्यूजियम के मिस्री मेमनान (२) की मूर्तियों में मैंने बहुत अधिक समता का अनुभव किया है और बरुहाड के उल्लेख से मेरी धारणा और भी अधिक हो गयी। उसने लिखा है—

---

(१) राजपूतों में किसी नाम को बार बार लाने की एक आम प्रथा थी। उदयपुर के राज-परिवार में तीन नाम इसी प्रकार मेरी स्मृति में हैं। ये राजपूत इन नामों के साथ अंगरेजी परम्परा के अनुसार संख्या का प्रयोग नहीं करते। लेकिन बौद्धिक अथवा शारीरिक विशेषता के कारण जो भिन्नता नामों के प्रयोग से उत्पन्न होती है, वह भविष्य में आगे चलकर अपने आप लुप्त हो जाती है।

(२) मेमनान ग्रीक ग्रन्थों में टीथानस और इयोस के बेटे के नाम से प्रसिद्ध है। वह देखने में बहुत सुन्दर था। ट्राजन की लड़ाई में उसने ग्रीस वालों की पूर्णरूप से सहायता की थी। उस युद्ध में एचीलीज के साथ लड़ता हुआ वह मारा गया था। एन०—एम० पेज ८७१

नूबिया (१) में एब्समबोल के कारनाकी (२) के मंदिरों में इनके साथ बहुत बड़ी समानता है। अन्तर केवल इतना ही है कि ये बलुआ पत्थर के बने हुए हैं। मुख मण्डल के भाव करीब करीब एक से हैं। नूबिया वालों में गम्भीरता अधिक पायी जाती है। लेकिन शान्ति, प्रसन्नता और स्वाभाविकता दोनों में देखने को मिलती है।

नेमिनाथ का वर्णन इससे अधिक अच्छा नहीं किया जा सकता कि उनके बाल घुंघराले हैं, वक्ष पर चिह्न है और वर्ण श्यामल है। इससे मालूम होता है कि प्राचीन काल में भारत के साथ सीरिया और लाल सागर के तटवर्ती नगरों में बहुत कुछ सम्बन्ध और सम्पर्क था।

महलों के जो खण्डहर यहाँ पर देखने को मिलते हैं, उनके सम्बन्ध में विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है। जूनागढ़ के राजवंश की वंशावली का उल्लेख भी आवश्यकता से परे है। इसलिए महाभारत के बाद अनेक पीढ़ियाँ बीत जाने पर यह वंश रुपाल से आरम्भ होता है। वंश का आरम्भ कृष्ण और उनकी पत्नी रुक्मिणी के लड़के से हुआ है। इसके विवरण माण्डलिक और उसके बेटे खंगार तक चले गये हैं। यह लड़का अपने विवाह के सम्बन्ध में अनहिलवाड़ा के राजा सिद्ध का प्रतिद्वन्दी बना था।

दिन भर परिश्रम करने के बाद मैं बहुत थक गया था। इसलिये आगे इस ाय को छोड़कर मैं महल की तरफ आया और विश्राम करने के लिये किसी स्थान की खोज करने लगा। मेरे सामने जिस प्रकार अनुसन्धान का कार्य है, उससे मैं उस समय तक खुश नहीं होता, जब तक मुझे प्रकाश मिलता है।

एक बड़ी थकावट के बाद जब मैंने सूरज की तरफ देखा तो मुझे मालूम हुआ कि वह स्वयं अस्त होने जा रहा है, मुझे यह देखकर कुतूहल हुआ कि यह थकावट मुझ पर ही आक्रमण नहीं करती बल्कि दिन भर यात्रा करने के बाद सूरज भी थक जाता है और इसीलिये वह बड़ी तेजी के साथ हम सबसे विदा होने जा रहा है।

घाटी के बीच से जूनागढ़ की छतरियाँ कुछ धुंधली सी दिखायी दे रही थीं और हमारा शामियाना इतनी दूर से अपनी सफेदी की झलक दे रहा था, बीच के स्थान कुछ ऊँचे थे। उनकी तरफ देखने से वे दिखायी देते थे। जंगल में कहीं कहीं

(१) अफ्रीका में लाल सागर से नील नदी तक और मिस्र से अबीसीनिया तक फैला हुआ पृथ्वी का विस्तृत भाग इथोपिया कहलाने लगा है।

(२) ममनान की दो मूर्तियों की ऊँचाई बड़ी विशाल बतायी जाती है और उनकी ऊँचाई सत्तर फीट कही गयी है। इनकी विशालता और ऊँचाई कम आश्चर्यजनक नहीं है।

पर ऊँचे गुम्बज दिखायी देते थे। उनके साथ मिश्रित होकर सन्ध्याकालीन छाया एक अनोखा दृश्य उपस्थित कर रही थी।

दिन मे जो बादल इधर-उधर बिखरे हुए थे, वे अब सब मिलकर एक समूह बना रहे हैं और उनके मिल जाने के कारण आकाश का प्रकाश अब अंधकार में बदलता जा रहा है। सूर्य चुरके से नीचे उतरकर अंधकार के पीछे चला गया था। जिस समय मैं समझ रहा था कि सूरज डूब चुका है, अचानक बिजली की चमक से उसका लाल रंग समुद्र के जल पर अपनी छाया डालने लगा। मैंने समझा कि अभी तक सूरज डूबा नहीं है, लेकिन डूबने जा रहा है और उसकी अन्तिम अवस्था हम सबको जाहिर करती है कि सभी का अन्त कुछ इसी प्रकार का हुआ करता है।

पट्टण से मागरान तक का समुद्री किनारा अपनी अस्पष्टता प्रकट कर रहा था। एक क्षण के लिये थोड़ा सा प्रकाश अपने में लिये हुए चमका और उसके बाद वह गायब हो गया। उसकी चमक इतनी तेजी के साथ हुई कि आँखें उसे ठीक ठीक देख भी न पायीं और उसका अन्त हो गया। यह चमक नेत्रों के सामने आयी और तेजी के साथ चली गयी। मैं सोचने लगा, यह दृश्य कितना सुन्दर था और कितना क्षणिक था।

मैं बड़ी देर से सूर्य को अस्त होते हुए देख रहा था। कभी-कभी आँखों से तिरोहित होने के कारण मैंने मान लिया था कि उसका अस्तित्व अब लोप हो गया। जब मैं यह सोच रहा था, उसके बाद मैंने एकाएक देखा कि सूर्य की छिपती हुई किरणें अब भी किसी किसी समय सानारिका नदी के जल को आलोकित कर देते हैं।

इस दृश्य को देख-देख कर मैंने अनेक प्रकार की बातें सोच डालीं। मैं देख रहा था कि डूबता हुआ सूरज बार बार अपने अन्तिम प्रकाश से संसार को आलोकित कर देता है। प्रकृति का यह दृश्य बहुत अनोखा था। जब मैं इस दृश्य की बातों पर विचार कर रहा था उसी समय मैंने अचानक देखा कि सूर्य का समस्त प्रकाश अब जाता रहा और उसके आलोक का स्थान अंधकार ने उसी प्रकार ले लिया, जिस प्रकार एक आक्रमणकारी राजा हमला करके किसी दूसरे राज्य पर अधिकार कर लेता है।

मैं बड़ी देर तक अपनी इन उलझनों में पड़ा रहा और न जाने क्या सोचता रहा। जो कुछ सोच डाला, उसको लिखना नहीं चाहता। लेकिन मैं यह जरूर बताना चाहता हूँ कि इस प्रकार के अस्थायी दृश्य को देखकर मैं आनन्द लेता रहा। मैं साफ साफ समझता रहा कि ये दृश्य ही अस्थायी नहीं हैं, हमारे जीवन का सब-कुछ इसी प्रकार अस्थायी है। सन्ध्या के साथ-साथ ठण्डक भी अपना प्रभाव जाहिर करने लगी। इसलिये अन्त में मैं उसी स्थान को लौट आया, जिसको छोड़कर मैं उस तरफ गया था। मौसिम की तेजी अपना असर डाल रही थी। हवा भी तेज थी और रात के बारह बजे तक वह उसी प्रकार तेज चलती रही। मेरे साथ जो बिस्तर था, वह किसी

भी ऐसे मौके के लिये कम न था। लेकिन यहाँ के मौसिम मे और हवा की तेजी में मुझे वह काफी नहीं मालूम हुआ।

बिना दरवाजे और खिड़कियो से जो हवा आ रही थी, यदि उसके साथ शीतलता न होती तो सोने वालों को उससे बड़ी मदद मिलती। जहाँ पर मैं लेटा था उस स्थान में हवा को रोकने के लिये कोई साधन न था। आवश्यकता से अधिक कोई भी चीज—वह चाहे जितनी फायदेमन्द हो—हानिकारक होती है। इसलिये मैं सोचने लगा कि इसको रोकने के लिये क्या किया जा सकता है। जब कुछ और न सूझ तो हवा आने के रास्ते में घास के ढेर लगवा दिये। उससे हवा की तेजी में बहुत कुछ कमी आ गयी। मैं थका तो था ही, कुछ आलस आया और मैं तुरन्त सो गया।

सोने का सुख गहरी नींद में आता है और गहरी नीद प्राय थकावट म आती है। मैं कितनी देर तक सोता रहा इसका कोई अनुमान नहीं लगा सका। लेकिन जब मैं सो रहा था, अचानक कोई वजनदार चीज मेरे ऊपर आ गयी थी, मेरी नीद टूट गयी और जो दीपक जल रहा था, वह बुझ गया। मैं चौक पड़ा और सोचने लगा कि मुझ पर किसी जगली जानवर ने तो आक्रमण नहीं कर दिया। जगली जानवर और भालू की अपेक्षा मुझको अघोरी का अधिक भय लगा। कालिका देवी से भी मैं आतंकित हुआ। इसी समय फिर उस रास्ते से जोर की हवा आयी और मुझे मालूम हो गया कि मेरे ऊपर किसका आक्रमण हुआ है। वास्तव मे घास का वह ढेर था, जिसे मैंने हवा को रोकने के लिये लगा दिया था, हवा की तेजी में वह ढेर मेरे ऊपर आ गया था।

अब मर सामने घबराने का कोई कारण न था। मैंने नवाब न पहरेदारों को आवाज लगायी। वे लोग चौक में आस-पास बैठे हुए समय बिता रहे थे। जब मैं जग पड़ा तो मैंने उनके बातें करने की आवाज सुनी। उन लोगों ने आकर घास के ढेर को सम्हालकर लगा दिया। उनके चले जाने के बाद मैं फिर सो गया।

दूसरे दिन मैंने पहाड़ से उतरना आरम्भ किया और महल क ऊँचे स्थानों को छोड़कर जैसे ही मैं नीचे आया तो जो स्थल ऊपर से मुझे स्पष्ट और धुंधले दिखायी देते थे, अब साफ-साफ दिखायी देन लगे। सूर्य का उदय हो चुका था और उसका प्रकाश तेज होता जा रहा था। जो स्थान प्रकाश के अभाव म अपन अस्तित्व को छिपाये हुए थे, वे सब साफ-साफ दिखायी देने लगे। सूर्य के इस आलोक मे यात्रा करने वालों को बड़ी खुशी हो रही थी और अब उन सभी ने रात के अधकार से छुटकारा प्राप्त कर लिया था।

इसी समय मेरा ध्यान एक वृद्ध स्त्री की तरफ गया, जो एक पत्थर का सहारा लिये हुए लेटी थी। उसका लड़का चढ़ाई के कारण थकी हुई अपनी माँ के कमजोर

अंगों में थपकी लगा रहा था। मैंने उससे बातें की तो मुझे मालूम हुआ कि बूढ़ी स्त्री गोकुल से आयी है। वह अपने आराध्य देव कृष्ण की जन्म भूमि से पैदल चलकर द्वारका और पोंची तक गयी, जहाँ पर कृष्ण ने निर्वाण प्राप्त किया था। अब वह लौटकर वापस जा रही है।

इस वृद्धा की भक्ति भावना को देखकर भला कौन नहीं पसीजेगा। मैं स्वयं आश्चर्य चकित होकर उसकी तरफ देखकर रह गया। जब मैंने आदरपूर्वक उससे पूछा तुम्हारा गाँव कहाँ है। तो उसने मेरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा मेरा स्थान गोकुल है।

मैंने बहुत पहले से गोकुल का नाम सुन रखा था। उसके मुख से गोकुल का नाम सुनकर मैं गम्भीर हो उठा। उसके मुख की ओर देखकर मैंने अनुभव किया कि मानो उसने बड़े गर्व और स्वाभिमान के साथ अपने गाँव का नाम गोकुल बताया है।

जिन लोगों के साथ बैठकर मैं किसी समय गोकुल और वृन्दावन की घटनायें तथा कथायें सुना करता था, उन सब की स्मृतियाँ मेरे अन्तरतर में एक साथ जाग्रत हो उठीं।

उस वृद्धा के समीप और भी कुछ यात्री बैठे थे, बातचीत के सिलसिले में उन लोगों ने भी अपने अपने स्थानों के नाम बताये और अपने आने की कथायें कहना आरम्भ किया। उनमें से कुछ लोग गंगा स्नान करके आये थे और कुछ जमुना, कावेरी तथा कुछ काशी से आये थे। मैंने एक आदमी से काशी का अर्थ पूछा तो उसने बताया कि काशी बनारस को कहते हैं।

उसकी बात को सुनकर मुझे एक हलकी हँसी आ गयी। मैंने उसकी तरफ देखा। लेकिन मैंने कुछ कहा नहीं। इसी समय कई एक यात्रियों ने एक साथ जोर से चिल्लाकर कहा बोल गंगा मैया की जय।

उन लोगों के मुख से मुझे यह जय घोष बहुत अच्छा मालूम हुआ।

मैं हाथी नामक टुक पर पहुँचा। उस समय धूप बहुत तेज हो गयी थी। यद्यपि आठ बजने का समय था। लेकिन मैं भूल गया, समय और भी कुछ अधिक हो चुका था। लेकिन गिरिनार की गुफाओं में बसेरा लेने वाले पक्षी अभी तक बाहर नहीं निकले थे। मैंने देखा है कि उनके झुण्ड के झुण्ड पहाड़ों के वृक्षों में मधुमक्खियों के छत्तों की भाँति करके रहते हैं, वे पक्षी बसेरा लेने के लिये जो घोंसले बनाते हैं, वे सभी एक ही तरह के होते हैं। मुझे ऐसा लगा मानों अद्वैतवादी जीव रक्षकों ने पक्षियों के रहने के योग्य इन घोंसलों को तैयार किया है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इनमें से अधिकांश घोंसले ऐसे स्थानों पर बने हैं, जहाँ पर किसी भी ऋतु का प्रभाव जल्दी नहीं पड़ सकता। कुछ घोंसले काफी बड़े हैं और उनके भीतर उनके बच्चों के

नगर, राजवंश और विवरण

काठीवाना की विभिन्न जातियाँ—अकाल का प्रभाव—मकानों के स्थान पर झोपड़ियाँ—डाकुओं का गाँव—घूमली के किले में जङ्गली जानवर—जेठवा का मशहूर मन्दिर—गणपति के मन्दिर की बनावट—घूमली में शोध की सामग्री—जेठवा के लोगों के स्मारक—मनुष्यों में पूँछवाली जाति—प्राचीन कथानकों में मत्स्य की हत्या—पूर्वकाल में अन्तर्जातीय विवाह।

दोहूसर, १७ दिसम्बर—चार कोस का फासिला। बबूल के पेड़ों से भरे हुये जङ्गल को पार किया। यहाँ की जमीन के कुछ भाग में खेती होती है और उन खेतों में चने की खेती अधिक दिखायी देती है। इस गाँव के लोग गरीबी का जीवन बिताते हैं। इस क्षेत्र में अधिक आबादी अहीर लोगों की है, जो पशुओं के पालने का काम करते हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं, जहाँ पर मियों लोगों की आबादी अधिक संख्या में पायी जाती है।

जिञ्जिरी, १८ दिसम्बर—छै कोस का फासिला। खेती का काम साधारण तौर पर होता है। यहाँ पर लगभग सभी जातियों के साथ-साथ परिश्रमी बलूना जाति के लोग भी रहते हैं।

काठीवाना १९ दिसम्बर—आठ कोस का फासिला। इस स्थान को कस्बे में गिना जा सकता है। यहाँ पर तीन-चार हजार के लगभग घर हैं और उसके आस पास सुरक्षा के लिए मजबूत ऊँची दीवारें भी हैं। यह कस्बा भादर नदी के करीब बसा हुआ है। उसमें उन सभी नदियों से अधिक पानी है, जिनको मैंने इस प्रायद्वीप में देखा है।

अबुलफजल ने इस नदी की मछलियों की बहुत प्रशंसा की है। लेकिन हमने जिस एक मछली को काँटे से पकड़ा, वह अच्छी नहीं साबित हुई। खाने में वह बुरी तरह से नमकीन थी और ऐसा मालूम होता था, मानो वह नदी के जल को भी खराब कर रही है।

हमारी यात्रा के आखिरी दो मील इस नदी के किनारे किनारे चले और आगे जाकर मैंने उसके तट पर ही मुकाम किया। देखने से यह कस्बा पुराना मालूम होता

है और पहले कभी यह कुन्तलपुर कहा जाता था। अब भी यहाँ पर एक दुर्ग बना हुआ है, वह कालीकोट के नाम से प्रसिद्ध है।

लोगों का कहना है कि काठोवाला में अठारह जाति के लोग रहते हैं। लेकिन यहाँ की आबादी अधिकतर सिंधुघाटी के बनिया भाटियों और मोमन तथा मुस्लिम जुलाहों की है। भादर नदी ने अपना रास्ता बदल दिया है, यह बात उसके एक बने हुए पुल से जाहिर होती है। यह पुल बहुत ऊंचा है।

पिछले दिनों में जो अकाल पड़ा था, उसका प्रभाव इस कस्बे और आस-पास के स्थानों पर भी बहुत पड़ा था। उसी का यह असर है कि इस क्षेत्र की आबादी बहुत कम हो गयी है। रहने वाले लोग गरीब हो गये हैं। उनकी गरीबी का एक बड़ा प्रमाण यह है कि यहाँ पर मकानों की अपेक्षा झोपड़ियों की संख्या अधिक है और उनमें रहने वाले अहीर तथा कुनबी लोगों की दशा अच्छी नहीं है।

तुरसी, १६ दिसम्बर—अठारह कोस का फासिला। यात्रा आरम्भ करने के पश्चात् हम लोग लगभग पांच मील तक लगातार चलकर उस स्थान पर पहुँचे, जो दसरियो कहलाता है। यहाँ पर भी अहीरों और कुनबी लोगों की आबादी है। यहाँ पर खेती का व्यवसाय अच्छा दिखायी देता है।

हमारे बायें तरफ कण्डोरना (१) नामक एक पुराना नगर था, यह जेठवा राजपूतों के अधिकार में था। देवला में एक गढ़ी उस नदी के किनारे पर है। जो जूनागढ़ को जाम के राज्य से अलग करती है। तीसरी सीमा बायीं तरफ लगभग डेढ़ मील के फासिले पर है, जहाँ कुनसना में जेठवा राजा की सीमा मानी जाती है।

यहाँ पर खेतों की फसलें अधिक कमजोर दिखायी देती हैं। यहाँ के किसान प्रायः उन्हीं जातियों के हैं, जिनके नाम ऊपर लिखे गये हैं। तुरसी, बरडा की पहाड़ियों के पूर्व की तरफ है

(१) मैंने एक भाट के पास ऐतिहासिक घटनाओं का संग्रह देखा था। उसमें बहुत से राजवंशों के विवरण थे। मैं उस संग्रह से सौराष्ट्र के पुराने नगरों के सम्बन्ध में कुछ बातें भाट की थी, उसमें से कुछ इस तरह हैं—कण्डोरना अथवा कण्डाला पहले किसी समय कौसल नगरी के नाम से प्रसिद्ध था। उसके बाद शिला नगरी, फिर तिलापुर और उसके बाद उसका नाम घन-कण्डोल हो गया और आजकल उसी को कण्डोला कहा जाता है। यह क्रम उसके नाम का मैंने उस भाट की पुस्तक से लिया है। मेरा ख्याल है कि यदि जेठवा जाति के शीलकुंवर के नाम पर इसका नाम शिला नगरी पड़ा हो तो उसके पहले इसका नाम तिभापुर रहा होगा। बहुत दिनों तक मैं मेवाड़ के राणा लोगों के पूर्वजों की राजधानियों में सौराष्ट्र के तिलापुर पट्टन की तलाश करता रहा। लेकिन मुझे सफलता नहीं मिली। मेरा अनुमान है कि यह वही स्थान है। यह भी सम्भव है कि इसका नाम शिलादित्य के नाम पर शिला नगरी पड़ा हो।

भावल, २० दिसम्बर से २३ दिसम्बर तक—सात कोस का फासिला। अब हम जितना आगे की तरफ चलते हैं, जमीन की दशा हमको उतनी ही खराब दिखाई देती है।

हम मादुर नामक गाँव से होकर आगे चले। वहाँ पर एक किले के टूटे फूटे भाग मौजूद है। कुछ दिन पहले यह गाँव डाकुओं का बड़ा अड्डा था, इसीलिये वह नष्ट करा दिया गया है। अब इस गाँव में गरीब अहीरों के पच्चीस घरों से अधिक आबादी नहीं है।

भावल नवा नगर के जाम के अधिकार में है और यहाँ पर मोमन जुलाहों के लगभग पचास सौ मकान हैं। यह एक कस्बा है, जो धनधारा नदी के किनारे पर बसा हुआ है। इसका बहुत-सा पानी नालियों के द्वारा निकाल कर खेती के काम में लाया जाता है। इसके बाद भी उसका जो जल बाकी रह जाता है, वह विनोद्रा नामक एक बड़ी नदी में जाकर गिरता है, उसके किनारे पर इन्द्र देवता का एक मन्दिर है।

गूमला—जेठवा जाति की पुरानी राजधानी गूमली के खंडहरों की खोज के लिए हमको कुछ दिनों तक भावल में ठहरना पड़ा। वहीं पर इस प्रान्त के पालिटिकल एजेन्ट मेजर बालवन्स मुझसे आकर मिले।

गूमली बरडा की पहाड़ियों के उत्तरी भाग पर कायम है। उसका नाम भारत के प्राचीन भूगोल में परिमाटा पाया जाता है। यह स्थान महर्षि भृगु के आश्रम के नाम से मशहूर है। यह स्थान भावल से करीब तीन मील की दूरी पर है। यह स्थान दूसरे रूप से एकान्त में होने के कारण यात्रियों को बड़ा असुविधा का सामना करना पड़ता है। इसलिए कि यहाँ पर जो प्रसिद्ध मन्दिर है, उसका शिखर भी उसी समय दिखायी देता है, जब कोई उसके बहुत निकट पहुँच जाता है। यह एक बड़ी कठिनाई सामने आती है।

इसका मुख्य कारण यह है कि यह स्थान एक घाटी में पाया जाता है और दक्षिण तथा पूर्व में लगभग दो फीट ऊँची बरडा की पहाड़ियों से घिरा हुआ है। बाकी दिशाओं में भी छोटी छोटी पहाड़ियाँ हैं। उनके कारण यह स्थान कुछ अप्रकट-सा हो जाता है।

पता चलता है कि गूमली में कई शताब्दियों से कोई रहता नहीं है। तीन तरफ से चूने और पत्थरों से यह स्थान घिरा हुआ है। उत्तर पूर्व और पश्चिम की तरफ यह स्थान परकोटे से घिरा हुआ है। इसका दक्षिणी भाग पहाड़ियों से सुरक्षित है। परकोटे की दीवारें पहाड़ियों के ऊपर तक चली गयी हैं। यहाँ पर जो लिखा है, उसमें जंगली जानवरों ने अपने रहने के लिये स्थान बना लिये हैं। अब भी प्रत्येक दीवार से सम्बन्धित एक द्वार बना हुआ है। पूर्वी और उत्तरी दीवारें क्रमशः पाँच सौ और आठ

सौ गज लम्बी हैं और ये अब भी मजबूती के साथ खड़ी हैं।

इस कस्बे में प्रवेश करते ही सबसे पहले जेठवा का मन्दिर मिलता है। यह उस स्थान पर बना हुआ है, जहाँ पर महल है और वहाँ से पहाड़ियों में प्रवेश किया जाता है। इसका प्रवेश द्वार सीधा पूर्व की तरफ पड़ता है, इसीलिये सूर्य के निकलते ही उसकी प्रारम्भिक किरणें इस द्वार पर आती हैं। यह मन्दिर एक ऊँचे चबूतरे पर बना हुआ है, जिसकी लम्बाई एक सौ तिरपन फीट, चौड़ाई एक सौ बीस फीट और ऊँचाई बारह फीट है।

इस मन्दिर का निर्माण तराशे हुए पत्थरों पर किया गया है। उसकी नक्काशी अनेक प्रकार की है। मन्दिर में आठ कोने का एक मंडप है, उसका व्यास तेईस फीट है, वह मंडप दो खंडों में बना है। उसके ऊपर एक गुम्बज बना हुआ है, वह धरातल से लगभग पैंतीस फीट ऊँचा है।

इस मन्दिर की शिल्प कला असाधारण रूप में है और अब तक मन्दिरों में जो कुछ मैंने देखा है, उन सबसे भिन्न इसमें कला का प्रदर्शन किया गया है। इसका आधार बारह फीट ऊँचे स्तम्भ हैं, इन स्तम्भों का निर्माण बड़ी मजबूती के साथ किया गया है। मन्दिर के ऊपरी भाग में भी स्तम्भों की पंक्तियाँ हैं, मन्दिर में रास मंडल और नृत्य के दृश्य जो खोदकर चित्रित किये गये हैं, वे देखने में बड़े सुन्दर मालूम होते हैं।

मन्दिर का कुछ भाग नष्ट भी हो गया है, पूर्व और पश्चिम की तरफ आगे की तरफ निकली हुई दो ड्योढ़ी बनी हुई हैं। उनकी ऊँचाई और चौड़ाई चौदह फीट तथा आठ फीट है, इनका आधार भी सुदृढ़ स्तम्भ हैं, छत में अनेक प्रकार के चित्र देखने को मिलते हैं बड़ी गुम्बज के चारों तरफ छोटी छोटी गुम्बजें भी बनी हुई हैं, वे भी खम्भों का आधार लिये हैं,

पश्चिम की तरफ देवखंड अथवा निज मन्दिर है, वह दस फीट वर्गाकार एक छोटा सा कमरा मालूम होता है। वह प्रायः खाली पड़ा रहता है। उसके ऊपर जो शिखर बना हुआ था, वह गिर गया है अथवा गिरा दिया गया है। भीतर से इसकी लम्बाई और चौड़ाई तिरसठ फीट और चौवन फीट है। लेकिन प्रत्येक अवस्था में वह प्रशंसनीय है, इस मन्दिर की सभी मूर्तियाँ पौराणिक हैं और देखने में अधिक आकर्षक हैं। जिन खम्भों के आधार पर मन्दिर बना हुआ है, वह तो बहुत-ही प्रशंसा के योग्य है। स्पष्ट रूप से मैं यह कहना चाहता हूँ कि उसके पहले मैंने ऐसा अन्यत्र नहीं देखा। सिंह, नरसिंह, ग्राह और बन्दरों की आकृतियों का चित्रण इस मन्दिर के पाषाणों पर अभूतपूर्व हुआ है। इन मूर्तियों में आश्चर्यजनक भावों और भावनाओं का चित्रण किया गया है।

मन्दिर में ऐसी कोई चीज देखने को नहीं मिलती, जिससे अनुमान लगाया जा

सका कि यह मन्दिर किस देवता का है, यद्यपि देव कक्ष के बाहरी भाग में महाकाल के एसे चिन्ह देखने में आते हैं, जिनसे आभास मिलता है कि यह मन्दिर कदाचित् आरम्भ में शिव का रहा होगा।

कुछ फासिले पर दक्षिण पश्चिम में गणपति का मन्दिर बना हुआ है। उनको हिन्दुओं के समस्त देवताओं में प्रधानता दी जाती है। उसका सूँड के समान मुख अथवा मस्तक बुद्धि का परिचायक माना जाता है। इस मन्दिर का निर्माण बड़े अनोखे ढङ्ग से हुआ है। कोठरियों में सर्वत्र चौखटदार खिड़कियाँ हैं और उनकी छत अंडे के आकार में है। एक बड़े कोठे में नव ग्रहों की मूर्तियाँ बनी हुई हैं। लोगों का विश्वास है कि वे ग्रह मनुष्य के जीवन में भाग्य और दुर्भाग्य की सृष्टि करते हैं।

इस मन्दिर के पास उत्तर की ओर ज्ञान का मन्दिर बना हुआ है, उसका सम्बन्ध नास्तिक बुद्ध के साथ सम्बन्ध और सम्पर्क रखता है। इसकी बनावट इस धर्म के उन सभी मन्दिरों के प्रतिकूल है जिनको अब तक मैंने देखा है। इस मन्दिर में एक दूसरे से मिले हुए चार मण्डप हैं। उनका आधार खम्भे हैं। उनका ऊपरी भाग वैसा नहीं है, जैसा कि ऊपर लिखा गया है।

ऐसा मालूम होता है कि ये सब उसी समय के और उन्हीं कारीगरों के द्वारा बने हैं, जिन्होंने आस्तिकों के प्राचीन मन्दिरों के निर्माण किये थे। इसके भीतर एक पार्श्वनाथ की मूर्ति भी लगी हुई है और एक पाषाण पर चौबीस तीर्थङ्करों अथवा जैन सम्प्रदाय के प्रधान आचार्यों की प्रतिमायें उत्कीर्ण की गई हैं। महाकाल का पवित्र वृक्ष अप्रकट रूप से इन इमारतों पर फैलता जा रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि आगामी कुछ वर्षों में वह इन दोनों को दबा लेने में समर्थ होगा।

इसके बाद मैं बावड़ी पर गया। उसको देखकर मैं सहज ही जेठवों के हृदय की उदारता का अनुमान लगा सका। यहाँ पर मेरे खोज का काम कुछ सफलता प्राप्त कर सका। इसलिये कि यहाँ पर एक शिला लेख सम्वत् १३ (सौ) का प्राप्त हुआ। उससे इसके जीर्णोद्धार की जानकारी होती है।

गूमली में सबसे अधिक आश्चर्य और मूल्यवान में खोज के कार्य के योग्य रामपाल अथवा राम का द्वार है। हमें आगे चलकर देखना है कि राम के सेनापति हनुमान से जेठवा भाग अपनी उत्पत्ति मानते हैं या नहीं। रामपाल पश्चिम की तरफ का दरवाजा है। परन्तु इसके निर्माण और शिल्प कला का सही विवरण सरल नहीं है। प्रत्येक दिशा में तीन चौकोर खम्भों पर पत्थरों के द्वारा शोभायमान लगाये गये हैं और दोनों तरफ प्राचीन प्रणाली की महरावें हैं। यहाँ पर दो नोकदार महरावें और भी हैं, जो पहली महरावों से बिल्कुल भिन्न और प्रतिकूल हैं। वे अधिक पुरानी नहीं हैं। जब यह बात निश्चित रूप से सही है कि गूमली कसबा लगभग आठ सौ वर्षों से उजाड़ पड़ा

हुआ है तो हमें इस सत्य को स्वीकार कर लेना पड़ता है कि इन मेहराबों के निर्माण में हिन्दुओं की अपनी प्रणाली है।

यहाँ पर लगभग सभी स्थानों पर असाधारण शिल्प कला दिखायी पड़ती है। कुछ भागों में बड़ौली और अन्य स्थानों की भाँति समस्त प्राणियों में श्रेष्ठ मनुष्य को पशुओं में श्रेष्ठ सिंह से युद्ध करता हुआ चित्रित किया गया है। मनुष्य घोड़े पर सवार है और घोड़ा अपने पिछले दोनों टाँगों पर खड़ा है, ऐसी दशा में सवार अपने धनुष से तीर मार रहा है। इसके सिवा, कुछ पुरुषों और स्त्रियों की टोलियाँ भी हैं, जो किसी पौराणिक कथा का चित्र उपस्थित करती हैं। लेकिन इनसे आश्चर्यजनक वन के देवताओं की आकृतियाँ हैं, उनका ऊपर से कमर तक का भाग मनुष्य की तरह का है और नीचे का भाग बकरे की तरह का है।

रामपोल से चलकर मैं उन पालियों पर गया, जो जेठवों के साथ स्मारक थे। उन पर घास और काँटेदार थूवरों के पेड़ खड़े थे, अधिकांश पालिए तो टूट-टूटकर नष्ट हो गये हैं और उन पर जो लिखा गया था, वह सबका सब नष्ट हो गया है। बड़े परिश्रम के साथ खोज करने पर मुझे पाँच स्मारक मिल गये, जिनसे घूमली के नष्ट होने वाला कथाओं का संक्षिप्त में कुछ परिचय मिलता था। उनसे यह तो मालूम ही हो जाता है कि राजपूत लोग अहङ्कारी नहीं होते। और उनके स्वभाव में यह बात कभी नहीं रही कि देश के लिए प्राण देने वालों को जीवन की समस्त महानतायें प्रदान करें। उन्होंने मृतक के परिचय में केवल नाम और आत्मत्याग की तिथि लिखकर ही अपने कर्तव्य को पूरा किया, जैसे—

सम्वद् ११११ पोष मास की ७ धालोत

सम्वद् १११२ कार्तिक मास की १३ भगण

सम्वद् विकट, ऊमरा और वेण जी सेठी

हरिया वनिया चोहान, और सूसिर का जेठवा। सम्वत् १११८ फागुन (बसन्त) सोमवार पूर्णिमा—महाराजा हरीसिंह जेठवा।

सम्वद् १११६ कार्तिक (दिसम्बर) की ६ बीर जेठवा।

इस प्रकार संक्षेप में तिथि के रूप में जो सामग्री मिल सकीं, उससे मालूम होता है कि यह सब सामग्री १०५६ ईसवी से १०६३ ईसवी तक की अथवा महमूद गजनवी के आक्रमण के बाद तीस से चालीस वर्षों के बीच की है। अतएव हम विचार करेंगे कि घूमली के नाश और पतन के समय से इन तिथियों का कहाँ तक सम्बन्ध है।

जब हम भावस में अपने मुकाम पर लौटकर आये तो इस प्रान्त के पोलीटिकल एजेन्ट मेजर बार्नवेल को देखकर बड़ी खुशी हुई। वे (डाक्टर मेकाडम के साथ) जाम

की राजधानी से चलकर मुझसे मिलने आये थे। मैं उनकी सज्जनता का इसलिए कृतज्ञ हूँ कि उनकी सहायता और उदारता से मैं घूमली के जेठवा राजाओं का वर्णन लिख सका। यह जरूर है कि सौराष्ट्र के एक ऐतिहासिक जानकार से मैंने इस प्रकार के विवरण प्राप्त कर लिये थे। परन्तु मेजर बानवेल ने अपना एक प्रतिनिधि समुद्र के किनारे पोरबन्दर भेजा था। वहाँ पर जेठवा के वर्तमान नरेश रहते हैं। वह उनके भाट और राजाओं की ऐतिहासिक सामग्री के साथ लौटाया था।

जेठवा-वंश इस प्रायद्वीप के बहुत पुराने राजपूत वंशों में से है। ऐसा आभास होता है कि जब महमूद गजनी के आक्रमण हुए थे, उस समय इनकी शक्तियाँ पश्चिम की तरफ लगी हुई थी। वह क्षेत्र मादर और कच्छ की खाड़ी से घिरा हुआ था और हालार, बडारा तथा झालावाड़ का पश्चिमी भाग भी इसी में शामिल था।

यह बात जरूर है कि ये लोग उन दिनों में अपनी पूरी स्वतन्त्रता का दावा करते थे। परन्तु अनहिलवाड़ा के इतिहास से यह साफ जाहिर होता है कि वे बल्हरों के सामन्तों में से थे। घूमली का नाश हो जाने के बाद जेठवा वंश की शक्तियाँ लगातार क्षीण होती गयीं और उनके पड़ोसी जाम के आक्रमण करने के कारण उनका अधिकार बरडा की पहाड़ियों के दक्षिण तरफ एक छोटे-से क्षेत्र तक ही सीमित हो गया। उस क्षेत्र की वार्षिक आमदनी एक लाख से अधिक नहीं थी।

राज्य की कमजोरी के बाद भी पोरबन्दर के पूँछड़िया राणा अथवा लम्बी पूँछ वाले राणा छोटे छोटे अधिकारियों में उत्तम स्थान रखते थे, और अपने पूर्वजों के गौरव पर गर्व करते हुए अपने जमींदार गायकवाड़ को नफरत की निगाह से देखते थे।

जब मैं वहीं वंश की उलझनों में पड़ा हुआ था तो मुझको सेन्ट पॉल (१) के द्वारा तिमोथी (२) को दिये हुए इस शिक्षा में बड़ा अन्तर जान पड़ा कि अन्त कथाओं

---

(१) सेन्ट पॉल—एक प्रसिद्ध सन्त और धार्मिक उपदेशक थे। ये पहले ईसा के विरुद्ध थे और ईसा के मानने वालों पर अधिक दोषारोपण करते थे। लेकिन एक बार जब पॉल दमिश्क जा रहे थे तो रास्ते में ईसा के साथ उनकी भेंट हो गयी और उसी समय वे ईसा के शागिर्द हो गये। ईसाई धर्म के इतिहास में सेन्ट पाल का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। रोमन साम्राज्य में उन्हीं की कोशिशों से ईसाई मत का विस्तार हुआ और उनके आध्यात्मिक विचारों का आज भी संसार के समस्त सभ्य देशों में आदर होता है।

(२) तिमोथी सेन्ट पाल के साथी और एक सन्त थे। वे उनके साथ यूरोप गये और मैसीडान में गिरजा घरों की स्थापना में उनकी बड़ी मदद की।

अर्थात् बिना आधार के बनायी जाने वाली घटनाओं और उन वंशागत प्रशंसाओं पर जिनका कहीं अन्त नहीं होता, विश्वास नहीं करना चाहिये।'

मेरे दो दिनों के परिश्रम का फल यह मिला कि मैं भी थोड़ा बहुत उन लोगों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उतना जानकार हो गया, जितना कि वे स्वयं अपने सम्बन्ध में जानते थे। पुरानी परम्परा के अनुसार, कुछ नाम, उनसे सम्बन्धित कुछ घटनायें और उनकी तारीखें—इसके अतिरिक्त उनके पास और कुछ नहीं था। मैंने एक सौ पैंतालीस राजाओं की वंशावली, गुजावली और उनके कामों के विवरण के साथ साथ, गूमली की स्थापना से लेकर उसके विनाश के समय तक का इतिहास एवम् उसके संक्षिप्त प्रवरण अपने अधिकार में कर सका। मैंने और भी सामग्री प्राप्त की जैसे अन्तर्जातीय विवाहों की प्रथा, उनकी स्त्रियों के जीवन की प्रमुख घटनायें, जातीय प्रथायें और प्राचीन परम्परायें आदि। मैंने उन तथ्यों का खोजने और प्राप्त करने की चेष्टा की, जिनका ताल-मेल वेल्स जैसी जातियों के साथ हो सकता हो। (१)

मैं यहाँ पर एक ही ऐसा उदाहरण देना चाहता हूँ, जिससे पता चलता है कि प्राचीन लोगों के सम्बन्ध में सत्य को कितना तोर-मरोड़कर लोगों ने लिखा है, उस प्रकार के उदाहरणों की कमी योरप के भाटों और कवियों में नहीं है, मैं इस सत्य को भी मानता हूँ। सत्य कुछ और होता है और कवियों तथा भाटों के द्वारा उस सत्य को छिपाना तथा उसे रोचक बनाना कुछ और होता है। दोनों एक दूसरे के साथ नहीं खपते। इतिहास सत्य चाहता है, वह छिपाना, रोचक बनाना अथवा इस प्रकार की कोई चीज उसके साथ नहीं खपती। जब इतिहास नहीं लिखे जाते थे और घटनाओं को कविताओं में बद्ध किया जाता था, उन दिनों में इस प्रकार की प्रथायें सर्वत्र थीं, कहीं कम और कहीं अधिक।

जातियों की उत्पत्ति के विषय में जो मनगढन्त कथाओं के लिखने की पुरानी परिपाटी थी, उन पर मैंने पहले भी और अन्यत्र प्रकाश डाला है। मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि उन दिनों में किसी की बर्बरता को छिपाने के लिये ऐसा किया गया था। और सत्य को छिपाकर अन्धकार पैदा किया गया था।

पूंछिडिया के सम्बन्ध में लोगों का कहना है कि उनके सरदारों का पूर्वज लाल सागर के सकोत्रा नामक स्थान से आया था। यह स्थान ग्रीक, अरब, मिस्री और हिन्दू व्यापारियों के द्वारा बसा हुआ था। ऐसा इन लोगों का कहना है। उसको हिन्दुओं के ग्रंथ में शङ्खोद्धार अथवा शङ्ख का द्वार लिखकर शास्त्रीय नाम दिया गया है। यह

(१) ये जातियाँ कहलाती हैं, य लोग बड़े प्रबल होते हैं, शक्तिशाली रोमन लोगों के दाँत इन्होंने खट्टे कर दिये थे। इनकी उत्पत्ति का अब तक ठीक ठीक पता नहीं है।

अर्थात् राम का सेनापति वानरों का देवता हनुमान था। वह राम की पत्नी सीता को फिर से प्राप्त करने के लिये अपनी सेना लंका पर ले गया था।

जेठवा लोगों की माता का पिता मकर, मनु के अनुसार, एक समुद्र का जानवर था और उस हिसाब से वह कदाचित् घड़ियाल था। जब राम लंका को जीतकर लौटे, उस समय मकरध्वज अर्थात् मकरों के ध्वज को उनकी माता ने सौराष्ट्र के पश्चिमी किनारे पर मनुष्य जाति के राजाओं का वंश चलाने के लिये उत्पन्न किया। ब्रह्मविज्ञान के अनुसार, शिशु में माता और पिता में एक ही के लक्षण प्रमुख होते हैं। दोनों के नहीं। प्रकृति के इस नियम के अनुसार उस बालक में माता की तरफ से कोई प्रभाव नहीं आया और बालक पिता को पड़ा। घड़ियाल की हड्डी उभरी हुई होती है, इसलिये उसका असर उसमें आया। उसकी रीढ़ की हड्डी उठी हुई हो गयी। जैसा कि लार्ड मोलबोडो और डाक्टर प्लाट ने वर्णन किया है कि जातियों की शारीरिक बनावट में बहुत सी पीढ़ियाँ बीत जाने के बाद अन्तर आ जाता है। ऐसी हालत में राजवंशों का वर्णन करने वाले भाट लोगों के लिये यह समझ सकना बहुत कठिन था कि इस प्रकार का अन्तर कैसे आ जाता है। फिर भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि चार पीढ़ी पूर्व तक उस वंश के लोगों में हड्डी बढ़ी हुई थी।

अब हमको असम्भव तथा असंगत बातों को छोड़कर और चारणों की सहायता लेकर उन बातों के वर्णन में आ जाना चाहिये, जो साधारण तौर पर बुद्धि संगत मालूम होती है। लंका से आयी हुई मकरों की इस जाति की प्रथम राजधानी उस स्थान पर स्थापित हुई, जहाँ पर मकरध्वज जमीन पर उतरा था, उसका नाम श्रीनगर रखा गया। और वहाँ के राजा इन्द्रजीत के समय तक अपने नाम के साथ, उसके अन्त में ध्वज का प्रयोग करते रहे। उसके बेटे श्रीम ने अपनी जाति और राजधानी दोनों के नामों को बदल दिया। उसने गूमली बसायी और मकर के स्थान पर कमर उसके पश्चात् कुमार शब्द का प्रयोग किया। धीरे धीरे वह शील कुँवर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शाल कुवर गंगा की यात्रा करने के लिये निकला। दिल्ली जाकर उसने वहाँ के राजा अनंगपाल की पुत्री के साथ विवाह कर लिया। अगर हम जेठवा लोगों की प्राचीन कथाओं पर विश्वास करें क्योंकि उन कथाओं में वंश का क्रम मिलता है तो हमको गूमली की स्थापना के समय का पता चल जाता है। यह सभी को मालूम है कि राजा अनंगपाल ने दिल्ली के गौरव की वृद्धि की था और उसका समय विक्रमी सम्वत् ७४६ एवम् सम्वत् ६९३ ईसवी माना गया है। प्राचीन कथाओं के इस सत्य पर हमको विश्वास करना चाहिये। गूमली के सम्पूर्ण जीवन पर नजर डालने से जो तथ्य मिलते हैं, वे इसका स्पष्ट समर्थन करते हैं।

समय समय पर मध्य एशिया से बहुत सी जातियाँ आकर इस प्रदेश में आबाद हो गयी है और उनके सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा गया है। इसलिये सकोत्रा की उत्पत्ति विवाद में न पड़कर हम इतना ही कहना अधिक उचित समझेंगे कि बब्बर जाति सदा से एशिया में उल्लेखनीय रही है। अतएव यह पूर्ण रूप से सत्य है कि बानर शब्द बब्बर का अपभ्रंश है और बानर देवता के सम्मान के लिये यह बहुत आवश्यक था कि इस जाति को बब्बर न कहकर बानर कहा जावें। बब्बर और बर्बरता—दोनों शब्द बहुत अधिक बदनाम हो चुके हैं। इसलिये बानर शब्द उससे एक पृथकत्व प्रकट करता है। हुआ यह कि बानर जाति, एक नयी जाति उत्पन्न हो गयी।

जेठवा लोगों के वैवाहिक सम्बन्ध बहुत पीढ़ी पहले से जूनागढ़ के यादवा, ढाँक अथवा पट्टण के बल्हों, मूगीपट्टण के गाहिला, उमरकाट के सोढो और चावलो के साथ होते रहे हैं। इन लोगों में स्थान के सम्बन्ध में हमेशा से झगड़े होते आये हैं। चावड़ा लोगों से मालूम हुआ है कि उनका और जेठवा लोगों का आदि स्थान एक ही था। वे लोग लाल सागर के सकोत्रा द्वीप से आये और पहले-पहल आभा मण्डल में बस गये। उसके बाद वहाँ से प्राचीपट्टम और दूसरे स्थानों को चले गये।

घील के पश्चात् चौथे राजा फूलकुवर ने सूर्य के मन्दिर का निर्माण कराया था। [illegible] मन्दिर अब तक श्रीनगर में मौजूद है। उसके उत्तराधिकारी भीम ने गूमली में फैली हुई बरडा की पहाड़ियों के ऊपर किला तैयार कराया था, उसका नाम, उसी के नाम पर भीम कोट रखा गया था।

मेरी यात्रा के साथी मिस्टर विलियम्स ने, ऊपर चढ़कर गये थे, बताया कि यह किला बहुत लम्बा-चौड़ा है और पत्थरों को गढ़कर तैयार किया गया है। बिना सीमेंट के ये पत्थर जोड़े गये हैं। अब उन पत्थरों का ध्यान पूर्वक देखा जाता है तो पता चलता है कि वे लोहे अथवा इस्पात की मदद से जोड़े गये हैं। लेकिन प्रशंसा की बात तो यह है कि पत्थरों के जोड़ में कहीं पर भी एक टाँके का पता नहीं चलता।

दुख की बात तो यह है कि जेठवा लोगों का यह प्रसिद्ध किला अब जंगली जानवरों के रहने के लिये हो गया है। मेरे मित्र ने किले के ऊपर जाकर उसके एक जङ्गली सूकर को उत्तेजित भी किया था। वह किले के भीतर मांद मे पड़ा हुआ सो रहा था।

यहाँ के प्राचीन इतिहास मे लिखा है कि आठवें राजा ने करण बाघेला को पराजित किया था। लेकिन अनहिलवाड़ा के इतिहास से उसको गलत मानने के लिये विवश होना पड़ता है। उससे प्रकट होता है कि सोलंकी वंश के इस प्रसिद्ध राजा को पराजित करना तो दूर रहा, बल्कि उसके शासन के समय मे ही गूमली का पतन आरम्भ हो गया था।

दसवें राजा भाणजी के द्वारा कच्छ पर होने वाले आक्रमण का विवरण दिया गया है और लिखा गया है कि उसने वहाँ की राजधानी कपकोट और सिंध के मशहूर नगर थमनवाडा पर अधिकार कर लिया था। (१)

चौन्हवें राजाराम के सम्बन्ध मे बताया जाता है कि वह जूनागढ़ के राव चूडचन्द यदु का समकालीन था। उसका नाम गिरिनार के लेख में भी पाया जाता है।

राम के उत्तराधिकारी महोर अथवा महपा ने तुसाई के काठी राजा की लड़की के साथ विवाह किया था। इस वर्णन से जाहिर होता है कि जेठवा लोगों की उत्पत्ति बबर जाति से है।

घूमली के बाईसवें राजा खेमा तक कोई उल्लेखनीय घटना का वर्णन नहीं मिलता। खेमा के नाम का उल्लेख इसलिये आता है कि उसका मन्त्री जैता का नाम इसलिये प्रसिद्ध है कि उसने घूमली का मशहूर तालाब बनवाया था। वह दोरा जाति का था।

पच्चीसवें राजा आदित्य का लड़का हरपाल हुआ। उसने एक अहीर की लड़की के साथ विवाह किया था। देदान के बावरिया उसी की सन्तान हैं। उनके अधिकार मे ऊना और देलवाडा के बारह गाँव हैं।

उसके बाद इसके दूसरे उत्तराधिकारियों ने भी मेर लोगों के साथ अन्तर्जातीय विवाह किये थे। इस प्रकार जो एक मिश्रित जाति तैयार हुई, उसके लोगो ने अपने जो नाम करण किये, उनके साथ मातृपक्ष का सम्पर्क रहता है। इन लोगो की संख्या दो हजार से कम नहीं हैं। ये लोग युद्ध के हथियार धारण करते हैं और जेठवा राजा के संरक्षण में जीवन निर्वाह करते हैं।

पच्चीसवें राजा ज्येष्ठा का यह नाम जैठ नक्षत्र मे पैदा होने के कारण पड़ा। इसका अर्थ जेठ अथवा जेठा होता है। साधारण तौर पर यह जाति जेठवा के नाम से पुकारी गयी। इस जाति के राजा कम्पसेन ने सिंध से निकाले हुए सुमेरा वंश के हमीर को शरण दी थी। यह वही राजा है, जिसके शासन काल में घग्गर नदी सूख गयी थी और कवियों के अनुसार वह अब तक सूखी पड़ी है। यद्यपि इस कथा का कोई महत्व नहीं है। इसलिये कि अनहिलवाडा के इतिहास मे इस प्रकार का कोई विवरण नहीं है।

इसी राजा के राज्य का वर्णन करते हुये जेठवा की वंशावली में कनक सेन चौहान के दरबार मे विवाह के सम्बन्ध का एक विवरण दिया गया था। लड़की के साथ विवाह करने के लिये मेवाड़ का हमीर और अनहिलवाडा का चावडा राजा भी था। लेकिन लिखा गया है कि पूँछड़िया जेठवा उसमे सफल हुआ।

---

(१) शिवदासपुर अथवा शिवदासपुर आज तक कोट बहान के नाम से मशहूर है।

घूमली का राजा भांड जी ने अनहिलवाड़ा के युवराज को लड़ने में कैद कर लिया था और इसके बाद उसने बलराय से राणा की उपाधि धारण की थी। भांड जी के नाम के साथ ही हम जेठवा लोगों की ठोस वंशावली में पहुँचते हैं। उसके शासन काल में मुल्तान गोरी का फौजी स्टेशन मांगरोल में था। वह घूमली और श्रीनगर देखने आया था। उस मौके पर वह जेठवा राणों का धर्म बंधु बन गया था।

भांड जी का उत्तराधिकारी श्योजी के नाम का हुआ। उसके पुत्र का नाम सलामन (१) था।

एक पड़ोसी राज्य के चौहान राजा की लड़की में कविता की अनोखी प्रतिभा थी। वह जो कवितायें लिखा करती थी, उनकी प्रशंसा दूर-दूर तक थी। उस लड़की ने अपनी प्रतिभा का विकास की स्वयं चेष्टा की। वह अपनी कविता के अंशों को राजपूत जाति के राजकुमारों के पास पूर्ति के लिये भेजा करती थी। इसी के सम्बन्ध की एक घटना घूमली में भी हुई। उस लड़की की एक अधूरी कविता वहाँ पर पहुँची।

कहा जाता है कि चौहानों के एक भाट ने चौहान राजा की लड़की की एक कविता घूमली के दरबार में सालामन राजकुमार के हाथ में दी। राजकुमार ने उस अधूरी कविता की पूर्ति कर दी। इसका निश्चित पुरस्कार भी उसको मिल गया। अर्थात् चौहान राजकुमारी के साथ उसका विवाह हो गया।

राजकुमार की इस सफलता से उसके पिता जेठवा को प्रसन्नता न हुई। बल्कि वह ईर्षा करने लगा और कुछ ही समय के बाद राजा ने अपने बेटे सालामन को अपने राज्य से चले जाने का आदेश दे दिया।

सालामन अपनी पत्नी को लेकर सिन्ध चला गया और वहाँ के राजा ने उसके जीवन निर्वाह के लिये दोवा और धरजा की भूमि दे दी। सालामन वहाँ पर रहकर इस प्रकार अपनी गुजर करने लगा। उसके कई एक लड़के पैदा हुए। सालामन ने अपने परिवार के साथ इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। प्रचलित कथाओं में बताया गया है कि सालामन के लड़कों ने सेना लेकर घूमली पर आक्रमण कर लिया और उसका सब प्रकार विनाश किया।

हिन्दू भाटों की वंशावलियाँ ऐतिहासिक होने के स्थान पर रोचक और शिक्षात्मक अधिक होती हैं। यह स्वाभाविक है कि राज्य के विनाश का कोई न कोई कारण होता है। लेकिन ये भाट उस कारण को छिपाने और बदलने का कार्य करते हैं। एक ठठेरे का लड़की का अपहरण करने के कारण घूमली के राज्य को सिंहासन से

(१) भारत के पश्चिम में स का उच्चारण ह होता है। ऐसी दशा में सालामन प्रसिद्ध हालामण राजकुमार था, जो कथाओं में आता है।

उतारा गया था और वे जिस पश्चिमी प्रायद्वीप के मालिक थे, वहाँ पर भी उनके अधिकार में मुख्य [illegible] रहा।

ठठेरे की यह लड़की अधिक सुन्दरी थी। लेकिन उसके विचार धार्मिक थे, उसको देखने के बाद राजा का विचार गन्दा हो उठा। उसने उस लड़की से प्रस्ताव किया। लेकिन उस लड़की ने साहस पूर्वक राजा के प्रस्ताव को ठुकरा दिया। जब उस लड़की ने समझा कि राजा से मेरी किसी प्रकार रक्षा नहीं हो सकती तो उसने एक चिता बनायी और उसमें बैठकर उसने अपने हाथ से आग लगाने की चेष्टा की। लेकिन काम से पीड़ित राजा के ऊपर इसका कोई प्रभाव न पड़ा। उस मरणासन्न युवती को प्राप्त करने की राजा ने पूरी चेष्टा की और उसने उसको चिता से आकर घसीटा। यह सब लीला मन्दिर के द्वार पर हो रही थी, पुजारी ने राजा से प्रार्थना की कि वह ऐसा पाप न करे। लेकिन राजा पर पुजारी का भी कोई प्रभाव न पड़ा।

इस अपराध और पाप को देखकर पुजारी ने राजा को और उसके वंश को चिल्ला चिल्लाकर शाप देना आरम्भ किया। राजा ने इसकी भी परवा न की। यह देखकर मन्दिर के पुजारी ने सब के देखते-देखते अपने आपको बलिदान कर दिया। उसकी इस आत्म हत्या का जो प्रभाव पड़ा, वह किसी से छिपा नहीं है।

कहा जाता है कि उस राजा के इस प्रकार के पापों के थोड़े ही दिनों के भीतर सिंध से चलकर एक सेना आयी और उसने घूमली को आकर घेर लिया। छै मास तक आक्रमणकारी घूमली को घेरे पड़े रहे।

वहाँ के सभी लोगों के परिवार और बाल बच्चे भीमकोट नामक स्थान में चले गये और उनकी रक्षा का भार भेरों को सौंप दिया गया। राजा और उसके सामन्त शहर के एक भाग की रक्षा करने में लग गये। घूमली के लोग जब मौका पाते तो किले में आकर अपने बाल-बच्चों को देख आते।

यह परिस्थिति कुछ समय के बाद और भी भयानक हो उठी। आक्रमणकारी सेना के लोगों ने घूमली में प्रवेश किया और बाँसों की सीढ़ियाँ लगाकर वे किले में पहुँच गये। सिन्ध के सैनिकों ने किले में छिपे हुए घूमली के परिवारों का भयानक रूप से कत्ले आम किया। वहाँ पर राजवंश के लोग भी थे। सभी मारे गये और जो लोग वहाँ पर मौजूद थे, तलवारों से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले गये।

वंशावली में जो इन लोगों के नाम बताये गये हैं, उनमें से अधिकांश तो प्राचीन दाबी जाति के पाये जाते हैं। वंशावली और भाट की मौखिक बातों के अनुसार इस घटना की तिथि सम्वत् ११०६ सन् १०२३ ईसवी है। यह समय बने हुए स्मारकों में जो सन् और सम्वत् दिया गया है, उससे तीन वर्ष पहले का है।

असुरों (राजपूतों के भाटों ने इस शब्द का प्रयोग मुसलमानों के लिए किया है।)

के लिये साफ-साफ लिखा है कि उनके लम्बी लम्बी दाढ़ियाँ थीं। वे लोग मंदिर में गये और कुरान पढ़कर वापस लौट आये।

मैंने कई बार चित्तौड़, गूमली जैसे नगरों का उल्लेख किया है और वहाँ के स्मारकों के सम्बन्ध में भी विवरण दिये हैं। इनमें सतियों के स्मारक अधिक रोमाञ्चकारी हैं। उनके कथानक सुनकर यहूदी पैगम्बर के द्वारा मिस्र, ईडम (१) और टायर को दिये गये शापों की याद आ जाती है। गूमली के विनाश का कारण था। उसके राजा ने जो अधर्म किया, उसका परिणाम गूमली को ही भोगना पड़ा। उसे नष्ट हो जाना पड़ा। राजा ने एक धर्म परायणा युवती को नष्ट करने की चेष्टा की थी, उस युवती की रक्षा के लिए मंदिर के पुजारी ने मंदिर की वेदी पर अपनी आत्महत्या कर ली। इसका परिणाम न केवल राजा को बल्कि राज्य के उन सभी लोगों को भोगना पड़ा जिन्होंने राजा के इस अन्याय और अधर्म को बरदाश्त कर लिया था। ऐसे सभी लोगों का किले के भीतर करने आम हुआ।

धर्म परायणा युवती और धर्म प्राण पुजारी के शाप का एक एक अक्षर गूमली के प्रत्येक पत्थर पर उच्चरित हो रहा है। यह उजड़ा हुआ भविष्य में सदा सर्वदा उस अनाचार की कहानी लोगों को सुनाता रहेगा, जिसके परिणाम स्वरूप इस फलते फूलते हृदय को दलना पड़ा।

इसी प्रकार की एक घटना भाँवल में भी हुई बतायी जाती है। गूमली की सामग्री से वहाँ के कुछ लोगों ने भाँवल में कुछ मकान बनवाये थे। वे एक साथ गिर गये और जो लोग उन मकानों को बनवा रहे थे, वे सबके सब अपने परिवारों के साथ दबकर मर गये।

हमें जेठवों के इतिहास की दो घटनायें ऐसी मिलती हैं, जो किसी प्रकार निरा-धार नहीं हैं। पहली घटना सम्वत् ७४६ में गूमली की स्थापना की है और दूसरी सम्वत् ११०६ में इसके विनाश की पापपूर्ण दुर्घटना है।

प्रथम घटना का सम्बन्ध शील कुँवर के साथ है। वह दिल्ली में अनंगपाल का समकालीन था। गूमली के इस भयानक विनाश का समर्थन वहाँ के स्मारकों के पत्थरों से होता है। वंशावली को स्वीकार करते हुए कुछ वर्षों का अन्तर—सम्वत् १११६ का समय भी माना जा सकता है। इस समय के मध्यकालीन दिनों में तीन सौ साठ वर्षों के भीतर हम बीस राजाओं को सिंहासन पर बैठते हुए देखते हैं। यहाँ का चारण भी इतने ही राजाओं की संख्या को स्वीकार किया है। गूमली के विनाश की दुर्घटना

(१) पैलेस्टाइन का एक दक्षिणी नगर, जो मृत समुद्र और अरावा की खाड़ी के बीच के पहाड़ों के पास है। यहाँ के निवासी ईसाऊ के सम्बन्धी बताये जाते हैं। यहूदी पादरियों ने इस नगर को अभिशाप दिया था।

आज से सात सौ वर्ष पहले हुई थी। यह समय स्मारकों के अनुसार भी सही साबित होता है।

इस बीच में एक ऐसा समय आता है, उस पर ध्यान जाना अत्यन्त स्वाभाविक है। वह है गूमली के विनाश से दस पीढ़ी पहले का समय। वंशावली से जाहिर होता है कि सिंह जी ने चित्तौर की राजकुमारी के साथ विवाह किया था। यदि प्रत्येक राजा का शासन काल औसतन तेईस वर्ष मान लिया जाय तो इस हिसाब से सिंह जी का समय ८२३ ईसवी आता है। यह समय उस घटना के बहुत करीब पड़ जाती है, जिसका उल्लेख मेवाड़ के इतिहास में हुआ है। पहला इस्लामी आक्रमण उस समय हुआ था जब वहाँ के समस्त राजपूत चित्तौर की रक्षा के लिये एकत्रित हुये थे। उन चौरासी राजाओं में—जिनके लिए किले के भीतर स्थान बनाये गये थे—मेवाड़ के भाट ने जेठवा राजा का विवरण साफ साफ दिया है।

जेठवा लोगों के इतिहास में उन परिस्थितियों का भी वर्णन किया गया है, जिनके कारण यह विवाह पूरा हुआ था। हिन्दुओं के मत के अनुसार, प्रत्येक राजा चित्तौर के महाराणा के सम्मान की रक्षा करने के लिए वहाँ पर पहुँचा था। यह घटना यद्यपि अधिक गम्भीर नहीं है। परन्तु इसका महत्व इसलिए अधिक हो जाता है कि इसके द्वारा जेठवा लोगों की उत्पत्ति उन दिनों में नहीं साबित होती।

चित्तौर का कोई एक गायक घूमता फिरता हुआ, अचानक, बिना किसी उद्देश्य के जेठवा राजा के दरबार में पहुँचा था। उस राजा ने उस गायक को बहुत कुछ इनाम में देकर खुश किया था और उस गायक को विवाह के प्रस्ताव का माध्यम बनाया।

उस प्रस्ताव के उत्तर में चित्तौर के रावल ने घृणा पूर्ण शब्दों में कहला भेजा मैं उसके साथ अपनी लड़की का ब्याह नहीं कर सकता, जिसका बाप बानर हो और माता मछली हो।

विवाह के प्रस्ताव का इस प्रकार तिरस्कारपूर्ण उत्तर सुनकर जेठवा राजा को बड़ी ठेस पहुँची। इसके बाद कहा जाता है कि उसके भाट ने बरदा पहाड़ी पर बने हुए हर्ष माता के मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया और उस मन्दिर में वह तपस्या करने लगा। उसने इतनी कठोर तपस्या की कि इस मन्दिर की कुल देवी ने सामने आकर जेठवा लोगों की प्राचीन वंशावली को बताया। यह मालूम करके वह चित्तौर गया और वहाँ के राजा से मिलकर उसने इस कथा का सम्पूर्ण विवरण बताया। राजा उसे सुनकर प्रसन्न हुआ और उस भाट की मनोकामना पूर्ण हो गयी।

इस प्रकार की घटनाओं को सुनकर हम पूर्छडिया रावों के एक सौ पैंतालीस राजाओं को नहीं मान सकते। इसके विषय में हमें जो तिथियों के क्रम मिलते, उनके सामने इस प्रकार की कथायें और घटनायें कुछ भी महत्व नहीं रखती। यह बात जरूर है कि बिना किसी आधार के इस प्रकार जो ये कथायें गढ़ी गयी हैं, उनसे ऐतिहासिक

घटनाओं के कुछ अंश निकाले जा सकते हैं। भारत में मुसलमानों के आने के कुछ ही शताब्दी पहले का यह समय था, जब इस देश की राजनीतिक शक्तियाँ क्षीण हो रही थीं, बाहर से लगातार जातियाँ आ-आकर यहाँ पर आक्रमण करती थीं और वे बाद में यहाँ के राजपूतों में खप जाने का प्रयास करती थीं।

हिन्दुओं के राजवंशों के सम्बन्ध में मिलने वाले सम्वतों के क्रम का जिसने अध्ययन किया है, उसे मालूम होगा कि वल्लभी के शिला लेखों में चार विभिन्न सम्वतों का उल्लेख मिलता है, जिनमें से एक, जो अन्तिम है, सीहोह अथवा सिंह के नाम से जाहिर है। इसने वल्लभी सम्वत् ६४२ विक्रम सम्वत् १३२० सीहोह सम्वत् १५१ होता है। उसको अगर १३२० में से घटा दिया जाय तो सम्वत् ११६६ अथवा १११३ ई० ही बाकी रहता है। उस समय यह सम्वत् आरम्भ हुआ होगा। उन दिनों में सिद्ध-राज अनहिलवाड़ा का शक्तिशाली राजा था और इन क्षेत्रों में उसका सम्पूर्ण अधिकार था। क्या यह सम्भव हो सकता है कि वल्हरों के इस शक्तिशाली राजा ने अपने विशाल साम्राज्य के एक छोटे-से टुकड़े में इस नये सम्वत् को चालू करने की इजाजत दी हो? किसी भी अवस्था में इसका सम्बन्ध गूमली के सीहोह अथवा सिंह के साथ हो सकता है। लेकिन गूमली का तो विनाश हो चुका था और वहाँ का अधर्मी राजा अपने कर्मों का फल भोग रहा था।

चारणों ने सालामन के राज्य से निकाले जाने की दुखपूर्ण घटना का वर्णन किया है। सिंध में सुम्मा वंश के आमं ऊनड़ ने उसको अपने यहाँ शरण दी थी। सालामन के पुत्र बमनिया अथवा बमनिवा ने एक सेना के साथ आक्रमण करके अपने पिता को सिंहासन पर बिठाने की चेष्टा की। लेकिन सालामन ने इसे स्वीकार नहीं किया। इसलिये कि जहाँ पर उसके पिता और राज्य के ब्राह्मणों का रक्त बहा था और जो राज्य एक सती के शाप से दूषित हो चुका था वहाँ पर जाकर राज्य करना उसने किसी भी अर्थ में अच्छा नहीं समझा।

सालामन ने सिंध में अपने दो विवाह किये थे। एक धमरका के जाडेचा की लड़की के साथ और दूसरा उमरकोट के सुमरा के यहाँ। इस तरह से वह वंश मुसलमान हो गया और अब तक सिंध में दोबावार जी की जमीन पर इन लोगों का अधिकार है।

सालामन की कवियित्री पत्नी—जो विवाह के पूर्व चौहान राजकुमारी थी—का पुत्र अपने प्रायद्वीप में लौटकर आया था और रामपुर में वह रहने लगा था। वहाँ पर उसके वंश के लोग कई पीढ़ियों तक आबाद रहे। सम्वत् ११०६ में गूमली का विनाश हो गया था और सम्वत् ११६६ में सीहोह सम्वत् चालू हुआ था। ऐसी दशा में हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि सालामन के बेटे और सिंह के पौत्र ने सम्भव है राजधानी कायम करके गूमली के अंतिम राजा के नाम से उसके नवीन सम्वत् को सजीव बनाया हो।

इस घटना का अन्त इस प्रकार होता है। रामपुर में जेठवा बराबर बने रहे। लेकिन एक समय ऐसा आया, जब जाम ने उनको वहाँ से चले जाने के लिये मजबूर कर दिया। तब वे समुद्र के किनारे चले गये और वहाँ पर वे रहने लगे। अपने रहने के लिये उन्होंने जो भवन बनवाये, वे अब तक छाया के नाम से प्रसिद्ध है। उन लोगों ने कुछ समय के बाद सुदामापुर की तरफ अपनी राजधानी भी बना ली। लेकिन उन्होंने छाया नाम से जो भवन बनवाये थे, उनके महत्व को उन्होंने कभी कम नहीं होने दिया। उनके राजतिलक राजधानी मे नही, अब तक छाया भवनों में ही होते हैं। उन लोगों ने यह एक परम्परा कायम कर दी।

राजधानी कायम करने के पश्चात् उनकी ग्यारह पीढ़ियाँ व्यतीत हो चुकी हैं। आज-कल जो उनके राणा हैं, वे खेमजी के नाम से प्रसिद्ध हैं और वे जाम के भान्जे हैं। उनकी दो पत्नियाँ हैं। एक तो डाक के बल्हों की लड़की है और दूसरी रामपुर के झालों की।

आज की परिस्थितियाँ दूसरी हैं। उनका पहले का सामाजिक ढाँचा समाप्त हो गया है। काठी, कुमाली, मेर, बल्ह, झाला और जाम लोगों के साथ अब उनके रक्त का सम्मिश्रण हो चुका है और सौराष्ट्र की वंशावली में उनकी गणना छत्तीस राजवंशों में होने लगी है। हमें इसके स्पष्ट करने में कुछ भी सकोच नहीं है कि उनके सामाजिक परिवर्तन म परिस्थितियों ने बहुत बड़ा काम किया है, और अब वे हिन्दू हैं।

जेठवा लोगों के यहाँ अब भी जब कोई सामाजिक उत्सव होता है तो उनके यहाँ कपि ध्वज अर्थात् हनुमान की आकृति वाला झण्डा प्रयोग में लाया जाता है, जब कभी जेठवा ससुराल जाता है तो ससुराल के लोगा में उसकी बन्दरी पूंछ का मनोरञ्जन होता है। ससुराल की स्त्रियाँ इस पूंछ के नाम पर सभी प्रकार का विनोद करती हैं।

हर्षद माता अब भी उन लोगों की कुल देवी है। बरडा के पहाड़ो पर उनके मन्दिर में सर्वसाधारण के प्रवेश की मनाही है। इसलिए मीआनी में एक दूसरा मन्दिर बन गया है। यहाँ पर हर्षद के उत्सव मे बालनाथ महादेव भाग लेते हैं।

(नगड़ो), २४ दिसम्बर—सात कोस का फासिला। जनहीन जङ्गलों में होकर हमें यात्रा करनी पड़ी। आरम्भ में तीन चार झोपड़ियाँ मिलीं। उनमें अहीर लोग रहते थे। बबूलों और जगली पेड़ों की जमीन में वे लोग खेती करते थे। उनके खेतों के चारों तरफ थूअरों के पेड़ इतने अधिक हैं कि उनमें खेत पूर्णरूप से सुरक्षित हैं।

यहाँ पर (राजरियो) नामक एक गाँव मिला। उसमें कुछ सामग्री आकर्षण की मालूम हुई। महमूद के आक्रमण के समय यहाँ के चारण अथवा भाट ने अपनी आत्म हत्या कर ली थी। किसी दूसरे तरीके से वह अपनी रक्षा नहीं कर सकता था। उसके इस बलिदान के कारण वह गाँव चारणों के वन वालों के लिये तीर्थ स्थान बन गया।

देवला, २५ दिसम्बर—छै कोस का फासिला। लगभग आधे रास्ते पर हमने सानी नामक नदी को पार किया और उसके बाद ओझपात को भी पार किया। यह ओखामण्डल की पूर्वी सीमा के पास असिया भादरा गाँव के बहुत निकट है। उत्तर में होलर अथवा हालार है। यहाँ पर केवल अहीर लोग रहते हैं।

कहा जाता है कि इन अहीरों को स्वामीत्व का अधिकार नहीं है। यहाँ के अधिकारी राजपूत लोग हैं। ये राजपूत जो यहाँ पर अपना अधिकार रखते हैं, अधिक नहीं हैं और इधर उधर बहुत थोड़ी संख्या में रहते हैं।

मैंने यहाँ के अहीरों से उनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में बातचीत की। वे अपने आपको यदुवंशी बतलाते हैं। उनका कहना है कि हम लोग जमुना नदी के किनारे सौरसेन गोकुल भूमि को छोड़कर अपने गोपाल कन्हैया के साथ यहाँ चले आये थे। किसी भी अवस्था में इनका विश्वास पौराणिक कथाओं के आधार पर है। यह निश्चित है कि इनकी जाति भ्रमणशील है। अपने स्वाभाविक जीवन में ये लोग इस प्रायद्वीप के अन्य सभी लोगों से अच्छे हैं।

अहीर लोग शारीरिक शक्ति में भी अधिक अच्छे माने जाते हैं। उनका शरीर खेती के कार्य के लिये अथवा पशुओं को पालने के लिये बहुत अनुकूल साबित होता है। ये लोग खेती करने के साथ साथ पशुओं का पालन करते हैं और गाड़ियाँ भी चलाया करते हैं, उनमें प्रायः बैल जोते जाते हैं।

अहीरों के ये गाँव बहुत साधारण हैं। यहाँ के इन गाँवों में तीस चालीस घरों से अधिक कहीं नहीं मिले। इन अहीरों में हमने एक विशेषता यह देखी है कि पारिवारिक सुख कि अपेक्षा ये लोग व्यक्तिगत सुख अधिक पसंद करते हैं। मीआनी हमारे बाईं ओर चार कोस के फासिले पर थी। वहाँ से हमने कुछ अच्छी मछलियाँ मगायी थी।

मुक्तासार, २६ दिसम्बर—आठ कोस का फासिला। यह फासिला अठारह मील का होता है। इस लम्बे रास्ते में केवल दो छोटे गाँव मिले। वे एक दूसरे से दस मील की दूरी पर थे। अर्थात् देवला से दो मील की दूरी पर सतीपुर—जिसमें अहीरों के पचीस से अधिक मकान नहीं थे और (बगास) में लगभग पचास घरों की आबादी थी।

इस पहाड़ी क्षेत्र में बहुत अधिक चरागाह हैं। उन्हीं में होकर हम दिन भर यात्रा करते रहे। इन चरागाहों में हमने अच्छे से अच्छे पशु देखे, जो घास चर रहे थे। यहाँ की घासों में दूब अधिक पैदा होती है।

यहाँ के लोग मुक्तासार को सुन्दर झील भी कहते हैं। यहाँ पर जङ्गली जल मुर्गियाँ अधिक पायी जाती हैं। इनके उदर में पीले रंग का वह पदार्थ पाया जाता है, जो उधर के मन्दिरों के सजाने में आता है।

द्वारका, २७ दिसम्बर—८४ कोस का फासला। आनन्द भीम से द्वारका देखने तक तीन मील का रास्ता बिल्कुल उजड़ है। यहाँ समुद्र के किनारे मान्डी नामक एक गाँव मिलता है। उसका अस्तित्व अब नष्ट हो गया है। कहा जाता है कि वह किसी समय एक अच्छा गाँव था। लेकिन समुद्री डाकुओं ने लगातार आक्रमण करके उसे नष्ट कर डाला।

इस उजड़े हुए गाँव के पश्चिम में लगभग चार सौ गज के फासिले पर एक खारी नदी है। उसका निकास बालू की दीवार से बन्द हो गया है। अगर उसको हटा दिया जाय तो उसका आकार प्रकार फिर पहले की तरह हो जाय। हमने समुद्र के किनारे किनारे चलना आरम्भ किया। समुद्र की लहरें रह रहकर कंकरीली चट्टानों के साथ टकरा लेती थीं। यहाँ की जमीन में बालू से भरी हुई चट्टानें अधिक हैं, जहाँ पर बबूल के सिवा और कोई पेड़ नहीं पैदा होते।

लगभग छै मील के पहले से ही द्वारका के मन्दिर का शिखर दिखायी देने लगा। एक मील आगे की तरफ चलने पर हमको दूसरी खाड़ी में प्रवेश करना पड़ा। उसमें घोड़े की जीनतक पानी था। परकोटे से घिरे हुए नगर में चलते हुए हमको मन्दिर का शिखर साफ-साफ दिखायी दे रहा था।

इस समय बैरोमीटर ३०° ४ पर थर्मामीटर प्रातः ६ बजे ६२° पर एवम् दोपहर में ८५° और सूर्यास्त के समय ७१° था।

कृष्ण के मन्दिर में सबसे अधिक ख्याति प्राप्त द्वारिका का मन्दिर है, समुद्र के किनारे कुछ ऊंचाई पर बना हुआ है। वह मन्दिर ऊंची दीवारों से घिरा हुआ है। मन्दिर को भली भाँति देख सकने के लिए उसके भीतर जाना पड़ता है और उसका रास्ता बना हुआ है। मन्दिर की बनावट अच्छी है।

यह मन्दिर तीन हिस्सों में बना हुआ है। उसका एक भाग मण्डप अथवा सभा भवन है, दूसरा देवस्थान अथवा निज मन्दिर है और उसका तीसरा भाग मन्दिर का शिखर है।

हम यहाँ पर मन्दिर के मण्डप की बात पहले कहना चाहते हैं। इसकी बनावट लगभग चौकोर है। पूरी इमारत पाँच खण्डों में विभाजित है। प्रत्येक खण्ड में बहुत से स्तम्भ बने हैं। सबसे नीचे के खण्ड की ऊंचाई बीस फीट है। मन्दिर में गुम्बज का आधार बहुत मजबूत रखा गया है, सबसे ऊंची चोटी धरातल से पचहत्तर फीट ऊंची है, मन्दिर के चारों कोनों पर चार चार मजबूत खम्भे बने हैं, और यही पूरी इमारत का बोझ अपने ऊपर लिये हैं, प्रत्येक खण्ड में एक रविश बनी हुई है और उसके सिरे पर तीन-तीन फीट ऊंची दीवार बनी है, जिससे कोई मनुष्य नीचे न गिर जाय। मन्दिर की बनावट के सम्बन्ध में यहाँ पर भी लगभग वही सब बातें आयी हैं, जिनके वर्णन ऊपर अनेक मन्दिरों के सम्बन्ध में किये जा चुके हैं।

यहाँ पर कृष्ण का पूजन रणछोड़ के रूप में होता है, कृष्ण का यह वही रूप है और वही समय है, जब उनको मगध के बौद्ध राजा ने उनके पिता के देश सौरसेन से निकाल दिया था, यह मन्दिर विशाल होने पर भी यात्रियों से भरा रहता है, इसके दक्षिण-पश्चिम कोने में कृष्ण के दूसरे रूप मथुरानाथ का छोटा-सा मन्दिर है और दोनों के बीच में एक रास्ता है।

गोमती एक छोटी-सी नदी है, उसका निकास बहुत पवित्र माना जाता है, कहा जाता है कि इसको पार करने के समय आदमी का पैर गीला नहीं होता, बड़े मन्दिर से सङ्गम पर बने हुए सङ्गम नारायण के मन्दिर तक गोमती के किनारे किनारे उन यात्रियों की समाधियाँ बनी हुई हैं, जिनकी यात्रा करते हुए मृत्यु हो गयी थी।

यहाँ पर पाँच पाण्डवों में से चार भाइयों की समाधियाँ भी हैं, उनके सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की कथायें लोगों के मुख से सुनने को मिलती हैं, लोगों का यह भी कहना है कि पाण्डवों का पाँचवाँ भाई हिमालय में जाकर गल गया था, लोगों का यह भी कहना है कि उसके साथ बलदेव भी था, उसकी प्रतिमा कुछ सीढ़ियों के नीचे स्थापित है।

मेरे शिला-लेखों की खोज यहाँ पर बेकार हो गयी। इसलिये कि जो दो लेख मुझे यहाँ पर मिले भी, वे किसी प्रकार पढ़े नहीं जा सके। यहाँ की दीवारों में विभिन्न स्थानों से आये हुए भक्तों और यात्रियों ने अपने-अपने नाम लिख दिये थे। लेकिन उनसे भी मुझे कोई ऐसी सामग्री नहीं मिल सकी कि जिसका मैं कुछ उपयोग कर सकता।

धारो और एकता के देवता का भी यहाँ पर एक मन्दिर है। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके पुजारी को अपने वंश की बातों का भी कुछ अधिक ज्ञान नहीं है। द्वारिका माहात्म एक नीरस पुस्तक है, उसको पुजारी लोग शास्त्रीय ग्रन्थ कहते हैं। उसमें अशुद्ध और झूठी घटनाओं के सिवा कोई दूसरी चीज नहीं है। मेरा अनुभव है कि इसी प्रकार के कुछ और भी ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें कोई भी काम की बात नहीं मिलती। लेकिन मन्दिरों के पण्डित और पुजारी उन सबको वेद और शास्त्र का अंग मानते हैं।

यहाँ के पण्डे लोग यात्रियों के हाथों में देवता की छाप लगाने में बड़े पटु हैं। ऐसा करके ये पण्डे यात्रियों के हाथों को सदा के लिए खराब कर देते हैं। यहाँ की बहुत सी बातें अजीब और बुद्धि से बाहर हैं। सिर के बालों को मुड़वा कर जल के देवता वरुण को समर्पण किया जाता है और नकदी भेंट पण्डा को दी जाती है।

मन्दिर के पण्डे और पुजारी पढ़े-लिखे नहीं होते। अपने इन कार्यों के लिए उनको पैतृक अधिकार मिलता है। हमें यह भी पता नहीं कि इनके पिता और पूर्वज भी कुछ पढ़े लिखे थे या नहीं। आश्चर्य यह है कि इन पुजारियों और पण्डों से यात्रियों को

भगवान की जो कथायें सुनने को मिलती हैं, वे अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकतीं और यात्री लोग विश्वास का चश्मा लगाकर उन सबको सत्य और सही मान लेते हैं।

यहाँ के लोगों का कहना है कि ओखा मण्डल के राजा वज्र नाभ का बनवाया हुआ यहाँ पर एक मंदिर है। वज्र नाभ कृष्ण का पोता था। उसका वंश महाभारत के बाद सिन्ध के पश्चिम में इधर उधर लगभग एक शताब्दी तक भ्रमता रहा। वज्र नाभ स्वयम् बदरिका आश्रम चला गया था और उसके वंश के लोग जगतकूट लौट आये और वहाँ आकर एक हजार वर्ष तक राज्य करते रहे।

इन्हीं दिनों में रईस और सईस नाम के दो राक्षस प्रकट हुए। उन दोनों ने इन सबको मार डाला और डेढ़ हजार वर्ष तक वहाँ पर अपना अधिकार रखा। इस प्रकार की कथायें भिन्न भिन्न लोगों से सुनने को मिलती हैं। जब मोहम्मद यूँकर सिन्ध में आया, कहा जाता है कि उसके पास विक्रमादित्य की एक आश्चर्यजनक अगूठी थी। उसने गोर और गजनी पर पहले ही अधिकार कर लिया था।

मोहम्मद ने मलोर गोट और औरखा पर अधिकार कर लिया। इसके साथ ही बेलम जाति के रईस सईस के वंशजों को मार डाला। इसके बाद पूर्व की तरफ से कनक सेन चावडा आया और उसके वंश के लोग कई पीढ़ियों तक राज्य करते रहे।

इसके पश्चात् मारवाड से उम्मेदसिंह राठौर आया। उसने चावडा लोगों को मार डाला और कूट पर अधिकार कर लिया। इन राठौरों के वंशजों ने यहाँ के निवासियों के साथ अन्तर्जातीय विवाह करके बाधेर कहलाने लगे। कुछ दिनों तक इस प्रकार का सिलसिला चलता रहा। जब औरङ्गजेब मंदिरों को तोड़ता हुआ इस तरफ आया तो द्वारिका का शिखर भी गिरवा दिया गया।

इस प्रकार की बातें उन कथाओं का संक्षिप्त रूप है जो हिन्दुओं के ग्रन्थों में लिखी गयी हैं। उनमें जगतकूट की स्थापना, कृष्ण के वंशजों का यवनों के द्वारा निकाला जाना मोहम्मद (बिन कासिम) का आक्रमण आदि घटनाओं का वर्णन मिलता है।

असुरों और यवनों—बेलम राजाओं, जिनका सफाया महमूद अथवा मोहम्मद ने किया था। इसके आखीर में चावडा लोगों और राठौरों की प्राचीन कथाओं का विस्तार में वर्णन मिलता है।

यहाँ की कुछ घटनायें ऐसी जरूर हैं, जिनमें परिश्रम के साथ खोजने पर कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की जा सकती है। लेकिन इन कथाओं का कालसीमा में या निकालना कुछ सरल नहीं है।

बीसवाँ प्रकरण

प्राचीन काल की ग्रन्थियाँ

सदियों से होने वाली लूटमार—शुद्ध राठौर रक्त का दावा—मुसलमानों के द्वारा मन्दिरों का विनाश—गोवर्धन का दूसरा नाम—शूरवीरों के स्मारक—कृष्ण की कथाओं में अतिशयोक्ति—कृष्ण का नाम रणछोड़ क्यों पड़ा—प्राचीन काल के युद्धों में शङ्खध्वनि का महत्व—मीराबाई का मन्दिर—जल के डकैत और लुटेरे—आइवा के स्मारक की बेइज्जती।

३० और ३१ दिसम्बर—आरमरा और बेट। अठारह मील तक हमने खाड़ी के किनारे किनारे एक अच्छी सड़क पर यात्रा की। यह सड़क वेरावल और कच्छगढ़ के बिले में होकर आगे जाती है। आरमरा का प्राचीन और एक प्रसिद्ध कस्बा समुद्र के कारण बेट से अलग हो गया है। यहाँ की जमीन बेकार हो गयी है। उसमें अपने आप पैदा हुए थूवर के पेड़ ही दिखायी देते हैं।

इधर उधर देखने के बाद कुछ भैंसों के समूह दिखायी पड़े। उनको रैवारी लोग चरा रहे थे। उस स्थान में कुछ झाड़ियाँ भी दिखायी पड़ीं। यहाँ पर सदियों से लूट मार होती रही है और उसी के फल स्वरूप यह क्षेत्र उजाड़ हो गया है। एवम् यहाँ की जमीन बहुत दिनों तक जोती बोयी न जाने के कारण बंजर हो गयी है।

यहाँ पर हमको लोहरा माटी लोग मिले। ये लोग बड़े परिश्रमी होते हैं। और उन्हीं स्थानों पर इनके मिलने की सम्भावना होता है, जो स्थान धन धान्य से सम्पन्न होते हैं। ये लोग समुद्री लुटेरों वाघेरों अथवा मकवाणों के साथ घुल मिल गये हैं।

आरमरा का पटेल अब तक अपने शुद्ध राठौर रक्त का गर्व करता है। यदि यह सही है तो उसका गर्व करना स्वाभाविक भी है। आस-पास के कुछ स्थानों में मिलने वाले आधार पर यह सही जान पड़ता है कि आरमरा प्राचीन द्वारिका है। यहाँ के टूटे हुए देव मन्दिर इस बात का प्रमाण दे रहे हैं।

यहाँ के यात्रियों के शरीर पर कहीं न कहीं कृष्ण की छाप लगायी जाती है। लेकिन यह काम ब्राह्मणों के बजाय यहाँ पर चारण लोग करते हैं। इस छाप के लिये

प्रत्येक यात्री चारण को ग्यारह रुपये प्रदान करता है। साधु और सन्यासियों को भी यह छाप लेनी पड़ती है।

आरमरा के करीब अन्य कुछ चीजें भी आकर्षक पायी जाती हैं। उनमें यहाँ के कुछ मन्दिर भी हैं। लेकिन इन मन्दिरों में कोई ऐसा नहीं है, जिसको नष्ट करने के लिये मुसलमानों ने अत्याचार न किया हो। कृष्ण के सहस्र नामों में से एक धन के पर्वत के स्वामी गोरधननाथ के मन्दिर में उल्लू पक्षियों ने अपना पूरा अधिकार कर रखा है। गोरधननाथ का ही नाम गोवरधन है।

गोरेजा अथवा गुरेवा से होकर हम सवेरे निकले थे। वे लोग इसको कच्छ गजनी के नाम से पुकारते हैं। यहाँ पर हमने मुसलमानों की दो प्रसिद्ध मजारें देखीं। उनमें एक का नाम अस्सा और दूसरे का पूर्री है। इन मजारों के सम्बन्ध में भी हमको विचित्र कथायें सुनने को मिलीं। ये मजारें लम्बाई में बीस फीट से अधिक हैं और इनकी चौड़ाई भी लगभग इतनी ही है। आरमरा में पाँच मजारें और भी बतायी जाती हैं, उनमें प्रत्येक छत्तीस हाथ लम्बी और छै हाथ चौड़ी है। उन मजारों से इस बात का प्रमाण मिलता है कि इस जगतकूट में पहले जो असुर अथवा यवन रहते थे, वे वास्तव में दैत्य अथवा राक्षस थे। बकहार्ड ने फिलिस्तीन में नेबी अथवा नबी ओशा की मजार के वर्णन में लिखा है "यह एक ताबूत की शक्ल में है। छत्तीस फीट लम्बी, तीन फीट चौड़ी और साढ़े तीन फीट ऊँची है इसका निर्माण उन तुर्कों के विश्वास के अनुसार हुआ है। जो यह मानते थे कि उनके सभी पूर्वज विशेषकर मोहम्मद साहब के पहले के पैगम्बर राक्षस थे।'

आगे उसने यह भी लिखा है कि (साओलो सीरिया) में नूह की मजार इनसे भी बड़ी और विशाल है। अगर ये आरमरा के असुर अथवा राक्षस आरमीनियन जाति के थे, जो प्राचीन असीरिया से आये थे तो वे सभी बातों में अपने पूर्वजों की प्रथाओं का ही अनुसरण करते रहे होंगे।

अब हम आरमरा की मजारों को छोड़कर अधिक आकर्षक स्मारकों की तरफ आते हैं। उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार की भ्रामक कथायें नहीं हैं। लेकिन यह अवश्य है कि उनमें जो लिखा गया है, वह इतना गूढ़ है कि उनका पढ़ना और अर्थ लगाना दोनों कठिन है। लेकिन सतोष की बात यह है कि उनके लेख में कोई भी दो अर्थ नहीं निकाल सकता। अर्थ उनका एक ही होता है।

उसके टूटे-फूटे चबूतरों और छत विगत छतों के पत्थरों में जो दो बच गये हैं उनमें साफ-साफ उभरे हुए अक्षरों में लिखा गया है—"युद्ध रत भीकमराय के जहाज।" इनमें से एक स्मारक तीन मस्तूल के जहाज की तरह का है। इसमें तोपों के लिये सूराख बने हुए हैं। दूसरा अधिक पुराना और प्राचीन आकार प्रकार का जहाज है। उसमें

मस्तूल एक है। उसमें युद्ध के सम्बन्ध में कोई भी बनावट नहीं है। ये दोनों जहाज पीछा करने के रूप में दिखाये गये हैं। एक आदमी ढाल और तलवार लेकर तेजी के साथ निकलता हुआ दिखाया गया है और दूसरा अपनी नाव से अगले भाग से चलता हुआ।

स्मारकों पर अंकित इन चित्रों को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ये उन शूर वीरों की आकृतियाँ हैं, जो यहाँ पर समाधिस्थ किये गये हैं।

दूसरा स्मारक राणा रायमल का है। उसने सम्वत् १६२८ सन् १५५७ ईसवी में राजा का आक्रमण होने पर उसका सामना किया था। उसके साथ, उसके सगे सम्बन्धी इक्कीस आदमी मारे गये और जेठवानी उसके साथ चिता में बैठकर सती हुई थी। मारे जाने वाले इक्कीसों आदमियों के स्मारक यहाँ पर बने हुए हैं। यहाँ पर स्मारक और भी था, जो अन्य स्मारकों के बाद में बना था और वह किसी मसूरी लुटेरा की स्मृति में बनाया गया था। उसके स्मारक में लिखा था—'सम्वत् १८१६ सन् १७७३ ईसवी में (जदरू) खारवा समुद्र में मारा गया।'

१ जनवरी १८२३—हमने बेट का इलाका पार किया। हिन्दुओं के ग्रन्थों में इसको शंखोद्धार अथवा शंखों का दरवाजा लिखा गया है। उनके यहाँ इसको एक पवित्र तीर्थ माना गया है। यहीं पर कृष्ण ने पथियन अपोलो की भूमिका अदा की थी। अपने शत्रु तक्षक का वध करके पीड़ित लोगों का उद्धार किया था, जिसको चारों से उसने महाशंख में छिपा दिया था। इसी कारण इस द्वीप का यह नाम पड़ा है।

कृष्ण की पूरी कथा को अलंकृत बनाकर लिखा गया है। वह कहीं पर भी अरुचिकर नहीं है और ऐसी भी है कि उसकी ग्रन्थियाँ सुलझाई न जा सके। हिन्दुओं की पौराणिक कथाओं में कदाचित् इससे अधिक रोचक कथा दूसरी नहीं है। गरुड़ को कृष्ण की सवारी बतायी गयी है और उनके विरोधी बौद्धों को तक्षक नाग अथवा साँप के रूप में अंकित किया गया है। यह नाम उन जातियों को दिया गया है जो समय-समय पर इस देश में आकर आक्रमण करती रही हैं। उन्हीं लोगों में (तक्षिलो) जाति के लोग भी थे। अलेकजेण्डर का मित्र, विक्रम के शत्रु तक्षक शालिवाहन के नाम से अधिक मशहूर है।

यादव राजकुमार कृष्ण की कथा में—जिन्होंने स्वयं बुद्ध के मत को त्याग कर विष्णु का मत ग्रहण किया था—हिन्दुओं के इस दूरवर्ती स्थान पर उनके नाग-शत्रु से स्पष्ट साम्प्रदायिक संघर्ष का आभास मिलता है। इसी के अनुसार उनको मगध के नास्तिक राजा जरासंध के साथ हार जाने के कारण 'रणछोड़' नाम दिया गया था। अन्त में इन धार्मिक एवम् घरेलू लड़ाइयों के फलस्वरूप ही उनकी मृत्यु हुई

और अम्पूर्ण यादव वंश इधर उधर हो गया। इसलिए कि वे ही अपने वंश के एक मात्र आधार थे। (१)

शङ्खद्वार अब तक शङ्खों के लिये प्रसिद्ध माना जाता है। एक किनारे पर जहाँ जल का बहुत कमी है और उसके करीब ही जहाज ठहरने का स्थान है—वहीं पर ये शङ्ख पाये जाते हैं। जो शङ्ख किसी समय युद्ध की तैयारी की सूचना देते थे, वे अब श्रीकृष्ण की पूजा पाठ के लिये रह गये हैं।

शङ्खोद्धार के शङ्खों की खपत सबसे अधिक बङ्गाल में होती है। मुझे खूब याद है कि ढाका में शङ्ख तैयार करने वालों का एक पूरा मोहाल बसता है, वे सभी शङ्ख भेंट से मंगाये जाते हैं। गायकवाड़ सरकार के समुद्री किनारे शङ्खों से भरे रहते हैं। बम्बई के व्यवसायी उनको खरीदते हैं और वहाँ से जहाज में भर कर बङ्गाल भेजे जाते हैं।

राजपूतों की वीर गाथाओं में शङ्खनाद के बहुत वर्णन मिलते हैं। राजपूतों में शङ्खों का उसी प्रकार प्रचार किसी समय था, जैसे पश्चिमी देशों के वीरों में पीतल के बने युद्ध के बाजों का।

महाभारत में दो शङ्खों का उल्लेख मिलता है। एक शङ्ख था स्वयं कृष्ण का, जिसका नाम पाञ्चजन्य था और वह इतना भारी था कि उसको वे ही उठा सकते थे। दूसरा उनके मित्र तथा बहनोई अर्जुन का था, जो उलटे पेंच के कारण दक्षिणावर्त शङ्ख कहलाता था और जो उसके प्रतिद्वन्द्वी कौरवों के सेनापति भीष्म को विजय के चिह्न के रूप में मिला था।

इन शङ्खों में एक का नाम अमोलक बताया जाता है, जिसका कोई मूल्य नहीं होता। इस प्रकार का शङ्ख अनहिलवाड़ा के बल्हरा राजा सिद्धराज के पास था,

(१) हमारा विश्वास है कि ये समस्त यादव लोग वास्तव में बौद्ध थे और इण्डोगेटिक प्रणाली के मानने वाले थे जैसा कि बहुपतित्व की प्रथा से जाहिर होता है। हमको एक जैन विद्वान से मालूम हुआ है कि बाईसवाँ बुद्ध नेमिनाथ केवल बुद्ध ही नहीं था, बल्कि कृष्ण का निकटवर्ती सम्बन्धी भी था। एक गहरी छानबीन के साथ मैं अब साफ-साफ कहना चाहता हूँ कि यदु यति अथवा (क्षत्रार्तीज) के जेटस हैं जिनमें क्रिश्चन प्रोफेसर (नुइमेन) के अनुसार ईसा से आठ सौ वर्ष से पूर्व एक (शामनोयन) सन हुआ था। दोनों का नेमिनाथ और शामनाथ नाम श्याम वर्ण के कारण पड़ा है। पहले को श्यामनामि और दूसरे को श्याम अथवा कृष्ण कहा जाता था। इसका अर्थ श्यामल अथवा काला रङ्ग होता है। यह सत्य केवल कल्पना तक ही सीमित नहीं है, बल्कि द्वारका में कृष्ण के मन्दिर के भीतर बुद्ध का मन्दिर भी बना हुआ है। अब इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता कि कृष्ण पहले बौद्ध धर्मावलम्बी थे।

उसका उल्लेख पाया जाता है। यह भी कहा जाता है कि वह घड़ा अज रूप नगर के सोलखी सरदार के पास है, जो मेवाड़ की दूसरी श्रेणी का सामन्त माना जाता है।

पहले लिखा जा चुका है कि समुद्री डाकुओं का एक किला था और उसका नाम कलोर कोट है। द्वीप के पश्चिम की तरफ बना हुआ यह किला बहुत प्रसिद्ध है। इसकी ऊँची छतों मे लोहे की मजबूत तोपें रखी हुई हैं। उनका मुख समुद्र की तरफ है।

जितने भी देवस्थान मैंने इधर देखे हैं, उनमें मेरे लिये सबसे अधिक आकर्षक मेवाड़ की रानी लाखा राणा की पत्नी मीराबाई का बनवाया हुआ सौरसेन के गोपाल देवता का मन्दिर है। उसके देवता को मीराबाई अपना इष्टदेव मानती थी। निस्सदेह यह राजपूत रानी उसकी बहुत भक्त थी। लोगों का कहना है कि उसकी कवितायें भक्ति की भावना से भरी हुई थी और वर्तमान भाट लोगों की कवितायें उसकी कविताओं के सामने कुछ भी महत्व नहीं रखती थीं। लोगों का विश्वास है कि कृष्ण के सम्बन्ध में लिखे गये उसके गीत अथवा भजन जयदेव की रचनाओं के टक्कर के हैं। भक्ति की भावना को लेकर और भी कवियों ने कवितायें लिखी हैं, लेकिन जो श्रेष्ठता और प्रतिभा मीराबाई की रचनाओं में लोगों को मिलती है, वह अन्यत्र नहीं मिलती।

मीराबाई के सम्बन्ध में—जैसा कि सभी प्रकार के लोग कहते हैं—यह सही है कि उसने भक्ति की भावना से प्रेरित होकर अपने मान, सम्मान, पद और प्रतिष्ठा को भुला दिया था और उसने सभी तीर्थ स्थानों की यात्रा की थी। उन सभी मन्दिरों में जाकर—जहाँ उसके इष्ट देवता की प्रतिमा थी। उसकी आराधना उसके बनाये हुए भजनों में थी। वह अपने भजनों को गाती हुई आत्म विभोर हो जाती थी और नाचने लगती थी। उसकी इस अवस्था पर कभी किसी ने कुछ अर्थ लगाया अथवा आज भी लगावे, यह तो अर्थ लगाने वाला को अधिकार है। लेकिन भक्ति की प्रेरणा के सिवा उसमें कुछ और न था। उसके पति मेवाड़ के राणा ने भी कभी कुछ नही कहा और न कभी किसी प्रकार का सन्देह किया।

कहा जाता है कि मीरा (१) की आन्तरिक भक्ति से गद्‌गद् होकर एक बार मुरलीधर भगवान ने सिंहासन से उतरकर उसका आलिंगन किया था। यह कहाँ तक सत्य है, मैं नहीं जानता। लेकिन लोगों की ऐसी धारणा है। किसी भी अवस्था में

(१) मीरा बाई के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियाँ भी रही हैं और उन्ही [redacted] से कुछ ग्रन्थ के मूल लेखक जेम्स टाड को भी हो गयी थी, जैसे टाड साहब ने मीरा को राना लाखा की पत्नी लिखा है। लेकिन यह सही नहीं है। उनके पति का नाम भोजराज था, जो राणा सग्राम सिंह का दूसरा बेटा था। टॉड साहब को लिखने मे या समझने में भूल हो गयी है।

और सम्पूर्ण यादव वंश इधर उधर हो गया। इसलिए कि वे ही अपने वंश के एक मात्र आधार थे। (१)

शङ्खद्वार अब तक शङ्खों के लिये प्रसिद्ध माना जाता है। एक किनारे पर जहाँ जल की बहुत कमी है और उसके करीब ही जहाज ठहरने का स्थान है—वहीं पर ये शङ्ख पाये जाते हैं। जो शङ्ख किसी समय युद्ध की तैयारी की सूचना देते थे, वे अब ब्राह्मणों की पूजा पाठ के लिये रह गये हैं।

शङ्खोद्धार के शङ्खों की खपत सबसे अधिक बंगाल में होती है। मुझे खूब याद है कि ढाका में शङ्ख तैयार करने वालों का एक पूरा मोहाल बसता है, वे सभी शङ्ख येट से मगाये जाते हैं। गायकवाड़ सरकार के समुद्री किनारे शङ्खों से भरे रहते हैं। बम्बई के व्यवसायी उनको खरीदते हैं और वहाँ से जहाज में भर कर बङ्गाल भेजे जाते हैं।

राजपूतों की वीर गाथाओं में शङ्खनाद के बहुत वर्णन मिलते हैं। राजपूतों में शङ्खों का उसी प्रकार प्रचार किसी समय था, जैसे पश्चिमी देशों के वीरों में पीतल के बने युद्ध के बाजों का।

महाभारत में दो शङ्खों का उल्लेख मिलता है। एक शङ्ख था स्वयं कृष्ण का, जिसका नाम पाञ्चजन्य था और वह इतना भारी था कि उसको वे ही उठा सकते थे। दूसरा उनके मित्र तथा बहनोई अर्जुन का था, जो उलटे छेद के कारण दक्षिणावर्त शङ्ख कहलाता था और जो उसके प्रतिद्वन्द्वी कौरवों के सेनापति भीष्म को विजय के चिह्न के रूप में मिला था।

इन शङ्खों में एक का नाम अमोलक बताया जाता है, जिसका कोई मूल्य नहीं होता। इस प्रकार का शङ्ख अनहिलवाड़ा के बल्हरा राजा सिद्धराज के पास था,

---

(१) हमारा विश्वास है कि ये समस्त यादव लोग वास्तव में बौद्ध थे और इण्डोगेटिक प्रणाली के मानने वाले थे जैसा कि बहुपतित्व की प्रथा से जाहिर होता है। हमको एक जैन विद्वान से मालूम हुआ है कि बाईसवां बुद्ध नेमिनाथ केवल बुद्ध ही नहीं था, बल्कि कृष्ण का निकटवर्ती सम्बन्धी भी था। एक गहरी छानबीन के साथ मैं अब साफ-साफ कहना चाहता हूँ कि यदु यति अथवा (जक्सार्टीस) के जेटस हैं जिनमे विद्वान प्रोफेसर (नुइमेन) के अनुसार ईसा से आठ सौ वर्ष से पूर्व एक (शामनोयन) सन हुआ था। दोनों का नेमिनाथ और शामनाथ नाम श्याम वर्ण के कारण पड़ा है। पहले को श्यामनाभि और दूसरे को श्याम अथवा कृष्ण कहा जाता था। इसका अर्थ श्यामल अथवा काला रङ्ग होता है। यह सत्य केवल कल्पना तक ही सीमित नहीं है, बल्कि द्वारका में कृष्ण के मन्दिर के भीतर बुद्ध का मन्दिर भी बना हुआ है। अब इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं रह जाता कि कृष्ण पहले बौद्ध धर्मावलम्बी थे।

उसका उल्लेख पाया जाता है। यह भी कहा जाता है कि वह खड्ग अब रूप नगर के सोलकी सरदार के पास है, जो मेवाड़ की दूसरी श्रेणी का सामन्त माना जाता है।

पहले लिखा जा चुका है कि समुद्री डाकुओं का एक किला था और उसका नाम कलोर कोट है। द्वीप के पश्चिम की तरफ बना हुआ यह किला बहुत प्रसिद्ध है। इसकी ऊँची छतों में लोहे की मजबूत तोपें रखी हुई हैं। उनका मुख समुद्र की तरफ है।

जितने भी देवस्थान मैंने इधर देखे हैं, उनमें मेरे लिये सबसे अधिक आश्चर्यक मेवाड़ की रानी लाखा राणा की पत्नी मीराबाई का बनवाया हुआ सौरसेन के गोपाल देवता का मन्दिर है। उसके देवता को मीराबाई अपना इष्टदेव मानती थी। निस्सदेह यह राजपूत रानी उसकी बहुत भक्त थी। लोगों का कहना है कि उसकी कवितायें भक्ति की भावना से भरी हुई थी और वर्तमान भाट लोगों की कवितायें उसकी कविताओं के सामने कुछ भी महत्व नहीं रखती थीं। लोगों का विश्वास है कि कृष्ण के सम्बन्ध में लिखे गये उसके गीत अथवा भजन जयदेव की रचनाओं के टक्कर के हैं। भक्ति की भावना को लेकर और भी कवियों ने कवितायें लिखी हैं, लेकिन जो श्रेष्ठता और प्रतिभा मीराबाई की रचनाओं में लोगों को मिलती है, वह अन्यत्र नहीं मिलती।

मीराबाई के सम्बन्ध में—जैसा कि सभी प्रकार के लोग कहते हैं—यह सही है कि उसने भक्ति की भावना से प्रेरित होकर अपने मान, सम्मान, पद और प्रतिष्ठा को भुला दिया था और उसने सभी तीर्थ स्थानों की यात्रा की थी। उन सभी मन्दिरों में जाकर—जहाँ उसके इष्ट देवता की प्रतिमा थी। उसकी आराधना उसके बनाये हुए भजनों से थी। वह अपने भजनों को गाती हुई आत्म विभोर हो जाती थी और नाचने लगती थी। उसकी इस अवस्था पर कभी किसी ने कुछ अर्थ लगाया अथवा आज भी लगावे, यह तो अर्थ लगाने वालों को अधिकार है। लेकिन भक्ति की प्रेरणा के सिवा उसमें कुछ और न था। उसके पति मेवाड़ के राणा ने भी कभी कुछ नहीं कहा और न कभी किसी प्रकार का सन्देह किया।

कहा जाता है कि मीरा (१) की आन्तरिक भक्ति से गद्गद् होकर एक बार मुरलीधर भगवान ने सिंहासन से उतरकर उसका आलिंगन किया था। यह कहाँ तक सत्य है, मैं नहीं जानता। लेकिन लोगों की ऐसी धारणा है। किसी भी अवस्था में

(१) मीरा बाई के सम्बन्ध में कुछ भ्रान्तियाँ भी रही हैं और उन्हीं में से कुछ ग्रंथ के मूल लेखक जेम्स टाड को भी हो गयी थी जैसे टॉड साहब ने मीरा को राना लाखा की पत्नी लिखा है। लेकिन यह सही नहीं है। उसके पति का नाम भोजराज था, जो राणा संग्राम सिंह का दूसरा बेटा था। टॉड साहब को लिखने में या समझने में भूल हो गयी है।

वह पूर्ण रूप से पवित्र थी और उसके जीवन की इस निर्मलता को सभी लोग-वंश-परिवार से लेकर बाहर तक—स्वीकार करते थे।

झालावंश के एक सरदार से मिलकर मुझे बड़ी खुशी हुई। उसकी बहन का विवाह तट के अन्तिम समुद्री डाकुओं के राजा के साथ हुआ था। उस सरदार ने अपने वंश वालों के सम्बन्ध में बहुत सी विचित्र बातें बतायीं, साथ ही बघेलों के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी बातें कहीं, जिनको सुनकर मैं आश्चर्य में पड़ गया। बाघेलों ने विगत सात शताब्दियों से ओखामण्डल पर अधिकार कर रखा था।

जगतकूट के एक भाट से भी मिलने का मुझे अवसर मिला। उसके साथ मेरी बहुत-सी बातें हुईं और उसकी वंशावली से मैंने बहुत-सी बातें नकल करके अपने अधिकार में कर लीं।

ओखामण्डल की इस जाति के पहले राजा का पिता उम्मेदसिंह था और वह राठौर था। उसके लड़के ने वहाँ के अधिकारी चावड़ों को धोखे से मार कर बाघल का जालीम पद प्राप्त कर लिया था। आरमरा में चावड़ों की राजधानी थी और वहीं पर अब भी बाघेलों के राजतिलक होते हैं। झाला सरदार और भाट—दो में से कोई मुझे इस घटना का सही समय नहीं बता सके और न उस समय से लेकर अब तक पीढ़ियों की संख्या बता सके। लेकिन मारवाड़ के इतिहास से मुझे इस विषय में बड़ी सहायता मिली। उस इतिहास में लिखा है :

भारत की मरुभूमि में राज्य कायम करने वाले कुछ लोग ओखा में भी जाकर आबाद हो गये थे। प्राचीनकाल से भूमि प्राप्त करने की भावना राजपूतों में रही है। मूल राठौर ने चावड़ा लोगों का विनाश करने में राजपूतों की उसी मनोवृत्ति का परिचय दिया। लेकिन अधिक समय तक वह अपने इस अधिकार का सुख नहीं भोग सके। उसने और उसके साथ के लोगों ने चावड़ा लोगों का रास्ता अपनाया और लगातार लूट-मार करने लगे। उसके परिणाम स्वरूप, अनहिलवाड़ा के इतिहास के अनुसार, विक्रम की आठवीं शताब्दी में उनका नाश हो गया।

प्रथम बाघेल से अनेक पीढ़ियों के पश्चात् एक राजा के समय में बेट के समुद्री राजाओं का नाम सङ्गमधर हो गया था। वह एक प्रसिद्ध जल डाकू था, जो बहुत दिनों तक समुद्र में अपना यही काम करता रहा। लेकिन अन्त में उसकी नीचता का फल उसे मिला। वह कैद करके बादशाह के पास लाया गया। कैदी हालत में भी उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ। बादशाह के सामने भी वह उसी प्रकार का व्यवहार करता रहा, जैसा कि आजादी की दशा में डकैती का व्यवहार करता था।

बादशाह उसका दमन नहीं कर सका, वह डाकू बहुत चतुर था और उसने बादशाह को पट्टी पढ़ाना आरम्भ किया। राजाओं और बादशाहों को अच्छे आदमी के बजाय इस प्रकार के आदमी की अधिक आवश्यकता होती है, बादशाह उसकी बातों

में आ गया और वह एक विशेष उपाधि के साथ बेट लौट गया। कुछ ही दिनों के बाद उसने कच्छ के जाडेचा राव की लड़की के साथ विवाह कर लिया, उसके पश्चात् उसने जेठवा लोगों के नगर बारासरा पर आक्रमण कर दिया। उसमें मारा गया।

सङ्गमधर से तीन पीढ़ी के बाद नवीन उपाधि लेकर रीना सोवा हुआ। वह भी अपने पूर्वज की भाँति साहसी और निर्भीक था, उसकी बहादुरी के सम्बन्ध में वंशावली में लिखा है

उसने गुजरात के बादशाह मुजफ्फर को शरण दी और उसको शत्रु को सौंपने के बजाय इनकार कर दिया और अपने एक जहाज में बिठाकर खाड़ी के दूसरी तरफ सुरक्षित पहुँचा दिया। उसने स्वयं आरमरा के घेरे में रहकर शत्रु के साथ युद्ध करते अपने प्राण दे दिये।

इस जल डकैत का आचरण और शौर्य कितना सराहनीय था! उसका चरित्र बारह पीढ़ी पूर्व कच्छ के सम्थापक खगार के बेटे राव भार से बिल्कुल भिन्न था, जिसने प्रायद्वीप में मोरवी के इलाके के लिए अपनी शरण में आये हुए सुल्तान की रक्षा करने के लिए रुपया में सौदा किया था। बादशाह ने अपना वचन पूरा किया। उसने मोरवी का परगना जाडेचा को दे दिया। परन्तु उसने दिल्ली में दो स्मारक बनवाये। उन स्मारकों पर लिखा गया। जो आमदनी बाघेल के स्मारक के पास से होकर निकले, वह उस स्मारक पर फूलों की माला चढ़ाव और जो कोई जाडेचा के स्मारक के पास से होकर निकले, वह उस पर जूता मारकर अपना कर्तव्य अदा करें। जाम जेसा के समय तक जाम भार के स्मारक की इस प्रकार लगातार बेइज्जती होती रही। लेकिन जेसा की एक कर्तव्य परायणता के बदले में उसको इनाम देने का निर्णय किया गया और जब उससे कहा गया कि वह चाहे जो माँग ले तो उसने नम्रता के साथ प्रार्थना की कि जाडेचा के स्मारक को तोड़वा दिया जाय। क्योंकि उसकी बेइज्जती से प्रत्येक जाडेचा की बेइज्जती होती है।

रीना सोवा अथवा सवाई तो उस चरित्रवान जल डकैत की उपाधि थी। वास्तव में उसका नाम रायमल था। मुझे खुशी है कि मैंने उसके स्मारक का पता लगा लिया। ऊपर लिखा जा चुका है कि इस स्मारक पर आरमरा के साके में सम्वत् १६२८ सन् १५७२ ईसवी में उसकी मृत्यु का उल्लेख किया गया है। इस समय से हमको बेट के समुद्री डाकुओं के इतिहास के साथ-साथ, गुजरात के सुल्तानों के इतिहास का भी पता चलता है।

नीचे एक सूची दी जाती है। रायमल से सग्राम तक—जिसकी अवस्था पैंतालीस तक हो चुकी थी—नौराजा होते हैं और अपराधों के भार से उसके वर्तमान

बधजो तक, सब मिलाकर ग्यारह हुए हैं। वह सूची इस प्रकार है—

राना रायमल	
अखैराज	रायमार
भीम	मेघ
संग्राम	समाजी
भोजराज अथवा भगराज	रायधन
दादोह अथवा दूगा	प्राग
बाहुप	गोर
मरदबाई (भाई)	देसिल
संग्राम	लाखो
	गोर

रायधन भार और देसल (भाई)

राना भीम ने मसकट (१) के इमाम को जल और स्थल भाग से आक्रमण करने का मौका दिया था। कारण यह था कि उसके नाविकों ने इमाम के आदमियों पर अत्याचार किया था। कच्छ का राव देहल भी इस मौके पर मसकट के जहाजी सेनापति के साथ था और उसने कच्छगढ के तट पर क्लोरकोट को गोलों से उड़ा देने के लिए बनवाया था।

जल के डाकुओं के द्वीप पर कई बार सेनायें पहुँचायी गयीं। परन्तु किले की मजबूती के कारण उन फौजों को कोई सफलता न मिली। हुआ यह कि समुद्र के रास्ते में भटक जाने के कारण कुछ नाव इधर उधर हो जाने और अपने मददगार भुजप्रति के द्वारा कच्छगढ के आस पास की भूमि से नौ सेनापति को अपना बेड़ा वापस ले जाना पड़ा। लौटते हुए वे लोग शंख नारायण के मंदिर के कीमती दरवाजे अपने साथ लेते आये और उनको पाकर उन्हें सन्तोष करना पड़ा।

इन किवाडों से उसने एक अच्छा पलंग बनवा लिया। लेकिन एक दिन रात को उसका वह पलंग उलट गया। जब वह जागा तो उसे मालूम हुआ कि वह पलंग उसके ऊपर था और वह स्वयम् उसके नीचे हो गया था। कथाओं में बताया गया है कि इस घटना के बाद उसने उन किवाडों की समस्त लकडी वेट भिजवा दी।

सङ्ग्राम के आखिरी धाडैती संग्राम के समय तक इन जल के डकैतों के कारनामों में कोई विशेष घटना नहीं मिलती। उसके दादा का सामना एक अंगरेजी युद्ध के जहाज से हुआ था। उसको देखकर उसे बहुत विस्मय हुआ। इसलिये कि उसने पहले कभी

(१) अरब का प्रसिद्ध बन्दरगाह, जो १५०८ ई० से १६५० ईसवी तक पुर्तगालियों के अधिकार में रहा था।

इस प्रकार का जहाज नहीं देखा था और उस अंगरेजी जहाज ने आसानी के साथ उनके जहाजों को नष्ट कर डाला और उनके आदमियों का अपने अधिकार में ले लिया।

इसके बाद अंगरेजी जहाज के अध्यक्ष कर्नल वाकर ने बड़ी बुद्धिमानी से काम लिया। उसने उन लोगों को प्रायद्वीप में शांति कायम करने के लिए एक अच्छी व्यवस्था बतायी और उनकी डकैती की आदतें बन्द कर देने के लिए प्रतिज्ञा करायी।

जल के उन डकैतों ने की हुई प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। इसलिए कि गायकवाड़ के कुछ अफसरों के अत्याचारों के कारण उन जल डकैतों को फिर अपनी सेना तैयार करके मैदान में आना पड़ा। उन्हीं दिनों में त्रीकमराय के पुजारी को— जो सग्राम का प्रधान था—समुद्री लूट के लिए तैयार हो जाना पड़ा। इस घटना का परिणाम यह हुआ कि उसने शङ्खोद्धार के स्वामी के भाग्य को पलट दिया और जिस प्रकार द्वारका के बागेरों को नष्ट किया गया था, उसी प्रकार बेट के बाघेलों का विनाश कर दिया गया।

कर्नल लिंकन स्टनहोप के नेतृत्व में बदले के लिए तेजी के साथ आक्रमण किया गया। उसमें सग्राम को संधि के लिए विवश होना पड़ा और उसने बेट को भेंट में देकर आरमरा में रहना मंजूर कर लिया।

यहाँ पर सोचने की बात यह है कि यह आत्म समर्पण बहुत वर्षों तक सुरक्षा की प्रतिज्ञा से सम्बन्ध रखता था। लेकिन यह निश्चित है कि आरमरा में अब सग्राम के लिये आराम का स्थान नहीं, अन्तिम बाघेल को वहाँ से भी निकाल दिया गया है और अब वह कच्छ में शरणार्थी के रूप में रह रहा है।

द्वारिका के जो बागेर बहुत दिनों तक आरमरा के बाघेलों के साथ समुद्री डकैती के रूप में अत्याचार करते रहे थे, उनके सम्बन्ध में भी यहाँ पर कुछ लिखा जाना आवश्यक है। ये भुज के जाडेजा वंश की एक मिश्रित शाखा में से हैं। उनमें एक व्यक्ति था, उसका नाम था, आबरा। उसके मुख पर कुछ बेहूदा मूँछें थीं और इसीलिये वह मू[illegible] वाला कहा जाता था। राणा सोवा के समय में वह यहाँ आया था और उसी के वंश में उसने अन्तर्जातीय विवाह करके गोमती अथवा द्वारका पर अधिकार कर लिया था।

उसके लड़के ने एक पतित जाति की स्त्री के साथ सम्बन्ध कर लिया और उससे माणिक और रत्न के नाम से सन्तानें हुईं, उन्होंने बागेर का नाम धारण किया। इस वंश के अन्तिम चार राजा महप माणिक, सादूल माणिक, सामीह माणिक और मलू माणिक हुए। मलू अपने सगे सम्बन्धियों के साथ बागेरों, बाघेलों और अरब वालों के युद्ध में मारा गया। कुछ कथाओं में बताया जाता है कि वह कहीं जाकर लापता हो गया था।—

जो लोग मारे गये थे, उनमें एक आदमी बहुत उत्साही था। उसने द्वारिका के जल-डकैतों पर अपना आक्रमण किया था। वह एक वीरात्मा था और युद्ध करने में बहुत कुशल था। सीढ़ी से फिसलकर जहाँ पर वह गिरा था, वहीं पर उसका स्मारक बनाने का निश्चय किया गया। लेकिन लोगों ने स्मारक पर ही सन्तोष नहीं किया। बल्कि उन्होंने स्मारक के एक तरफ उसके नाम का एक स्तम्भ भी खड़ा किया।

कहा जाता है कि उसको उसी तरह की मृत्यु मिली, जिसके लिए वह हमेशा से अभिलाषा रखता था। यद्यपि वह अपनी स्मृतियों के द्वारा अब भी जीवित है। लेकिन एक सन्तोष की बात यह है कि एक हिन्दू योगी ने वहाँ पर अपना आश्रम बनाकर उसे और भी अधिक प्रसिद्ध कर दिया है। जब कभी कोई नाविक उस तरफ जाता है और पूछता है कि यह खम्भा क्यों खड़ा किया गया है तो उस वीर आत्मा की पूरी कथा उसको सुना दी जाती है।

यह है जगत् कूट के जल डकैतों का इतिहास। यदि इसमें और भी विवरण लिखे जा सके और इसके लिए इन डकैतों के अधिक विवरण प्राप्त किये जा सकें तो यह इतिहास और भी रोचक हो सकता है। लेकिन हमको जो तथ्य मिले हैं वे क्रमहीन हैं। सिलसिला ठीक न होने के कारण कोई भी कथानक अधूरा हो जाता है। सिकन्दर से दूसरी शताब्दी में पेरीप्लस तक, आठवीं शताब्दी में चावड़ों की राजधानी देवबन्दर के विनाश के उन्नीसवीं शताब्दी में द्वारिका और बेट तक उन्हीं लुटेरों के कथानक मिलते हैं। जिनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि ये समुद्र के लुटेरे हैं। जहाँ से वे समुद्र में लूटमार करने जाते हैं, वहीं वे फिर लौटकर आ जाते हैं। इस प्रकार यहाँ के कथानक कोई भी क्रम से पूरे नहीं हैं।

कुछ ग्रन्थकारों ने सङ्गारियनों के एक मुखिया का वर्णन किया है। परन्तु द मानविले उसमें प्रधान है। वह कहता है—

थीवनाट और ओविङ्गटन ने इन सागारियों का समुद्र के पूर्वी किनारे के निवासियों और जल डकैतों के रूप में उनका उल्लेख किया है। पूर्वीय देशों में इस जाति का नाम बहुत प्राचीनकाल से पढ़ने को मिलता है। परन्तु अब वे अपने पुराने नाम से नहीं सम्बोधित होते। उनका निवास सिन्ध के बहुत करीब था और उन्होंने उस स्थान को बहुत पहले छोड़ दिया था, जहाँ से सिकन्दर की सेना निकली थी। (१)

(१) सिन्धु से गुजरात तक समुद्र के किनारे हमला करने वाले जल-डकैतों को सागानियन कहा गया है। कदाचित् इसलिये कि ये लोग सिन्धु के समुद्री सङ्गम के पास के स्थानों में रहते थे। सांगानियन हिन्दू होते थे और वे यात्रियों के साथ उस प्रकार की क्रूरता का व्यवहार नहीं करते थे, जैसा कि बलोची लुटेरे किया करते थे।

—"इण्डियन ट्रेवेल्स आफ थीवनाट"

यहाँ पर हमारा ख्याल है कि जहाँ पर निकास होता है, वहाँ सङ्गम भी होता है और जहाँ-जहाँ सङ्गम था, वहाँ पर संगद अथवा संगम धार अर्थात् वस डकैतों का निकास भी था। यह संगम अथवा निकास चाहे द्वारिका की गोमती पर रहा हो अथवा सिन्धु नदी के डेल्टा की खाड़ी पर, दोनों ही स्थानों पर डकैतों के देवता और रक्षक के मन्दिर पाये जाते हैं और खाड़ी पर 'नारायन सर' नामक स्थान से हो, जहाँ पर मैं जा रहा हूँ, मेरी वापसी की यात्रा आरम्भ हो जायगी।

द्वारका अथवा आरमरा के लुटेरों का डेल्टा निवासी डकैतों के साथ कभी किसी प्रकार के मेल-जोल था या नहीं, इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। लेकिन यह साफ जाहिर है कि इन दोनों में धर्म और लूट के विषय में एक ही प्रकार के विश्वास थे इन लुटेरों के अपने इष्ट-देवता थे और जब वे अपने शिकार के लिये अर्थात् लूट मार के लिये निकलते थे तो अपने देवता को प्रसन्न करने के लिये प्रार्थनायें करते थे, मिन्नतें मानते थे, आरती उतारते थे और उसकी पूजा करके अच्छा से अच्छा भोजन करते थे। डकैती और लूट-मार के कार्य को वे लोग शिकार का नाम देते थे और जाने तथा लौटने पर अपने देवता के नाम पर बड़े से बड़े उत्सव करते थे। अपनी प्रार्थनाओं में वे अपने देवता से अच्छे शिकार की माँग करते थे और जब लूट में उनको अधिक सम्पत्ति मिलती थी तो समझते थे कि आज हमारे देवता प्रसन्न हैं। इस प्रकार की सफलता और असफलता वे अपने देवता की देन मानते थे। इन लुटेरों का यह धार्मिक काम था।

दिन में कई बार शिकार करने वाले शिकारियों की भाँति भारत के ये लुटेरे अपने इस कार्य को धार्मिक और पवित्र मानते थे। यह नहीं कहा जा सकता कि सिन्धु के सांगारियनों और सौराष्ट्र के सौरों ने कभी समुद्र के पार जाकर दूर देशों में इस प्रकार का काम किया या नहीं। परन्तु सिन्धु से अरब तक का समुद्री किनारा हिन्दुओं के इन्हीं देवताओं से इतना भरा हुआ है कि इनका उनसे सम्बन्ध न रखना समझ के बाहर है। अतएव उसका कोई प्रश्न नहीं पैदा होता।

समुद्री लुटेरों का जहाज, जिसको लाकर ऊपर सूखी जमीन पर रख दिया गया था, एक विशाल जहाज था। उसका पिछला भाग अधिक ऊंचा था। मेरा जहाज घाट पर आ गया है और मुझे वह कच्छ की खाड़ी के उस पार ले जाने के लिये तैयार खड़ा है, जहाँ पर सिकन्दर व सौगंडा का प्राचीन अड्डा रहा है।

इक्कीसवाँ प्रकरण

दासता की मिटती हुई प्रथा

विलियम्स की उदारता और मित्रता—गुरु यति ज्ञानचन्द का महत्वपूर्ण सहयोग—वियोग के गहरे जख्म—कृष्ण की भूमि—नामों में भेद का कारण—लूनी नदी का खारी जल—प्रतिकूल हवा के झोंकों का परिणाम—बारह घण्टे के स्थान पर एक सप्ताह।

पहली जनवरी १८२३—हमारे रवाना होने के समय हवा चल रही थी और दोनों तरफ के समुद्री किनारे इतने नीचे थे कि वे थोड़े ही समय में नेत्रों से ओझल हो गये। मेरा मन अब कमजोर पड़ गया था। इसलिये कि मैं अपने उन मित्रों से जुदा हो गया था, जिनके साथ छै मास तक रहकर उनका स्नेह और प्यार प्राप्त किया था। फिर भी, मेरे मित्र विलियम्स (१) का सम्पर्क मेरे अधीर हृदय को शान्ति देने के लिये बहुत कुछ आधार बन गया था। वास्तव में उनका सहयोग मेरे लिये न केवल संतोषजनक बना बल्कि अनुसन्धान के सम्बन्ध में भी मुझे बड़ी सहायता मिली। सच यह है कि वे मेरे लिये मार्ग दर्शक बन गये और किसी भी परिस्थिति में मिस्टर विलियम्स से मुझे बहुत अधिक प्रोत्साहन मिलता। मैं उनके प्रति जितनी भी कृतज्ञता व्यक्त करूँ, वह किसी प्रकार पर्याप्त नहीं हो सकती।

मिस्टर विलियम्स के प्रति मैं अपनी श्रद्धा के भाव अर्पित करता हूँ। उनके प्रति मेरी श्रद्धा उस समय थी, जब वे मेरे साथ थे, उतनी ही मेरे हृदय में आज भी है। उसमें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ा।

यहाँ पर मैंने अपने मित्र और गुरु यति ज्ञानचन्द्र से विदा ली। वे मेरे साथ उस समय से हैं जब मैं एक अधिकारी की हैसियत से काम करता था। इस देश में जितने दिन मेरे बीते हैं, उनमें आधे से अधिक दिनों तक मेरे साथ उनका मित्रतापूर्ण सम्बन्ध रहा। इस देश में रहकर मैंने उनसे सभी प्रकार का सुख और संतोष प्राप्त किया। मैंने अपनी इस पुस्तक में और अन्यत्र भी उनके स्नेह पूर्ण सम्पर्क का उल्लेख किया है। सच बात तो यह है कि मेरे पुरातत्व सम्बन्धी कार्यों में उनकी ऐसी सहायता रही

---

(१) विलियम्स बड़ौदा के रेजीडेन्ट और गुजरात के राजनीतिक कमिश्नर हो चुके थे। उनकी मृत्यु का समाचार उस समय मिला, जब इन पृष्ठों की छपाई प्रेस में हो रही थी।

है, जिसकी प्रशंसा नहीं की जा सकती। ऐसी दशा में यहाँ पर उनके सम्बन्ध में कुछ कहना जरा भी आवश्यक न होगा।

यति ज्ञानचन्द्र कद में लम्बे और दुबले पतले थे। जिस समय मैं उनसे विदा हुआ, उस समय उनकी अवस्था साठ से अधिक नहीं थी। फिर भी वे अपने श्वेत बालों के कारण अभिनन्दनीय थे। जब वे अपने लम्बे दुपट्टे के साथ, हाथ में दण्डा लिये हुये नंगे सिर मेरे कमरे में आये तो वे एक अच्छे विद्वान मालूम हुए। वे बुद्ध के उपासक थे। प्राचीन काल के अवशेषों को खोजने में मेरे साथ उनको भी बहुत आनन्द मिलता था। मेरे कठोर अनुसन्धान में और शिला लेखों के पढ़ने में अपने असाधारण धैर्य और विशाल ऐतिहासिक ज्ञान के कारण वे मेरे लिये किस प्रकार सहायक बन गये थे, मैं उसे प्रकट नहीं कर सकता। मैं उनकी उदारता का बहुत कृतज्ञ हूँ।

इसी समय मैं अपने घोड़े जावादिया से भी बिदा हुआ। उदयपुर के राणा ने मुझे यह घोड़ा भेंट में दिया था। मैंने राणा को लिख दिया कि आपके सिवा इस घोड़े पर इसका संरक्षक और सेवक इस पर सवारी कर सकता है। लेकिन किसी तीसरे को आप यह अधिकार न दें। और प्रत्येक दशहरा के अवसर पर सम्मान के साथ इस घोड़े के प्रति व्यवहार किया जाय।

वियोग के जख्म मेरे हृदय में गहरे थे, इसलिये उनसे राहत पाने के लिये मैंने अपने सामने मानचित्र फैलाकर रखा। बराई के द्वीप मेरे नेत्रों के सामने थे, मैं यह सोचने लगा कि टालमी और पेरीप्लस के कर्ता के समय से अब तक कच्छ की कोठी में कितने परिवर्तन हो चुके हैं। सम्भव है लेखक ने अपने व्यावसायिक प्रसङ्ग में भड़ौंच से आकर इसे देखा हो। उसने लिखा है

बराई के पूर्व में एक गहरी खाड़ी है जो अन्य नगरों से उसको अलग करती है, मिस्र के भूगोलवेत्ता के अनुसार, द अनाविले लिखता है—बलसटी अथवा बरसेटो नाम का एक बन्दरगाह है जो पूर्व में टालमी के द्वारा बराई और कुछ अन्य द्वीपों को प्रकट करता है और काठी काल्पस के प्रवेशद्वार के दक्षिण की तरफ है। अब इसको प्रमाणित करने के लिये कोई भी प्रमाण आवश्यक नहीं है कि बेट अथवा जल हकैजो का द्वीप ही वह स्थान है, जिसको परिस्थितियों के अनुसार द' आनविले ने बलसेटी नाम दिया है। वह स्थान दूसरी शताब्दी में बरायी कहलाता था।

उस स्थान की पूर्वकालीन बातें बहुत कम बाकी रह गयी हैं। यहाँ की स्थानीय भाषा में बेट द्वीप को कहा जाता है और किसी को भी इसके मान लेने में उलझन न होगी कि यह बोलने में बलसेट का ही संक्षिप्त रूप है। अब प्रश्न यह होता है कि यह निकला कहाँ से ?

यह सम्पूर्ण भूमि कन्हैया, कृष्ण अथवा नारायण को मानी जाती है। कन्हैया

के बचपन का नाम बाल, बालनाथ अथवा बालमुकुन्द है और किशोरावस्था में गोपाल एवम् उस समय की सामग्री मे मुरली अथवा मुरलो अर्थात बेत जो गाय चराने के लिये डंडा अथवा लाठी का काम करता है। इस प्रकार अनेक बातें पायी जाती हैं, जो समता अथवा समानता का प्रमाण देती हैं। साथ ही उनकी इतनी अधिकता है कि उनका अन्त नहीं है।

पूर्व के देशों में जिस प्रकार इनका अतिक्रमण होता है, वह भयानक और विस्मयजनक है। पश्चिमी देशों में इस प्रकार की परिस्थिति आती है, लेकिन उसका परिष्कार ऐस ढंग से कर लिया जाता है कि मूल के साथ उनका सम्पर्क और सम्बन्ध बना रहता है।

दो बड़े नामों के सम्बन्ध मे यहाँ पर और भी अधिक स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। जिस खाड़ी को टॉलमी ने काठी काल्पस के पूर्व की तरफ बताया है उसको पैरीप्ली ने इरिनस नाम से जाहिर किया है। काठी किसी तट अथवा किनारे को नहीं कहते। बल्कि आज तक कच्छ के उस भाग के लिये प्रयोग किया जाता है, जो पहाड़ियों और समुद्र के बीच मे होता है। एरिअन ने इरिनस शब्द का प्रयोग सिर्फ काल्पस (खाड़ी) के ऊपरी हिस्से के लिये किया है, जो साधारण तौर पर रण कहलाता है। वास्तव में यह रण संस्कृत के अरण्य शब्द का अपभ्रंश है।

इसी हिसाब से एरिनस के द्वारा प्रयोग किया गया एरिनोस से बड़े रण का अभिप्राय है, जो छोटे रण से मिलकर सम्पूर्ण कच्छ बन जाता है। इसके बाद आगे आने वाला विवाद शान्त करने के लिये यह जानने की जरूरत है कि लूनी नदी—जिसके विकास से लेकर सम्पूर्ण रास्ते का मैंने अन्वेषण किया और जो बड़े रण म होकर प्रवाहित होती है—वही है जो खारी के नाम से सिंधुनदी के निकास पर जाकर मिल जाती है।

लूनी और खारी का अर्थ एक ही होता है अर्थात नमकीन पानी की नदी। यदि लूनी क मार्ग का कमी और कच्छ की खाड़ी का प्रवाह छोट रण में रहा हो तो टालमी के आरबदरी (१) की जानकारी हो जाती है। उसने यहाँ पर खाड़ी का

(१) प्लिनी की तालिका में अन्तिम नाम बेरोटाटल आता है, उसे कहीं-कहीं पर भी बेरेरेले लिखा गया है। कुछ पुस्तकों में इसी शब्द को बराटाटल भी लिखा गया है। ऐसा मालूम होता है कि यह शब्द अङ्गरेजी में सौराष्ट्र को लिखा है। दक्षिण पश्चिम भारत के लोगों के लिये वराहमिहिर-कृत बृहत् संहिता मे सौराष्ट्र और बादर दाना शब्दों को लिखा गया है। ऐसी दशा में बदरी अथवा बदरी के निवासी बादर कहे गये। दक्षिणी राजस्थान में बदरी फल अथवा बेर के पेड़ अधिक पाये जाते हैं, उससे मिला हुआ प्रदेश सौवीर के नाम से प्रसिद्ध था। उसको विदेशी लेखकों ने

गिरना लिखा है और हम इसी नाम की व्याख्या करते हुए इस सत्य को साबित कर सकते हैं कि यह नाम सस्कृत भाषा का है और पुराने जमाने मे भूगोल पर हिन्दुओ का अधिकार था।

मद्रा नदी का साधारण नाम है और उपसर्ग आर का मतलब होता है नमक का दलदल अथवा नमक की झील। उसे ऐसा भी कह सकते है कि वह स्थान जहाँ पर जल में नमक होता है। लूनी नदी का यही अर्थ होता है। लूनी नदी अपने रास्ते मे नमक की परतें बिछा देती है। खाडी के मुहाने पर जो नगर बना हुआ है। उसका (अरसर) (१) नाम है। इससे उपरोक्त शब्द की स्पष्ट व्याख्या हो जाती है। इसलिए कि सर झील का पर्यायवाची है और विशेषकर नमक की झील का। अगर यह नदी भादरा इस नगर में होकर बहती थी तो इसके नाम के सम्बन्ध में हमें कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता।

मैंने लूनी नदी के निकास को भली प्रकार निरीक्षण किया है और मरुभूमि में इसको अनेक स्थानों पर पार भी किया है। अब मैं नारायन सर मे इसके मुहाने को देखने जा रहा हूँ। यहाँ पर सिंधु नदी के इलाके मे हिन्दुओ का आज भी मन्दिर मौजूद है।

यहाँ पर अब मैं वह बात कहने जा रहा हूँ, जिसे कदाचित् कोई दूसरा नही कहेगा। मैं हरिद्वार से—जहाँ से उत्तर की तरफ गङ्गा अपना रास्ता काटकर बनाती है, ब्रह्मपुत्र के सगम तक जिसे टॉलमी ने (आरिया रेगिया) लिखा है और जो जल लुटेरों के लिये भी मशहूर है, सिंधु नदी के (ओनाम) समुद्र के सगम के पास तक मैं यात्रा कर सकूंगा। मैंने जो पहले यात्रायें की थी, उनके सम्बन्ध मे मैंने कोई टिप्पणी नहीं लिखी। यदि कुछ लिखा भी था तो उस मैंने सिलसिले मे नही रखा। इसके सम्बन्ध मे मुझको प्राय खेद होता है।

२ जनवरी—भुज पहाड की श्रेणी की (निनोवी) द, अनाविले की (निनोद) अर्थात् चोटी अब उ० उ० पू० में दिखायी दे रही है। हवा रुक जाने के कारण रात भर

सोफीर अथवा ओफीर लिखा है। अगर यह कहना सही है और बदरी फल के कारण ही वहाँ का नाम सोबीर पडा हो तो यह खम्भात की खाडी के ऊपर कही पर होना चाहिये। रुद्रदामन के पुराने लेख में सौराष्ट्र और भारुकच्छ के बाद ही सिन्धु सोवीर का उल्लेख मिलता है। अतएव यह सोवीर सौराष्ट्र तथा भड़ौंच के उत्तर में और निषध के दक्षिण मे होना चाहिये। विष्णु पुराण में सोवीर का अस्तित्व अर्बुद के समीप लिखी गयी है।

—कनिङ्घम, एनसेन्ट जाग्रफी आफ इण्डिया। पेज ४९६—९७

(१) अर का मतलब आरा अथवा नरसल होता है। उसके साथ मिले हुए सर को अरसर कहा गया है।

हम समुद्र की लहरों में झोंके लेते रहे। अब हम लोग माण्डवी को सारी के नगर पर पहुँचे उस समय दिन के दो बज रहे थे। परन्तु इससे भी अधिक परेशानी की बात यह हुई कि अब हवा ने अपना रुख बदल दिया था और [illegible] कोटेश्वर तथा नारायन सर की तरफ—जहाँ पर आकर मैं अपनी यात्रा समाप्त करने वाला था—चलने लगी थी। परिणाम यह हुआ कि हवा के झोंके पूर्ण रूप से हमारे सामने पड़ते थे।

हवा की प्रतिकूलता का बुरा असर हमारी नाव की चाल पर पड़ा। मैं भली प्रकार इसको अनुभव कर रहा था, उसी अवसर पर हमारी नाव के माझी ने कहा—नाव को वहाँ पहुँचने के लिए अठारह घण्टे काफी थे। लेकिन विरोधी वायु के कारण अब एक सप्ताह से कम नहीं लगेगा।

सराह नामक जहाज इसी महीने की १५ तारीख को बम्बई से इङ्गलैण्ड के लिए जाने वाला था। उस पर बैठने के लिए किराये के नाम पर मैं चार सौ पौण्ड जमा कर चुका था। इसलिए मैं गम्भीर चिन्ता में पड़ गया। हवा की प्रतिकूलता ने हमें पूरे तौर पर अस्त व्यस्त कर दिया। मेरी आशाओं पर आशंकाओं ने अधिकार कर लिया था। लेकिन अब तो निश्चित हो गया था कि हमें अब समय पर बम्बई पहुँचना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। इसलिए अपने इस विवरण का एक पत्र लिख कर मैंने कच्छ के रेजीडेण्ट मिस्टर गार्डीनर के पास भेजकर मैं पत्र के उत्तर और हवा के रुख—दोनों को देखने के लिए वहीं पर रुक गया।

माण्डवी के सम्मानित राज्यपाल सेठ जी के बेटे दिन में मुझसे मिलने के लिए आये। वे मेरे साथ समुद्र के किनारे तक गये और तोपों की सलामी के साथ मुझको एक फूलों के बाग में ले गये। वह स्थान मेरे लिए पहले से ही निश्चय कर लिया गया था। लेकिन मैंने अपनी विशाल नाव में ही रहना पसन्द किया। इस किनारे पर माण्डवी एक बहुत प्रसिद्ध स्थान है। इसे लोग मस्का मण्डवी भी कहते हैं। इसलिये कि मस्का नाम का एक बड़ा कस्बा रुक्मिणी नदी के द्वारा इससे अलग हो रहा है।

नगर के चारों तरफ एक सुदृढ़ परकोटा है। उसके बुर्जों पर तोपें रखी गयी हैं। यह नगर अपने जिले का प्रमुख स्थान है। परन्तु इसकी समृद्धि और सम्पन्न अवस्था ने इसके सम्मान को अधिक बढ़ा दिया है। कभी कभी तो यह भी होता है कि इसके नगर पर दो दो सौ नौकायें ठहरी रहती हैं। ये नावें अधिकांश यहाँ के निवासियों की अपनी हैं।

यहाँ पर सबसे अधिक सम्पन्न गोसाईं लोग हैं, जो धर्म और व्यापार—दोनों को मिलाकर चल रहे हैं। पाली, बनारस आदि स्थानों में उनके व्यवसाय की बड़ी बड़ी शाखायें खुली हुई हैं। यहाँ पर पच्चास से अधिक सर्राफ और कोठी वाले हैं। उनमें सभी लोग सरकार को अपनी सम्पत्ति पर कर देते हैं। यहाँ पर यह [illegible] कर

कहलाता है। इस कर से कोई भी बचा नहीं है। कहा जाता है कि इस कर से सरकार की आमदनी पचीस हजार रुपये वार्षिक हो जाती है।

यद्यपि माण्डवी से अरब और अफ्रीका के सभी बन्दरगाहों तक व्यापार होता है, लेकिन उसका विशेष व्यापारिक सम्बन्ध फारस की खाड़ी में कालीकट और मस्कट के साथ है। पूर्व की तरफ से यहाँ पर शीशा, (कन्चे) अथवा हरा काँच, इलायची, काली-मिर्च, सोंठ, अदरख, बाँस, जहाज बनाने के लिये सागवन की लकड़ी, कस्तूरी, पीली-मिट्टी, रङ्ग और दवायें आदि एवम् मस्कट से सुपारी, चावल, नारियल, छुहारे, खारिक हाशा, पिण्डखजूर, रेशम और मसाले आदि का आयात होता है। यहाँ पर चुंगी से होने वाली आमदनी एक लाख रुपये है।

मैं सारा दिन नगर में और घाट पर घूमता रहा और विभिन्न देशों के लोगों को देखता रहा। कितने ही दृश्य मनोरञ्जन से पूर्ण मिले। काले रंग के हब्शी, काके-शस के हिन्दी, लम्बे-चौड़े अरब के लोग, विनम्र हिन्दू बनिये, पण्डे, पुजारी, गोसाईं जो नारंगी के रंग के वस्त्र पहने हुए घूम रहे थे, देखने को मिले। मैं सभी लोगों के बीच में गया। चाहे वे नौकाओं के मालिक हों अथवा यात्री लोग हों। मैंने अपनी तरफ से सभी से बातें कीं। वहाँ पर आये हुए यात्रियों की ओर मैं अधिक आकर्षित हुआ। वे लोग दिल्ली, पेशावर, मुल्तान और सिंध के विभिन्न स्थानों से आये थे। वे गिरोह बनाकर समुद्र के किनारे खड़े थे। कुछ लोग पंक्तियाँ बनाकर नमाजें पढ़ रहे थे। उनकी स्त्रियाँ खाना बना रही थीं। कुछ स्त्रियों के आस-पास उनके बच्चे घूम रहे थे। मक्का की यात्रा अथवा हज्ज के लिये सभी ने नीले वस्त्र पहन रखे थे। इन यात्राओं में इनका खर्च नहीं होता, इसलिये कि ये लोग जहाँ पर ठहरते हैं, वहाँ माँग कर खा लेते हैं। इस प्रकार लोगों को खिलाना अथवा भोजन देना पुण्य का काम माना जाता है।

इस प्रकार की बातों से उनका समर्थन होता है, जो कहा करते हैं कि कच्छ पर न तो कभी किसी मुसलमान ने आक्रमण किया और न कभी किसी ने किसी प्रकार का कर लगाया। इस प्रकार की भावना जितनी ही धार्मिक है, उतनी ही राजनीतिक भी है। इस प्रकार की उदारता-सभी को चाहे वे किसी भी जाति और समाज के हों—अपनी ओर आकृष्ट करती है।

मेरे चारों ओर एक भीड़ जमा हो गयी। मेरी बातचीत से वहाँ पर उपस्थित पेशावर की एक मण्डली प्रसन्न हो उठी। उसी समय मैंने एक दूसरी टुकड़ी के लोगों से बातें कीं और धार्मिक अभिमान की चर्चा की। परन्तु उन लोगों ने मेरी बात की ओर ध्यान नहीं दिया। मैंने जो कुछ कहा, उसे उन्होंने सुन लिया, लेकिन कुछ कहा नहीं।

इन मराठियों का छोड़कर मैं आगे बढ़ा और उस स्थान की तरफ पहुँचा, जहाँ पर बन्दरगाह के किनारे जहाज एकत्रित थे। वहाँ का दृश्य अद्भुत और निराला था। उस स्थान से जहाज या तो सोफाला (१) की तरफ जाते हैं अथवा अरब की तरफ। वहाँ पर अरबी मसाले वाले (२) तट पर आकर रुकते हैं। एकत्रित नौकाओं में लगभग बीस नौकायें अफ्रीका के काले आदमियों से भरी हुई थीं। इन नावों का वजन लगभग छै सौ मनकी अथवा एक सौ पच्चीस टन था और प्रत्येक नौका में तोपें रखी हुई थीं।

अरबी समुद्र-तट के उस डकैत बहुत समय से इस समुद्र के निकट अपराधी के रूप में थे। वे डकैत माल लूट लेने के बाद कैदियों को जीवित नहीं छोड़ते थे। इसके सम्बन्ध में उनका कहना था "बिना खून किये माल लेने को चोरी करना कहा जाता है, वह लूट नहीं कहलाती। अधिकार में आ जाने के बाद काफिरों को छोड़ देना मजहब के खिलाफ है।"

उन डकैतों के ये सिद्धान्त थे। लेकिन सुना है कि बम्बई-सरकार ने इन अत्याचारों को खत्म करने का निश्चय कर लिया है और उसकी तरफ से जो कदम उठाये जा रहे हैं, उनसे निश्चित रूप से सफलता मिलेगी।

अरब के जहाजों की बनावट वैसी ही है, जैसी हिरम के समय में थी। इन जहाजों पर किरमिच के बने हुए तिरपाल फैले रहते हैं। इन पालों से नौका को खेने में बड़ी सहायता मिलती है। आदमियों की तरह उनकी प्रत्येक चीज काम रंग की थी। जहाज के अगले भाग में मिट्टी के बहुत से घड़े लटके हुए थे।

जब से मनुष्य के खरीदने और बेचने का अर्थात् दासता की प्रथा का व्यवसाय बन्द हो गया है, उस समय से बहुत से जहाजों का आना जाना बन्द हो गया है। यह जरूर है कि यह व्यवसाय कानून की नजरों में गलत और अमानुषिक है फिर भी सरकार के अनेक भागों में इसका प्रचार था। लेकिन अब बहुत दिनों से उसके विरोध में आवाजें उठ रही हैं और उसके फलस्वरूप वह बहुत कुछ बन्द भी हो गया है। लेकिन अभी तक वे बाजारों में बिकते हुए देखे जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि यह गैर कानूनी व्यवसाय अभी तक बिल्कुल बन्द नहीं हुआ। वह थोड़ा-बहुत चलता रहता है।

---

(१) सोफाला अफ्रीका के पूर्वीय समुद्र के किनारे पर एक बन्दरगाह है। इसी नाम की नदी के मुहाने पर कायम होने के कारण सोफाला पड़ा है। सन् १५०५ ईसवी में पुर्तगालियों के अधिकार में आने के पहले यह एक मुसलमानों का मशहूर नगर और व्यापारिक मुकाम था। यहाँ पर लगभग एक हजार नावों के ठहरने की व्यवस्था थी।

(२) मस्कट बन्दरगाह।

इसके विरोधियों के विचारों का प्रभाव अफ्रीका के दासों पर बहुत अधिक पड़ा है। वे अब स्वयं बदल रहे हैं। मेरे अपने आदमियों ने मुझे बताया है कि इन दासों में जो पहले अपने मालिक के लिये श्रद्धा और भक्ति पायी जाती थी, उसको इन दासों ने मिटाने की कोशिश की है।

जो लोग दास रखते थे अथवा मनुष्यों को खरीद कर दास बना लेते थे, उनका कहना है—ये दास अब हम लोगों के काम के नहीं रह गये। इसलिये कि जब उनसे काम करने के लिये कहा जाता है तो वे सीधे बात नहीं करते और जब बार-बार पूछा जाता है तो वह कहते हैं कि जब हमारी मरजी होगी, तब करेंगे। उनके इस तरह के जवाब को सुनकर जब उनको सजा दी जाती है तो वे बिना बताये हुए चुपके से भाग जाते हैं। जब पहले राज की सरकार थी तो इन दासों को वापस माँग लिया जाता था। लेकिन अब सरकारें बदल गयी हैं और आज की नयी दुनिया इन दासों का पक्ष लेने लगी है। यदि मालिक लोग मजबूर होकर अपना घाटा पूरा करने के लिये इन लोगों को भोजन कम देते हैं तो वे चोरी करके खाते हैं।

दासों के मालिकों का यह भी कहना है कि अब इनको मारने पीटने की धमकी दी जाती है तो वे बदले में तमाचा मारने के लिये तैयार हो जाते हैं और लड़ने मरने पर आमादा हो जाते हैं। इसलिये आज का यह जमाना दास रखने का नहीं है।

इन दासों की मुसीबतों का बयान करते हुए उनके स्वामी लोग कहते हैं—पहले जमाने में जब कभी इन दासों को मारा पीटा जाता था तो न तो ये दास कभी कुछ जवाब देते थे और न कोई उनका पक्ष लेने वाला होता था। लेकिन अब दुनिया बदल गयी है और जिसको देखो वही इन दासों का हिमायती बन गया है। पहले कभी मारे-पीटे जाने पर ये लोग कहा करते थे—"मार डालो, हमारे मरने पर कौन कोई रोने वाला बैठा है। हम तो बेसहारा के हैं। न तो माता है, न पिता है और न हमारे कोई परिवार है।"

इस प्रकार की बहुत सी बातें उन लोगों ने मुझसे कहीं। जिन्होंने इस प्रकार के गैर कानूनी व्यवसाय से बहुत बड़ा फायदा उठाया था और धन एकत्रित किया था। लेकिन उनके अब ये व्यवसाय ठण्डे हो रहे हैं और जो लोग खरीदे जाने के बाद दास बनाये जाते हैं वे अपने अधिकारों को समझने लग गये हैं। उनको अब इस बात का ज्ञान हो गया है कि हम भी अब अपने अधिकारों की रक्षा करेंगे। हम भी उसी प्रकार के मनुष्य हैं, जैसे कि दूसरे लोग होते हैं। हमको कोई दास नहीं बना सकता और न हमारा कोई मालिक हो सकता है।

मैंने यहाँ पर सिदी मार्किों को देखा। वे प्रसन्न रहते हैं। उनका शरीर सुगठित और मजबूत होता है। अपने स्वस्थ शरीर में वे दूसरों की अपेक्षा अच्छे माने जाते हैं। ये लोग जहाजी बेड़े के अच्छे सिपाही होते हैं। वे जहाजों पर भी काम करते

हैं और बन्दरगाहों पर भी। दासता के दिनों में इन लोगों की हालत बहुत खराब थी। लेकिन अब उनका वह समय बदल गया है।

३ जनवरी—हवा अब भी हमारे लिए प्रतिकूल चल रही थी। इसलिए विवश होकर हमको अपने कार्यक्रम में परिवर्तन करना पड़ा और उसके अनुसार भुज के समुद्री किनारे पर जाने का मैंने निश्चय किया। यदि वहाँ पर मुझे बम्बई से इङ्गलैण्ड जाने वाले जहाज के देरी में रवाना होने का समाचार मिला, अथवा लौटने पर इस हवा में कोई परिवर्तन न हुआ तो फिर प्रत्येक सङ्कट का सामना करने के लिए मैं तैयार हो जाऊँगा।

मैंने कल रात को ही एक सैनिक सवार के द्वारा मिस्टर गार्डीनर के पास भुज दरबार का निमन्त्रण स्वीकार करने का समाचार भेज दिया है। मेरी यात्रा को जल्दी सम्पन्न कराने के लिए उन्होंने एक घोड़ों की डाक गजनी भेज दी है और दूसरी मैंने यहाँ से भेजी है।

राज्यपाल माननीय जेठा जी ने एक जीन सवारी का घोड़ा और कुछ सवार सैनिक पहली यात्रा के लिये मेरे पास भेज दिये हैं। मैं आज ही सायंकाल रवाना हो जाऊंगा। फासला लगभग पचास मील का है। कल प्रातःकाल कलेवा के समय वहाँ पर पहुँच जाऊंगा।

नगर की गलियों में घूमकर और वहाँ के प्राचीन दृश्यों को देखकर मैंने अपना समय पूरा किया। यह एक कस्बा है, जिसमें पाँच हजार मकान हैं। सभी मकान पक्के बने हुए हैं। उनमें बीस आदमियों की आबादी है। जब यह नगर अच्छी हालत में था तो इस बन्दरगाह पर रोजाना आने-जाने जहाजों की संख्या चार सौ से कम न थी। वे सभी जहाज यहाँ के धनी मानी व्यक्तियों के ही थे। व्यापार के लिए उन लोगों ने इन जहाजों को रखा था। यह अवस्था पहले की थी लेकिन अब हालत बदल गयी है। सभी स्थानों का व्यापार ढीला पड़ गया है। उसका प्रभाव माण्डवी पर भी पड़ा है। अरब तथा अफ्रीका जाने वाले कुछ थोड़े से जहाजों को छोड़कर किनारे मालाबार तक का व्यापार बहुत-कुछ कम हो गया है। इससे नगर की दशा पहले वाली नहीं रह गयी।

राव गोर के समय में माण्डवी की अवस्था बहुत उन्नति पर थी। इसलिये कि राव स्वयम् समुद्री यात्राओं में दिलचस्पी लेता था और अधिक से अधिक फायदा उठाने के लिए उसने डच कारखाने के नमूने पर एक विशाल महल इस बन्दरगाह पर बनवाया था। परन्तु पिछले दिनों के भूकम्प के कारण पश्चिमी भारत की अन्य इमारतों के साथ-साथ राव गोर का यह महल भी हिलकर टुकड़े-टुकड़े हो गया।

राव ने जहाज बनाने का एक कारखाना भी खोला था। उसमें जो जहाज बनाये जाते थे, उनकी देख रेख वह स्वयम् करता था। उत्साही पीटर महान की तरह

उसने भी निश्चय किया था कि उसके कारखाने में बना हुआ जहाज उसी के नेतृत्व में इङ्गलैण्ड तक समुद्र के रास्ते से जायगा।

उसके निश्चय के अनुसार यात्रा आरम्भ हुई। वह जहाज बरसात के दिनों में मलाबार के किनारे तक जाकर लौट आया। अभी भी खारी और लगार पर दो और तीन सौ के बीच जहाज हैं। उनमें से एक जहाज तीन मस्तूल वाला कच्छ के राव का है। राव गोर और भाव नगर के गैहिला राजा—दोनों ही में हमको एक सी मनोवृत्ति मिलती है और वे दोनों ही परिस्थितियों के अनुसार अपने को मोड़ना जानते हैं। इसलिए कि जहाजों और व्यापार के साथ सम्बन्ध रखने के कारण राजपूतों के स्वभाव में किसी प्रकार की विरोधी भावना नहीं मिलती।

मोम की मोटी-मोटी रोटी की तरह अर्द्ध-पारदर्शक गैंडे के चमड़े सारे बाजार में लटके हुए थे। इनसे ढालें तैयार की जाती थीं। स्त्रियों के लिए चूड़े और दूसरे गहने बनाने के लिये हाथी-दाँत, सूखे और ताजे खजूर, किशमिश बादाम, पिस्ते आदि से वहाँ का बाजार भरा था। माण्डवी का व्यापार इन पदार्थों के लिए मशहूर था। यहाँ के बाजार में कपास का व्यापार मुख्य माना जाता है। इसकी गोल और चपटी गाँठें दबा-दबाकर बाँधी जाती हैं। यहाँ के बाजार में सूती कपड़ा, शक्कर, तेल और घी भी बिकने को आता था।

यहाँ के कागज-पत्रों में माण्डवी को अब भी प्रायः इसके प्राचीन नाम रायपुर-बन्दर अथवा रायपुर का बन्दरगाह लिखा जाता है। आ खाडी अथवा खारी से तीन मील ऊपर की तरफ प्राचीन राई के कारण पड़ा था। मैंने उस स्थान को जाकर देखा। दो छोटी झोपड़ियाँ वहाँ पर दिखायी पड़ीं। वहाँ पर किसी स्मारक के होने के आसार नहीं दिखायी पड़े। एक छोटा-सा वहाँ पर मन्दिर अवश्य था, वह मन्दिर तरुणनाथ का कहा जाता है।

उस मन्दिर के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की बातें सुनने को मिलीं। लोगों ने बड़े विश्वास के साथ बताया, तरुणनाथ एक प्रसिद्ध योगी थे और कुछ अज्ञात शक्तियों पर उनका अधिकार था, यह भी लोगों ने बताया कि राई और उसके निकटवर्ती गाँवों के लोगों के द्वारा नैतिक आदेशों का पालन न होने के कारण योगिराज ने उन स्थानों को शाप देकर नष्ट कर डाला था।

मैंने इन बातों को ध्यानपूर्वक सुना। मैं भली प्रकार इन कथाओं के सम्बन्ध में जानता हूँ कि हिन्दुओं के इन आख्यानों में केवल कोरी कल्पनायें नहीं होतीं। उनके साथ निश्चित रूप से किसी गम्भीर घटना का समावेश होता है। दूसरे स्थानों के हम आख्यानों को सुनकर और फिर उनमें अनुसंधान करने के बाद मैंने अपना ऐसा विश्वास उनके सम्बन्ध में कायम किया है।

राई के प्राचीन राजा वर्तमान भुज के राजाओं से गये गुजरे नहीं थे। उनको आज तक प्राय भूकम्प के धक्के सहने पड़ते हैं। वे हमेशा यह सोचा करते हैं कि भूकम्प कभी भी आ सकता है और उसके द्वारा थोड़ा अथवा बहुत—कुछ भी विनाश हो सकता है। इसलिये वे सदा इस प्रकार का आशंकाओं से सचेत और सावधान रहा करते हैं।

पहले ज्वार के समय राई तक जहाज आ जाते थे। लेकिन अभिशप्त होने के बाद से मिट्टी की एक दीवार ने प्रवेश का रास्ता बन्द कर दिया। उसके नीचे बहने वाली नदी अब खारी नहीं रही बल्कि उसमें अच्छा जल प्रवाहित होता रहता है। मैं लरणनाथ के मन्दिर तक गया और जब मैं उस मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ने लगा, उसी समय मैंने वहाँ पर एक कनफटा देखा। वह कनफटा योगी वृद्धावस्था में चल रहा था। कानफटे होने के कारण लोग उसको कनफटा कहते हैं।

उस मन्दिर के पास मैंने उस कनफटे को रहस्यमयी क्रियायें करते हुए देखा। वह कनफटा लरणनाथ के ही सम्प्रदाय का था। वह बड़ी देर तक अपने गुरुजनों की समाधियों पर जल चढ़ाने के साथ साथ हरे पत्ते चढ़ाता रहा और धूपबत्ती के द्वारा आहुति करता रहा। मैं लगातार उसकी तरफ देखता रहा। मैंने भारत में अब तक जितने भी स्मारक देखे हैं यह स्मारक सबसे अधिक विचित्र हमें मालूम हुआ। बाल कि पुजारियों के साथ इसके सम्बन्ध स्पष्ट प्रकट हो रहे थे।

ये स्मारक बहुत छोटे हैं और उनकी सीढ़ियाँ भी उन्हीं के अनुरूप बनायी गयी हैं। बीच में एक स्तम्भ खड़ा हुआ है। इस श्मशान भूमि के खण्डहरों में रहने वाले इस एकान्त प्रिय प्राणी से मैंने बातचीत आरम्भ की। मुझे तुरन्त इस बात का आभास हुआ कि वह या तो अपने सम्प्रदाय के कर्मकाण्ड के सिवा और कुछ जानता नहीं है, अथवा उसने उसके सम्बन्ध में कुछ बातचीत करना उचित नहीं समझा।

मुझे बताया गया कि वहाँ पर प्राय चाँदी के सिक्के मिलते हैं। यह जानकर मैं उन खण्डहरों में घूमता फिरता रहा। बड़ी देर के अन्वेषण के फलस्वरूप, मुझे दो सिक्के वहाँ पर मिले भी। वे सिक्के अच्छी हालत में थे। उन सिक्कों में एक ओर मुकुट पहने हुए राजा की आकृति बनी थी और दूसरी तरफ एक अजीब शक्ति के साथ कुछ ऐसे अक्षर लिखे थे जो किसी प्रकार पढ़े नहीं जाते थे। उनके अक्षर कुछ उसी प्रकार प्रकार के थे, जैसे गिरिनार के शिला लेख में मिले थे।

राई के खण्डहरों से लेकर प्राचीन उज्जैन तक समुद्र के तट पर आने वाले नगरों में समय पर इसी प्रकार के सिक्के मिले हैं। उनसे साफ जाहिर होता रहा है कि इस क्षेत्र में किसी शक्तिशाली राजवंश का विशाल साम्राज्य रहा था। वह विशाल साम्राज्य अनहिलवाड़ा के बल्हरा राजवंश का था। अथवा किसी दूसरे राजवंश का था, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

बाईसवाँ प्रकरण

इतिहास और समाज के कुछ विचित्र-चित्र

नींद के साथ मन का लगाव—खोज का कार्य और जन साधारण की धारणा—अन्वेषकों के जीवन का सुख—मकानों और महलों में भूकम्पों का प्रभाव—कच्छ के स्मारक और समाधि स्थल—लाखा का प्रसिद्ध स्मारक—जाडेचा लोगों का बार बार धर्म-परिवर्तन—मिस्टर गार्डिनर से मुलाकात और उसकी सहायता—जाडेचा सरदार का स्वागत—सात वर्षीय बालक राजा सिंहासन पर—जाडेचा जागीरदारों के बैठने का दीवानखाना—भुज के शेर महल और शीश महल—राज महलों के निर्माण में अपरिमित सम्पत्ति का खर्च—सोने से बने हुए पायों का राव लाखा का पलंग—जाडेचा वंश का प्राचीन इतिहास—राजपूतों के विवाहों में गोत्र का विचार—प्राचीन काल के संकुचित विचारों का त्याग—कृष्ण के वंश में बुद्ध के अनुयायी—यादव वंश में बौद्ध धर्मावलम्बी।

४ जनवरी १८२३—यदि किसी पश्चिमी देश के श्रमशील आदमी को रात का भोजन करा देने के बाद उसको काफी के स्थान पर घोड़े की सवारी के लिये आमन्त्रित किया जाय और घोड़े पर ही सारी रात बिताने के लिये उससे अनुरोध किया जाय तो मेरी समझ में उसको एक भयानक कठिनाई की अनुभूति होगी। लेकिन अभ्यास इसके लिये उसको तैयार कर लेगा। लेकिन यदि इस प्रकार के श्रम के बदले उसको ऐसे दृश्य देखने को मिलें, जैसे मैंने देखे हैं तो उसको एक तरह का एक अद्भुत आनंद प्राप्त होगा। यदि उसके स्वभाव में साहस का अस्तित्व है तो उसके द्वारा उसे ऐसा सुख प्राप्त होगा, जिससे सारी रात अपने आप कट जायगी और सबेरा होने में देर न लगेगी। इतना नहीं, कदाचित वह सोचने लगेगा कि उसकी वह रात कुछ और बड़ी होती।

मन को उभारने और स्फूर्ति देने वाली जब कोई सामग्री मिल जाती है तो वे सभी परिस्थितियाँ बदल जाती हैं, जिनका मनुष्य अभ्यासी होता है। किसी के संस्मरण और स्मारक भी इसी प्रकार की सामग्री में गिने जाते हैं। लेकिन उनका प्रभाव उन्हीं के भावोभावों तक काम करता है, जो उनके महत्व को समझते और पहचानते हैं।

अन्धकार पूर्ण जङ्गलों और जनहीन मैदानों में अपरिचित स्थानों और देशों

में जो स्मारकों और संस्मरणों की खोज करने निकलते हैं, उनके मनोभावों में क्या बात होती है।, इसे सब कोई नहीं जानता।

काठियो की प्राचीन राजधानी पठकोट के खण्डहरों और वहाँ के टूटे फूटे मन्दिरों के पत्थरों में शिला लेखों की खोज का काम कुछ इसी प्रकार का था, जहाँ पर मैं अपने कुछ साथियों को लेकर पागल की भाँति घूम रहा था। चारों ओर सन्नाटा था। मेरे और मेरे मार्ग प्रदर्शक के पैरों की आवाज के सिवा वहाँ पर कोई आवाज न थी। इस सन्नाटे को हमारे घोड़े भी भली प्रकार समझते थे और इसीलिए वे अपनी गरदनों को हिला हिलाकर चल रहे थे। वे कुछ कर नहीं पाते थे, लेकिन सभी कुछ अनुभव करते थे। यह दृश्य उस समय और भी अनोखा हो गया, जब मशाल की रोशनी उन दाढ़ी वाले लोगों के मुख पर पड़ती थी, जो इन मुकामों पर घूमते और भटकते हुए एक फिरंगी को देखकर आश्चर्य चकित होते थे। उस समय का यह दृश्य तो (गेराडडो) (१) अथवा (स्लकेन) के देखने के योग्य था और कच्छ में घोड़े की पीठ पर बितायी हुई रात के समान था।

(बर्कहार्ड) का कहना है कि जब वह मूसा और हारूँ की मजारें देखने गया और वहाँ के खण्डहरों में शिला लेखों की खोज करने लगा तो जिन्होंने उसे देखा, उन लोगों ने उस पर अविश्वास किया और उसको दफीना खोजने वाला कोई जादूगर समझा। सम्पूर्ण भारत में यही धारणा फैल गयी।

मेरे सम्बन्ध में भी कोई आश्चर्य की बात नहीं हुई, यदि इस प्रकार की धारणा किसी ने बना ली हो। यह बात सही है कि मुझे बहुत-से लोग पहले से जानते थे। लेकिन उन लोगों की संख्या कम थी, जो मेरे खोज के कार्य को लक्ष्मी की अपेक्षा सरस्वती से अधिक सम्बन्धित मानते हों। जो कुछ हो, ऐसी धारणा का बिल्कुल आदर न करना उचित नहीं माना जा सकता। इसलिये कि पूर्वीय देशों के लोग प्राचीन काल से अत्याचारों के शिकार बन चुके हैं, वे सदा लूटे-मारे गये हैं, इसलिये वहाँ के लोग अपनी सम्पत्ति को जमीन के भीतर गाड़कर रखने में अधिक सुरक्षित समझते हैं। इसीलिये वे अनुमान लगाते हैं कि खण्डहरों और उजड़े हुए स्थानों में भटकने वाला कोई व्यक्ति इसलिये घूम रहा है कि उसे कोई खजाना मिलेगा।

प्रातः होते ही घुम की पहाड़ियाँ दिखायी देने लगी और उनकी ऊँची चोटियाँ दूर से ऐसी मालूम हो रही थीं, मानो वे आसमान को स्पर्श करने जा रही हैं। मैंने दूर से ही वहाँ की पहाड़ियों का यह दृश्य देखा। परन्तु कारीगरों के निर्माण कला की विशेषता का कोई प्रमाण नहीं मिल रहा था।

पिछले दिनों में जो भूकम्प यहाँ आया था। उसका अधिक प्रमाण यहीं की

---

(१) स्पेन्स चित्रकार।

इमारतो पर पडा था। उस भूकम्प के कारण यहाँ के मकानो और महलों में दरारें हो गयी थीं। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि शासन की तरफ से उनकी तरफ से उनकी मरम्मत कराने का कोई कार्य नहीं किया गया।

सूरज के निकलते निकलते मैं राजनीतिक एजेण्ट मिस्टर गार्डिनर के निवास-स्थान पर पहुँच गया। वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि साहब वायु सेवन के लिये निकल गये हैं। इसलिये मुझे कुछ समय बिताकर उनसे भेंट करनी थी। अतएव मैंने कच्छ के रावो के समाधि स्थलों की ओर का रास्ता पकडा। ये स्मारक झील के पश्चिमी भाग पर बने हुए हैं। उनके बीच में एक टापू है।

इन स्मारकों में पुरातत्व और चित्रकला दोनों ही विषयों की महत्वपूर्ण सामग्री मौजूद है। सन् १८१८ ईसवी के भूकम्प ने जाडेचों के इन स्मारकों को बुरी तरह से हिलाकर आघात पहुँचाया था। कुछ स्मारक बिल्कुल अप्रभावित रहे और कुछ स्मारक गिरकर ढेर हो गये, कुछ दस्तूर कायम रहे। राव लाखा के स्मारक में—जो बहुत ठोस बना हुआ था—कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचा।

इन स्मारकों की बनावट राजपूताना के स्मारकों से बिल्कुल भिन्न है। क्योंकि राजपूताना में चबूतरे पर स्तम्भों के ऊपर गुम्बज बना देते हैं। लेकिन यहाँ पर पत्थरों की पतली दीवार सी खडी करते हैं और उनकी रक्षा के लिये एक अच्छी खासी जाली लगा देते हैं, जिससे स्मारक घिर कर सुरक्षित बने रहते हैं। उनके ऐसा करने से किसी प्रकार की अपवित्रता अथवा गन्दगी स्मारक के भीतर नहीं पहुँचती।

इन स्मारकों में होकर मैंने राव लाखा (१) का स्मारक देखा, उसमें घोडे पर सवार, हाथ में बल्लम लिये हुए उसकी उभरी हुई आकृति बनी हुई थी। राव लाखा के स्मारक के दोनों ओर बराबर बराबर संख्या में छोटे छोटे स्मारक बने हुए हैं, जो उसकी रानियों और उनकी दासियों के हैं और उन्ही रानियो तथा दासियों के स्मारक यहाँ पर बनाये गये हैं, जिन पर उस समय की तिथि का उल्लेख था।

इन स्मारकों के पास ही गदा के रूप में एक स्तम्भ खडा था। उसके ऊपर दीपक रखने का स्थान खोखला करके बनाया गया है। इससे राजपूतों की दाह क्रिया के साथ-साथ मुसलमानों के तरीकों की भी अनुभूति होती है। कहने का अभिप्राय यह कि यहाँ की इस प्रणाली से राजपूतों और मुसलमानों—दोनों की परम्पराओं का परिचय मिलता है।

इसका कारण है। वास्तव में जाडेचा लोगों ने अनेक बार अपने धर्म का परि-

---

(१) इन स्मारक के श्रेष्ठ वर्णों के लिये मैं अपने पाठकों को कैप्टेन ग्राइण्डले की लिखी हुई "सीनरी आफ वेस्टर्न इण्डिया" नामक पुस्तक पढ़ने के लिये अनुरोध करता हूँ।

वर्तन किया है। ऐसी दशा में उनके लिये यह कह सकना बहुत कठिन हो गया है कि वे किस धर्म के अनुयायी हैं।

इन सभी समाधियों पर छेनी से काट काटकर बनायी गयी आकृतियों को देख कर ज्ञात होता है कि ये लोग यहाँ के शूर वीर थे। इनमें केवल एक समाधि ऐसे आदमी की है, जिसने स्वयं आत्म हत्या की थी। उसकी समाधि पर ऐसी आकृति बनायी गयी है जिसने घुटने टेक रखे हैं और जो धाप देने की मुद्रा में कटार को अपनी छाती पर रखे हुए है। कदाचित यह समाधि किसी कारण अथवा भाव की स्मृतियों को कायम रखने के लिये बनायी गयी है।

भुज नगर तीन शताब्दियों से अधिक पुराना नहीं है। ऐसी हालत में जाडेचा लोगों के सम्बन्ध में वहाँ पर शिला लेखों की खोज करना बेकार है। लेकिन वहाँ पर कुछ स्मारक ऐसे जरूर थे, जिनमें कुछ पुराने लेख पाये गये हैं। परन्तु वे ऐसे मिट गये हैं कि जो पढ़े नहीं जा सकते।

वापस लौटकर आने पर रेजीडेण्ट साहब और उनके सहायक लफ्टीनेण्ट वाल्टर से भेंट हुई। उनके स्वागत-सत्कार के कारण इन यात्राओं में जिन असुविधाओं का सामना करना पड़ा था, उनकी पूर्ति एक साथ हो गयी। सिन्धु नदी के पूर्वी किनारे की तरफ मेरा जाने का इरादा था। इसे जानकर मिस्टर गार्डिनर ने तुरन्त प्रबन्ध करा दिया, जिससे मैं आसानी के साथ वहाँ पर पहुँच सकूँ। लेकिन मेरे सामने एक अनिश्चित अवस्था उत्पन्न हो गयी। अगर मैं उनके प्रबन्ध को स्वीकार करता हूँ तो बिना वहाँ पर रुके हुए मुझे फौरन चला जाना चाहिये और जाड़ेचों के इतिहास तथा उनकी अन्यान्य बातों की खोज का अपना निश्चय खतम कर देना चाहिये था। अतएव मैंने भुज में छत्तीस घंटे रुकने का निर्णय किया।

मैंने उस समय अनुमान लगाया कि सम्भव है उस समय तक जो हवा चल रही है उसमें फिर से परिवर्तन हो जाय और फिर मांडवी जाकर मैं अपने कार्यक्रम को पूरा कर सकूँ। मैंने अपना विचार प्रकट कर दिया, उसे सुनकर हमारे मेजमान साहब बहुत प्रसन्न हुए, मुझे अपने इस कार्य में मिस्टर गार्डिनर से उन सभी बातों की जानकारी हुई जिनको वे स्वयं जानते थे, इसके सिवा भाट अपनी अपनी पोथियाँ लेकर मेरे पास पहुँच गये।

प्रतिनिधि मंडल के प्रमुख माननीय रतन जी के साथ मेरी बातें आरम्भ हुई। उनका स्वभाव बहुत अच्छा था। उन्होंने अपने रोचक तरीकों से जाडेचा शासन के विस्तृत विवरण मेरे सामने रखे। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इनके और राजपूतों के शासन में किस प्रकार का अन्तर है।

रतन जी बहुत समय तक मेरे साथ बातें करते रहे और मेरे प्रत्येक प्रश्न को सुनकर बड़ी सावधानी और गम्भीरता के साथ मुझे उत्तर दिया। मेरे लिखने के समय

वे जरा भी ऊबे नही और बडी प्रसन्नता के साथ वे मेरे पास बैठे बातें करते रहे। उनके सहयोग से मुझे आवश्यक सभी सामग्री मिल सकी।

जब मैं भोजन कर चुका तो मुत्र के मुसाहब, प्रतिनिधि मडल के सदस्य और राजधानी में उपस्थित समस्त जाडेचा सरदार मुझसे मिलने के लिये आये। उन सबके के स्वागत और सत्कार से मैं बहुत प्रभावित हुआ। मुझे उनके व्यवहारो में बडी शालीनता मिली। उनके सभी तज और तरीके इस बात का प्रमाण दे रहे थे कि वे लोग श्रेष्ठ जगत के आदमी हैं। परन्तु वे लोग इतने लम्बे कद में नहीं थे, जितना कि मैंने उन सबके सम्बन्ध में सुन रखा था। उनके रग में भी पूर्वीय राजपूतों से अधिक अन्तर नहीं था। उनकी ठोडी पर बीच में कुछ बाल बने हुए थे। इसलिये उनकी दाढ़ियाँ कुछ अन्तर लिये हुए जरूर थी। परन्तु और कोई विशेष अन्तर नहीं था।

जाडेचा लोगों को देखकर मुझे जो एक अन्तर साफ मालूम हुआ, वह यह कि उनके पहनने के वस्त्र बहुत लम्बे-चौडे और ढीले थे। उनके पाजामे तो गजब के ढीले थे, सिर पर वे लोग पगडी बाँधे थे, जो अच्छी लगती थी।

दूसरे दिन दोपहर को राजा के दरबार में गया, वहाँ राजा केवल सात वर्ष का एक बालक था ऊपर यह लिखा जा चुका है कि वंश की परम्परा के अनुसार, अंतिम देसल राजा के बाद पाचवी पीढ़ी में इस बालक राजा ने देसल के नाम से सिंहासन पर बैठने का अधिकार प्राप्त किया है। जैसी कि राजपूतों में परम्परा है, ये लोग भी अपने नाम के साथ पिता का नाम शामिल करते हैं। अतएव वर्तमान राजा देसल भारामी अर्थात् भार का बेटा देसल है। वह देसल गोरानी अथवा यों कहा जाय कि गोर के बेटे देसल के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता।

इस वंश में इस नाम के केवल दो राजा हुए हैं। इस वंश की लम्बी वंशावली है, उसमें कुछ परिवर्तनों के साथ लाखा और रायधन के नाम बार-बार आते हुए देखे जाते हैं उस वंश में ये दोनों ही अधिक प्रसिद्ध माने गये हैं। शहर का हिस्सा मैंने महल में जाते समय ही देखा। मैं नहीं जानता कि पूरे नगर की क्या अवस्था और व्यवस्था है, लेकिन जितना भाग मैंने देखा यदि उसके अतिरिक्त वहाँ के बाकी हिस्से में कोई विशेष बात नहीं है तो शेष नगर के न देख सकने का मुझे कोई ख्याल नहीं है।

बालक राजा एक सिंहासन पर बैठा हुआ था वह सिंहासन अन्य राजाओं के सिंहासनों से ऊँचा था। कदाचित् इसलिये कि वह दूसरों की बैठकों अथवा कुर्सियों से ऊपर दिखायी पड़े। लेकिन बैठने के लिये इस प्रकार की कुर्सियाँ अथवा दूसरी कोई चीज राजपूतों के दरबारों में कभी देखने को नहीं मिली। लम्बा और विस्तृत दीवान खाना जाडेचा जागीरदारों से पूरे तौर पर भरा हुआ था। जैसे ही मैंने दरबार में प्रवेश

किया, एक साथ दरबार में उपस्थित भाटों ने पुरानी कविता छन्दों के साथ और पराक्रम का बखान करना आरम्भ किया। भाटों की आवाज, पुरखों के बखान करने के तरीके और वे भी शायरी एवम् कविता में, सरदारों जागीरदारों और राज्य के अन्य समस्त अपनी आत्मीयता से भरा हुआ दिवान और भव्य राजदरबार गूँज उठा। उन बड़े बड़े राजाओं, शूर वीरों और पूर्वजों के पुण्य नामों से जो अपनी भूमि पर हुए, वह आवाज जब पहुँची, मैं इस दृश्य को देखकर रह गया।

भाटों की आवाजों के शान्त होने पर बाहर राजा ने मेरा स्वागत किया और उसके पश्चात् मैं रतन जी के साथ मुझ के शीशमहल और दीवान महल को देखने के लिये गया, वहाँ पर जिस प्रकार का शीश महल देखा, वैसा भारत का अन्य राज्यों में भी मैंने देखा था। इस प्रकार के शीश महल विभिन्न नामों से राज्यों में प्रत्येक रईस, सरदार और जागीरदार के पास होता है। जिस शीशमहल को मैंने रतन जी के साथ जाकर देखा, उसके निर्माण में असली लाख अर्थात् कच्छ राज के तीन वर्षों की आय खर्च की गयी थी। मैंने इस दृष्टिकोण से भी उस महल को देखा। राजा के सिवा, उसके प्रत्येक रईस, सामन्त और जागीरदार के पास ऐसे महल का होना कम चमत्कार पूर्ण नहीं था। जिन राज्यों की प्रजा भोजन और वस्त्रों की व्यवस्था से सन्तुष्ट न हो उसके रईसों जागीरदारों और अन्य लोगों की यह अवस्था।

मैंने उस शीश महल को भली प्रकार देखा। महल के चमत्कार की अपेक्षा उसे बनवाने वाले राव लाखा के चमत्कार को देखने और समझने की चेष्टा की। इसके निर्माण में मैंने लाखा के किसी विवेक को अनुभव नहीं किया। उसके पूर्वजों ने एक बड़ी कंजूसी के साथ इस पूँजी को एकत्रित किया था और अपनी प्रजा को नंगे-उघारे रखकर अपना खजाना भरा था उस पूँजी और सम्पत्ति से इस प्रकार के महलों और मकानों का निर्माण करना अथवा कराना उस सम्पत्ति का अपव्यय ही कहा जा सकता है।

इस शीश महल का भीतरी भाग संगमरमर का बना हुआ है। उसमें सर्वत्र काँच जड़े हुए हैं और उसके विशेष भागों को सोने के कीमती आभूषणों से अलंकृत किया गया है। प्रकाश के लिये छतों में झाड़ लटक रहे हैं। वे सभी काँच के बने हुए हैं, साथ ही उनमें सुन्दर दृश्यों और चित्रों को अंकित किया गया है। फर्श पर चीनी टाइलें जड़ी हुई हैं। यह स्थान डच एवम् अँगरेजी यूरोपी घड़ियों से आरास्ता किया गया है। यदि उन सबको एक साथ आरम्भ कर दिया जाय तो एक पूरा डच सहगान शुरू हो जायगा।

दीवारों के बीच में बने हुए ताकों में काँच के विभिन्न प्रकार के पदार्थ भरे हुए हैं, उनको देखकर मालूम होता है कि ये स्थान किसी मणिहार अथवा बिसाती के हैं

और जो कांच की बनी हुई चीजों को बेचने के लिये दूकान रखता है। कांच अथवा शीशे की बनी हुई तरह तरह की मूर्तियां दीवारों पर लगी हुई हैं। इस कीमती सजावट के बीच में राव लाखा का वह पलङ्ग रखा हुआ है, जिसमें उसकी मृत्यु हुई थी। उस पलङ्ग के चारों पाये सोने के हैं और, उस पलङ्ग के सामने सदा अखण्ड ज्योति जलती रहती है।

राव लाखा का यह पलङ्ग, कुल देवताओं की भाँति इस वंश में आराध्य और पूज्य मान लिया गया है और यह भी सही है कि जब तक यह नाशमान पलङ्ग बना रहेगा, इसी प्रकार इस वंश में और विशेषकर राज्य के लोगों द्वारा पूजता रहेगा।

इस विशाल स्थान के चारों ओर एक बरामदा है। उसकी फर्श पर भी टाइलें जड़ी हुई हैं। दीवारों में जो चित्र लगे हुए हैं, वे न तो एक मेल के हैं और एक लम्बाई चौड़ाई के हैं, जैसे मेवाड़ का राणा जगत सिंह रूस की सम्राज्ञी कैथराइन के साथ है, मेवाड़ का राजा बख्तसिंह और होगार्थ का चुनाव, दूसरे फ्लेमिश जो बेलजियम का निवासी था, होगार्थ स्वयं प्रसिद्ध अङ्गरेजी चितेरा था। उसका समय १६६७ से १७६४ ईसवी तक माना गया है। वह अपने समय के सभी अविवेक पूर्ण कार्यों पर व्यग्य चित्र बनाया करता था। इसी प्रकार केचित्रों की एक प्रदर्शिनी अभी तक उसके निवास स्थान पर है और उसका वह स्थान लण्डन में है। अंग्रेज तथा भारत की प्रजा के लोगों के साथ कच्छ के प्रथम राव से लेकर अब तक के सभी राजा मौजूद हैं। इस प्रकार इन चित्रों में जो असम्बद्धतायें हैं वे अनेक प्रकार से बेतुकी हैं, लेकिन इन चित्रों को देखकर जो मूल अप्रकट रूप में दिखायी देते हैं, उनमें अनुसन्धान की कुछ सामग्री प्राप्त की जा सकती है। प्राचीनकाल के रावों में जिस प्रकार के पर्दे होते थे और सजावट हुआ करती थी, जैसी उनकी पोशाकें होती थीं, इन सभी बातों में बड़ा अन्तर पड़ गया है। अब न तो वह रहनसहन है और न जीवन की पुरानी अवस्था तथा व्यवस्था है।

वहाँ से चलकर हम लोग नवीन बने हुए दरबार में गये। यह स्थान अभी पूरा बन नहीं पाया था। लेकिन जिस तरह उसका निर्माण हो रहा था, उसमें सादगी थी और सजावट भी उस प्रकार की नहीं थी, जैसी कि ऊपर लिखे हुये महलों की बनावट और सजावट का वर्णन किया गया है। इस दरबार अथवा सभा मण्डप में सभी प्रकार की दृढ़ता, सुविधा और उपयोगिता साफ-साफ दिखायी देती है। स्पष्ट बात यह है कि इसका निर्माण पिछली इमारतों के निर्माण से बिल्कुल भिन्न है।

यह सभा-स्थल इतना विशाल और लम्बा-चौड़ा है कि उसमें झाडेचा वंश के सभी लोग आसामी के साथ एकत्रित होकर बैठ सकते हैं। इस स्थान का चारों ओर से काले पत्थरों से तैयार करके एक टापू-सा बना दिया गया है। इससे लाभ यह होगा कि लोगों को किसी भी मौसिम में शीतल वायु मिलेगी और गरमी के दिनों में यहाँ पर बैठकर लोग बहुत अधिक सुख तथा शान्ति को अनुभव करेंगे।

इस मत को मान लेने में बिल्कुल आश्चर्य नहीं मालूम होता कि महाभारत के यदु, पाण्डु और बुद्ध लोग (यूची यती) अथवा जट लोग थे। बुध उनका गुरु, नेता और पैगम्बर था। ग्निमी, प्रयाग और गिरिनार में जो विजय स्तम्भ मिले हैं, उनमें लिखे हुए लेखों से इसकी सिद्धि होती है।

बुद्ध के धर्म के साथ यदु, यती अथवा जेट वंश का सम्बन्ध कायम करने के समय हम बात का ध्यान रखना चाहिए कि बाईसवें बुद्ध अथवा तीर्थङ्कर नेमि भी यदु थे और कृष्ण के ही वंशज थे। वे दो भाइयों की संतान थे। यह भी मानी हुई बात है कि देवत्व को पहुँचने के पहले स्वयं कृष्ण द्वारिका में बुद्ध त्रिविक्रम की पूजा करते थे और यह भी जाहिर है कि यह पूजन उनके वंश में बहुत पहले से चला आ रहा था।

उन दिनों में बुद्ध की गद्दी का चुनाव होता था और अब भी उनके प्रधान का चुनाव ओसवाल जाति के लोगों में से होता है। लोग अनहिलवाड़ा के राजाओं के वंशज हैं। यह जरूर है कि इन लोगों ने व्यापार को अपना कर क्षात्र धर्म का त्याग कर दिया है। मेरी इस प्रकार की ये बातें गिरिनार के गौरव नेमि के निर्वाचन से सम्बन्ध रखती हों।

इसके अतिरिक्त जैन लोगों में एक परम्परा पायी जाती है जो इस बात का प्रमाण देती है कि इन दोनों सम्प्रदायों का अलगाव कैसे हुआ और बन्द मन्दिर बनने से बौद्धिक अर्थात् बुद्ध सम्बन्धी उत्सव मनाने की प्रथाओं को कैसे बन्द किया गया। एडोनिस (१) की तरह कृष्ण की पूजा भी सबसे पहले यहीं के लोगों में की गयी थी और उस अवसर पर सब लोग बुद्ध की उपेक्षा करके कृष्ण मन्दिर की ओर आकर्षित हुए थे। उस समय बुद्ध के आचार्य लोगों ने दीवारों से घिरे हुए देवता की पूजा करने के सिद्धान्तों का विरोध किया था और लोगों को अपने धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए मन्दिर में नेमिनाथ की मूर्ति स्थापित की गयी थी।

पुरानी और नई परम्पराओं तथा प्रथाओं से हमको यह स्पष्ट मालूम होता है कि समस्त देवताओं की पूजा उनके धर्म का मुख्य सिद्धान्त है। हम यह भी देखते हैं कि दूसरी प्राचीन जातियों की तरह प्रणाली में आकाश के ग्रहों को भी शामिल कर लिया गया है। हेराडोटस का कहना है कि ये जट लोग आत्मा को अमर मानते थे। इसके विषय में अर्जुन और कृष्ण के सम्वाद में जो कुछ लिखा गया है, वह सही है।

ये सब बातें जो यहाँ पर लिखी जा रही हैं, न केवल अरुचिकर हैं, बल्कि अधिकांश लोगों को बुरी लग सकती हैं। अतएव यदुवंश की प्राचीन बातों को छोड़-

(१) (एडोनिस) ग्रीक देवता इतना सुन्दर था कि (एफोडाइट) सौन्दर्य देवी उस पर मुग्ध हो गयी थी। लेकिन बाद में उसी देवी के कहने से एक सूअर ने उसको मार डाला था। —एन० एस० ई०, पेज १४

कर—जो विचित्र उलझनों से भरी हुई हैं—अब हम सिकन्दर के समय की घटनाओं मे आते हैं और सबसे पहले इस बात पर हमको विचार करना है कि सिंधु नदी के किनारे पर जब सिकन्दर अपनी सेना के साथ आया था। उस समय जाडेचा लोगों के पूर्वजो की परिस्थिति क्या थी?

यहाँ पर हम अपनी बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम कृष्ण को एक मनुष्य के रूप मे मानते हैं। हम जानते हैं कि वे यदुवंशी राजकुमार थे। शौरसेन राज्य से उनको भगा दिया गया था। सौराष्ट्र के जंगली आदमियों ने उनको मार डाला था। उनके आठ रानियाँ थी, उनसे अनेक उनके सन्तानें थी, जिनको वे मरने पर अपने पीछे छोड़ गये थे। उन रानियो में एक जाम्बवती थी और साम्ब (१) नामक उसके बेटा हुआ था। इसी साम्ब से जाडेचा लोग अपनी उत्पत्ति मानते हैं।

कृष्ण की मृत्यु के पश्चात् यादव जाति छिन्न भिन्न हो गयी थी। उस अवस्था में कुछ लोग—जैसे कि जैसलमेर के राजवंश के पूर्वज, पञ्जाब के रास्ते से सिंधु को पार करके आगे बढ़े और आखिर में उन लोगो ने गजनी पर राज्य कायम किया। उनके कुछ लोग सौराष्ट्र के बन रहे और तीसरे गिरोह के लोग सिंधु की घाटी मे पैर जमाये और अपने नेता के नाम पर ठट्ठा के पास जहाँ पर सिन्धु का दो मार्गों मे हो जाता है, एक नगर साम्ब के नाम का बसाया, वह साम्ब नगर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

उस नगर की स्थापना के पश्चात् इस जाति के राजाओं के लिये साम्ब उपाधि बन गया और वह आज तक चलता है। उनके इतिहास में इसका प्रयोग आता है और मुस्लिम इतिहासकारों ने उनको सिंध सुम्मा के नाम से सम्बोधित किया है। साम्ब नगर अथवा साम नगर का उल्लेख जाडेचा जाति की वंशावली के साथ-साथ जैसलमेर की प्रसिद्ध शाखा के इतिहास में भी सुम्मकोट (२) के नाम से मिलता है। इसीलिये जो बात मैंने कई वर्ष पहले कही थी, उसे आज फिर लिख रहा हूं और मैं मानता हूं कि यादवों का यह सामि नगर वही (मिनगर) है जिसका वर्णन पेरीप्लस के कर्ता ने इन शब्दों में किया है कि जब मैं भरोच मे था उस समय अर्थात् दूसरी शताब्दी में, उस समय वह मिनगर एक इण्डो-सीथिक राजा की राजधानी थी।

एरियन अगर अपने लेखों मे इस बात को स्वीकार करता है कि एशिया से अन्य जातियों के लोग भी आकर सुम्मा लोगों मे मिल गये थे और वह उनको सीथिक

(१) साम्ब का अर्थ शाम अथवा श्याम होता है। कृष्ण के शरीर का रंग श्यामवर्ण का था, यह सबको जाहिर है। कृष्ण अपने श्याम नाम से अनेक पुस्तकों में लिखे गये हैं। काव्य मे कुछ भक्ति के आवेश में उनका श्याम नाम लिया गया है।

(२) जिस शहर मे परकोटा होता है, उसे कोट अथवा नगर कहते हैं।

मानता है तो फिर अधिक छानबीन में जाने की आवश्यकता नहीं है। परन्तु जब यह कहा जाता है कि उस क्षेत्र के निवासी बलूची जाति के लोग यहाँ थे, जो धर्म परिवर्तन करके जेट लोगों में से आये थे और अपने आप को यदु वंशी कहने लगे थे तो फिर शोध का कार्य करने वालों का कर्तव्य हो जाता है कि वे इसके सम्बन्ध में सही क्या है, इसकी खोज करें।

सिकन्दर जब भारत में आया था, उन दिनों में यहाँ की जो जाति सत्ताधारी थी, उसके विवरण देते हुए एरियन लिखता है 'उनके पूर्वज का नाम बुडिअस अथवा बुध था।' इस तरह वह यदु वंशावली के साथ बौद्ध का सम्बन्ध जोड़ता है, जो यादवों के इतिहास से पूरे तौर पर मिलता जुलता है।

हिन्दुओं के इतिहास के विषय में एरियन और जिन दूसरे लेखकों ने लिखा है, उन सब का आधार मेगस्थनीज के लेख थे, जो अब पूर्ण रूप से अप्राप्य हैं। मेगस्थनीज को सिल्यूकस ने प्राग (प्रयाग) के निकट प्रासी के राजा के दरबार में अपना राजदूत बनाकर भेजा था। यहाँ पर यादव वंश की प्राचीन राजधानी थी। वहाँ का राजा साड्रकोटस चन्द्रगुप्त था। साड्रकोटस का नाम अनेक बार बदल चुका था। चन्द्रगुप्त का नाम प्राचीनकाल से यदु, चौहान और परमार जाति के इतिहासों में मिलता है। लेकिन नाम की इस समता को लेकर और ग्रीक लेखक के द्वारा यह लिखे जाने पर कि उस समय के प्रधान राजवंश का पूर्वज बुडियस था, हमको विचार करते हुए इस परिणाम में आना पड़ता है कि वह प्राग का राजा यदु वंशी ही था, भारत में सार्वभौम शासन नष्ट कर देने के बाद भी, यादवों की सत्ता किसी प्रकार बनी रही, इसका प्रमाण दूसरी शताब्दी में बाहार के राजा सोमप्रीति के प्राप्त होने वाले विवरणों में मिलता है।

वह राजा बौद्धधर्मावलम्बी यदुवंशी था, उसकी प्रभुता के प्रमाण अजमेर, कोमलमेर और गिरिनार में मौजूद हैं, लेकिन सौराष्ट्र के प्रायद्वीप में जिसका प्रभाव उनके नेता की मृत्यु वहाँ हो जाने से अधिक हो गया था, नष्ट होने के बाद भी यादव जाति शक्तिशाली बनी रही। इसके अनेक प्रमाण पाये जाते हैं। साथ ही इसके लिये हमें शिला लेखों और स्मारकों को देखना चाहिये, जिनमें जूनागढ़ के यादव राजाओं के द्वारा बौद्ध धर्म के मन्दिरों के जीर्णोद्धार कराये गये हैं और उनके प्रमाण भी पाये जाते हैं।

दूसरे राज्यों के इतिहासों में भी जूनागढ़ के यदुवंशी राजाओं के उल्लेख उस प्राचीन काल से पाये जाते हैं, जब उन राज्यों की स्थापना की गयी थी। जिस प्रकार मेवाड़ के इतिहास में जूनागढ़ के अधिकारियों के रूप में यादवों (१) का वर्णन विक्रम

(१) इसको कभी नहीं भूलना चाहिये कि सरवेग और चूड़ासमा की मशहूर जातियाँ, जो अब सौराष्ट्र में नहीं हैं, यदुवंश की ही शाखायें हैं।

की दूसरी शताब्दी से मिलने लगता है, जब वे आरम्भ में यहाँ पर आकर आबाद हुये थे।

जेठवा और चावडा लोगों के इतिहास भी इसी प्रकार हैं, उनमे विक्रम की सातवीं और दसवीं शताब्दी में उनके वैवाहिक सम्बन्धो के विवरण पाये जाते हैं और यह समय जाडेचा लोगो के सिन्ध से कच्छ जाने से बहुत पहले का है। इस प्रायद्वीप में यादवो के सम्बन्ध मे प्राचीन कथायें इतनी अधिक सख्या में मिलती हैं, जिनके कारण मेरी धारणा अनेक बातो मे स्पष्ट हो गयी थी और उसी का यह परिणाम था कि मैं उनका और जाडेचा राजाओ को उस समय तक एक समझता रहा, जब तक कि उनके इतिहास से मुझे यह जाहिर नही हो गया अपर वंश की प्रभुता सिन्ध पर सामनगर मे बारहवीं शताब्दी तक कायम रही।

मेरा निर्णय सक्षेप मे इस प्रकार है—

यादव पश्चिमी एशिया से आये हुए इण्डोसीथिक वंश के हैं और यहाँ आये हुए उनको बहुत समय बीत गया है।

अपने पूर्व पुरुष नेता बुध—जिसको एरियन ने बुडेस लिखा है—के नेतृत्व मे उन लोगो ने अपने अधिकृत राज्य को छोटी छोटी रियासतों में शाखाओं के अनुसार बाँट लिया था। वे इतिहास में छप्पन कुल यादव जैसे कुरु पाडु, अश्व, तक्षक, शक, जेट आदि नामों से प्रसिद्ध हैं।

अन्तर्जातीय युद्धों के सबब से वे तितर बितर हो गये और उनमें से कुछ लोग अपने देश की तरफ लौट गये। उनके देश कदाचित् आक्सस और जक्सार्तीस (१) के करीब थे।

उन्होने काकेशस के इलाके में गजनी, पजाब मे सालपुर अथवा स्यालकोट और सिन्धु नदी के किनारे पर सामनगर, सहेवान और कुछ दूसरे नगरो का आबाद किया।

धर्म परिवर्तन अथवा कुछ दूसरे कारणो से बहुत से लोग फिर भारत मे आ गये।

जैसलमेर के भाटी और कच्छ के सिन्ध सुम्मा अथवा जाडेचा उस वंश की प्रमुख शाखायें हैं, जिसके पूर्व पुरुष कृष्ण थे।

अब मुझे सिन्ध सुम्मा जाडेचा लोगों के सम्बन्ध में कुछ और प्रकाश डालना है। उनके पडोसी राजाओं के इतिहास के आधार पर मैं उनके इतिहास की वास्तविकता को समझने की कोशिश करूंगा और इस बात को साबित करने की चेष्टा करूँगा कि विक्रम की प्रारम्भिक शताब्दियों में भी सिन्ध के किनारे उनकी प्रभुता कायम थी। हम जाडेचा की वंशावली में वर्तमान राजा से पीछे की तरफ चल कर

(१) मध्य एशिया की नदियाँ।

अन्वेषण करेंगे और उस समय तक खोज करेंगे, जब तक कुछ निश्चित आधार न मिल जावे।

वर्तमान राजा से चालीस पीढ़ी पहले चूड़चन्द हुआ। वह जेठवा इतिहास के अनुसार, गूमली के संस्थापक शील की चौदहवीं पीढ़ी में राम चामर अथवा राम कँवर का समकालीन था। अब ४० राज्य काल × २३ (प्रत्येक राज्यकाल के लिये अनुमानित वर्ष) = ६२० वर्ष हुये, तो १८८०—६२० = ९६० सम्वत् अथवा ९०४ ईसवी सामनगर के राजा चूड़चन्द का समय हुआ। अब हम इसकी जाँच गूमली के स्मारकों पर लगे हुए शिला-लेखों से करते हैं, जहाँ का राजकुमार सालामन निकाले जाने पर जाम ऊनड़ के पास चला गया था और उसने अपनी सेना देकर शरण में आये हुए का पुनः गद्दी पर बिठाने के लिये पूरी सहायता की थी।

जाड़ेचा लोगों के इतिहास में जाम ऊनड़ का नाम प्रसिद्ध है। क्योंकि वह पहला राजा था जिसने पूर्वजों की उपाधि सुम्मा को जाम में जोड़ दिया था। वह चूड़चन्द की आठवीं पीढ़ी में था, इसलिये ८ × २३ = १८४ + ९६० = सम्वत् ११४४ उसका समय हुआ जिसमें और जेठवा के इतिहास के समय में बहुत थोड़े दिनों का अन्तर है। अर्थात् जेठवा के इतिहास के अनुसार सिन्ध के बामनी सुम्मा जाति के लम्बी दाढ़ी वाले और सच्चे मुसलमान असुरों के द्वारा गूमली का विनाश सम्वत् ११०८ में हुआ, और अगर हम स्मारकों के शिला लेखों को आधार मानें तो यह सम्वत् १११६ आता है।

इस प्रकार हमें इतिहास की दो प्रसिद्ध तिथियों का पता चल जाता है—पहली जाम ऊनड़ की १०५३ ईसवी, जब मुसलिम मजहब में कुछ परिवर्तन हुए, दूसरी चूड़चन्द की जो सन् ९०४ ईसवी गूमली के रामकँवर का समकालीन था। जेठवा लोगों के इतिहास में यह भी लिखा गया है कि इस राजकुमार का विवाह कथकोट के तुला जी काठी की लड़की के साथ हुआ था, उससे एक और उसी समय की तिथि का पता लगता है। अर्थात् इण्डोगेटिक जाति इस प्रायद्वीप में एक हजार वर्ष पहले आ गयी थी।

इसके साथ-साथ, हम एक दूसरे महत्वपूर्ण निष्कर्ष पर आते हैं। यदु-सुम्मा, काठी, चामर अथवा जेठवा, आला, बाल और हूण आदि इन सभी जातियों के लोग रक्त और वंश में एक ही थे, राजपूतों की तरह उनमें वैवाहिक सम्बन्ध बिना किसी भेदभाव के होते थे। ऐसी अवस्था में हम यह स्वीकार करते हैं कि वे लोग—जैसा कि एरियन और कासमस आदि लेखकों ने अनेक स्थानों पर लिखा है—उन्हीं जातियों में से थे, जो विभिन्न अवसरों पर टोलियाँ बना-बनाकर एशिया से इस देश में आई थीं।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर हम यह मान लेते हैं कि सन् ९०४ ईसवी में ये लोग सिन्ध में राज्य करते थे, अतएव उनके सम्बन्ध में अब अधिक बातों के खोज करने की आवश्यकता नहीं है।

इन लोगों में साम्ब की उपाधि चूड़चन्द के लड़के के शासन-काल में खत्म हो गयी थी, यह परिवर्तन बहुत कुछ इसलिये हुआ था कि उनका धर्म भी बदलकर इस्लाम में आ गया था। इसके सम्बन्ध में हमको वंशावली में एक नवीन बात मिलती है, जो इस जाति से सम्बंधित है। मैं साम नगर के राजा चूड़चन्द के समय अर्थात् सम्वत् ६६० सन् ६०४ ईसवी की बात कहने जा रहा हूँ। उसके बेटे साम यदु के पाँच बेटे थे, उनके नाम असपति, नरपति, गजपति, भीमपति और समपति थे।

आज से लगभग दो शताब्दी पहले खलीफों ने सिंध पर अधिकार कर लिया था। (१) अरोर के राजा दाहिर एवम् मुस्लिम सेनापति मोहम्मद बिन-कासिम को भारतीय इतिहास पाठक भली प्रकार जानते हैं। विजय और धर्म परिवर्तन की घटनायें साथ-साथ घटी थीं। जब सामनगर के राजा साम्ब के वंशजों के सामने इस्लाम और हिन्दू धर्म का प्रश्न आया तो उन्होंने एक नवीन कहानी गढ़ी। इसके विषय में मैं जाडेजा लोगों के इतिहास में से एक उद्धरण देना चाहता हूँ।

रोम नामक देश में जो कोई शाम से आता है, वह सुम्मा कहलाता है। कृष्ण और जाम्बवती का पौत्र शाम में रहता था, वहाँ से उसके वंश के लोग, नबी के डर से भाग गये और ऊसम के पहाड़ के ऊपर पहुँच गये। लेकिन उन लोगों ने वहाँ पर भी नबी को देखा तो बड़े परेशान हुए, जब उनको अपनी रक्षा का कोई भी उपाय न सूझा तो वे लोग आत्म समर्पण करते हुए नबी के सामने लेट गये और असपति ने नबी के साथ बैठकर भोजन करने और उसके मिट्टी के बरतन का पानी पीना मंजूर कर लिया। इस प्रकार धर्म-परिवर्तन के बाद वह चगताइयों का राजा बनाया गया और उसके भाइयों को सामन्त नियुक्त किया गया। उसी सिलसिले में नरपति को सिंध मिला और वह समाई नामक स्थान में रहने लगा। गजपति के वंश के लोग भाटी सुम्मा कहे गये और उनको जैसलमेर दिया गया।

इस प्रकार के लोग लौर लेग—जिसमें असम की पहाड़ी है—को छोड़कर सीरिया के साथ सम्बन्ध जोड़ लेते हैं और खुलकर इस्लाम में आ जाते हैं। इस्लाम को मानने वालों में सम्मिलित होने के बाद उन्होंने अपने आपको सैमेटिक वंश का बताना आरम्भ कर दिया। नबी से अभिप्राय कदाचित् पैगम्बर से है। लेकिन यहीं पर एक प्रश्न यह पैदा होता है कि अपनी किन्हीं भी परिस्थितियों में उनको धर्म-परिवर्तन करना पड़ा। लेकिन अपने वंश के गौरव को वे भूल किस प्रकार गये।

एक बात और आश्चर्य की है। वह यह कि जैसलमेर के यदु भाटियों की तरह

(१) हिजरी सन् ६२ अर्थात ७१२ ईसवी, राजस्थान का इतिहास देखिए। लेकिन सिंध की अन्तिम विजय लगभग आधी शताब्दी बाद में हुई थी।

वे तक्षक तुरुष्क अथवा टकिश जाति के चगताई (१) वंश एवम् गौर वंश के साथ भी अपना सम्बन्ध बताते हैं। आश्चर्य यह है कि इस अन्तिम वंश को शाम का उपनाम देकर एक नया प्रकाश डाला गया है, उसका प्रयोग भारत के प्रथम विजयी मोइजुद्दीन के द्वारा किया था। यह सब इसीलिए किया था कि उनके वंश पर लगने वाली कालिमा छिप जाय, क्योंकि उन्होंने अपना धर्म छोड़कर राजपूत वंश से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था।

उनकी भातरी हालत कुछ और भी थी। वे हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म के बीच में निराधार लटके हुए थे। इसलिए दोनों तरफ के आकर्षण में पड़े रहने के कारण साम्ब की उपाधि के द्वारा हिन्दुत्व को भी रक्षा न करके पारसी जमशेद को स्वीकार कर लिया था।

अपने धर्म को त्यागने वाले साम यदु के पितामह चूड़चन्द्र और लाखा के बीच की सात पीढ़ियाँ छोड़े देते हैं। लाखा का उपनाम गोरारो अर्थात् गर्वीला था। उसका शासन साम नगर में था। उसके अनेक सन्तानें हुईं और उन्हीं में से एक की शाखा में ▓ चावड़ा लोगों की उत्पत्ति हुई। चावड़ा वंश की राजकुमारी से उसके चार लड़के उत्पन्न हुए। उनके नाम मोर, क्षोर, सन्द और हमीर थे। दूसरी रानी से भी—जिसकी जन्मभूमि कन्नौज थी—चार लड़के हुए, उनके नाम ऊनड़, मुनई, जय और पूल थे।

लाखा गारारो के पश्चात् जाम ऊनड़ सिंहासन पर बैठा। कहा जाता है कि वह पहला सुम्मा था, जिसने जाम के नाम को धारण किया। जो उल्लेख मिलता है, वह इस प्रकार है। 'लाखा का बेटा ऊनड़ कन्नौज की राजकुमारी से पैदा हुआ था।' अब प्रश्न यह है कि बड़े भाइयों के होते हुए वह सिंहासन पर क्यों बैठा ? लेकिन हम वहाँ की वतमान परिस्थितियों का अध्ययन करने के बाद अनुमान लगा सकते हैं कि वह राजकुमारी प्रतिष्ठा में बड़ी थी।

किसी भी अवस्था में उसका सिंहासन पर बैठना अनिष्टकर हुआ और उसने हमको बहुविवाह के कारण होने वाले दुष्परिणामों को समझने के लिए एक और उदा-

---

(१) गजनी के राजा शालिवाहन के बेटे का नाम बालन्द था उसके दूसरे लड़के का नाम भूपति था। भूपति अपने पिता के जीवन में ही सिंहासन पर बैठ गया था, उसका बड़ा बेटा चिकेता था। भूपति के मरने के बाद जब चिकेता सिंहासन पर बैठा तो उसने बाल्हीक (बलख) के म्लेच्छ राजा उजबक की सुन्दरी लड़की के साथ विवाह कर लिया और उसके पिता के राज्य पर भी अधिकार कर लिया। इस चिकेता ने अपने आठ बेटों के साथ इस्लाम ग्रहण कर लिया था। उसी के वंश के लोग आगे चलकर चकत्ता अथवा चगताई मुगल के नाम से प्रसिद्ध हुए।

—जैसलमेर का इतिहास, श्रीहरिदत्त गोविन्द व्यास, पृ० १२

हरण मिल गया। ऊनड अपने भाइयों के साथ वेदाम प्रदेश में शेरगढ जिसे बाद में सखपत (१) कहा गया, था। वहाँ साम नगर की बड़ी रानी का भाई चावडा शासन करता था। वहाँ पर उसको अप्रकट रूप से राव लाखा के मर जाने का समाचार मिला। इसलिए वह अपने भाइयों को समझा-बुझाकर और कोई भेद न देकर अपनी राजधानी लौट आया। उसके बाद वह सिंहासन पर बैठ गया।

इसके कुछ दिनों के बाद उसके सौतेले भाइयों ने—जो सिंहासन पर बैठने के अधिकार से वञ्चित हो गये थे और बड़े होने के कारण वास्तव में अधिकारी थे—विद्रोह किया। इस विद्रोह में उसका सगा भाई मुनई भी शामिल हुआ और इन सबने मिल कर उसको दडी दन्ड (२) के त्योहार में मार डाला। इस अपराध के कारण ही मुनई को कायर मुनई कहा जाता है।

ऊनड की पत्नी—जो राजकुमारी कहलाती थी—उस समय गर्भवती थी। इसलिये वह चुपके से निकल कर अपने पिता के यहाँ चली गई। उसके पिता ने एक सेना भेजी। उसने मुनई और बन्धु घाती भाइयों को सिन्ध से भगा दिया। उन भाइयों का वध करने के बाद वहाँ पर रहते हुए बारह वर्ष बीत चुके थे।

डरपोक मुनई, उसके भाई और साथी लोग कच्छ चले गये और वहाँ काठियों पर आक्रमण करके उनको कथ कोट से निकाल दिया। मुनई ने कथकोट के पास ही एक नगर बसाया और उसका नाम कायरा रखा। उसके बड़े भाई मोर को कन्तर कोट मिला और दूसरे भाइयों ने बावरियो, जेठवा लोगों एवम् दूसरी जाति के लोगों से बहुत सी भूमि छीन कर अधिकार कर लिया।

इस तरह सिन्ध की सुम्मा जाति कच्छ के प्रान्त में पहले-पहल आबाद हुई। उसके बाद उसकी कितना ही शाखायें हो गयी। उनमें सिंधु के डेल्टा से खम्भात की खाड़ी तक चावडा लोग सब में प्रधान थे। इसी आधार पर हमें साहस पूर्वक कहना चाहते हैं इस क्षेत्र में जो देश थे, उनको चावराष्ट्र, चावडा राष्ट्र अथवा सौराष्ट्र का नाम दिया

(१) वास्तव में यह नाम लाखा के नाम पर पड़ा है। सखपत के सिवा सिन्ध में और भी कितने ही नगरों के यही नाम हैं, उनसे सुम्मा वंश की प्रभुता का पता चलता है।

(२) यह गेंद बल्ल का खेल होता है जो गाँवों में मकर-सक्रान्ति के दिन खेला जाता है। यह गेंद पुराने कपड़ों के कई परतों में लपेटकर और फिर सुतली अथवा डोरी से बाँधकर बनायी जाती है। कभी कभी परतों के भीतर पत्थर रख देते हैं। इस प्रकार यह गेंद और मजबूत लकड़ी के बल्लों का खेल, आजकल की हाकी का पुराना रूप हो सकता है। गेंद का यह खेल गाँवों में प्रचलित है। बल्ले को मेडिया और गेंद को दडी कहा जाता है।

पहुँचत ही उसक वश क लोग एक बड़ी सख्या में आवे थे। इसलिये वह स्वय पूरी तैयारी में था। परिणाम यह हुआ कि दोनों वशों के पचास हजार पुरुष मोहब्बत कोट के मकानों के पास एक दूसरे का नाश करने के लिये भिड़ गय। दोनो ओर से भयानक मार काट हुई। लेकिन विजय सुम्मा लागो की हुई। यद्यपि उस वश के दस हजार आदमी मारे गये और उन आदमियों के साथ उनका राजा भी मारा गया।

सूमरा लोगों को अपने वश के साथ हजार आदमियो की बलि देने के बाद अपनी राजधानी खो देनी पड़ी। इस दुघटना में सूमरावश की बहुत स्त्रियाँ अपने अपने पतियो के साथ सती हुई, उनमें नव विवाहिता वधू की चिता जलवाकर अपन पति क साथ जलकर भस्म हो गयी। उस समय सती होने वाली स्त्रियों ने शाप दिया—जो कोई जाडेजाव न की किसी लड़की से विवाह करेगा, उसका सर्वनाश हो जायगा।

उस समय से इस वश की लड़कियों के साथ विवाह करने का कोई साहस नही करता। इस प्रकार जाडेजा वश के इतिहास के अनुसार, जाडेजा लोगो में बाल-वध की एक प्रथा आरम्भ हो गयी, जो अब तक चालू है। (वॉकर) जैसे एक महापुरुष ने भी, जिसने इस प्रथा को समाप्त कर देने के लिये बहुत बड़ी चेष्टा की थी। इसके सम्बन्ध म कोई स्पष्ट सकेत नहीं करता और इसके मूल कथानक का कोई आधार नहीं मिलता। यह बात जरूर है कि यह प्रथा उस वश में शताब्दियो से बराबर चली आ रही थी।

इस विषय में जो सामग्री मिलती है, उससे इस प्रथा के चालू होने का पूरा कथानक पढ़ने अथवा जानने को नही मिलता और साधारण छानबीन के बाद भी कोई तथ्य हासिल नहीं होता। बहुत कुछ सोचने और समझने के बाद इस विषय में मेरी धारणा तो यह है, जैसा कि मैंने अन्य स्थानो पर भी अपने विचारो को प्रकट किया है कि यहाँ पर जो घटना बतायी गयी है, उससे कई पीढ़ी पहले, सुम्मा लोगो के इस्लाम धर्म स्वीकार करने के समय से ही, जिसके परिणाम स्वरूप राजपूतों क साथ उनक वैवाहिक सम्बन्ध हो गये थे, इस प्रकार की प्रथा का जन्म हुआ था।

बाल-वध की प्रथा का कारण सतियों के शाप क साथ जोड़ा गया है, यह बात किसी समझदार व्यक्ति के विश्वास करने योग्य नहीं है। वास्तव में जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, उस प्रकार की प्रथा पहले स चालू थी। लेकिन उसको सतियो क साथ जोड़कर, उनके शाप के महत्व को बढ़ाने की चेष्टा की गयी है। इससे किसी वश की बर्बरता को अपराधी नहीं बनाया जा सकता और यह मान लेना पड़ता है कि इस प्रथा का कारण सतियो का शाप था। लेकिन सत्य की अपेक्षा यह मनगढ़न्त अधिक है।

रही सतियों के शाप की बात तो शिशु वध की प्रथा का कारण इस शाप के साथ जोड़ा है, उसने कदाचित् अपनी समझ से बड़ी बुद्धिमानी का कार्य किया है। लेकिन वास्तव में सती होने की घटना से उसका कोई सम्बन्ध नही है। इसलिये कि सतियों

गया। इसको यद्यपि हिंदू भूगोल के विद्वानो ने केवल प्रायद्वीप तक ही सीमित रखा है। लेकिन ग्रीक और रोमन भूगोल के विद्वानों ने बड़ी दूरदर्शिता के साथ मायराष्ट्रीन के नाम से उस सम्पूर्ण क्षेत्र को प्रसिद्ध किया, जिसका ऊपर वर्णन किया गया है।

सात पीढ़ियों तक सुम्मा का नाम किसी प्रकार बदला नहीं, वे सुम्मा के नाम से ही प्रसिद्ध थे। इसके बाद साम नगर से एक दूसरे गिरोह ने आकर सन् १०७७ ईसवी में इस पहली के विजय का बिल्कुल उलट दिया।

लाखा गोरार का वंश जाम उनड़ के मर जाने के बाद उत्पन्न हुए उसके लड़के समाच के द्वारा सामनगर में उनड़ की सातवीं पीढ़ी में हाला सुम्मा तक बराबर उन्नति करता रहा। लेकिन उन्हीं दिनों में एक ऐसी घटना हो गयी, जिसमें जाडेजा लोगों में शिशु वध की एक प्रथा चालू हो गयी। हाला सुम्मा के समय में ही जाडेजा नाम की उत्पत्ति हुई थी। अर्थात् यह नाम सोचा गया था। उसके साथ एक छोटी सी घटना का सम्बन्ध बताया जाता है। इस तरह की छोटी मोटी घटनायें भी राजपूतों में वंश के नाम करण के लिये एक कारण बन जाती हैं।

इस राजा के सात लड़के हुए, उनमें छै लड़के किसी न किसी बीमारी के कारण मर गये। लेकिन सातवां जीवित रहा। कहते हैं कि उसको किसी साधु ने आशीर्वाद दिया था। इस प्रदेश में किसी भी बीमारी अथवा कष्ट में झाड़ने की एक अपूर्व प्रथा है। उसके अनुसार कोई साधु अथवा जोगी मोर के पखों को हिलाता हुआ बीमार को झाड़ा करता है और उसके रोग को दूर करने के लिये मन्त्र की तरह बहुत धीरे-धीरे मुंह से कुछ बोलता है। उस प्रकार सुम्मा सरदार का जो बालक झाड़े जाने के बाद रोग से छुटकारा पा गया था, वह जाडेजा कहलाने लगा और उसके वंशज भी इसी नाम से भविष्य में प्रसिद्ध हुए।

उस वंश की अनेक शाखायें हो गयीं। हाला की लड़की का विवाह सूमरा जाति के ऊमर नामक पड़ोसी राजा के साथ हुआ था, (१) उसका निवास-स्थान मोहब्बत कोट में था। कुछ दिनों के बाद उसका नाम, उसी के नाम पर ऊमर-कोट हो गया।

उस विवाह के मौके पर एक झगड़ा हो गया, उसमें सूमरा ने सिंध के राजा को अपने किले में गिरफ्तार कर लिया। जब यह अपमानजनक समाचार सामनगर पहुँचा तो सुम्मा लोगों ने अपने वंश के सभी लोगों को एकत्रित किया। उस समय उन लोगों ने उसकी मुक्ति के लिये निश्चय किया और सभी लोग वहाँ से रवाना हो गये।

सूमरा भी इसके लिये तैयार था। वह जानता था कि इस भेद का समाचार

(१) हैदराबाद (सिंध) के उत्तर में हाला नामक एक नगर है, जो अपने राजा के नाम पर बसा हुआ है। ऊमर कोट सुमरा वंश की उत्पत्ति के लिये पाठकों को राजस्थान का इतिहास पढ़ना चाहिए।

पहुँचते ही उसके वंश के लोग एक बड़ी संख्या में आवेंगे। इसलिये वह स्वयं पूरी तैयारी में था। परिणाम यह हुआ कि दोनों वंशों के पचास हजार पुरुष मोहब्बत कोट के मकानों के पास एक दूसरे का नाश करने के लिये भिड़ गये। दोनों ओर से भयानक मार काट हुई। लेकिन विजय सुम्मा लोगों की हुई। यद्यपि उस वंश के दस हजार आदमी मारे गये और उन आदमियों के साथ उनका राजा भी मारा गया।

सूमरा लोगों को अपने वंश के साथ हजार आदमियों की बलि देने के बाद अपनी राजधानी खो देनी पड़ी। इस दुर्घटना में सूमरावंश की बहुत स्त्रियाँ अपने अपने पतियों के साथ सती हुईं, उनमें नव विवाहिता वधू भी चिता लगवाकर अपने पति के साथ जलकर भस्म हो गयी। उस समय सती होने वाली स्त्रियों ने शाप दिया—जो कोई जाडेजा वंश की किसी लड़की से विवाह करेगा, उसका सर्वनाश हो जायगा।

उस समय से इस वंश की लड़कियों के साथ विवाह करने का कोई साहस नहीं करता। इस प्रकार जाडेजा वंश के इतिहास के अनुसार, जाडेजा लोगों में बाल-वध की एक प्रथा आरम्भ हो गयी, जो अब तक चालू है। (वॉकर) जैसे एक महापुरुष ने भी, जिसने इस प्रथा को समाप्त कर देने के लिये बहुत बड़ी चेष्टा की थी। इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट संकेत नहीं करता और इसके मूल कथानक का कोई आधार नहीं मिलता। यह बात जरूर है कि यह प्रथा उस वंश में शताब्दियों से बराबर चली आ रही थी।

इस विषय में जो सामग्री मिलती है, उससे इस प्रथा के चालू होने का पूरा कथानक पढ़ने अथवा जानने को नहीं मिलता और साधारण छानबीन के बाद भी कोई तथ्य हासिल नहीं होता। बहुत कुछ सोचने और समझने के बाद इस विषय में मेरी धारणा तो यह है, जैसा कि मैंने अन्य स्थानों पर भी अपने विचारों को प्रकट किया है कि यहाँ पर जो घटना बतायी गयी है उससे कई पीढ़ी पहले, सुम्मा लोगों के इस्लाम धर्म स्वीकार करने के समय से ही, जिनके परिणाम स्वरूप राजपूतों के साथ उनके वैवाहिक सम्बन्ध हो गये थे, इस प्रकार की प्रथा का जन्म हुआ था।

बाल-वध की प्रथा का कारण सतियों के शाप के साथ जोड़ा गया है, यह बात किसी समझदार व्यक्ति के विश्वास करने योग्य नहीं है। वास्तव में जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, उस प्रकार की प्रथा पहले से चालू थी। लेकिन उसको सतियों के साथ जोड़कर, उनके शाप के महत्व को बढ़ाने की चेष्टा की गयी है। इससे किसी वंश की बर्बरता को अपराधी नहीं बनाया जा सकता और यह मान लेना पड़ता है कि इस प्रथा का कारण सतियों का शाप था। लेकिन सत्य की अपेक्षा यह मनगढ़न्त अधिक है।

रही सतियों के शाप की बात तो शिशु वध की प्रथा का कारण इस शाप के साथ जोड़ा है, उसने कदाचित् अपनी समझ से बड़ी बुद्धिमानी का कार्य किया है। लेकिन वास्तव में सती होने की घटना से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये कि सतियाँ

को शाप उन लोगो का देना चाहिए था, जिन्होंने उनके पतियो को मारा था और जिनके अपराधो से उनको सती होना पड़ा था। लेकिन उस वंश की लड़कियों के साथ जो विवाह करेगा, उसका नाश हो जायगा, यह बिल्कुल बेतुकी बात है।

सत्य यह है कि उस वंश मे जैसा कि ऊपर सकेत किया गया है, पहले शिशु-वध की प्रथा चालू थी और उसकी वंश मे नही, प्राचीन काल मे अनेक जातियो और वंशो मे इस प्रकार की प्रथायें थी और उनके मूल कारण भी थे। राजपूतो में भी इस प्रकार की प्रथायें रही हैं मुसलमानो की इन प्रथाओ की साक्षी उनके इतिहास स्वयं देते हैं।

मैंने विभिन्न सूत्रो से इस प्रकार की प्रथाओ के सम्बन्ध मे पता लगाने की चेष्टा की है और मुझे भली प्रकार यह जानने को मिला है कि इन प्रथाओ के नष्ट करने के सम्बन्ध मे यहाँ के लोगों ने कभी कोई चेष्टा नही की। बल्कि उनके मूल कारणो को ढकने और छिपाने की हमेशा चेष्टा की गयी है।

मुझे यह भी जानने को मिला है कि लड़कियो की तरह लड़को के साथ भी इस प्रकार का अपराध किया जाता रहा है। उनके मारे जाने की एक बहुत सरल विधि यह थी कि दूध के साथ छोटे शिशु को अफीम घोलकर दे दी जाती थी। इस प्रकार के ऐतिहासिक सत्य में बहुत-सी घटनायें और प्रमाण मुझे मिले हैं। हम आगे के विश्लेषण में भी इसको स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे। उसमें कच्छ और मारवाड़ में एक साथ आबाद हो जाने वाले जाडेजा लोगों और राठौरों की जन संख्या की तुलना से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी।

जन गणना करने पर जाडेजा-वंश मे सब मिलाकर बारह हजार ऐसे पुरुष पाये गये, जो शस्त्र धारण करने के योग्य थे। जबकि राठौर एक शताब्दी पहले भी औरङ्गजेब से अपने राजा की रक्षा करने के लिये पचास हजार आदमी लेकर आये थे और वे आज भी ला सकते हैं। ये सब एक ही वंश के बेटे हैं।

जाडेजा-वंश ऐसी परिस्थितियों में रहा है कि जिनमें उसको युद्ध की हानियों से सदा बचना पड़ा था। राठौरों ने हमेशा युद्ध किये थे और उन युद्धों में उनके वंश की संख्या सदा क्षीण होती रही थी। लेकिन युद्ध की परिस्थितियों मे होकर जाडेजा वंश के लोगों को कभी नहीं गुजरना पड़ा। उस दशा में उस वंश की जन संख्या के कम होने का क्या कारण हो सकता है, सिवा इसके कि इस बात पर विश्वास कर लिया जाय कि अफीमों और दुष्कर्मों ने उनके वंश की आबादी को कभी बढ़ने नहीं दिया।

हाला के बाद प्रथम जाडेजा लाखा सिंहासन पर बैठा। उसके कोई सन्तान नहीं हुई। लाखा और लखधीर हाला के अथवा हाला के छोटे भाई वीर के लड़के थे और इनमें से हा किसी एक की बीमारी से मुक्त होने के कारण इस जाति का नाम जाडेजा

के स्थान पर जाडेचा पढा था। इसी तरह इसका भी अनुमान लगाया जा सकता है कि वह लड़की भी, हाला की नहीं, वेर की ही थी, जिसने शाप दिया था और जिसका पहला प्रभाव लाखा के वध पर ही पड़ा था।

इतिहास मे लिख गया है कि लाखा के वंश मे सात लड़कियाँ पैदा हुई, जो इस अभिशाप की शिकार बनीं। उस वंश का कुल गुरु एक सारस्वत ब्राह्मण था। वह इन लड़कियों के इस दृश्य से बहुत दुखी हुआ और उसके परिणामस्वरूप उसने उस वंश का गुरु की पन्दो का भी अस्वीकार कर दिया। इसके सम्बन्ध मे वंशावली में स्पष्ट लिखा गया—'जब सारसोत बापू ने अपना काम छोड़ दिया तो एक औदीच्य ब्राह्मण को उसके स्थान पर नियुक्त किया गया। उसने अपना कार्य करना आरम्भ किया। उसने इन लाखा लड़कियों का चला दिया, उस समय से उस ब्राह्मण के वंशज जाडेचा के राजगुरू बने हुए हैं।

अच्छा होता, यदि इस वंश के लोग मुसलमान बने रहते और हिन्दुओं मे फिर से आने की कोशिश न करते। अब वे लोग न तो हिन्दू रहे और न मुसलमान। इस दशा में किसी दूसरे वर्ग मे इन लोगों को ढकेलने के बजाय यदि उनको ईसाई मत मे परिवर्तित कर दिया जाय तो कदाचित् इस जाति के लोग अधिक अच्छे रहेंगे, उनमें जो आज जंगली प्रथायें पायी जाती, हैं, उनका अन्त हो सकेगा और उनका मानव जीवन सुखी तथा सफल हो सकेगा।

लाखा का उत्तराधिकारी रायधन हुआ। उसी को कच्छ में जाडेचा रियासत का संस्थापक माना जा सकता है। यद्यपि कुछ नवीन स्थान बसाये गये थे, लेकिन जाम ऊनड के लड़कों ने उनको कमजोर कर दिया था और अपने पिता की हत्या का बदला लेने के लिये उन हत्यारों को कायरा से भी खदेड़कर भगा दिया था। इसी आधार पर यह माना जाता है कि कायर मुमई के वंशज मेर और मीणों की नीच जातियों से मिल गयी और कुछ समय के बाद उन्हीं में मिश्रित हो गयीं।

कपर कोट के विजयी मोर के वंशजों ने यहाँ पर पाँच पीढ़ी तक अपना अधिकार रखा। लेकिन बाद में प्रसिद्ध लाखा फूलानी के साथ—जिसका जिक्र उस समय के प्रत्येक जाति के इतिहास में मिलता है—यह शाखा भी मिट गयी। मोर के सरज, सरज के फूल और फूल के उपनाम धारी लाखा हुआ। यह सतलज म लेकर समुद्र के किनारे तक उन दिनों में लूट मार करने के सम्बन्ध मे बहुत प्रसिद्ध था, जब राठौरों ने भारत की मरुभूमि में जाकर अपना राज्य कायम किया था।

मारवाड के इतिहास म लिखा है कि वह सीहाजी के द्वारा उसके भाई सोनाराम की हत्या के बदले में मारा गया था। राठौरों के इतिहास के अनुसार, यह घटना भारत में उस समय की है, जब शहाबुद्दीन ने ११६३ ईसवी में यहाँ पर आक्रमण किया था। रायधन जाम ऊनड की आठवी पीढ़ी मे हुआ था जिसका समय जेठवा-

इतिहास के आधार पर १०५३ ईसवी होता है। ऐसी दशा मे कच्छ में जडेघा लोगो के द्वारा आखिरी विजय और राज्य की स्थापना के समय को हम आसानी के साथ उत्तरी भारत मे मुसलमानो की जीत का समकालीन अर्थात् ११९३ ईसवी मान सकते हैं।

रायधन ने सिंध के पास से लेकर बहुत दूर तक एक नया उपनिवेश कायम किया और वहीं पर आरम्भ मे चूडी मे निवास स्थान बनवाया। लेकिन थोडे ही समय के बाद बुचाऊ के पास बेन्द अथवा ऊद स्थानान्तरित हो गया।

रायधन के चार लडके उसके साथ साम नगर से आये थे। लेकिन वंशावली में लिखा है कि रायधन के पोथला नामक एक और लडका भी था और वह उसका पद्मम पुत्र (१) था। वह किसी दासी से उत्पन्न हुआ था और उसके दो लडके फुदुब और कुतुब सिंध में ही रह गये थे। रायधन ने किस कारण अपना देश छोडा था, इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं मिलता। इस बात का भी कोई पता नहीं चलता कि उसके उन लडकों की सिंध में क्या हालत थी, जो मुसलमान हो गये थे और उनका पिता सिंध में छोडकर चला आया था। लेकिन अनुमान से मालूम होता है कि उनको वहाँ से निकाल दिया गया होगा। उसके चार बेटे थे—

१—देदा—उसने मपर कोट का सिंहासन प्राप्त किया था।

२—गजन—उसने जेठवा लोगों को पराजित किया था और उनके लडके हाला ने अपने जीते हुए देश का नाम हालार रखा और नया नगर आबाद किया। उसने जाम की उपाधि को कायम रखा।

३—ओठो—इससे भुज के वंश की उत्पत्ति हुई।

४—होठी उसने बरधा के बारह ग्राम प्राप्त किये। उसके वंश होठी कहलाते हैं।

उसका तीसरा बेटा ओठो अपने पिता के राज-सिंहासन पर बैठा। इससे जाहिर होता है कि इस वंश में उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कोई निश्चित व्यवस्था नहीं थी। लड़ भिड़कर जो जितना भाग पा जाता, वह उसका अधिकारी बन जाता।

जाडेचा लोगों के वर्तमान शासन पर विचार करने के समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिये और प्राचीन लाखा गोरार की तरह के राज्य व्यवस्थापकों को भी नहीं भुला देना चाहिये। इसलिए कि अगर वे नवीन उपनिवेश कायम न हो पाते तो यह निश्चित था कि उनका कोई अस्तित्व न होता। चूड़चन्द्र और मुकाओं के इस्लाम में चले जाने से पहले भी अनेक प्रकार के उत्पात होते रहे हैं और इस भाग का नाम इतिहास में उगामी पाया जाता है। उससे इस बात का प्रमाण मिलता है कि प्रथम संगार के मरद उग्रा के नाम पर उसका यह नाम रखा गया था।

---

(१) राजपूतों में अविवाहित पत्नी से उत्पन्न होने वाले लड़के को पद्ममपुत्र कहा जाता है।

इस इतिहास मे ओठो की सातवी पीढ़ी में हमीर तक कोई घटना उल्लेखनीय नहीं है, जिसका इस वंश की बड़ी शाखा वाले हालार के जमाने तेहरा ग्राम के पास मार डाला था। परन्तु इस हत्या का उद्देश्य सफल नहीं हो सका, इसलिये कि स्वयं हालार की पत्नी ने—जो चावडावंश की थी और हमीर के पुत्रों की माता की बहन अर्थात् मौसी थी, उसकी रक्षा करने का प्रत्येक सूरत में निश्चय किया और उसको अपने भाई (ककुल) चावड़ा के पास भेज दिया। उसके भाई ने अपने कर्त्तव्य का पालन यहाँ तक किया कि अपने पुत्र के मारे जाने की परवाह की लेकिन उन लोगो के छिपने का स्थान आम को नहीं बताया। इतिहास मे लिखा है कि उसी दिन से ककुल को सामान्तों को न मार जाने का वरदान सा मिल गया। जिसने किसी के प्राणों की रक्षा की थी, उसके प्राणों की रक्षा होना और उसके लिये वरदान मिलना स्वाभाविक और प्राकृतिक है, जो होना ही चाहिये था।

तरुण राजकुमार सुरक्षित होने के बाद भी कुछ दिनों तक गुप्त रहने की चेष्टा की। उन्हीं दिनों में वह पूर्व की तरफ चला गया और मानिकमेर से मिला। मानिकमेर भविष्य बताने मे बहुत प्रसिद्ध हो रहा था। राजकुमार के पैर में राज का चिह्न था, उस भविष्य वक्ता ने उसे देख लिया। वह जानता था कि इसका चिह्न जिसके पैर मे होता है, वह राज्यधिकारी होता है, उसमें किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता।

राजकुमार को देखकर भविष्य वक्ताने अपनी भविष्य वाणी की और आजादी के साथ कहा कि तुमको एक दिन सिंहासन पर बैठना है। ज्योतिषी ने राजकुमार को अहमदाबाद जाने का परामर्श दिया।

राजकुमार को ज्योतिषी की बातो से परम संतोष मिला। वह सोचने लगा—यह कैसे होगा ? लेकिन फिर सोचा कि इस प्रकार की भविष्य-वाणी सच हुआ करती है। क्योंकि उसने किसी लाभ लालच में ऐसा नहीं कहा। ज्योतिषी के परामर्श के अनुसार, बड़ी खुशी के साथ वह उससे विदा होकर अहमदाबाद के लिये रवाना हुआ।

राजकुमार को मार्ग में एक काला घोड़ा मिला। यह एक अच्छा शकुन होता है। राजकुमार को संतोष मिला। वह अपने रास्ते मे आगे बढ़ा। उसे कुछ दूर के बाद एक राजा मिला, वह शिकार के लिये निकला था। वह राजा उसके परिचय का था। भेंट होने पर राजकुमार के साथ राजा ने बड़ा स्नेह प्रकट किया और उसने राजकुमार को अपने साथ ले लिया।

उसी मौके पर राजा ने हाका के बाद (१) शेर का शिकार किया और राज-

---

(१) राजा के शिकार पर आने पर साथ के लोग हल्ला मचा कर जानवर को जंगल से बाहर आने का मौका देते हैं, उसी समय राजा निशाना लगाता है। इस प्रकार हल्ला को हाका कहा जाता है।

कुमार के साथ वह अपनी राजधानी में आया। उसने राजकुमार को बड़े सम्मान के साथ रखा और उसे राव की पदवी देकर कच्छ और मोरवी की जागीर का उस अधिकारी बना दिया। राजकुमार को अपना पलटता हुआ भाग्य दिखायी देने लगा।

सेना के बल पर जाम ने राजकुमार को निकाला था और उसको असहाय दशा में हालार जाकर शरण लेनी पड़ी थी। इस प्रकार हमीर के बेटे हमीरानी ने सन् १५३७ ईसवी में अपना अधिकार प्राप्त कर लिया और सन् १५४६ ईसवी म अगहन की पञ्चमी को भुज नगर की स्थापना की। उसने ज्योतिषी मानिकमेर को भुलाया नहीं। उसने ज्योतिषी और उसके वंशजों को वीर नामक—जो आजकल अजार कहलाता है—सदा के लिये देकर उसे सम्मानित किया। उस अजार के अधिकारी आजकल अङ्गरेज हैं।

यहाँ पर यह भी जान लेना चाहिए कि हमीर ने अपने मारे जाने क पहले अपने वंश के कुछ लोगों को—जो बालिग नहीं थे—जागीरें दी थीं, वे लोग अब तक कच्छ में सामन्त हैं। जिनको इस प्रकार जागीरें दी गयी थीं, उनमें रोहा, बीजम, मावदेड़ा, नलिया, अदिसर आदि हैं।

भुज के संस्थापक राव खेंगार से लेकर अब तक नाबालिग राव तक चौदह पीढ़ियाँ होती हैं। उनके नाम और सिंहासन पर बैठने की तिथि—जो गद्दी पर बैठे—सभी कुछ सावधानी क साथ इतिहास म लिखा गया है। इसके साथ साथ उनके मरने की तिथियाँ भी उसमे दी गयी हैं। उन बातों में पाठकों की रुचि हो अथवा न हो, यह दूसरी बात है। लेकिन क्रम से जो लोग सिंहासन पर बैठे उनके नामों के साथ वहाँ के प्रचलित विशेषण लगाये गये हैं। उन विशेषणों से उनके वंश और शाखाओं का पता चलता है। जो लोग जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध, राजनीतिक परिस्थितियों और वंश के सम्बन्ध मे सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, ये विवरण उनके बड़े काम के साबित होंगे।

इसलिये आवश्यक समझकर यहाँ पर उनके विवरण, लेकिन संक्षेप में दिये गये हैं। यह बात जरूर है कि इस प्रकार के विवरण पश्चिमी देशों के पाठकों के काम के नहीं भी हो सकते, अतएव उनकी अरुचि का होना इन घटनाओं के साथ अस्वाभाविक नहीं होगा। जैसे कि उनको हमीरानी, खेंगरानी, मारानी, तमाचीयानी, नोघानी, हालानी, रायधनानी, कारानी और जो रानी इत्यादि की विस्तृत वंशावलियों से कोई सरोकार न होना स्वाभाविक है। विशेष कर उन स्थानों के साथ, जहाँ पर राजाओं के वंशों और उनकी शाखाओं को स्पष्ट करने के लिये विशेषणों को कई-कई बार दोहराया गया है, जैसे खेंगार हमीरानी, खेंगार तमाचीयानी, खेंगार नोघानी इत्यादि। कहा-कहीं पर खेंगार अथवा दूसरे इसी प्रकार के नामधारी राजाओं की शाखा का

र प्रकट करने के लिये आधा दजन से अधिक पैतृक नामों अथवा विशेषणों को बार-दोहराया गया है।

इस प्रकार के विवरणों के संग्रह जाडेचा भाट ने अपनी पोथियों में अधिक अंकित कर रखा है। यह देखने में अथवा अधिक ध्यान देने से चाहे भले बेकार सूम पड़े, लेकिन जब उत्तराधिकार जैसे विवाद खड़े होते हैं तो उनको ईमानदारी के म, सही सही निर्णय करने के लिये केवल ये वंशावलियाँ और शाखाओं के विवरण। सहायता करते हैं।

मूल वंशावलियों के भीतर रहकर इस विषय पर विस्तार से लिखना कुछ अधिक कठिन कार्य नहीं था। लेकिन यहाँ पर मेरा प्रधान उद्देश्य वर्तमान राजवंश की वास्तविक वंशावली को समझना, चालू शासन-पद्धति की विशेषताओं का सही विवरण देना और जाडेजा लोगों के रहन सहन, स्थिति एवम् धार्मिक, परिवर्तनों का वर्णन करना है।

अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के पहले मैं इस जाति के प्रमुख गुणों पर दृष्टिपात करना चाहता हूँ और विशेष रूप से मथन करने के बाद, जो दो मत कायम हुए हैं, उन पर प्रकाश डालूँगा।

भारत में यदुवंश की प्रधान सत्ता और प्रभुता ईसा से पहले लगभग बारह सौ वर्ष पहले छिन्न भिन्न हो गयी थी। उसके बाद उनके जो अधिकार छिन्न भिन्न अवस्था में मिलते हैं, उनको देखना और टटोलना भी मेरे लिये बहुत आवश्यक है। यह बात जरूर है कि जिनके सम्बन्ध में मैं खोज करने और समझने-बूझने जा रहा हूँ, वे इतिहासों में कहीं नहीं मिलती। उस अवस्था में उनके आधार उन वंशावलियों में—जो आसानी के साथ शुद्ध और सही नहीं कही जा सकतीं—में पाये जाने के साथ-साथ तीर्थ स्थानों के माहात्म्यों, परम्पराओं, प्रथाओं और शिला-लेखों तथा स्मारकों में मिलते हैं जिनकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। लेकिन बहुत मथने की आवश्यकता है। बिना मथे हुए सत्य की खोज नहीं की जा सकती। इस मथने और खोज करने का कार्य जितने ही परिश्रम और धैर्य के साथ किया जाता है, उतनी ही अच्छी और सही सामग्री प्राप्त होती है।

एक बात और है, जिसके सम्बन्ध में पहले भी मैं लिख चुका हूँ और आज यहाँ पर भी लिख देना चाहता हूँ। जो सामग्री बहुत सही और प्रामाणिक न मालूम हो, उसे न तो छोड़ देना ठीक है और न उस पर आँखें बन्द करके विश्वास कर लेना ठीक होता है। पुरातत्व विषयक कार्य शोध का वह कार्य है, जो शोध कर्त्ता को बारीक से बारीक कार्य की तहों में प्रवेश करने के लिये मजबूर करता है और वहाँ—अत्यन्त अंधकार में पहुँचने पर भी बहुत सावधानी के साथ आँखें खोलकर देखना और समझना पड़ता है। अविश्वास करके छोड़ देने से यह निश्चित है कि उसमें छिपी हुई

कुमार के साथ वह अपनी राजधानी में आया। उसने राजकुमार को बड़े सम्मान के साथ रखा और उसे राव की पदवी देकर कच्छ और मोरवी की जागीर का उस अधिकारी बना दिया। राजकुमार को अपना पलटता हुआ भाग्य दिखायी देने लगा।

सेना के बल पर जाम ने राजकुमार को निकाला था और उसको असह्य दशा में हालार जाकर शरण लेनी पड़ी थी। इस प्रकार हमीर के बेटे हमीरानी ने सन् १५३७ ईसवी में अपना अधिकार प्राप्त कर लिया और सन् १५४६ ईसवी मे अगहन की पञ्चमी को भुज नगर की स्थापना की। उसने ज्योतिषी मानिकमेर को भुलाया नहीं। उसने ज्योतिषी और उसके वंशजों को बीर नामक—जो आजकल अजार कहलाता है—सदा के लिये देकर उसे सम्मानित किया। उस अजार के अधिकारी आजकल अङ्गरेज हैं।

यहाँ पर यह भी जान लेना चाहिए कि हमीर ने अपने मारे जाने के पहले अपने वंश के कुछ लोगों को—जो बालिग नही थे—जागीरें दी थी, वे लोग अब तक कच्छ में सामन्त हैं। जिनको इस प्रकार जागीरें दी गयी थी, उनमें रोहा, चीजम, मावतेरा, नलिया, अटिसर आदि हैं।

भुज के संस्थापक राव खेंगार से लेकर अब तक नाबालिग राव तक चौदह पीढ़ियाँ होती हैं। उनके नाम और सिंहासन पर बैठने की तिथि—जो गद्दी पर बैठे—सभी कुछ सावधानी के साथ इतिहास में लिखा गया है। इसके साथ साथ उनके मरने की तिथियाँ भी उसमें दी गयी हैं। उन बातों में पाठकों की रुचि हो अथवा न हो, यह दूसरी बात है। लेकिन क्रम से जो लोग सिंहासन पर बैठे, उनके नामों के साथ वहाँ के प्रचलित विशेषण लगाये गये हैं। उन विशेषणों से उनके वंश और शाखाओं का पता चलता है। जो लोग जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध, राजनीतिक परिस्थितियाँ और वंश के सम्बन्ध में सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं, ये विवरण उनके बड़े काम के साबित होंगे।

इसलिये आवश्यक समझकर यहाँ पर उनके विवरण, लेकिन संक्षेप में दिये गये हैं। यह बात जरूर है कि इस प्रकार के विवरण पश्चिमी देशों के पाठकों के काम के नहीं भी हो सकते, अतएव उनकी अरुचि का होना इन घटनाओं के साथ अस्वाभाविक नहीं होगा। जैसे कि उनको हमीरानी, खगरानी, भारानी, तमाचीयानी, नौघानी, हालानी, रायधनानी, कारानी और जो रानी इत्यादि की विस्तृत वंशावलियों से कोई सरोकार न होना स्वाभाविक है। विशेष कर उन स्थानों के साथ, जहाँ पर राजाओं के वंशों और उनकी शाखाओं को स्पष्ट करने के लिये विशेषणों को कई-कई बार दोहराया गया है, जैसे खगार हमीरानी, खेंगार तमाचीयानी, खगार नौघानी इत्यादि। कहीं-कहीं पर खगार अथवा दूसरे इसी प्रकार के नामधारी राजाओं की शाखा का

अन्तर प्रकट करने के लिये आधा दजन से अधिक पैतृक नामों अथवा विशेषणों को बार बार दोहराया गया है।

इस प्रकार के विवरणों के संग्रह जाडेचा के भाट ने अपनी पोथियों में अधिक एकत्रित कर रखा है। वह देखने में अथवा अधिक ध्यान देने से चाहे भले बेकार मालूम पड़े, लेकिन जब उत्तराधिकार जैसे विवाद खड़े होते हैं तो उनको ईमानदारी के साथ, सही सही निर्णय करने के लिये केवल ये वंशावलियाँ और शाखाओं के विवरण ही सहायता करते हैं।

मूल वंशावलियों के भीतर रहकर इस विषय पर विस्तार से लिखना कुछ अधिक कठिन कार्य नहीं था। लेकिन यहाँ पर मेरा प्रधान उद्देश्य वर्तमान राजवंश की वास्तविक वंशावली को समझना, चालू शासन-पद्धति की विशेषताओं का सही विवरण देना और जाडेचा लोगों के रहन सहन, स्थिति एवम् धार्मिक, परिवर्तनों का वर्णन करना है।

अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के पहले मैं इस जाति के प्रमुख गुणों पर दृष्टिपात करना चाहता हूँ और विशेष रूप से मंथन करने के बाद, जो दो मत कायम हुए हैं उन पर प्रकाश डालूँगा।

भारत में यदुवंश की प्रधान सत्ता और प्रभुता ईसा से पहले लगभग बारह सौ वर्ष पहले छिन्न भिन्न हो गयी थी। उसके बाद उनके जो अधिकार छिन्न भिन्न अवस्था में मिलते हैं, उनको देखना और टटोलना भी मेरे लिये बहुत आवश्यक है। यह बात जरूर है कि जिनके सम्बन्ध में मैं खोज करने और समझने-बूझने जा रहा हूँ, वे इतिहासों में कहीं नहीं मिलतीं। उस अवस्था में उनके आधार उन वंशावलियों में—जो आसानी के साथ शुद्ध और सही नहीं कही जा सकती—मैं पाये जाने के साथ-साथ तीर्थ स्थानों के माहात्म्यों, परम्पराओं, प्रथाओं और शिला-लेखों तथा स्मारकों में मिलते हैं, जिनकी उपेक्षा भी नहीं की जा सकती। लेकिन बहुत मथने की आवश्यकता है। बिना मथे हुए सत्य की खोज नहीं की जा सकती। इस मथने और खोज करने का कार्य जितने ही परिश्रम और धैर्य के साथ किया जाता है, उतनी ही अच्छी और सही सामग्री प्राप्त होती है।

एक बात और है, जिसके सम्बन्ध में पहले भी मैं लिख चुका हूँ और आज यहाँ पर भी लिख देना चाहता हूँ। जो सामग्री बहुत सही और प्रामाणिक न मालूम हो, उसे न तो छोड़ देना ठीक है और न उस पर आँखें बन्द करके विश्वास कर लेना ठीक होता है। पुरातत्व विषयक कार्य शोध का वह कार्य है, जो शोध कर्त्ता को बारीक से बारीक कार्य की तहों में प्रवेश करने के लिये मजबूर करता है और वहाँ—अत्यन्त अंधकार में पहुँचने पर भी बहुत सावधानी के साथ आँखें खोलकर देखना और समझना पड़ता है। अविश्वास करके छोड़ देने से यह निश्चित है कि उसमें छिपी हुई

कुछ ऐतिहासिक सामग्री से हाथ धोना पड़ता है और आँखें बन्द करके विश्वास कर लेने से ऐसी सामग्री का मिलने की पूरे तौर पर सम्भावना होती है, जो कृत्रिम, बनावटी और गढ़ी हुई होती है, इस प्रकार की सामग्री से हित के स्थान पर अहित ही अधिक होता है।

हमने ऊपर जो वर्णन किया है, वह ऐतिहासिक सामग्री का काम कर जाता है और उन्हीं से हमें पता चलता है कि इन यादवों की एक शाखा पश्चिमी एशिया की तरफ चली गयी और जाबुलिस्तान में जाकर बस गयी। दूसरी शाखा सिन्ध की तरफ गयी और वहाँ साम्ब की राजधानी साम नगर की स्थापना की। वह राजधानी सिकन्दर के आने के समय तक मौजूद थी।

यह पैतृक नाम साम्ब अथवा सामबाद में भी जारी रहा और उस समय तक चलता रहा जब तक कि उन्होंने अपना धर्म छोड़कर इस्लाम को स्वीकार नहीं कर लिया। उन्हें आगामी इतिहास में सिन्ध सुम्मा वंश के नाम लिखा गया है। उनका यह नाम और वंश उनके सिन्ध से निकाले जाने के समय तक बराबर चलता रहा, इस तरह हमको सिन्ध सुम्मा इतिहास के निम्नलिखित प्रधान समयों का पता चलता है—

पहला—साम्ब का सिन्ध में जमा होना ११०० से १२०० ईसवी पूर्व तक।

दूसरा—इस वंश की सिकन्दर के समय अर्थात् ३०२ ईसवी पहले तक ज्यों की त्यों परिस्थिति। इस समय से चूड़चन्द तक अर्थात् ९०४ ईसवी तक के तो नाम लिखे हुए पाये जाते हैं, परन्तु तिथियों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। उसके बेटे साम यदु के साथ फिर प्राचीन नाम दिखायी देता है। कहा जाता है कि उसके वंश के लोगों ने भी साम नगर के सुम्मा राजा की श्रेष्ठ पदवी को सुरक्षित रखा।

उन्हीं में कुछ लोगों ने अपना धर्म छोड़ दिया था। एक विदेशी ने लिखा है कि दूसरी शताब्दी में एक पार्थियन अथवा इण्डोसीथिक संघ ने सिन्ध के नीचे के भाग पर अधिकार कर लिया था और उसके राजा ने मिनगर में अपनी राजधानी कायम की थी। अब प्रश्न पैदा होता है—क्या उस नयी जाति ने साम्ब के वंशजों को भ्रष्ट कर दिया था अथवा वहाँ से बाहर निकाल दिया था। क्या एरियन के द्वारा लिखित चूड़चन्द और आधुनिक जाडेचा लोगों की वह इण्डोसीथिक जाति है, जो ऊपरी एशिया म अपने धर्म और रहन-सहन को अपेक्षा दूसरे धार्मिक वातावरण मे आकर इन लोगों म मिल गयी थी और इनके इतिहास को भी अपनी वंशावली मे शामिल कर लिया था।

प्राचीन काल स जो कथायें उनके सम्बन्ध में प्रचलित हैं, उनमे इस सत्य का प्रकाश अपने आप झलक रहा है। इनमें से नगर के जाम राजाओं के विषय मे एक कथा कही जाती है—

'इनका पूर्वज जसोदर मोरानी मुल्तान और पंजाब छोड़ कर सिंध आ गया था।'

अगर सुम्मा लोग दूसरी शताब्दी में सिंध विजय करने वाली यूची जाति के नहीं हैं तो उन लोगों ने उनको निकाल दिया होगा। हम स्पष्ट देखते हैं कि हिजरी सन् की पहली और विक्रम की आठवीं शताब्दी में ऊपरी सिंध के सिंहासन पर दाहिर (१) का वंश शासन करता था और कर्नल पाटिंजर (२) के अनुसार इस जाति ने टाक अथवा तक्षक (सेटिक वंश की एक मशहूर) जाति से अधिकार प्राप्त किया था। ऐसी दशा में हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि सुम्मा-यादव पश्चिमी एशिया से आने वाली इन जातियों और वंशों के साथ में मिश्रित हो गये। अथवा उन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली।

सन् ९०४ ईसवी में चूड़चन्द से पहले छत्तीस राजाओं के नाम मिलते हैं। जिनसे दूसरी शताब्दी में इण्डोसीथिक लोगों के द्वारा सिंध विजय से लेकर उसका सम्पर्क जोड़ने में सहायता मिलती है। यद्यपि साम्ब से उसका सम्बन्ध जोड़ने के लिये आवश्यक कड़ियाँ नहीं पायी जाती। ऐसी दशा में यह मान लेना चाहिये कि इस प्रकार के नाम लिखे हुये नहीं मिलते। इनमें से अधिकांश नाम राजपूतों में पाये जाते हैं, लेकिन कुछ ऐसे हैं जो सिंध के हिन्दुओं से नहीं मिलते और उन नामों में सीथिक तथा हूँणी जातीयता पायी जाती है। यह जाहिर है कि उनके वंश भारत में दूसरी तथा छठी शताब्दी में आये थे।

निवास, अथवा उत्पत्ति कहीं से अथवा किसी से हो लेकिन यह निश्चित है कि यह वंश साम नगर में चूड़चन्द से कई पीढ़ी पहले आ चुका था। उसका नाम उसके आस-पास के राज्यों में ख्याति प्राप्त कर चुका था और उसके समय ९०४ ईसवी से अब तक की जो सामग्री मिलती है, उसके द्वारा हमारी इन बातों का समर्थन होता है।

---

(१) यह एक अजीब सी बात मालूम होती है कि दाहिर देशपति अथवा सिंध के राजा दाहिर ने इस्लाम के पहले आक्रमण के समय चित्तौर की रक्षा करने में राणा लोगों की सहायता की थी। —राजस्थान का इतिहास

(२) कर्नल सर हेनरी पाटिंजर का जन्म १७८९ ईसवी में आयरलैंड में हुआ था, वो सन् १८३६-१८४० ईसवी तक सिंध में गवर्नर रहे और उसके पश्चात् ओपीन के युद्ध में ख्याति प्राप्ति करके हाँगकाङ्ग के आरम्भ में ब्रिटिश गवर्नर के पद पर नियुक्त हुए और फिर उसके बाद मद्रास में भी १८४७ से १८५४ ई० तक गवर्नर रहे। उन्होंने अपने संस्मरण भी लिखा है।

—वेबस्टर्स बायोग्राफिकल डिक्शनरी पत्र १२६६, १६५६

अतएव अब हमको कल्पना तथा अनुमान लगाने की आवश्यकता नहीं है और न हम को धूम-धुओं में पड़ने की आवश्यकता है। इससे कोई परिणाम नहीं निकलेगा। पुष्पराज के बेटे ग्राम यदु के समय में ही जुम्मा लोगों का वंश और नाम सिन्ध में अच्छी तरह प्रसिद्ध हो चुका था।

जाम उनड़ के नाम के साथ, जो उस समय भी उस क्षेत्र का अधिकारी था, १०२१ ईसवी में इन लोगों का सौराष्ट्र से सबसे पहले सम्पर्क होना प्रकट जाहिर करता है और ११६३ ईसवी में रायधन के समय में स्थान का त्याग और उर्ध्वदेव का स्थापन होने के बाद कच्छ पर विजय प्राप्त होती है, उसने १२१७ ईसवी में प्रथम राव खंगार के समय में स्थायी सरकार का रूप धारण किया था।

यह खंगार न वामनियों में पाँचवाँ राजा था, जो इस नाम से हुआ था। लगभग एक हजार वर्ष तक इस प्रकार का ताना-बाना चलता रहा। उनकी उलझनों को छोड़ देने के बाद मुझे यह समझकर पूर्ण रूप से सन्तोष मिलता है कि मैंने उलझन से भरे हुए इस लम्बे ऐतिहासिक काल से कुछ सामग्री प्राप्त कर सका।

जब तक खंगार को अहमदाबाद के सुल्तानों की सहायता से स्वतन्त्र राजा होने का पद नहीं प्राप्त हुआ अथवा उसने इस अधिकार को प्राप्त नहीं कर लिया, तब तक जाडेचा लोग बराबरी का दावा करते रहे और बिरादरी में किसी को भी उसने अधिकारी के रूप में स्वीकार नहीं किया। उनका ऐसा करना कदाचित इसलिये सही था कि वे अपने राज्य में दृढ़ता और स्थायीत्व का निर्माण करना चाहते थे।

उस समय से लेकर अब तक सब मिलाकर बारह राजा हुए हैं। उनमें प्रत्येक की सन्तानों को जागीरें दी गयी हैं और वे तथा खंगार से पहले की पुरानी शाखायें मिलकर एक भयाद का निर्माण करती हैं। उनका संक्षिप्त विवरण देना यहाँ पर आवश्यक हो जाता है। ये शाखायें दूरवर्ती पूर्व की राजपूत रियासतों के साथ किसी प्रकार का सम्पर्क और सम्बन्ध नहीं रखतीं।

तेईसवाँ प्रकरण

राजनीति के दॉव पेच

रतन जी की सहायता—जाडेचा-रियासत का विस्तार—रियासत की जन-संख्या—राज्य के सरदार और सामन्त—जागीरों के पट्टे—रियासत का विधान—राजा और सामन्तों के बीच मतभेद—राव भारमल की अदूरदर्शिता—नाबालिग राजा सिंहासन पर—जागीरदारों के द्वारा विदेशी सरकार का आमन्त्रण और समर्थन—जाडेचा राज्य के अच्छे दिनों का सपना—समुद्र की ह्वेल मछली—मसखरा अय्यूब—हमारी यात्रा का अन्त।

कच्छ के सम्बन्ध में अनेक राजनीतिक और भौगोलिक विवरण मैंने पहले ही लिख दिये हैं। इसलिये यहाँ पर मुझे उस लिखे हुये के आगे चलना है और जो बातें तथा घटनायें अभी तक स्पष्ट नहीं हो सकीं, उन पर प्रकाश डालना है।

सीधी बात यह है कि मैं जाडेचा लोगों और दूसरे राजपूत रियासतों की आन्तरिक नीतियों की खोज करना चाहता हूँ। इस विषय में विद्वान रतन जी के द्वारा जो मुझको जानकारी प्राप्त हुई है, मैं उसके लिये उन्हें बार-बार धन्यवाद देना चाहता हूँ। वे एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनको इस प्रकार के रहस्यों की जानकारी है। मुझे यह समझ कर बड़ी प्रसन्नता हुई थी, उस समय जब उनके साथ बैठकर मैंने इस विषय में गम्भीर बातें की थी और उन्होंने उदारता पूर्वक अपनी जानकारी की सम्पूर्ण बातें मुझे बतायी थी।

मैं रतन जी का इसलिये भी आभारी हूँ कि वे स्वयं इतिहास के एक अच्छे पारखी है। वे न तो अन्धकार में रहना चाहते हैं और न किसी को डालना चाहते हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि मैं आसानी के साथ उनकी बतायी और समझायी हुई बातों को लेकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सका। मैं जो उनसे प्रश्न करता था और उनके वे जो उत्तर देते थे, उनको मैं उन्हीं के सामने लिए लेता था। मैं नीचे जो कुछ भी लिखने जा रहा हूँ, उन्हीं की दी हुई सामग्री के आधार पर है।

जाडेचा रियासत की विस्तार लगभग एक सौ अस्सी मील लम्बे और साठ मील चौड़े क्षेत्र पर है। वहाँ की भूमि की मिट्टी कृषि के लिए साधारण है और आबादी हलकी है। इसका पता इसी से चल जाता है कि जिस रियासत का विस्तार दस हजार वर्ग मीलों में है, उसके निवासियों की सख्या पचास हजार से अधिक नहीं है।

इसका चौथाई भाग भुज की राजधानी में है और कुछ इतना ही माण्डवी के बन्दर-गाह में है।

इन दो प्रमुख स्थानों को छोड़कर रियासत में कोई स्थान ऐसा नहीं है, जिसको नगर कहा जा सके। कुछ कस्बे जरूर हैं जैसे अजार, लखपत, मूँद्रा आदि जो समुद्र के किनारे पर होने के कारण ख्याति प्राप्त कर सके हैं।

रियासत की इस जनसंख्या में शासक जाति के शस्त्र धारण करने योग्य जाडेजा की संख्या लगभग बारह हजार बतायी जाती है। बाकी भाग में हिन्दू, मुसल-मान और दूसरी जातियां के हैं। राज्य की सम्पूर्ण आमदनी जिसमें शासनों से वसूल होने वाला कर और राजस्व भी शामिल है, पचास लाख कोड़ी अथवा सोलह लाख रुपये है।

इस रियासत के पांच भागों में से तीन भाग खालसा के और दो भाग जागीरी के हैं। जागीरदारों की संख्या लगभग पचास है। कुछ और जागीरदार भी हैं, जिनको सिर्फ एक एक गांव मिला हुआ है। इन छोटे जागीरदारों को यदि उनमें शामिल कर दिया जाय तो सबको मिलाकर दो सौ हो जाते हैं। दूसरी राजपूत रियासतों की तरह कच्छ में भी कुछ श्रेष्ठ पदवी के जागीरदार हैं और उसी प्रकार कच्छ में तेरह प्रमुख सरदार हैं। श्रेष्ठ जागीरदारों को दूसरों की अपेक्षा कुछ अधिक भूमि दी जाती है और सम्मान भी उनको अधिक मिलता है। मेवाड़ में सोलह, आमेर में बारह (१) और जोधपुर में आठ (२) बड़े जागीरदार हैं।

सरदारों में भी कुछ श्रेष्ठ सरदार होते हैं। उनमें प्रधान वे हैं, जो खंगार से पहले कायम हुये थे और वंशज हैं। पहले सरदारों के सम्बन्ध में कुछ विशेष नियम थे, वे अपनी अथवा अपने पूर्वजों के द्वारा जीती हुई भूमि के सम्पूर्ण मालिक थे और उनके अधिकारों में कोई दखल नहीं देता था। सन् १५३७ ईसवी में खंगार राजा के पोषित

---

(१) आमेर के बारह कोटडी महाराज पृथ्वीराज के उन्नीस बेटों में से ५ के सन्तानहीन मर जाने और दो के राजा एवम् जोगी बन जाने के कारण शेष बारह के नामों पर स्थापना हुई थी। साधारण तौर पर उनके नाम इस प्रकार हैं (१) नाथावत, स्थान चोमू, सामोद, (२) रामसिंहासन (खोह गुणासी), (३) पच्याणोत, नायला सामस्यो (४) सुल्तानोत सूरोठ (५) खंगारोत, साईवाड़, नरेणा, डिग्गी (६) बलभद्रोत, अचरोल (७) प्रताप पोता, सांड कोटणा (८) चतुर्भुजोत, बगरू (९) कल्याणोत कालवाड (१०) साईदासोत, बडोद (११) सांगोत, सांगानेर और (१२) रूपसिंहोत कुम्भाणी।

(२) मारवाड के प्रमुख नाम इस प्रकार हैं—(१) रियां, (२) रायपुर (३) खेखो (४) आऊवों (५)आसोप (६)बगड़ी (७) कणाणा (८) खींवसर।

हो जाने पर भी ये सरदार अपनी निजी भूमि पर अधिकारी बने रहे और राज्य की वे सभी प्रकार की सेवायें करते तथा सहायता करते रहे, जिनकी राज्य को आवश्यकता पड़ती थी।

कच्छ की रियासत में सामन्त स्वतन्त्र हैं। उनकी स्वतन्त्रता का एक प्रमुख कारण यह भी है कि उन्हीं के बल पौरुष पर यहाँ का शासन चल रहा है। साथ ही यह भी है कि ये लोग राजवंश की शाखाओं में प्रधान माने जाते हैं। खगार के पहले इन लोगों ने उस भूमि को स्वयं अपने अधिकार में जाहिर कर लिया था। कुछ इस प्रकार के कारणों से कच्छ में ये लोग स्वतन्त्रता का भोग करते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि यहाँ के राजा को अन्य रियासतों के राजाओं की अपेक्षा कम अधिकार मिले हैं। राजा और इन सामन्तों के अधिकारों का विभाजन ऐसे ढंग से किया गया है कि अगर जरा भी सन्तुलन में अन्तर पड़ता है तो वहाँ की शासन प्रणाली में अनेक प्रकार के उथल पुथल पैदा हो सकते हैं।

मुझे इसके समझने का अवसर नहीं मिला कि जब असंगठित जाडेचा सामन्तों ने खगार का अपना राज स्वीकार किया था, उस समय इन अधिकारों का कोई विभाजन हो गया था अथवा नहीं। लेकिन उस अवसर पर एक प्रतिज्ञा अवश्य की गयी थी और वह प्रतिज्ञा उनके विशेष अधिकारों के संरक्षण के सम्बन्ध में थी, वह यह कि सामन्तों के सम्बन्ध का कोई भी उपस्थित होने पर उसके निर्णय के लिए भायाद का परामर्श निश्चित रूप से लिया जायगा और उसके बिना सामन्तों के किसी मामले का निर्णय नहीं किया जायगा। उस राज में भायाद अथवा भाइयों की एक राज्य सभा है, उसमें रियासत का प्रत्येक प्रमुख जागीरदार भाग लेता है।

समस्त जाडेचा सामन्तों को एक साथ बुलाने का अधिकार राव को है, इसप्रकार बुलाने को वहाँ पर 'खेर' कहा जाता है। लेकिन राव के इस अधिकार में सामन्तों की स्वतन्त्रता का सम्मान करने के लिए एक शर्त अथवा नियम भी रखा गया है। यानी एक साथ सामन्तों को बुलाने पर राजा की तरफ से उनको एक निश्चित भेंट दी जाती है। यद्यपि वह भेंट बहुत साधारण होती है और वह केवल सामन्तों के सम्मान की परिचायक होती है।

इस छोटी सी भेंट के सम्बन्ध में अधिक विचार करने पर जाहिर होता है कि इस विषय में कुछ आपसी समझौता है। इसलिये कि इसको स्वीकार करने में सरदार को तो यह मालूम होता है कि यह सेवा अनिवार्य नहीं है और राजा भी समझता है कि सरदार अथवा सामन्त को आदर के लिये यह आवश्यक है।

किसी जाडेचा सरदार की मृत्यु पर राव की तरफ से मृतक के उत्तराधिकारी को एक तलवार और पगड़ी भेजी जाती है। लेकिन इसके आधार पर उसको उत्तरा-

धिकार का अधिकार नहीं मिलता और न उसका कोई दूसरा लाभ ही उठाया जा सकता है। उस तलवार और पगड़ी का पाने वाला, यदि कोई उत्पन्न हो जाय तो वह जागीर का उत्तराधिकारी भी केवल इसी के आधार पर नहीं माना जा सकता।

मेवाड़ में इस प्रकार की भेंट की कीमत उस जागीर की एक वर्ष की आय मानी जाती है। कच्छ में इस भेंट का उत्तराधिकार का एक सम्मान माना जाता है। इसके बदले में किसी भेंट अथवा किसी दूसरी रकम की अन्यजागीर की प्रथा नहीं है। ऐसे मौके तिलक, विवाह अथवा राजकुमार के जन्मोत्सव के समय पर ही आते हैं और उन अवसरों के लिये ये प्रथायें सुरक्षित रहती हैं। ऐसे मौकों पर प्रत्येक जाड़ेजा सरदार अथवा सामन्त को राज दरबार में उपस्थित होकर सम्मान प्रदर्शन के साथ साथ भेंट देनी पड़ती है।

जागीरों के पट्टे सामन्तों के नाम होते हैं, उन पट्टों के लिखे जाने के समय इस विषय का कोई विचार नहीं होता कि वह पट्टा पहले पहल किसी को दिया जा रहा है अथवा उसकी पुनरावृत्ति हो रही है। यहाँ पर मेवाड़ की प्रथा के अनुसार, काला पट्टा (१) अर्थात् पट्टा लेने वाले के अन्तिम जीवन तक है अथवा बीच में भी वह किसी दूसरे को दिया जा सकता है, इस तरह की कोई बात नहीं होती। यह व्यवस्था इस रियासत की पुरानी है। हमारे मित्र रतन जी के अनुसार, इस रियासत में लिखा जाने वाला पट्टा हमेशा के लिये होता है, चाहे वह किसी को भी क्यों न दिया गया हो। उसमें जाति अथवा वंश का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पट्टा लिखाने वाले का उस पर सर्वाधिकार होता है।

संक्षेप में यह नियम इस रियासत का बहुत स्पष्ट और साफ है और इन जागीरों पर जागीरदारों का उतना ही और उसी प्रकार अधिकार होता है, जितना और जिस प्रकार इंगलैंड में किसी लार्ड का अपनी जायदाद पर होता है।

जागीरदारों को दी गयी भूमि (२) और उनके अधिकारों के सम्बन्ध में राजा का हस्तक्षेप करने का अधिकार उसी अवसर पर होता है, जब उसके जागीरदारों में किसी प्रकार का झगड़ा अथवा विवाद पैदा होता है, उस समय उस विवाद का निर्णय राजा करता है।

(१) राजवंश के अतिरिक्त जब किसी जागीर का पट्टा दूसरे वंश अथवा जाति के नाम होता है तो वह काला पट्टा कहलाता है। यह जागीर कभी भी किसी दूसरे को दी जा सकती है।

(२) जागीरदार की मृत्यु हो जाने पर जब उसका पट्टा किसी दूसरे के नाम लिखा जाता था, उस समय उसमें लगी हुई भूमि का कुछ भाग कम कर दिया जाता था। इससे वह जागीर लगातार कम होती चली जाती थी। उसको चढ़ा उतार पट्टा कहा जाता है। इस प्रकार राज्य में कई प्रकार के पट्टे होते हैं।

राजा के इस अधिकार को जागीरदारों ने अपनी इच्छा से मंजूर किया है, लेकिन यह उन्हीं तक सीमित है, जिनको राज्य की ओर से जागीरी भूमि दी जाती है, लेकिन यहाँ पर यह भी समझ लेना चाहिये कि सरदारों और सामन्तों के परामर्श के बिना राजा कोई भी कार्य—जो गम्भीर हो और विशेषकर राज्य तथा प्रजा से सम्बंध रखता हो—नहीं कर सकता।

इस राज्य में उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एक विवाद पूर्ण विषय चल रहा है। यहाँ पर सरदारों और सामन्तों की एक समिति है। इस समिति के सदस्यों के साथ राव का मतभेद है। यहाँ पर राज्य का संचालन करने वाली समिति भी है, वह समिति राजा के अल्पवयस्क होने पर अपने अधिकारों का प्रयोग करती है। लेकिन साधारण तौर पर किसी विवाद के मौके पर उसके सदस्यों का भी परामर्श लिया जाता है।

विवाद यह है कि स्वतन्त्र जाडेचा जागीरदारों में किसी एक छोटे जागीरदार की मृत्यु हो गयी उसकी न तो अपनी सन्तान थी और न कोई निकटवर्ती सम्बन्धी था। उसने मान्यिा जाति की एक स्त्री को बिठा लिया था उससे एक अवैध लड़का है। लेकिन वह अपने पिता की जागीर का अधिकारी है अथवा नहीं, यह एक विकट प्रश्न राव के सामने है। इस विवाद को निर्णय करने में दो भाग हो गये हैं। दोनों ही पक्ष के लोग अपने-अपने विचारों का समर्थन कर रहे हैं।

राज्य की ओर से कहा जाता है कि यह प्रश्न साधारण उत्तराधिकार का है, इसलिये इस जागीर को खालसा अर्थात् राज्य के द्वारा फिर से प्राप्त करने का एक नया हक पैदा हो जाता है। लेकिन जो इस प्रकार की दलील पेश करते हैं, वह जागीर उनकी दी हुई नहीं है।

दूसरे पक्ष में सरदार लोग गैर कानूनी परम्परा को रोककर उसे चालू नहीं होने देना चाहते। दोनों पक्ष के लोग अपने अपने विचारों पर दृढ़ हैं। इस विवाद को हल करने के लिये सबसे सरल तरीका यह होगा कि परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार कुछ परिवर्तन के साथ आपसी समझौता करने की कोशिश करें। इसके अनुसार यह हो सकता है कि सरदारों की साधारण समिति मृतक के निकटवर्ती वंशज को—चाहे वह कितनी पीढ़ी की दूरी पर क्यों न हो—उसका दत्तक पुत्र स्वीकार कर ले और राज्य की ओर से इस गोद नशीनी प्रथा को स्वीकार कर लिया जाय। परन्तु एक पक्ष इस समझौते को स्वीकार नहीं करता। और मूल सिद्धान्तों को देखते हुए यह सही भी मालूम होता है। ये लोग दूसरी राजपूत रियासतों की परम्परा का हवाला देकर अपने पक्ष का समर्थन कर सकते हैं। यह बात दूसरी है कि राजपूतों की रिया-

सत्ता के सिद्धान्त को मानने के लिये जाडेचा की रियासत मजबूर नहीं हो सकती। इसलिए कि रियासतों के अपने अपने नियम और विधान होते हैं।

इस अवस्था में पुरानी परम्परा को खत्म करने के लिए यह दलील काफी नहीं मानी जा सकती। किसी भी अवस्था में इस विवाद का हल जाडेचा लोगों के सिद्धान्त के अनुसार ही निकलना चाहिये, जो निर्णायकों और मध्यस्थ लोगों के द्वारा हो और ब्रिटिश अधिकारियों के हस्तक्षेप से बरी हो।

इस प्रकार के अवसरों पर कच्छ में, परम्परा और सिद्धान्त के नाम पर विवादों का निर्णय विनाश के मार्ग तक पहुँच गया है। मनु के अनुसार, जब सभी लड़के अपने पिता की रियासत के समान अधिकारी होते हैं, यद्यपि सब में बड़े पुत्र का अधिकार पुरानी तथा नयी—किसी भी प्रथा के अनुसार सुरक्षित रहता है, साथ ही यह भी सही है कि प्रत्येक पुत्र का उसका हिस्सा मिलना ही चाहिये। उस दशा में प्रश्न यह पैदा होते हैं कि छोटे भाइयों के अधिकारों का क्या परिणाम होगा? यदि प्रत्येक के अधिकारों के अनुसार, रियासत के टुकड़े लगातार किये गये तो उसका अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायगा।

इस प्रकार के विवाद साधारण नहीं होते। अधिकारों की रक्षा के लिये परम्पराओं की धारणा ली जाती है और जिसके हक मारे जाने की स्थिति में आ जाते हैं, वे परम्पराओं का विरोध करते हुए नयी धाराओं को महत्व देते हैं। परिणाम यह होता है कि प्रकृति और परमात्मा का नियम भंग होता है। यह कि बाल वध की कुप्रथाओं का जन्म होता है। (१)

इस विषय में मेरा एक परामर्श है यदि ब्रिटिश इस रियासत के लोगों को यह समझाने का कार्य करें कि इस प्रकार के अधिकार विभाजन से कितना बड़ा खतरा पैदा हो सकता है। इसलिये दोनों पक्षों के लोगों में एक आपसी समझौता कराने और उसके निर्णय के अनुसार एक नयी प्रथा को जन्म दिया सके तो एक राज्य के बहुत-से विवाद हल हो जायेंगे और दोनों पक्षों के सम्बन्ध में फिर से एक नया जीवन आ जायगा।

हमने सबेर में अपनी सम्मति प्रकट की है और एक ऐसे व्यक्ति को बीच में डालने का सुझाव दिया है, जिसको राजनीति में अथवा शासन सम्बन्धी कोई अधिकार प्राप्त नहीं है। लेकिन सामाजिक जीवन को शक्तिशाली बनाये रखने में राज्य शक्ति का

(१) मिस्टर एलीफिन्स्टन ने—जिनके उदाहरणों को मैंने अनेक स्थानों पर प्रयोग किया है—अपनी कच्छ की रिपोर्ट में इसका समर्थन किया है और स्पष्ट रूप में लिखा है कि इस प्रकार की प्रथा के कारण ही एक मात्र उत्तराधिकारी पाया गया है।

प्रयोग कर सकता है। वह न तो किसी को इनाम दे सकता है और न किसी को दण्ड देने का अधिकारी है। वह इस वंश के लोगों का एक सगठित संघ है और वे वंश के कल्याण को सुरक्षित रखने के लिये अपना संघ बनाये हुए हैं।

मैं यहाँ पर यह भी बता देना चाहता हूँ कि खंगार से पहले यहाँ पर ऐसा विधान था और यदि उस विधान को फिर से प्रमाणित किया जा सके तो विनाश-कारी सम्भावनाओं का अन्त हो सकता है।

पश्चिम की दूसरी राजपूत रियासतों और कच्छ की बहुत सी बातों में अन्तर है। उनके विचार और रहन सहन में बड़ी भिन्नता है। इसीलिये उनकी सरकारः नीतियों और प्रणालियों में भी अन्तर है। यही कारण है कि उनके सामन्तों का संघ अपनी पुरानी स्वतन्त्रता के साथ अब तक जीवित है। इस सत्य को हमें समझने की चेष्टा करना चाहिये। मैंने कच्छ की यात्रा करके और यहाँ सुयोग्य व्यक्तियों से बातें करने के साथ साथ, उनके इतिहास को भली भाँति समझने की चेष्टा की है। यदि इसके पहले मैंने यहाँ की सारी बातों को जानने की कोशिश करता हो जो यहाँ के संकट मेरे सामने आये हैं, कदाचित् उनका समझ सकना भी मेरे लिये कठिन हो जाता।

यह बात सही है कि अगर मैं यहाँ आकर और यहाँ की भीतरी तथा समस्याओं को न समझकर मैं कहीं दूरवर्ती स्थान में बैठा रहता और यहाँ के कानूनों, जागीरों के पट्टों का लेखन उनका पुनः ग्रहण अथवा त्यागन आदि से मैं परिचय प्राप्त करता तो मैं बड़ी आसानी के साथ इस बात का स्वीकार कर लेता और अपनी धारणा बना लेता कि कोई भी ऐसी सरकार, जिसके सामन्त राजा से स्वतन्त्र अपने अधिकार रखते हैं, बहुत दिनों तक नहीं ठहर सकती। जहाँ तक का प्रश्न है, मेरी बात बिल्कुल ही सही है। मेरा अटूट विश्वास है कि यदि ऐसी सरकार कहीं राजस्थान में अथवा उसके निकट होती तो वह एक शताब्दी भी नहीं चल सकती थी। किन्तु जाडेजा की भूमि एक ओर समुद्र से और दूसरी तरफ महान रन से घिरी होने के कारण हिन्दू रियासतों से निर्भय होकर रही है। इसके साथ-साथ यहाँ के लोगों ने मुसलमान यात्रियों को मक्का पहुँचाने में बड़ी उदारता का व्यवहार किया है, इसलिए मुसलमानों की सहानुभूति इन लोगों के साथ स्वाभाविक रूप से थी। उसी का यह फल है कि यहाँ पर कभी किसी मुस्लिम शक्ति ने आक्रमण नहीं किया।

यह सम्भव था कि जाडेजा राज्य की सामन्ती प्रथा में इसी प्रकार कुछ शताब्दी और बीत जाती। लेकिन सौभाग्य से इस राज्य को एक महान सभ्य और प्रगतिशील तथा शक्तिशाली राज्य का पड़ोस प्राप्त हो जाने के कारण पुरानी परिस्थितियों में परिवर्तन हो जाना आवश्यम्भावी है। मेरा अभिप्राय ब्रिटिश सरकार से है।

मराठा युद्धों के कारण बड़ौदा का गायकवाड़ दरबार हमारी सरकार से

प्रभावित हो चुका है और उसी के फलस्वरूप सौराष्ट्र के अन्तर्गत में जो प्रमुख राज्य उनके अधिकार में थे, वहाँ पर भी हमारा प्रभाव हो गया है। उन राज्यों और कच्छ की रियासत के बीच में एक खाड़ी मात्र है। लेकिन धीरे धीरे बढ़ते हुए हम दूसरी सिन्ध के लोगों के पास तक पहुँच गये हैं।

भारत के देशों में भी सामन्त प्रणाली के द्वारा शासन रहा है। लेकिन उन देशों में राजा और सामन्तों के बीच जो एकता और समानता रही है, उसका यहाँ पर अभाव है। यहाँ के राजा और सामन्त लोगों का एक दूसरे के प्रति वह सम्मानपूर्ण व्यवहार नहीं रहता जो कि होना चाहिए। ऐसी दशा में कुछ लोगों की राजनीतिक चालों के द्वारा सामन्तों की शक्तियाँ छिन्न भिन्न हो सकती थीं और सम्पूर्ण अधिकार राजा के हाथ में आ जाते। लेकिन ऐसा नहीं किया गया और न ऐसा होना ही उचित था।

सम्पूर्ण सामन्तों को अपने राजा की लापरवाही [illegible] विरुद्ध है। और उनके नगरों तथा कस्बों के व्यापारिक कर से राज्य की आय अधिक की जा सकती है। इस प्रकार की सुविधाओं का उपयोग करके राजा अपने सामन्तों से कुछ अधिक सेवायें ले सकता है।

प्रत्येक राज्य और दरबार में सदा से विरोधी दल चले आये हैं और उन दलों में उनके सिद्धान्त एक दूसरे के प्रतिकूल काम करते ही रहे हैं। यह कोई नयी बात नहीं है।

मुझे कुछ ऐसे उदाहरण जानने को मिले हैं कि अनेक अवसरों पर राजा की प्रतिष्ठा को आघात पहुँचाने वाले काम करने के कारण एक सदस्य को दण्ड दिये जाने पर राज वंश के समस्त लोग संगठित होकर विरुद्ध खड़े हो गये थे। ऐसे मौके पर सम्पूर्ण सामन्तों को एकत्रित कर लेने का कार्य कुछ कठिन नहीं था और जब राज्य पर बाहरी कोई आक्रमण होता तो समस्त योद्धा सामना करने के लिये तैयार हो जाता।

ऐसे अवसरों पर मैं कुछ और भी सोचने लगता हूँ। पिछले दिनों में यहाँ के राजाओं का इतिहास कुछ दूसरी बातों की तरफ संकेत करता है। उन दिनों में राजाओं ने अपनी रक्षा के लिये अरबों, सिंधियों और रुहेलों को सेनाओं में भर्ती किया था। उसका परिणाम यह हुआ था कि इन राजाओं के सरदारों में ईर्षा की एक भावना उत्पन्न हो गयी थी। दूसरी बात यह भी है कि ये भाड़े के टट्टू कितने दिन काम कर सकते थे।

सामन्त लोग अपने स्वामी की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने के लिये प्रत्येक मौके के साथ तैयार रहते हैं। लेकिन बलिदान की यह भावना उस समय नष्ट हो जाती है, जब उनके दिलों में वेदना और ईर्षा उत्पन्न हो जाती है। ये सरदार यह

समझने लगते हैं कि हम पर और हमारी सेना पर विश्वास न रखने के कारण ही बाहरी जाति के आदमियों को सेनाओं में भर्ती किया गया है।

अन्तिम राव भारमल का उदाहरण हमारे सामने है। उसने प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयास किया था, उसके दुष्परिणाम उसके सामने आये। मद्यपान की बढ़ती हुई आदतों ने उसके स्वभाव को और भी अधिक उग्र बना दिया था और उसने विदेशी जातियों के भाड़े के नौकरों पर विश्वास करके अपने अधिकारों की रक्षा का विश्वास किया था। अपने आदमियों के विरोध करने के बावजूद उसने अपने देश की प्राचीन प्रणाली को ठुकराना आरम्भ कर दिया था। उसके इन कामों में बाहरी जातियों के सैनिकों का ही अधिक सहारा था।

राव भारमल के दरबार में विरोधी प्रवृत्तियों की वृद्धि होने लगी थी, राव ने उन प्रवृत्तियों को शान्त करने की कोई चेष्टा नहीं की। इसका परिणाम और भी घातक निकला। उसकी अपनी प्रजा ने उसके सामने आत्म समर्पण करने के बजाय वृटिश सत्ता को मध्यस्थ बनाने का निश्चय किया और इसके लिये उन लोगों ने अङ्गरेज अधिकारियों को आमन्त्रित भी किया।

अङ्गरेज अधिकारियों ने उस आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया और उसके अनुसार वहाँ पर प्रजा की सहायता के लिये वृटिश सहायक सेना आ गयी। राव भारमल ने उस समय भी बुद्धि से काम नहीं लिया। उसका आवेश बढ़ गया और प्रत्येक कार्य उसके पागलपन का प्रमाण देने लगा। उसका परिणाम यह निकला कि वह गद्दी से उतारा गया, कैद किया गया और उसके बेटे राव देसल को सिंहासन पर बिठाया गया।

जिसे सिंहासन पर बिठाया गया, वह एक बालक था। इसलिये उसकी तरफ से शासन का प्रबन्ध करने के लिये एक प्रतिनिधि समिति कायम की गयी। उसमें प्रधान जाड़ेजा सरदार और राज्य के अनुभवी कर्मचारी रखे गये। इन सब लोगों में रतन जी का नाम भी सम्मिलित है, जिनसे जाड़ेजा इतिहास को समझने में मुझे बड़ी सहायता मिली है। इतना ही नहीं, रतन जी अंगरेजों के परम हितैषी हैं।

इस प्रकार जो समिति कायम की गयी उसका अध्यक्ष वृटिश रेजीडेण्ट को बनाया गया। इस प्रकार नये तरीकों पर राज्य का कार्य आरम्भ हुआ। मैंने जहाँ तक देखा और सुना है, इस नयी व्यवस्था से प्रजा को अधिक सन्तोष मिल रहा है। सम्पूर्ण रियासत में शान्ति है। सभी के साथ न्याय किया जा रहा है और सभी लोग स्वाभाविक रूप से अपने अधिकारों का सुख भोग रहे हैं।

इन दिनों में राव देसल नाबालिग है, उसकी सहायता के लिए—जैसा कि ऊपर लिखा गया है—एक व्यवस्था कर दी गयी है। [redacted] राव देसल बालिग नहीं

हो जाता, इस व्यवस्था के द्वारा राज्य में बराबर शासन चलता रहेगा। उसके बालिग हो जाने के बाद इस प्रतिनिधि समिति की कोई आवश्यकता न रहेगी। केवल स्वयम् शासन की देख भाल करेगा। रियासत का भविष्य नये राजा की योग्यता और समझदारी पर निर्भर है। उसके सम्बन्ध मे आज कुछ नहीं कहा जा सकता।

राज्य के जिन जागीरदारो ने अपने राजा के साथ रहने की अपेक्षा विदेशी शक्ति को अपनी स्वतन्त्रता सौंप देना अधिक उपयोगी समझा, उन्होने अब नयी व्यवस्था के समय एक नया जीवन प्राप्त किया और उनके तथा उनकी प्रजा के बीच एक शान्ति पूर्ण जीवन का अकुर उगा। जो सामन्त पहले अपनी परतन्त्रता अनुभव करते थे, वे अब अपने आपको अधिक स्वतन्त्र मानते हैं।

हमारी समझ मे यह रियासत पहले की अपेक्षा अब अधिक सुखी है और जो न्याय राजा की ओर से प्रजा को पहले नही मिलता था, वह आज मिलता है।

इस रियासत की इन पुरानी बातो को छोड़कर मैं अब कुछ दूसरी बातो मे आता हूँ। इस राज्य मे जो जातियाँ रहती हैं, उनमे कुछ बातें विभिन्नता की भी हैं। साथ ही राज्य के कुछ रहन सहन भी अनोखे हैं। उन सब बातों पर विचार करने से यह रियासत भारत मे सबसे श्रेष्ठ मालूम होती है। यहाँ की शासन व्यवस्था अब अंगरेजी सत्ता के अधिकार मे है। शक्तिशाली गायकवाड, अनहिलवाडा का स्वामी, उसके सामन्त, गोहिल, चावडा, घुमक्कड, काठी, जगत कूट के जल दस्यु और साम तथा यदु के वशज जाडेजा—सभी ने अपने अपने सामन्तो के सघ को समाप्त कर दिया है और अब इन सबने अपनी इच्छा से विदेशी शासन के आगे आत्म-समर्पण कर दिया है।

यहूदियो के बुद्धिमान उपदेशक और राजपूतो के अन्तिम भाट ने एक स्वर से नाबालगो के खतरो की आवाज उठायी है। जो घोषणा की गयी है, उसमें कहा गया है कि 'हे देश यह महान दुख की बात है कि तेरा राजा आज एक बालक है।' इसके आगे चन्द कवि पूर्ति करता हुआ लिखता है—'और जब स्त्रियाँ राज्य करती हैं' और ऐसी परिस्थिति के परिणाम राजपूतो के लिए उपदेशक के इस पद्य का अर्थ 'और जब तेरे राजकुमार प्रात काल भोजन करते हैं'—से भी अधिक भय पैदा करने वाले होते हैं। अगर अमल और मद्य पान का प्रेमी राजपूत जीवन की सन्ध्या काल में पहुँचने तक 'कलेवा' (१) करने की अभिलाषा को छोड दे तो निश्चय ही उसका पुनर्जीवन समझा जायगा।

परन्तु जो सहायक सधि हुई है, उसके राजनीतिक एवम् पैशाचिक परिणामों का न तो यहूदी उपदेशक को कुछ अनुमान था और न राजपूत चारण का ही इसका

(१) प्रात काल की अफीम सेवन से सम्बन्ध रखता है।

ज्ञान था। यह अनुमान लगाना एक बड़ी भूल होगी कि इस प्रकार की अटूट और अटल संधि के लिए जाडेचा अपवाद होकर रहेगा, जिसने ध्रुव सत्य की तरह स्थापित होकर एक ऊंची सभ्यता के मेल से बर्बर परिस्थिति का अन्त कर दिया है।

यहाँ पर मैं स्पष्ट कहना चाहता हूँ कि हमारे मसूबे कितने ही अच्छे क्यों न हो और प्रतिनिधि सभा के बृटिश रेजीडेंण्ट एवम् हमारे सहृदय मित्र रतन जी कितनी ही भलाई क्या न करें लेकिन जो जागीरदारों ने जाडेचा-राज्य का शासन हमारे चरणों पर लाकर उपस्थित किया है, उनका यह एक अक्षम्य अपराध है। इस-लिए कि ये सब अपनी रक्षा के लिए हमारे आश्रित हो गये हैं।

यह एक अजीब बात होगी, अगर इस रियासत को—जिसका अस्तित्व अतीत काल से चला आ रहा है और जो भविष्य में भी कायम रहेगा—इस नियम का एक अपवाद बना दिया जावे, उस समय तक जब तक कि राजपूताना के अन्तिम नेस्टर (१) जालिमसिंह की भविष्यवाणी—'समस्त भारत में एक ही सिक्का चलेगा'—पूरी न हो जाय। उसका यह भविष्य कथन पूर्ति की तरफ तेजी के साथ बढ़ता हुआ दिखाया दे रहा है। जालिमसिंह अपने देशवालों की अदूरदर्शिता को भली प्रकार जानता था और समझता था कि वे एक दिन शीघ्र ही उन विदेशियों के शासन को स्वीकार करेंगे, जिनसे कभी उनको छुटकारा न मिलेगा।

मद्यपान की विनाशकारी आदतों ने भाटों, चारणों और बरदाइयों की योग्यता और प्रतिभा को भी विकृत कर दिया है, जिसके द्वारा वे लोग अपने सरदारों को आपत्तियों के प्रति सावधान करते हुए सत्प्रोत्साहन दिया करते थे। अब तो हालत ही कुछ और है भाट और चारण जब स्वयं अपने स्वामी के साथ मद्य की अमृत का पान किया करते हैं तो वे दूसरों का पथ प्रदर्शन कैसे कर सकते हैं।

अब जाडेचा जाति के परिवर्तन का समय आया हुआ अनुभव करना चाहिये। जिसके साथ इस रियासत का गठबंधन हुआ है, उसके प्रभाव से इन सारे दुर्गुणों को नष्ट होना चाहिये। अंगरेजी शासन प्रणाली का प्रभाव अब इस राज्य पर भी पड़ेगा। शासन में चारों तरफ परिवर्तन होंगे अदालतें नये तरीके से काम करना आरम्भ करेंगी, कर्मचारी और अधिकारी ईमानदारी सीखेंगे। प्रजा का दुर्बल जीवन बदलेगा, उसके जीवन की निराशायें नष्ट होंगी और आशा का दीपक प्रकाश देना आरम्भ करेगा।

यह निश्चित है कि जाडेचा रियासत के दिन फिरेंगे जो बर्बरता बढ़ती जा रही थी उसके स्थान पर शिक्षा और सभ्यता का विकास होगा। अभी तक इस वंश

---

(१) नेस्टर पाइलास का शासक था। उसने ट्राजन के युद्ध में अपनी सेना का नेतृत्व किया था—

—दी आक्सफोर्ड कम्पेनियन टू इङ्गलिश लिटरेचर पेज ५५२

में जो बुराइयाँ चली आ रही हैं और जिसके फलस्वरूप, सम्पूर्ण प्रजा अपने जीवन की शान्ति से निराश हो चुकी है, उसमें अब शुभ परिवर्तन होंगे। यहाँ के लोगों में शिक्षा का अभाव है, उसकी पूर्ति होगी, बाल वध और बहुविवाह जैसी फैली हुई बुराइयाँ नष्ट होंगी। यहाँ के लोगों को संसार का, संसार की सभ्यता का और उनकी उन्नति का ज्ञान होगा, इस प्रकार के सभी उत्थानों के लिये यह आवश्यक था इस राज्य के लोगों का किसी अच्छी जाति के साथ सम्पर्क हो, अतएव दैवयोग से वह समय आ गया है।

रियासत के लोगों ने अँगरेज अधिकारियों को मध्यस्थ बनाने का निश्चय किया था, समय और संयोग ने आगे बढ़कर काम करने का अवसर दिया। भविष्य के अच्छे लक्षणों की यह सूचना है। सबसे बड़ी बात यह है कि राज्य के सामन्तों और सरदारों ने कुछ सोच-समझकर अँगरेजी शासन को स्वीकार किया है।

माण्डवी ७ जनवरी सन् १८६३—अपने पट्टामार जहाज के तख्ते पर। मैंने जारेजा की राजधानी से प्रस्थान किया और आज प्रातःकाल फिर माण्डवी में आ गया। हवा बिल्कुल अनुकूल चल रही थी। इसलिए मुझको सिंध के मुहाने पर जाने का विचार त्याग देना पड़ा। मैं जहाज पर चढ़ गया। इस जहाज के द्वारा बम्बई पहुँचने के लिये मुझे पाँच सौ मील का रास्ता पार करना था।

जहाज के पाल खोल दिये गये। माण्डवी के मित्रों से विदा होकर मैं जहाज के एक स्थान पर खड़ा हो गया, जहाँ पर बढ़िया समुद्री हवा लग रही थी। कुछ समय के बाद जहाज रवाना हुआ और हम जगतकूट से चलकर अपने रास्ते में चावड़ों की प्राचीन राजधानी देवबंदर की तरफ आगे बढ़े, जहाँ पर उतरकर मैंने अनहिलवाड़ा के संस्थापकों के सम्बन्ध में लिखे लेखों की खोज करने का निश्चय कर रखा था, लेकिन इसके लिये मुझे अवसर नहीं मिला। मुझे बताया गया कि यदि मैं इस प्रकार रास्ते में उतरता चढ़ता रहा तो इस समय जो हवा अनुकूल मिल गई है, उससे मिलने वाला लाभ मैं स्वयं खो दूंगा और फिर उस दशा में १४ तारीख तक बम्बई पहुँचना सम्भव नहीं हो सकेगा।

मेरी समझ में यह बात आ गई और बिना किसी तर्क के मैंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। मेरे जहाज का रुख बदल दिया गया। जहाज चालक इब्राहीम ने उस समय यह भी कहा कि हमको अब नीले के स्थान पर लाल में खेना पड़ेगा। यह मल्लाहों की भाषा थी, जिससे मैं परिचय नहीं रखता था। मैं इब्राहीम के कुतुबनुमा के सन्दूक के सामने बैठकर कुछ समझने के अभिप्राय से पिछले भाग की तरफ से नीचे उतरकर आ गया।

मैं जो समझना चाहता था, उसका राज खुल गया। मैंने देखा कि उसके

कम्पास यन्त्र के सिरों पर अक्षरों के स्थान पर नीले, लाल, हरे और पीले आदि विभिन्न प्रकार के रङ्ग थे और वे अपने रङ्गों के साथ उस स्थान पर थे, जहाँ पर साधारण आदमी की बुद्धि काम नहीं कर सकती।

इब्राहीम पढ़ा लिखा नहीं था, लेकिन अपने इस कार्य को समझने में किसी प्रकार होशियार हो गया था। अशिक्षित होने पर भी उसकी बुद्धि का विकास कार्य के अनुभव पर हुआ था और अक्षरों की सहायता के बिना न केवल जहाज चलाना जानता था, बल्कि अपने मार्ग को समझने के लिये सितारों अर्थात् तारों की चालों को भी वह समझता था।

जिस समय हमारा जहाज चल रहा था, हवा बड़ी मधुर थी और आकाश निर्मल था। अँधेरा होने के समय तक हम बराबर चलते रहे। उस समय हवा बिल्कुल बन्द हो गई थी। रात गम्भीर और सुखद थी, अगहन मास के नक्षत्र अपनी सेना के साथ आकाश के ऊपरी भाग में हमारे सिर के ऊपर दिखाई दे रहे थे। ऐसा मालूम हो रहा था कि वे शीतल रात का सुखोपभोग कर रहे हैं।

सायंकाल की गम्भीरता में मैं अनेक प्रकार की स्मृतियों की उधेड़-बुन में पड़ गया। इधर इन दिनों में जिस प्रकार का जीवन मैंने व्यतीत किया था, उनके बार-बार स्मरण मुझे आने लगे। मैं कभी अतीत की बातें सोचता और कभी भविष्य की आनन्दमयी कल्पनायें करने लगता। उस समय मैं भूल गया कि मैं जहाज पर चल रहा हूँ और तेजी के साथ बम्बई की तरफ बढ़ रहा हूँ।

सम्पूर्ण दिन की थकावट और रात का मधुर आलिङ्गन, सभी के नेत्र बन्द हो रहे थे। केवल इब्राहीम नाखुदा और दूसरा मल्लाह अम्मूब अथवा जोब—दोनों ही जग रहे थे। वे प्राय आकाश के तारों की तरफ देखने लगते थे। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि इब्राहीम अनेक तारों के नाम भी जानता है। उसने रायस (हुया-दस) (१) का नाम अरबी बतलाया, जिसको हिन्दवी में नैस होता है। लेकिन अरबी में इसको क्या कहा जाता है, यह नहीं मालूम।

हमारी इस यात्रा का दूसरा दिन भी अच्छा रहा। हवा साधारण और आराम पहुँचाने वाली थी। दोपहर के करीब जब हम इस मौसिम का सुख उठा रहे थे, और बहुत दूर तक जमीन दिखाई नहीं पड़ती थी तो हमारे पट्टामार जहाज से कुछ दूरी पर एक विशाल व्हेल मछली अपनी शिशुमार मछलियों के समूह के साथ निकली। वह समूह कई सौ गज तक फैला हुआ था। लगभग एक घण्टे तक हमारे जहाज के बराबर बराबर तैरती हुई वह बड़ी मछली लगातार चलती रही। वह हमसे

(१) सात तारों का एक गुच्छा।

में जो बुराइयाँ चली आ रही हैं और जिसके फलस्वरूप, सम्पूर्ण प्रजा अपने जीवन की शान्ति से निराश हो चुकी है, उसमें अब आमूल परिवर्तन होंगे। यहाँ के लोगों में शिक्षा का अभाव है, उसकी पूर्ति होगी, बाल वध और बहुविवाह जैसी फैली हुई बुराइयाँ नष्ट होंगी। यहाँ के लोगों को संसार का, संसार की सम्यता का और उसकी उन्नति का ज्ञान होगा, इस प्रकार के सभी उत्थानों के लिये यह आवश्यक था इस राज्य के लोगों का किसी अच्छी जाति के साथ सम्पर्क हो, अतएव दैवयोग से वह समय आ गया है।

रियासत के लोगों ने अँगरेज अधिकारियों को मध्यस्थ बनाने का निश्चय किया था, समय और संयोग ने आगे बढ़कर काम करने का अवसर दिया। भविष्य के अच्छे लक्षणों की यह सूचना है। सबसे बड़ी बात यह है कि राज्य के सामन्तों और सरदारों ने कुछ सोच-समझकर अँगरेजी शासन को स्वीकार किया है।

माण्डवी ७ जनवरी सन् १८२३—अपने पट्टामार जहाज के तख्ते पर। मैंने जाडेजा की राजधानी से प्रस्थान किया और आज प्रातःकाल फिर माण्डवी में आ गया। हवा बिल्कुल अनुकूल चल रही थी। इसलिए मुझको सिन्ध के मुहाने पर जाने का विचार त्याग देना पड़ा। मैं जहाज पर चढ़ गया। इस जहाज के द्वारा बम्बई पहुँचने के लिये मुझे पाँच सौ मील का रास्ता पार करना था।

जहाज के पाल खोल दिये गये। माण्डवी के मित्रों से विदा होकर मैं जहाज के एक स्थान पर खड़ा हो गया, जहाँ पर बढ़िया समुद्री हवा लग रही थी। कुछ समय के बाद जहाज रवाना हुआ और हम जगतकूट से चलकर अपने रास्ते में चावड़ों की प्राचीन राजधानी देवबन्दर की तरफ आगे बढ़े, जहाँ पर उतरकर मैंने अनहिलवाड़ा के संस्थापकों के सम्बन्ध में शिला लेखों की खोज करने का निश्चय कर रखा था, लेकिन इसके लिये मुझे अवसर नहीं मिला। मुझे बताया गया कि यदि मैं इस प्रकार रास्ते मे उतरता चढ़ता रहा तो इस समय जो हवा अनुकूल मिल गई है, उससे मिलने वाला लाभ मैं स्वयं खो दूँगा और फिर उस दशा में १४ तारीख तक बम्बई पहुँचना सम्भव नहीं हो सकेगा।

मेरी समझ में यह बात आ गई और बिना किसी तर्क के मैंने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। मेरे जहाज का रुख बदल दिया गया। जहाज चालक इब्राहीम ने उस समय यह भी कहा कि हमको अब नोले के स्थान पर लाल मे खेना पड़ेगा। यह मल्लाहों की भाषा थी, जिससे मैं परिचय नहीं रखता था। मैं इब्राहीम के कुतुबनुमा के सन्दूक के सामने बैठकर कुछ समझने के अभिप्राय से पिछले भाग की तरफ से नीचे उतरकर आ गया।

मैं जो समझना चाहता था, उसका राज खुल गया। मैंने देखा कि उसके

न तो पीछे होती थी और न आगे जाती थी। वह कभी डुबकी लगा जाती और कभी बाहर आ जाती।

उन ह्वेल मछली के साथ—जैसा कि ऊपर लिखा है—बहुत सी छोटी छोटी मछलियाँ थीं, वे अथाह जल में उछल-कूद मचा रही थीं, ठीक उसी प्रकार जैसे छोटे छोटे बच्चे उछलते और कूदते हैं। मेरे साथ जो नौकर, सिपाही और सेवक थे, वे सभी उन सब मछलियों को देखकर विस्मय अनुभव कर रहे थे। उन लोगों ने तो छोटी मछलियाँ तो सदा ही जल में बहुत देखी थीं, लेकिन ह्वेल मछली को देखा नहीं था। उन लोगों ने उसका नाम सुन रखा था।

मेरा इरादा हुआ कि मैं इस ह्वेल मछली पर गोलियाँ चलाऊँ। इसके लिये मैंने अपनी बन्दूक माँगी। लेकिन उसी समय इब्राहीम ने रोककर कहा—नहीं, ऐसा कभी नहीं करना।

उसकी बात को सुनकर मैं चुप हो रहा और उसकी तरफ देखने लगा। मैं उस ह्वेल पर गोला नहीं चलाना चाहता था, फिर भी मैं आश्चर्यचकित होकर उसकी तरफ देख रहा था। उसी समय उसने फिर कहा—नहीं, कभी नहीं। ऐसा न करना।

मैं अब भी चुप था। मुझे रोकने के लिये इब्राहीम ने उसी प्रकार मुझसे कहा, जैसे स्वर्गीय वर्कहार्ड के मददगार मेहुइन पप मदगव आहद ने उस समय कहा था, जब उसने अकाबा की खाड़ी पार करते समय किसी शिशुमार मछली पर गोली चलाने का इरादा किया था और कहा था—इनको मत मारना बड़े अजाब का काम है। अर्थात् पाप होता है। क्योंकि ये सब इन्सान के दोस्त हैं और कभी किसी को नुकसान नहीं पहुँचाती।

मैं अपने दो मल्लाहों के नाम ऊपर बता चुका हूँ। एक का नाम इब्राहीम जो नाव का मालिक अर्थात् नाखुदा था और दूसरा अय्यूब, इनके साथ ही एक इस्माइल भी था। यह बताने की जरूरत नहीं है कि ये सभी माँझी मुसलमान जाति के थे।

अय्यूब बातूनी और बड़ा मसखरा था। यद्यपि वह कभी कभी समझदारी की बात भी करता था। लेकिन जो अच्छाइयाँ उसमें नहीं थीं, उनको बाबत भी वह अपनी जिन्दादिली का बखान करता था। ऐसा करने में उसे बड़ी खुशी होती थी।

अय्यूब अपनी इस आदत के सामने किसी का लिहाज नहीं करता था वह सब की मजाक उड़ाता था। वह कुछ लापरवाह भी था। इसका अनुमान मैंने इस प्रकार लगाया कि उसके नाखुदा अर्थात् मालिक को किसी काम के लिए उससे दो दो, तीन-तीन बार कहना पड़ता था। उस अय्यूब ने इस्लाम की हिदायतों के खिलाफ आबे

पान का जायका भी चख लिया था, यह बात मुझे मालूम हो चुकी थी, लेकिन मैंने उससे कुछ कहा नहीं था।

इब्राहीम से बातचीत करते समय अय्यूब बीच बीच में बोलने लगता था। उसने मौका पाकर गम्भीरता के साथ कहा—

मैंने विलायती दूध अथवा योरप के दूध के बारे में बड़ी अजीबो गरीब कहानियाँ सुनी हैं कि वह एक ऐसी पीने की दवा है, जो दिल और दिमाग की सभी परेशानियों को दूर करके राहत पहुँचाती है। क्या आप जानते हैं, वह क्या चीज है?

इसके बाद ही उसने कुछ कहना चाहा, तब तक मैंने जवाब दिया—मैं जानता क्यों नहीं हूँ।

उसी समय उसने पूछा—क्या आपके पास है?

मैंने कहा—मैं उस चीज को जानता हूँ और मेरे पास है भी। अगर तुम चाहते हो तो तुम्हारी तबीयत को शान्त करने के लिये मैं तुमको कुछ दे भी सकता हूँ।

उसको कुछ कहने का मौका न देकर मैंने उससे पूछा—तुमको उस चीज के गुण कैसे मालूम हुए, जबकि शरीयत के मुताबिक तुम्हारे लिये उसका छूना भी गुनाह है?

उसने जवाब दिया—बरसात के दिनों में बरसते हुए पानी में मैंने एक साहब का सामान बम्बई से पोरबन्दर ले जाकर उतारा था। उस समय उसने मुझको और मेरे साथियों को एक एक गिलास उस अर्क को पिलाया था और मेरे पूछने पर उसने यही नाम बताया था।

इसके बाद मैं अपनी कोठरी में पहुँच गया और मोमबत्ती जलाकर कुछ पढ़ने लगा। उसी समय किसी ने अन्दर आने की इजाजत माँगी। वह और कोई नहीं, अय्यूब था और अपने हाथ में खोपरा अथवा नारियल का कटोरा लिये हुआ था। मेरे सामने पहुँचते ही उसने कहा—अपना वादा पूरा करिये।

उसकी बात को सुनकर मैंने अपने एक सेवक से बोतल लाने को कहा। बोतल के आ जाने पर मैं उसे खोलकर उसके खोपरे में डालने ही वाला था कि अचानक मुझे ख्याल हो आया कि मैं भूल कर रहा हूँ ऐसा करने से यह बेकाबू हो जायगा, मेरी समझ में आ गया कि ऐसे अवसर पर जब वह एक माँझी का कार्य कर रहा है और हम सब की खैरियत उसकी सावधानी पर निर्भर है, उसे पीने के लिये यह देना बहुत बड़ी भूल साबित होगी।

उड़ेलने के लिये मैंने बोतल को टेढ़ा किया था, लेकिन तुरन्त ही मैंने उसे सीधा कर लिया। अय्यूब ने इसे देखा, लेकिन वह कुछ न कह सका। वह अपने हाथ में खोपरा लिए था और मेरी तरफ एक बड़ी उत्सुकता के साथ देख रहा था। उसकी इस हालत में मैंने उससे कहा—अय्यूब सोचो, इसे पीकर तुम होश में नहीं रह सकते और उस दशा में तूफान आ गया तो?

उसके मुख से अकस्मात निकल गया—साहब!

उसने आगे कुछ नहीं कहा। उसके मुख के भाव वैसे ही बने रहे। मैंने उससे फिर कहा—सोचो अम्यूब, मेरी बात पर गौर करो। बम्बई के बन्दरगाह पर पहुँचने के बाद यदि मैं तुमको पूरी बोतल दे दूँ तो क्या तुम आज की रात अपनी माँग को रोक नहीं सकते ?

मेरी बात को सुनने के बाद उसने अपना हाथ पीछे की तरफ खींच लिया, वह कुछ बे मन मुस्करा उठा। मैं नहीं जान सका कि मेरी बात उसको अच्छी लगी अथवा बुरी, परन्तु उसने मुस्कराते हुए कहा—आप ठीक कहते हैं, मैं इसको समझ रहा हूँ।

मैं पाँच दिनों तक उस मधुर मौसिम में समुद्र की यात्रा करता रहा, उस बीच में फिर कोई विशेषता नहीं हुई। इसके बाद मैं यात्रा करता हुआ बम्बई के पास पहुँच गया। वहाँ का वातावरण दूर से ही बड़ा गम्भीर दिखाई देने लगा। जो कुछ दिखाई देने लगा, वह सभी प्रिय मालूम हुआ।

उस दिन चौदहवीं तारीख थी, इङ्गलैंड जाने के लिये जहाज रवाना होने वाला था, दो बड़े जहाजों के खुले हुये आगे के पालों की तरफ मेरा ध्यान गया। उसी समय मैंने पेंसिल से एक नोट लिखा और किसी प्रकार उसको जहाज के तख्ते पर भेजकर यह मालूम करने की कोशिश की इनमें से कोई जहाज मेरा भी है ?

इसके बाद तेजी से अपने सिपाहियों, नौकरों और सेवकों को नाव से उतारा, मुझे कुछ सन्देह हो रहा था। लेकिन कुछ ही देर में मेरा वह सन्देह दूर हो गया। वे दोनों ही जहाज सप्ताह से पहले ही इङ्गलैंड के लिये रवाना होने वाले थे। मैंने मल्लाहों को इनाम और इकराम दिये, अम्यूब को विलायत की दूध अर्थात् ब्राण्डी की बोतल देकर मैं अपना सभी प्रकार का सामान उतरवाया, मेरे उस सामान में देवताओं की टूटी हुई प्रतिमायें, शिला-लेख, ग्रन्थ, पाण्डुलिपियाँ आदि चालीस बक्सों में भरी थी। उन सबको अपने तम्बुओं के नीचे रखवाया। उनके सम्बन्ध में मेरे मित्रों ने पहले से ही मेरी सहायता कर दी थी।

जहाज रवाना होने के समय तक मुझे वहाँ पर तीन सप्ताह रुकना पड़ा। मेरे दिल में इस बात का बड़ा दुख हुआ कि यदि इन तीन सप्ताहों का मौका मुझे रास्ते में मिला होता तो मैंने अपने अनुसंधान का शेष कार्य भी बहुत कुछ कर डालता। समय को बेकार व्यय करने के लिये मेरे पास गुंजाइश कहाँ है ? प्रतीक्षा के इन दिनों को बेकार खोने का मुझे बहुत रंज हो रहा था। लेकिन जो अपने समय का सदुपयोग करना चाहता है, वह कर भी लेता है। मेरी जिज्ञासा ने मुझे अवसर दिया और मैं इन दिनों का अच्छा लाभ उठा सका।

जहाज पर रवाना होने के कई दिन पहले उस समय के प्रधान सेनापति जनरल सर चार्ल्स मालकम से अपनी यात्रा के विषय में मैंने बातचीत की। आबू पर्वत की यात्रा, पालीताना के शत्रुंजय, सोमनाथ, अनहिलवाड़ा और चन्द्रावती आदि के सम्बन्ध में मेरी बातें हुई।

बम्बई छोड़ने के बाद कोचीन में जब जहाज को देर तक ठहरना पड़ा तो उस

मौके पर मैंने अपनी यात्रा के सम्बन्ध में एक विस्तृत विवरण तैयार कर लिया और उसको उनके पास भेज दिया। मेरे उस विवरण का उन्होंने बहुत फायदा उठाया और कितने ही प्रमुख स्थानों की उन्होंने यात्रा की, जिनकी जानकारी केवल मुझको थी। मुझे उस समय अधिक प्रसन्नता हुई, जब मैंने जाना कि प्रधान सेनापति के सहायक लोगों में कर्नल हण्टर ब्लेयर भी हैं और उनके साथ श्रीमती हण्टर ब्लेयर भी हैं। ये लोग सभी और विशेषकर श्रीमती हण्टर वास्तु विज्ञान, पुरातत्व और हिन्दू-शिल्प के सम्बन्ध में विशेष रुचि रखती हैं।

मेरी यात्रा की कहानी यहाँ पर समाप्त होती है। एक हिन्दी पत्र-लेखक ने मुझसे अनुरोध किया है कि मैं अपनी इस यात्रा का उपसंहार लिखूं। लेकिन किसी विशेषता और आवश्यकता के लिए।

मैं जब जहाज की यात्रा कर रहा था, मेरी आँखें सूखी जमीन की ही खोज करती रहीं। लेकिन मेरे मन के भाव भविष्य की कल्पना करते रहे। मेरे राजदूत मित्रों ने शीघ्र वापस लौटने के लिये आग्रह किया था। मैं उन सबके भविष्य की विभिन्न कल्पनायें करता रहा।

अन्त में जब मैं भारत के आखिरी भाग में पहुँचकर मनार की खाड़ी पार कर रहा था, उस समय मैंने ध्रुवतारा देखा। मुझे अनुभव हुआ, मानो भारत से विदा होने के समय ध्रुवतारा अन्तिम बिदाई देने आया है। इस समय मुझे फिर एक बार भारत की याद आई, उस भारत की, जहाँ पर मैंने अपने जीवन का श्रेष्ठ भाग व्यतीत किया था और जहाँ पर अर्से तक रहकर मैं हजारों मनुष्यों के कल्याण की बातें सोचा करता था। कोई भी पाठक ज्योतिषी नहीं होता, इसलिये यहाँ पर मुझे एक विवरण देना है। इसलिये कि यह तारा पूर्व और पश्चिम—दोनों के सम्बन्ध और सम्पर्क को जोड़ने का सदा से कार्य करता रहा है।

उदयपुर में मेरे घूमने के लिये प्रमुख स्थान मेरी पोल अथवा दरवाजे के ऊपर की छत थी। वहीं पर बैठकर मैं प्रायः भोजन किया करता था। और वहीं पर सो भी जाता था, विशेषकर गर्मी के दिनों में, जब बाहर आकर व्यायाम करना बड़ा कठिन मालूम होता था। उस क्षेत्र के गम्भीर नीले आकाश के प्रकाश में यह तारा अपने सुनहले प्रकाश के साथ, इस प्रकार चमकता था, जिसके सम्बन्ध में कुछ कहना और बता सकना सरल काम नहीं है। जब उसका चन्दोवा मेरे सिर के ऊपर होता था तो मैं अपने आपको एक सावा निवासी अनुभव करता था। यदि उस छत के आर-पार एक रेखा खींची जाय और उसको सीधा बढ़ाया जाय तो वह ध्रुव तारे पर जाकर खतम हो सकती थी।

मैं यहाँ पर यह कहना चाहता हूँ कि यह तारा कितने ही वर्ष रात के समय सुदूर आकाश में रहकर मुझे प्रकाश देता रहा है। मुझे इसको देखकर विभिन्न प्रकार की बातों की याद आती थी। उन दिनों में चन्द्रमा का पूरा प्रकाश तो जीवन का एक मधुर और शीतल सुख बन जाता था।

उस आनन्दपूर्ण घाटी और उसके आस-पास के आकर्षक दृश्य उन दिनों में भी मुझे बहुत प्रिय लगते थे और भविष्य में भी उनकी स्मृतियाँ उनके सुन्दर दृश्यों का स्मरण दिलाती रहेंगी। सच बात तो यह है कि उन दृश्यों से मुझे कभी तृप्ति नहीं हुई और न आज ही हो रही है।

ये सारे दृश्य आज मेरे नेत्रों से ओझल हैं, लेकिन उनके स्मरण कभी भुलाये नहीं जा सकते। जब मैं उन दिनों को याद करता हूँ तो ऐसी कौन सी बात है जो हठात् मेरे सामने आकर उपस्थित नहीं हो जाती। मैं उस नक्षत्र की ओर टकटकी लगाकर कुछ समय देखता रहा। मानो मैं उसके साथ कुछ बातें करना चाहता था। मैं भी अवाक् था और ध्रुव तारा भी। मुझे ऐसा लगा, मानो वह मेरी विदायी में फीका हो रहा है और मैं उसकी सेवा के प्रति अपना आभार प्रदर्शन कर रहा हूँ।

जब मैं कुछ सोचने लगता तो ऐसा मालूम होता, मानो वह ध्रुव दिखायी नहीं दे रहा है, लेकिन कुछ ही क्षणों में उसका प्रकाश फिर मुझे अपनी ओर आकर्षित कर लेता। इसी प्रकार के भावावेश में लहरों के साथ छिपता और निकलता हुआ कुछ देर में वह आँखों से ओझल हो गया, उस समय मैंने एक अभाव अनुभव किया और अचानक ऐसा लगा मानो मेरा एक मित्र—जो बहुत दिनों से साथ में था—मुझसे विदा हो गया।

जब मैं उत्तरी अटलांटिक सागर में यात्रा कर रहा था, उस समय उसका प्रकाश फिर नेत्रों पर पड़ा, मानो मुझे देखने के लिए वह फिर से झाँकने लगा है। प्रसन्न होकर मैंने उसका स्वागत किया। मुझे हँसी आ गयी और उसका प्रकाश उसकी मुस्कराहट का परिचय दे रहा था।

पाठकों को कदाचित् इससे कोई मतलब न हो कि मैं सेण्टहेलेना (१) में ठहरा और वहीं पर मैंने अपना इस यात्रा का उपसंहार उसकी मजार पर किया, जिसके धैर्य पूर्ण एवम् विशाल मस्तिष्क के साथ सम्पूर्ण संसार का परिचय है। मजार के सामने खड़े होते ही मेरे मुख से निकल गया—

तुम्हारी वह महत्वाकांक्षा कितनी विशाल थी और आज वह
तंग होकर किस कदर सिकुड़ गयी है!
जब इस शरीर में प्राण थे तो,
एक विशाल और विस्तृत साम्राज्य भी उसके लिये कम था,
लेकिन प्राण निकल जाने पर,
एकान्त की दो कदम जमीन भी काफी हो गयी है!

२८ अक्तूबर १८४२ ईस्वी।

समाप्त

(१) सेण्ट हेलेना में नैपोलियन की १८२१ ईस्वी में मृत्यु हुई थी।